प्रकाशक
वीर सेवामन्दिर सस्तीग्रन्थमाला
७/३३ दरियागंज, दिल्ली

अगस्त
१९५०

मुद्रक
अमरचन्द्र जैन
'राजहंस प्रेस,
सदर बाजार, दिल्ली

सम्पादकीय

गतवर्ष भारतकी राजधानी देहलीमें भारतके आध्यात्मिक संत महात्मा पूज्यश्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी के ससंघ चतुर्मास के शुभ अवसर पर पूज्य क्षुल्लक चिदानन्दजी की प्रेरणानुसार वीर-सेवा मन्दिर के तत्त्वावधान में एक सस्ती ग्रन्थमाला की स्थापना की गई जिसका नाम—"वीर सेवामन्दिर-सस्ती ग्रन्थमाला" रक्खा गया। जिसका पवित्र उद्देश्य सर्व साधारण में ज्ञान की भावना को जाग्रत करते हुये जैनधर्म का प्रचार एवं प्रसार करना है, और उससे प्रकाशित ग्रन्थोंको सस्ते तथा लागतसे भी कम मूल्यमें देनेका संकल्प है, जिससे ग्रन्थोंकी प्राप्ति सुलभ होकर सर्वसाधारणमें ज्ञानका अधिकाधिक प्रचार होसके। इसी पवित्र उद्देश्यको लक्ष्यमें रखकर उक्त ग्रन्थमालासे सर्व प्रथम 'मोक्षमार्ग-प्रकाशक' नामक ग्रन्थको प्रकाशित करनेकी योजना कीगई, और उसके प्रकाशनमें सर्वप्रथम योग देनेका उपक्रम ला० फिरोजीलालजी और उनकी धर्मपत्नीने पांचसौ एक, पांचसौ एक रुपये प्रदानकर किया था। इसके वाद-उक्त क्षुल्लकजीके उपदेशानुसार अन्य दूसरे सज्जनोंसे भी आर्थिक सहायता प्राप्त हुई, जिसके लिये ग्रन्थमाला उनकी आभारी है। प्रस्तुत ग्रन्थके प्रकाशनके लिये यह बात तय हुई कि ग्रन्थको टोडरमल्लजी की स्वहस्तलिखित प्रतिसे मिलानकर ही प्रकाशित किया जाय। चुनांचे मैं ता. १६।७।४६ को जयपुर गया और वहांसे पं० चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ प्रिंसिपल जैन संस्कृत कालेज जयपुरके सौजन्यसे एक महीनेकी वापिसीके लिखित वायदे पर उक्त ग्रन्थ देहली लाया, और उसका मिलान कार्य शुरू कर दिया। और रात दिनका समय लगाकर और मिलान कार्य

पूरा कर यथा समय ग्रन्थ वापिस देने पुनः जयपुर गया। ग्रन्थकी प्रेस कापी प्रेसको देने से पूर्व ग्रन्थमें कुछ उपशीर्षकोंका चुनाव करना उचित समझा गया, और श्रद्धेय पं० जुगलकिशोरजी मुख्तारके संकेतानुसार संक्षिप्त शीर्षकोंकी एक सूची तैयार की, उसके अनुसार विभक्त नौ अधिकारों में यथास्थान शीर्षक अंकित किये। परन्तु ग्रन्थ-प्रकाशनके योग्य कागज और प्रेसकी शीघ्र व्यवस्था न होसकी। यद्यपि ला० जुगलकिशोरजी कागजी (फर्म—ला० धूमीमल धर्मदास दिल्ली) ने मोक्षमार्ग प्रकाशक के लिये इलाहाबाद की टाइप फौण्डरीसे १६ प्वाइन्टका टाइप कम्पोजीटर भेजकर मंगाया, परन्तु कम्पनीने वायदा करकेभी पूरा टाइप नहीं भेजा इसमे और भी विलम्ब होगया। इसी बीचमें पूज्य क्षु० चिदानंदजी ने बारह रुपयेके सैटकी योजना बनाई, और मोक्षमार्ग प्रकाशकके प्रकाशन में विलम्ब होता देख ग्रन्थमालासे छहढाला, सरल जैनधर्म-चारों भाग, जैन महिला शिक्षासंग्रह, सुखकी झलक, रत्नकरण्ड श्रावकाचार और श्रावक धर्म संग्रह छपानेकी योजना की, और उन्हें कई प्रेसोंमें देदिया गया। कार्तिकके महीनेके शुरूमें 'आला प्रिन्टिंग प्रेस' के मैनेजर रस्तौगी से बातचीत हुई, और उन्होंने १५ दिनमें ग्रन्थ छापकर देनेका लिखित वायदा भी किया, तब ग्रन्थका मैटर और दो सौ रुपया पेशगी उक्त प्रेसको देकर कार्य शुरू किया। किन्तु प्रेसमें—टाइप आदिकी समुचित व्यवस्था न होनेसे मोक्षमार्ग प्रकाशक को 'आला प्रिन्टिंग प्रेस' से हटाकर मार्चके दूसरे सप्ताहमें 'राजहंस' प्रेसको दे दिया गया। १६१वें पेजसे शेष पूरा ग्रन्थ राजहंस प्रेसमें ही छपा है।

प्रति परिचय

मोक्षमार्ग प्रकाशकका प्रस्तुत संस्करण अपने पिछले संस्करणोंकी अपेक्षा बहुत कुछ विशेषताको लिये हुये है। आशा है कि यह पाठकोंको रुचिकर होगा। यद्यपि इसके प्रकाशनमें यथाशक्ति सावधानी रक्खी

गई है, फिरभी जो अशुद्धियां रह गई हैं, उसका बड़ा भारी खेद और उनका शुद्धिपत्रभी साथमें लगा दिया है।

ग्रन्थके संशोधनादि तथा प्रतिके सम्बन्धमें दो शब्द लिख देना आवश्यक है। प्रस्तुत ग्रन्थकी मूल खरड़ा प्रति २१७ पत्रोंमें समाप्त हुई है जिसमें शुरूके ४५ पत्र तो दूसरी कलमसे लिखे हुये हैं, और शेष सर्वपत्र स्वर्गीय पं० टोडरमल्लजी के स्वहस्त कौशलके नमूनेको लिये हुये हैं। मल्लजीके अक्षर स्पष्ट और देखनेमें सुन्दर प्रतीत होते हैं। हां उक्त खरडा प्रति यत्र तत्र संशोधन, परिवर्धन और अनेक सूचनाओंको लिये हुये है। उसमें जगह-जगह संशोधनादि किये गये हैं। और लेखकोंको आगे पीछे क्या लिखना चाहिये इसकीभी सूचनाएँ अंकित हैं। मुद्रित और अनेक हस्तलिखित प्रतियोंमें पहिले भक्तियोग नामके प्रकरणको दिया गया है जबकि खरडा प्रतिमें लिखा तो ऐसा ही है किन्तु वहां ज्ञानयोगको पहले और भक्तियोगको बाद में लिखने की सूचना हांसियेमें करदी है, पर लेखकों ने इसका विचार नहीं किया, और भक्तियोगको पहले तथा ज्ञानयोगको बादमें लिख दिया है। इस तरहकी और भी भूलें लेखकोंसे जहां तहां हुई हैं। कितनेही वाक्य विन्यास जो असुन्दर जान पड़े बादको खरडा प्रतिमें संशोधित किये गये हैं। मुद्रित प्रतियोंमें जहां जहां जो पंक्तियां वा वाक्य छूटे हुए थे उन्हें एक दो पंक्तिके संकेतके और शेष पंक्तियां तथा वाक्य विना किसी संकेतके यथास्थान शामिल करदिये गये हैं और जिन्हें खरडा प्रतिके अनुसार निकालना चाहिये था उन्हें उसमें से निकाल दिया है। इस तरह ग्रन्थको भारी परिश्रम और सावधानीके साथ तैयार करनेका प्रयत्न किया है। फिर भी दृष्टि दोषसे कई ऐसी अशुद्धियां रह गई हैं, जिन्हें पाठक शुद्धिपत्रके अनुसार संशोधित कर पढ़नेकी कृपा करें।

ग्रन्थमें जो वाक्य अशुद्ध रूपमें छपे हुये चल रहे थे उन्हेंभी

खरडा प्रतिके अनुसार संशोधित करदिया गया है, जिसका एक नमूना इस प्रकार है:—

मुद्रित प्रति के पृष्ठ ३८६-३८७ पर अपूर्वकरण कालका लक्षण बतलाते हुये लिखा है कि—बहुरि जिस विषैं पहिले पिछले समयनिके परिणाम समान न होंय अपूर्व ही होंय । बहुरि जैसें यहां अधःकरणवत् पहले समय होंय तैसें कोईही जीवकैं द्वितीय समयनि विषैं न होंय बधतेही होंय तिस करणके परिणाम जैसैं जिन जीवनि के करणका पहला समयही होय तिन अनेक जीवनिके परस्पर परिणाम समान भी होंय' । ऐसा पाठ सन् १९११ की पं० नाथूरामजी प्रेमी द्वारा सम्पादित प्रति में पाया जाता है। इसके स्थानपर निम्न पाठ दिया गया है :—

"बहुरि जिसविषैं पहले पिछले समयनिके परिणाम समान न होंय अपूर्वही होंय (सो अपूर्व करण है।) जैसैं तिस करणके परिणाम जैसैं पहलैं समय होंय तैसें कोई ही जीवकैं द्वितीयादि समयनिविषैं न होंय बधते ही होंय। बहुरि यहां अधःकरणवत् जिन जीवनिकैं करणका पहला समय ही होय तिनि अनेक जीवनि के परस्पर परिणाम समान भी होंय"।

इसके सिवाय अनिवृत्तिकरणका स्वरूप बतलाते हुये अनिवृत्तिकरणमें होने वाले आवश्यक 'अन्तर करण' करनेका उल्लेख किया है। वहां अनिवृत्तिकरण ही मुद्रित हुआ मिलता है। उसके स्थानमें शुद्ध रूप "अन्तर करण" बना दिया है और टिप्पणमें जयधवलाके अनुसार उसका लक्षण भी दे दिया गया है—जिससे पाठकोंको स्वाध्याय करनेमें कोई कठिनाई उपस्थित न हो।

प्रस्तुत संस्करणमें ग्रन्थकारको खरडा प्रतिको सामने रखते हुये भाषामें अपनी ओरसे कोई परिवर्तन नहीं किया गया है, किन्तु सन् १९११ में प्रकाशित संस्करणमें आवश्यक संशोधन करते हुये और

'इ' के स्थानमें 'ऐ' और 'य' ही रहने दिया है। जबकि खरड़ा प्रति में दोनों थे।

इस संस्करणको उपयोगी बनाने में मुझसे जितना भी श्रम हो सका करनेकी कोशिश की है। हां अवकाश की कमी और कार्याधिक्यताके कारण जो विशेष टिप्पण मैं देना चाहता था उन्हें नहीं दे सका जिसका मुझे भारी खेद है। सावधानी रखनेपर भी अशुद्धियां रह गईं हैं, जिनका शुद्धिपत्र श्री पं० हीरालालजी सिद्धान्तशास्त्री ने तैयार किया है। पाठकगण, तदनुमार ग्रन्थको पहले शुद्ध कर पीछे स्वाध्याय करने की कृपा करें।

इस ग्रन्थके सुन्दर संस्करण निकालनेके सम्बन्धमें श्री १०५ पूज्य क्षुल्लक पं० गणेशप्रसादजी वर्णीसे अनेक संकेत एवं उत्साह मिला तथा कार्य करनेमें आपका सहयोग मिला, उन्हींकी कृपासे इस कार्यमें प्रवृत्त हुआ। इसके लिये मैं आपका चिर कृतज्ञ और आभारी हूं, और यह भावना करता हूँ, कि आप शतवर्ष जीवी हों। आप जैसे सन्तोंसे ही आत्मा कल्याणमें प्रवृत्ति हो सकती है।

इसके सिवाय श्रद्धेय मुख्तार साहबका तो मैं विशेष आभारी-हूँ कि जिनके अनुग्रह एवं कृपासे सब प्रकारकी सुविधा प्राप्त रही।

अन्तमें मैं ला० जुगलकिशोर जी कागजी वा जिनेन्द्रकिशोर जी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती जयमालादेवी का आभारी हूं जो मुझे वार-वार उत्साह दिलातीं रही, जिससे मैं अनेक विषम परिस्थितियोंको पार करता हुआ भी कार्य करने में तन्मय रहा। इति

वीर सेवा मन्दिर, सरसावा — परमानन्द जैन

ता० १५—८—५०

—०—

ग्रन्थमालाके संरक्षक और सहायक

सेठ लालचन्द्रजी बीड़ी वाले, सदर बाजार देहली	२०००)
ला० राजकृष्णजी, २३ दरियागंज देहली	१००२)
मातेश्वरी ला० अजितप्रसादजी कटरा खुशहालराय	१०००)
ला० त्रिलोकचन्द्रजी, सदर बाजार देहली	१०००)
ला० विश्वम्भरदास अजितप्रसादजी सदर बाजार	१०००)
मातेश्वरी ला० शीतलप्रसादजी, किचनरोड नई देहली	१०००)
ला० मुन्शीलाल सुमतिप्रसादजी धर्मपुरा देहली	१०००)
ला० रतनलालजी मादीपुरिया देहली	५०१)
श्री सुशीलादेवी ध. प. रा. ब. ला. सुलतान सिंहजी काश्मीरीगेट देहली	५००)
ला० पन्नालाल दुर्गाप्रसादजी सर्राफ नयागंज कानपुर	५०१)
श्रीमती विद्यावती देवी ध० प० ला० नट्टूमलजी धर्मपुरा देहली	५००)
श्रीमती विद्यावती देवी ध० प० ला० शम्भूनाथजी कागजी धर्मपुरा देहली	५००)
ला० फिरोजीलालजी २७ दरियागंज देहली	३०३)
ला० मनोहरलालजी इंजीनियर ७ दरियागंज देहली	२५०)
ला० छुट्टनलालजी मैदावाले देहली	२५१)
ला० हुकमचन्द्रजी जैन पंच धर्मपुरा देहली	२११)
रा० सा० ला० उल्फतरायजी २७/२३ दरियागंज	२०१)
ला० हरिश्चन्द्रजी २३ दरियागंज देहली	२०१)
धर्म पत्नी ला० बाबूरामजी, बिजली वाले देहली	१५१)
श्रीमती केशरीबाईजी ध० प० ला० चन्दूलालजी सहारनपुर	१२५)

विषय-सूची

प्रथम अधिकार

दूसरा अधिकार

तीसरा अधिकार

चौथा अधिकार

पांचवां अधिकार

छठा अधिकार

सातवां अधिकार

आठवां अधिकार

नवम अधिकार

प्रस्तावना

ग्रन्थ और ग्रन्थकार

भारतीय वाङ्मयमें हिन्दी जैन साहित्य अपनी खास विशेषता रखता है। इतना ही नहीं; किन्तु हिन्दी भाषाको जन्म देनेका श्रेय भी प्राय: जैन विद्वानोंको प्राप्त है; क्योंकि हिन्दी भाषाका उद्गम अपभ्रंश भाषासे हुआ है जिसमें जैनियोंका सातवीं शताब्दीसे १७ वीं शताब्दी तकका विपुल साहित्य, महाकाव्य, खण्ड-काव्य, चरित्र, पुराण, कथा और स्तुति आदि विभिन्न विषयों पर लिखा गया है। यद्यपि उसका अधिकांश साहित्य अभी अप्रकाशित ही है हिन्दी भाषामें जैन साहित्य गद्य और पद्य दोनों भाषाओंमें देखा जाता है। हिन्दीका गद्य साहित्य १७ वीं शताब्दीसे पूर्वका मेरे देखने में नहीं आया, हो सकता है कि वह इससे भी पूर्व लिखा गया हो। परन्तु पद्य साहित्य उससे भी पूर्वका देखनेमें अवश्य आता है।

हिन्दी गद्य साहित्यमें स्वतन्त्र कृतियोंकी अपेक्षा टीका ग्रंथोंकी अधिकता पाई जाती है। परन्तु स्वतन्त्र रूपमें लिखी-गई कृतियोंमें सबसे महत्वपूर्ण कृति 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' ही है। यद्यपि यह ग्रन्थ विक्रमकी १६ वीं शताब्दीके प्रथम पादकी रचना है। तथापि उससे

पूर्ववर्ती और पश्चात्यवर्ती लिखे गए ग्रन्थ इसकी प्रतिष्ठा एवं महत्ताको नहीं पासके । उसका खास कारण पं० टोडरमलजीके क्षयोपशमकी विशेषता है उस प्रकारके ग्रन्थ प्रणयनकी उनमें अपूर्व क्षमता थी, जो उन्हें स्वतः प्राप्त थी। उनकी विचार शक्ति आत्मानुभव और पदार्थ विवेचनकी अनुपम क्षमता और उनकी आन्तरिक भद्रता ही उसका प्रधान कारण जान पड़ता है। यद्यपि सांगानेर (जयपुर) वासी पं० दीपचन्दजी शाहने सं० १७७९ में चिद्विलास नामके ग्रन्थकी, और अनुभवप्रकाशकी रचना की है और पद्य ग्रन्थ भी लिखे हैं जो मनन करने योग्य हैं; परन्तु उनकी भाषा पं० टोडरमलजीकी भाषाके समान परिमार्जित नहीं है और न मोक्षमार्गप्रकाशक जैसी सरल एवं सरस गम्भीर पदार्थ विवेचनाका रहस्यही देखनेको मिलता है, फिर भी वे ग्रन्थ अपने विषयके अनूठे हैं।

ग्रन्थ नाम और विवेचन पद्धति

प्रस्तुत ग्रन्थका नाम 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' है जिसे ग्रन्थ कर्त्ताने स्वयं ही सूचित किया है। यद्यपि पिछले चार पांच प्रकाशनोंमें ग्रन्थका नाम मोक्षमार्ग प्रकाश' ही सूचित किया गया है, मोक्षमार्गप्रकाशक नहीं; परन्तु ग्रन्थकर्ताने अपने ग्रन्थका नाम स्वयं ही 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' सूचित किया है, और उनकी स्वहस्त लिखित 'खरडा' प्रतिमें प्रत्येक अधिकारकी समाप्ति सूचक अन्तिम पुष्पिकामें 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' ही लिखा हुआ है। और ग्रन्थके प्रारंभमें भी उन्होंने 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' सूचित किया है। इस कारण ग्रन्थका नाम मोक्षमार्ग प्रकाशक रक्खा गया है मोक्षमार्गप्रकाश नहीं। ग्रन्थका

यह नाम अपने अर्थको स्वयमेव सूचित कर रहा है—उसमें मोक्ष-मार्गके स्वरूपका अथवा मोक्षोपयोगी जीवादि पदार्थोंका विवेचन सरल एवं सुबोध हिन्दी भाषामें किया गया है। साथ ही शंका समाधानके साथ विषयका स्पष्टीकरणभी किया गया है जिससे पाठक पदार्थकी वस्तु-स्थितिको सहजहीमें समझ सकते हैं। ग्रन्थकी महत्ता परिचित पाठकोंसे छिपी हुई नहीं है उसका अध्ययन स्वाध्याय प्रेमियोंके लिये ही आवश्यक नहीं किन्तु विद्वानोंके लिये भी अत्यावश्यक है, उससे विद्वानोंको विविध प्रकारकी चर्चाओंका—खासकर प्रथमानुयोग करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग रूप चार. वेदों अथवा अनुयोगोंका कथन, प्रयोजन उनकी सापेक्ष विवेचन शैलीका—जो स्पष्टी करण पाया जाता है वह अन्यत्र नहीं है। और इसलिये यह ग्रन्थ सभी स्त्री-पुरुषोंके अध्ययन मनन एवं चिन्तन करनेकी वस्तु है उसके अध्ययनसे अनुयोग पद्धतिमें विरुद्ध जंचने वाली कथनशैलीके विरोधका निरसन सहजही हो जाता है और बुद्धि उनके विषय विवक्षा और दृष्टिभेदको शीघ्रही ग्रहण कर लेती है। साथ ही जैन मिथ्यादृष्टिका विवेचन अपनी खास महत्ताका द्योतक है उससे जहां निश्चय व्यवहार रूप नयोंकी कथन-शैली, दृष्टि, सापेक्ष निरपेक्ष रूप नय विवक्षाके विवेचनके रहस्यका पता चलता है वहां सर्वथा एकान्त रूप मिथ्या अभिनिवेशका कदाग्रह भी दूर हो जाता है और शुद्ध स्वरूपका अध्ययन एवं चिंतन करने वाला जैन श्रावक उक्त प्रकरणका अध्ययन कर अपनी दृष्टिको सुधारने में समर्थहो जाता है और अपनी आन्तरिक मिथ्यादृष्टिको

छोड़कर यथार्थ वस्तु स्थितिके मार्ग पर आजाता है। और फिर वहां आत्म कल्याण करनेमें सर्व प्रकारसे समर्थ हो जाता है।

इस तरह ग्रन्थ गत सभी प्रकरणोंकी विवेचना बड़ी ही मार्मिक, सरल, सुगम और सहज सुबोधशैलीसे की गई है। यद्यपि अभाग्यवश ग्रंथ अधूरा ही रह गया है मल्लजी अपने संकेतोंके अनुसार इसे महाग्रंथका रूप देना चाहते थे। और उसी दृष्टिसे उन्होंने अधिकार विभागके साथ विषयका प्रतिपादन किया है। काश ! यदि यह ग्रन्थ पूरा हो जाता तो वह अपनी शानी नहीं रखता, फिर भी जितना लिखा जा सका है वह अपने आपमें परिपूर्ण और मौलिक कृतिके रूपमें जगतका कल्याण करनेमें सहायक होगा। इस ग्रन्थके अध्ययन एवं अध्यापनसे कितनोंका क्या कुछ भला हुआ, और कितनोंकी श्रद्धा जैनधर्म पर दृढ़ हुई इसे बतलानेकी आवश्यकता नहीं, पाठक और स्वाध्याय प्रेमीजन इसकी महत्तासे स्वयं परिचित हैं।

ग्रन्थकी भाषा

प्रस्तुत ग्रन्थकी भाषा ढूंढारी है, चूंकि जयपुर स्टेट राजपूतानेमें है और जयपुरके आस-पासका प्रदेश ढूंढाहड़ देश कहलाता है, इसीसे उक्त प्रदेशकी बोल-चालकी भाषा ढूंढारी कहलाती है। यद्यपि साहित्य सृजनमें ढूंढारी भाषाका स्वतन्त्र कोई स्थान नहीं है उसे राजस्थानी और ब्रजभाषाके प्रभावसे सर्वथा अछूता भी नहीं कहा जा सकता, और यह संभव प्रतीत होता है कि उस पर ब्रजभाषाकी तरह राजस्थानी भाषाका भी असर रहा हो, ब्रजभाषाके प्रभावके

बीज तो उसमें निहित ही है; क्योंकि उत्तर प्रदेशकी भाषा ब्रज थी और राजस्थानके समीपवर्ती स्थानोंमें उसका प्रचार होना स्वाभाविक ही है। अतएव यह संभावना नहींकी जा सकती है कि दूंढारी भाषा ब्रजभाषाके प्रभावसे सर्वथा अछूती रही है। किन्तु उसमें ब्रजभाषाके शब्दोंका आदान प्रदान हुआ है। यही कारण है कि प्रस्तुत ग्रंथकी भाषा दूंढारी होते हुए भी उसमें ब्रजभाषाकी पुट अंकित है।

ग्रन्थकी भाषा सरल, मृदु और सुबोध तो है ही, और उसमें मधुरता भी कम नहीं पाई जाती है पढ़ते समय चित्रमें स्फूर्तिको उत्पन्न करती है और बड़ी ही रसीली और आकर्षक जान पड़ती है। साथ ही, १६ वीं शताब्दीके प्रारम्भिक जयपुरीय विद्वानोंमें जिस दूंढारी भाषाका प्रचार था, पं० टोडामलजीकी भाषा उससे कहीं अधिक परिमार्जित है वह आज कलकी भाषाके बहुत निकट वर्ती है और आसानीसे समझमें आसकती है। दूंढारी भाषा में 'और' 'इसलिये' 'फिर' अदिशब्दोंके स्थान पर 'बहुरि' शब्दका प्रयोग किया गया है और क्योंकि इसलिये इस प्रकार आदि शब्दोंके स्थान पर 'जातैं' 'तातैं', 'याभांति', जैसे शब्दोंका प्रयोग हुआ है। और षष्ठो विभक्तिमें जो रूप देखनेमें आते हैं उनमें बहुवचनमें 'सिद्धोंके' स्थान पर 'सिद्धनिका' जैसे शब्दोंका प्रयोग पाया जाता है इसी तरहके और भी प्रयोग हैं पर उनके समझनेमें कोई खास कठिनाई उपस्थित नहीं होती। हां, ग्रंथमें कतिपय ऐसे शब्दोंका प्रयोग भी हुआ है जो सहसा पाठकोंकी समझमें नहीं आता जैसे 'आखता' शब्दका प्रयोग, जिसका अर्थ उतावला होता है इसी तरह एक स्थान पर 'हापटा

मारै है,' जैसे वाक्यका प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ अत्याशक्तिसे पदार्थका ग्रहण करना होता है। पर आज-कलके समयमें जबकि हिंदी भाषा बहुत कुछ विकास एवं प्रसार पा चुकी है और वह स्वतंत्र-भारतकी राष्ट्र भाषा बनने जा रही है ऐसी स्थितिमें उस भाषाको समझनेमें कोई खास कठिनाई उपस्थित नहीं होती।

विषय-परिचय

प्रस्तुत मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रंथ नौ अधिकारोंमें विभक्त है उनमें अन्तिम नवमा अधिकार अपूर्ण है और शेष आठ अधिकार अपने विषयमें परिपूर्ण हैं। इनमें से प्रथम अधिकारमें मंगलाचरण और उसका प्रयोजन प्रकट करनेके अनंतर ग्रंथकी प्रामाणिकताका दिग्दर्शन कराया गया है। पश्चात् वांचने सुनने योग्य शास्त्र, वक्ता,श्रोताके स्वरूपका सुप्रमाण विवेचन करते हुए मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थकी सार्थकता बतलाई गई है।

दूसरे अधिकारमें सांसारिक अवस्थाके स्वरूपका सामान्य दिग्दर्शन कराते हुए 'कर्म बन्धनका निदान' 'नूतन बंध विचार' कर्म और जीवका अनादि सम्बन्ध, अमूर्तिकआत्मासे मूर्तिक कर्मोंका सम्बन्ध किस प्रकार होता है तथा उन कर्मोंके घातिया अघातिया भेद और उनका कार्य व्यक्त करते हुए जड़ कर्म जीवके स्वभावका घात कैसे करते हैं इस पर विचार किया गया है, योग और कषायसे होने वाले यथा योग्य कर्म बन्धोंका निर्देश और जड़ पुद्गल परमाणुओंका यथा योग्य प्रकृति रूप परिणमनका उल्लेख करते हुए भावोंसे कर्मोंकी पूर्व बद्ध अवस्थामें होने वाले परिवर्तनोंका निर्देश किया

गया है, साथ ही कर्मोंके फलदानमें निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध और और भावकर्म द्रव्यकर्मका रूप भी बतलाया गया है।

तीसरे अधिकारमें भी संसार अवस्थाका स्वरूप निर्दिष्ट करते हुए दुःखोंके मूलकारण मिथ्यात्वके प्रभावका कथन किया गया है, और मोहोत्पन्न विषयोंकी अभिलाषा जन्म दुख तथा मोही जीवके दुःख निवृत्तिके उपायको निस्सार बतलाते हुए दुःख निवृत्तिका सच्चा उपाय बतलाया गया है और दर्शनमोह तथा चारित्रमोहके उदयसे होने वाले दुख और उनकी निवृत्तिका उल्लेख किया गया हैं। एकेंद्रियादिक जीवोंके दुःखोंका उल्लेख करते हुए नरकादि चारोंगतियोंके घोर कष्टों और उनको दूर करने वाले सामान्य विशेष उपायोंका भी विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अधिकारोंमें संसार परिभ्रमणके कारण मिथ्यात्व, अज्ञान और असंयमके स्वरूपका कथन करते हुए प्रयोजनभूत और अप्रयोजनभूत पदार्थोंका वर्णन और उनसे होने वाली राग द्वेषकी प्रवृत्तिका स्वरूप बतलाया गया है।

पांचवें अधिकारमें आगम और युक्तिके आधारसे विविधमतोंकी समीक्षा करते हुए गृहीत मिथ्यात्वका बड़ा ही मार्मिक विवेचन किया गया है। साथ ही अन्य मतके प्राचीन ग्रन्थोद्धरणों द्वारा जैनधर्मकी प्राचीनता और महत्ताको पुष्ट किया गया है और श्वेतम्बर सम्प्रदाय सम्मत अनेक कल्पनाओं एवं मान्यताओंकी समीक्षा की गई है और अछेरों (निन्हवों) का निराकारण करते हुए केवलीके आहार प्रतिषेध, तथा मुनिके वस्त्र पात्रादि उपकरणोंके रखनेका

है। साथ ही, ढूंढकमतकी आलोचना करते हुए प्रतिमा धारी श्रावक न होनेकी मान्यता, मुहपत्तिका निषेध, और मूर्तिपूजाके प्रतिषेधका निराकरण भी किया गया है।

छठे अधिकारमें गृहीत मिथ्यात्वके कारण कुगुरु कुदेव और कुधर्मका स्वरूप और उनकी सेवाका प्रतिषेध किया गया है और अनेक युक्तियों द्वारा गृह, सूर्य, चन्द्रमा, गौ और सर्पादिककी पूजाका भी निराकरण किया गया है।

सातवें अधिकारमें जैन मिथ्यादृष्टिका साङ्गोपांग विवेचन करते हुए एकान्त निश्चयावलम्बी जैनाभास और सर्वथा एकान्त व्यवहारावलम्बी जैनाभासका युक्तिपूर्ण कथन किया गया है; जिसे पढ़ते ही जैन दृष्टिका वह सत्य स्वरूप सामने आजाता है और उसकी वह विपरीत कल्पना जो वस्तु स्थितिको अथवा व्यवहार निश्चयनयोंकी दृष्टिको न समझनेके कारण हुई थी दूर हो जाती है। इस महत्वपूर्ण-प्रकरणमें मल्लजीने जैनियोंके आभ्यन्तर मिथ्यात्वके निरसनका बड़ा रोचक और सैद्धान्तिक विवेचन किया है और उभयनयोंकी सापेक्ष दृष्टिको स्पष्ट करते हुए देव शास्त्र और गुरुभक्तिकी अन्यथा प्रवृत्तिका निराकरण किया है और सम्यक्त्वके सन्मुख मिथ्यादृष्टिका स्वरूप तथा क्षयोपशम, विशोधी, देशना, प्रयोग्य और करण रूप पंचलब्धियोंका निर्देश करते हुए उक्त अधिकारको पूरा किया गया है।

आठवें अधिकारमें चार वेदों, अथवा प्रथमानुयोग करणानुयोग, चरणानुभोग और द्रव्यानुयोग रूप चार अनुयोगोंके प्रयोजन, स्वरूप, विवेचन शैली और उनमें होने वाली दोष कल्पनाओंका प्रतिषेध

करते हुए अनुयोगोंकी सापेक्ष कथन शैलीका समुल्लेख किया गया है। साथ ही आगमाभ्यासकी प्रेरणा भी की गई है।

नवमें अधिकारमें मोक्षमार्गके स्वरूपका निर्देश करते हुए मोक्षके कारण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र इन तीनोंमें से मोक्षमार्गके प्रथम कारण स्वरूप सम्यग्दर्शानिका भी पूरा विवेचन नहीं लिखा जा सका है खेद है कि ग्रन्थ कर्ताकी अकाल मृत्यु हो जानेके कारण वे इस अधिकार एवं ग्रन्थको पूरा करने में समर्थ नहीं हो सके हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है। परन्तु इस अधिकारमें जो भी कथन दिया हुआ है वह बड़ाही सरल और सुगम है, उसे हृदयंगम करने पर सम्यग्दर्शनके विभिन्न लक्षणोंका सहजही समन्वयहो जाता है और उसके भेदोंके स्वरूपका भी सामान्य परिचय मिल जाता है। इस तरह इस ग्रन्थमें चर्चित सभी विषय अथवा प्रमेय, ग्रन्थ कर्ताके विशाल अध्ययन अनुपम प्रतिभा और सैद्धान्तिक अनुभवनका सफल परिणाम है। और वह ग्रन्थ कर्ताकी आन्तरिक भद्रताकी महत्ताके संद्योतक हैं।

इस ग्रन्थकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि गम्भीर एवं दुरुह चर्चाको सरलसे सरल शब्दोंमें अनेक दृष्टान्त और युक्तियोंके द्वारा समझानेका प्रयत्न किया गया है। और स्वयं ही प्रश्न उठाकर उनका मार्मिक उत्तर भी दिया गया है, जिससे अध्येताको फिर किसी सन्देहका भाजन नहीं बनना पड़ता।

जीवन परिचय

हिन्दी साहित्यके दिगम्बर जैन विद्वानोंमें पंडित टोडरमल-

मारै है,' जैसे वाक्यका प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ अत्याशक्तिसे पदार्थका ग्रहण करना होता है। पर आज-कलके समयमें जबकि हिंदी भाषा बहुत कुछ विकास एवं प्रसार पा चुकी है और वह स्वतंत्र-भारतकी राष्ट्र भाषा बनने जा रही है ऐसी स्थितिमें उस भाषाको समझनेमें कोई खास कठिनाई उपस्थित नहीं होती।

विषय-परिचय

प्रस्तुत मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रंथ नौ अधिकारोंमें विभक्त हैं उनमें अन्तिम नवमा अधिकार अपूर्ण है और शेष आठ अधिकार अपने विषयमें परिपूर्ण हैं। इनमें से प्रथम अधिकारमें मंगलाचरण और उसका प्रयोजन प्रकट करनेके अनंतर ग्रंथकी प्रामाणिकताका दिग्दर्शन कराया गया है। पश्चात् वांचने सुनने योग्य शास्त्र, वक्ता,श्रोताके स्वरूपका सप्रमाण विवेचन करते हुए मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थकी सार्थकता बतलाई गई है।

दूसरे अधिकारमें सांसारिक अवस्थाके स्वरूपका सामान्य दिग्दर्शन कराते हुए 'कर्म वन्धनका निदान' 'नूतन बंध विचार' कर्म और जीवका अनादि सम्बन्ध, अमूर्तिकआत्मासे मूर्तिक कर्मोंका सम्बन्ध किस प्रकार होता है तथा उन कर्मोंके घातिया अघातिया भेद और उनका कार्य व्यक्त करते हुए जड़ कर्म जीवके स्वभावका घात कैसे करते हैं इस पर विचार किया गया हैं, योग और कषायसे होने वाले यथा योग्य कर्म वन्धोंका निर्देश और जड़ पुद्गल परमाणुओंका यथा योग्य प्रकृति रूप परिणमनका उल्लेख करते हुए भावोंसे कर्मोंकी पूर्व बद्ध अवस्थामें होने वाले परिवर्तनोंका निर्देश किया

गया है, साथ ही कर्मोंके फलदानमें निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध और और भावकर्म द्रव्यकर्मका रूप भी बतलाया गया है।

तीसरे अधिकारमें भी संसार अवस्थाका स्वरूप निर्दिष्ट करते हुए दुःखोंके मूलकारण मिथ्यात्वके प्रभावका कथन किया गया है, और मोहोत्पन्न विषयोंकी अभिलाषा जन्म दुख तथा मोही जीवके दुःख निवृत्तिके उपायको निस्सार बतलाते हुए दुःख निवृत्तिका सच्चा उपाय बतलाया गया है और दर्शनमोह तथा चारित्रमोहके उदयसे होने वाले दुख और उनकी निवृत्तिका उल्लेख किया गया हैं। एकेंद्रियादिक जीवोंके दुःखोंका उल्लेख करते हुए नरकादि चारोंगतियोंके घोर कष्टों और उनको दूर करने वाले सामान्य विशेष उपायोंका भी विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अधिकारोंमें संसार परिभ्रमणके कारण मिथ्यात्व, अज्ञान और असंयमके स्वरूपका कथन करते हुए प्रयोजनभूत और अप्रयोजनभूत पदार्थोंका वर्णन और उनसे होने वाली राग द्वेषकी प्रवृत्तिका स्वरूप बतलाया गया है।

पांचवें अधिकारमें आगम और युक्तिके आधारसे विविधमतोंकी समीक्षा करते हुए गृहीत मिथ्यात्वका बड़ा ही मार्मिक विवेचन किया गया है। साथ ही अन्य मतके प्राचीन ग्रन्थोद्धरणों द्वारा जैनधर्मकी प्राचीनता और महत्ताको पुष्ट किया गया है और श्वेताम्बर सम्प्रदाय सम्मत अनेक कल्पनाओं एवं मान्यताओंकी समीक्षा की गई है और अछेरों (निन्हवों) का निराकरण करते हुए केवलीके आहार-नीहारका प्रतिषेध, तथा मुनिके वस्त्र पात्रादि उपकरणोंके रखनेका निषेध किया

है। साथ ही, ढूंढकमतकी आलोचना करते हुए प्रतिमा धारी श्रावक न होनेकी मान्यता, मुहपत्तिका निषेध, और मूर्तिपूजाके प्रतिषेधका निराकरण भी किया गया है।

छठे अधिकारमें गृहीत मिथ्यात्वके कारण कुगुरु कुदेव और कुधर्मका स्वरूप और उनकी सेवाका प्रतिषेध किया गया है और अनेक युक्तियों द्वारा गृह, सूर्य, चन्द्रमा, गौ और सर्पादिककी पूजाका भी निराकरण किया गया है।

सातवें अधिकारमें जैन मिथ्यादृष्टिका साङ्गोपांग विवेचन करते हुए एकान्त निश्चयावलम्बी जैनाभास और सर्वथा एकान्त व्यवहारावलम्बी जैनाभासका युक्तिपूर्ण कथन किया गया है; जिसे पढ़ते ही जैन दृष्टिका वह सत्य स्वरूप सामने आजाता है और उसकी वह विपरीत कल्पना जो वस्तु स्थितिको अथवा व्यवहार निश्चयनयोंकी दृष्टिको न समझनेके कारण हुई थी दूर हो जाती है। इस महत्व पूर्ण-प्रकरणमें मल्लजीने जैनियोंके आभ्यन्तर मिथ्यात्वके निरसनका बड़ा रोचक और सैद्धान्तिक विवेचन किया है और उभयनयोंकी सापेक्ष दृष्टिको स्पष्ट करते हुए देव शास्त्र और गुरुभक्तिकी अन्यथा प्रवृत्तिका निराकरण किया है और सम्यक्त्वके सन्मुख मिथ्यादृष्टिका स्वरूप तथा क्षयोपशम, विशोधी, देशना, प्रयोग्य और करण रूप पंचलब्धियोंका निर्देश करते हुए उक्त अधिकारको पूरा किया गया है।

आठवें अधिकारमें चार वेदों, अथवा प्रथमानुयोग करणानुयोग, चरणानुभोग और द्रव्यानुयोग रूप चार अनुयोगोंके प्रयोजन, स्वरूप, विवेचन शैली और उनमें होने वाली दोष कल्पनाओंका प्रतिषेध

करते हुए अनुयोगोंकी सापेक्ष कथन शैलीका समुल्लेख किया गया है। साथ ही आगमाभ्यासकी प्रेरणा भी की गई है।

नवमें अधिकारमें मोक्षमार्गके स्वरूपका निर्देश करते हुए मोक्षके कारण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनोंमें से मोक्षमार्गके प्रथम कारण स्वरूप सम्यग्दर्शनका भी पूरा विवेचन नहीं लिखा जा सका है खेद है कि ग्रन्थ कर्ताकी अकाल मृत्यु हो जानेके कारण वे इस अधिकार एवं ग्रन्थको पूरा करने में समर्थ नहीं हो सके हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है। परन्तु इस अधिकारमें जो भी कथन दिया हुआ है वह बड़ाही सरल और सुगम है, उसे हृदयंगम करने पर सम्यग्दर्शनके विभिन्न लक्षणोंका सहजही समन्वयहो जाता है और उसके भेदोंके स्वरूपका भी सामान्य परिचय मिल जाता है। इस तरह इस ग्रन्थमें चर्चित सभी विषय अथवा प्रमेय, ग्रन्थ कर्ताके विशाल अध्ययन अनुपम प्रतिभा और सैद्धान्तिक अनुभवनका सफल परिणाम है। और वह ग्रन्थ कर्ताकी आन्तरिक भद्रताकी महत्ताके संद्योतक हैं।

इस ग्रन्थकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि गम्भीर एवं दुरुह चर्चाको सरलसे सरल शब्दोंमें अनेक दृष्टान्त और युक्तियोंके द्वारा समझानेका प्रयत्न किया गया है। और स्वयं ही प्रश्न उठाकर उनका मार्मिक उत्तर भी दिया गया है, जिससे अध्येताको फिर किसी सन्देहका भाजन नहीं बनना पड़ता।

जीवन परिचय

हिन्दी साहित्यके दिगम्बर जैन विद्वानोंमें पंडित टोडरमल-

जीका नाम खासतौरसे उल्लेखनीय है। आप हिन्दीके गद्य-लेखक विद्वानोंमें प्रथमकोटिके विद्वान हैं। विद्वत्ताके अनुरूप आपका स्वभाव भी विनम्र और दयालु था और स्वाभाविक कोमलता सदाचारिता आपके जीवन सहचर थे। अहंकार तो आप को छूकर भी नहीं गया था। आन्तरिक भद्रता और वात्सल्यका परिचय आपकी सौम्य आकृतिको देखकर सहजही हो जाता था। आपका रहन-सहन बहुतही सादा था। आध्यात्मिकताका तो आपके जीवनके साथ घनिष्ट-सम्बन्ध था। श्री कुन्द-कुन्दादि महान आचार्योंके आध्यात्मिक-ग्रन्थोंके अध्ययन, मनन एवं परिशीलनसे आपके जीवन पर अच्छा प्रभाव पड़ा हुआ था। अध्यात्मकी चर्चा करते हुए आप आनन्द विभोर हो उठते थे, और श्रोता-जन भी आपकी वाणीको सुनकर गद्गद् हो जाते थे। संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओंके आप अपने समयके अद्वितीय एवं सुयोग्य विद्वान थे। आपका क्षयोपशम आश्चर्यकारी था, और वस्तु तत्त्वके विश्लेषणमें आप बहुत ही दक्ष थे। आपका आचार एवं व्यवहार विवेक युक्त और मृदु था।

यद्यपि पंडितजीने अपना और अपने माता पिता एवं कुटुम्बीजनोंका कोई परिचय नहीं दिया और न अपने लौकिक जीवन परही प्रकाश डाला है। फिर भी लब्धिसार ग्रन्थकी टीका-प्रशस्ति आदि सामग्री परसे उनके लौकिक और आध्यात्मिक जीवनका बहुत कुछ पता चल जाता है। प्रशस्तिके वे पद्य इस प्रकार हैं:—

"मैं हूं जीव-द्रव्य नित्य चेतना स्वरूप मेर्‍यो, लग्यो है अनादितैं कलंक कर्ममलको। ताहीको निमित्त पाय रागादिक भाव भये, भयो

है शरीरकौ मिलाप जैसौ खलकौ । रागादिक भावनिकौ पायकें निमित्त पुनि, होत कर्मबन्ध ऐसो है बनाव कलकौ । ऐसें ही भ्रमत भयो मानुष शरीर जोग बनें तो बनें यहां उपाव निज थलकौ ॥३६॥

दोह—रंभापति स्तुत गुन जनक जाकौ जोगीदास ।
सोई मेरो प्रान है धारैं प्रकट प्रकाश ॥३७॥

मैं आतम अरू पुद्गल खंध, मिलकैं भयो परस्पर बंध ।
सो असमान जाति पर्याय, उपज्यो मानुष नाम कहाय । ३८
मात गर्भमें सो पर्याय, करिकैं पूरण अङ्ग सुभाय ।
बाहर निकसि प्रकट जब भयौ, तब कुटुम्बकौ भेलौ भयौ । ३६
नाम धर्‌यो तिन हर्षित होय, टोडरमल्ल कहैं सब कोय ।
ऐसौ यहु मानुष पर्याय, बधत भयो निज काल गमाय । ४०
देश दुंढाहड मांहि महान, नगर सवाई जयपुर थान ।
तामैं ताको रहनौ घनो, थोरो रहनो औढै बनौ ॥४१॥
तिस पर्याय विषैं जो कोय, देखन जाननहारो सोय ।
मैं हूं जीव द्रव्य गुनभूप, एक अनादि अनंत अरूप ।४२॥
कर्म उदयकौ कारण पाय, रागादिक हो हैं दुखदाय ।
ते मेरे औपाधिकभाव, इनिकौं विनशै मैं शिवराव ।४३॥
वचनादिक लिखनादिक क्रिया, वर्णादिक अरु इन्द्रिय हिया ।
ये सब हैं पुद्गलका खेल । इनिनें नांहि हमारो मेल ।४४॥

इन पद्यों परसे जहां पंडितजीके आध्यात्मिक जीवनकी झांकी-का दिग्दर्शन होता है वहां यह भी ज्ञात होता है कि उनके लौकिक जीवनका नाम टोडरमल था और पिताका नाम जोगीदास था

और माताका नाम था रंभा देवी, दूसरे स्रोतोंसे यह भी स्पष्ट है कि आप खण्डेलवाल जातिके भूषण थे और आपका गोत्र 'गोदीका' था, जो भोंसा और बड़जात्या नामक गोत्रका ही नामान्तर जान पड़ता है। तथा आपके वंशज साहूकार कहलाते थे—साहूकारीही आपके जीवन यापनका एक मात्र साधन था—और घर भी सम्पन्न था। इसीसे कोई आर्थिक कठिनाई नहीं थी।

आपके गुरुका नाम वंशीधर[1] था, इन्हींसे पं० जीने प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की थी; आप अपनी क्षयोपशमकी विशेषताके कारण पदार्थ और उसके अर्थका शीघ्रही अवधारण कर लेते थे। फलतः कुशाग्र बुद्धि होनेसे थोड़ेही समयमें जैन सिद्धान्तके सिवाय व्याकरण, काव्य, छन्द, अलंकार, कोष आदि विविध विषयोंमें दक्षता प्राप्त कर ली थी।

यहां यह बात भी ध्यान में रखने लायक है कि पंडितजीके पूर्वज बीसपंथ आम्नाय के मानने वाले थे, परन्तु पंडितजीने वस्तुस्वरूप और

---

१. यह पं० वंशीधर वही जान पड़ते हैं जिनका उल्लेख ब्रह्मचारी रायमल्लजीने अपनी जीवन परिचय पत्रिकामें तीस वर्षकी अवस्थाके लगभग उदयपुरसे पं० दौलतरामजीके पाससे जयपुर पं० टोडरमलजीसे मिलने आए थे और वे वहां नहीं मिले थे, सिर्फ पं० वंशीधरजी मिले थे यथा:—

"पीछैं केताइक दिन रहि पं० टोडरमल जैपुरके साहूकारका पुत्र ताकै विशेष ज्ञान जानि वासूं मिलनेके अर्थि जैपुर नगरी आए। सो यहाँ एक वंशीधर किंचित् संयमका धारक विशेष व्याकरणादि जैनमतके शास्त्रांका पाठी सौ पचास लड़का पुरुष बायां जानवें व्याकरण, छंद, अलंकार, काव्य, चरचा पढ़ें तांसू मिले।" वीरवाणी वर्ष अंक २।

भट्टारकीय प्रवृत्तियोंका अवलोकन कर तेरह पंथका अनुसरण किया और उनकी शिथिलताको दूर करनेका भी प्रयत्न किया। परन्तु जब उनमें सुधार होता न देखा किन्तु उल्टा विकृत परिणमन एवं कषायकी तीव्रता देखी, तब अपने परिणामोंको समकरि तेरा पंथकी शुद्ध प्रवृत्तियोंको प्रोत्साहन देते हुए जनतामें सच्ची धार्मिक भावना एवं स्वाध्यायके प्रचारको बढ़ाया जिससे जनता जैनधर्मके मर्मको समझनेमें समर्थ हुई और फलतः अनेक सज्जन और स्त्रियां आध्यात्मिक चर्चाके साथ गोम्टसारादि ग्रन्थोंके जानकार बन गये। यह सब उनके और रायमलजीके प्रयत्नकाही फल था।

आप विवाहित थे और आपके दो पुत्र थे, जिनमें एकका नाम हरिचन्द और दूसरेका नाम गुमानीराम था। हरिचन्दकी अपेक्षा गुमानीरामका क्षयोपशम विशेष था और वह प्रायः अपने पिताके समान ही प्रतिभा सम्पन्न था और इसलिये पिताके अध्ययन तथा तत्त्व चर्चादि कार्योंमें यथा योग्य सहयोग भी देने लगा था।

गुमानीराम स्पष्ट वक्ता[१] थे और श्रोताजन उनसे खूब सन्तुष्ट रहते थे। इन्होंने अपने पिताके स्वर्गगमनके दश बारह वर्ष बाद लगभग सं० १८३७ में 'गुमान पंथ' की स्थापना की थी[२]। गुमान-

---

१. तथा तिनके पाछैं टोडरमल्लके बड़े पुत्र हरिचन्दजी तिनतैं छोटे गुमानीरामजी महाबुद्धिवान वक्ता के लक्षणकूं धारैं तिनके पासि रहस्य कितनेक सुनिकर कछु जान पना भया।"—सिद्धान्तसार टीका प्रशस्ति।

२. चुनाचे श्वेताम्बरी मुनि शांति विजयजीने अपनी मानवधर्म संहिता (शान्त सुधानिधि) नामक पुस्तक के पृष्ठ १६७ में लिखते हैं कि—"बीस

पंथकी स्थापनाका मुख्य उद्देश्य उस समयकी धार्मिक शिथिलता एवं प्रमादको दूर करते हुए धार्मिक स्थानोंमें पवित्रता पूर्वक ८४ आसादनाओं को बचाते हुए धर्मसाधनकी प्रवृत्तिको सुलभ बनाना था उस समय चूंकि भट्टारकोंका साम्राज्य था, और जनता भोली-भाली थी इसीसे उनमें जो अधिक शिथिलता आगई थी उसे दूर कर शुद्ध मार्गकी प्रवृत्तिके लिये उन्हें 'गुमान पंथ' की स्थापना का कार्य करना आवश्यक था और जिसका प्रचार शुद्धाम्नायके रूपमें आजभी मौजूद है। और उससे उस शैथिल्यादिको दूर करनेमें बहुत कुछ सहायता मिली है जयपुरमें दीवान बधीचन्दके मंदिरमें गुमान पंथकी स्थापना का कार्य सम्पन्न हुआ था। उसीमें उनकी स्वहस्त लिखित ग्रन्थोंकी कुछ प्रतियाँ मोक्षमार्ग प्रकाशक और गोम्मटसारादि की—मिली हैं। अस्तु,

क्षयोपशमकी विशेषता और काव्य-शक्ति

पंडित टोडरमलजीके क्षयोपशमकी निर्मलताके सम्बन्धमें ब्रह्मचारी रायमलजीने सं० १८२१ की चिट्ठीमें जो पंक्तियाँ लिखी हैं वे खासतौरसे ध्यान देने योग्य हैं और वे इस प्रकार हैं :—

"सारां ही विषैं भाईजी टोडरमलजीकै ज्ञानका क्षयोपशम अलौकीक है जो गोम्मटसारादि ग्रन्थोंकी संपूर्ण लाख श्लोक टीका बणाई।

पन्थमें से फूटकर संवत् १७२६ में ये अलग हुये। जयपुरके तेरापंथियोंमें से पं० टोडरमलके पुत्र गुमानीरामजीने संवत् १८३७ में गुमान पंथ निकाला।"

और पांच सात ग्रन्थांकी टीका बणायवेका उपाय है। सो आयुकी अधिकता हुवा बणैंगा। अर धवल महाधवलादि ग्रथांके खोलवाका उपाय कीया वा उहां दक्षिण देससूं पांच सात और ग्रंथ ताडपत्रां-विषैं कर्णाटी लिपि मैं लिख्या इहां पधारे हैं ता कूं मल्लजी वांचै हैं वाका यथार्थ व्याख्यान करै हैं वा कर्णाटी लिपि मैं लिखि ले हैं। इत्यादि न्याय व्याकरण गणित छंद अलंकारका याकै ज्ञान पाइए हैं ऐसे पुरुष महंत बुद्धिका धारक ई कालविषैं होना दुर्लभ हैं तातैं वासूं मिलें सर्व संदेह दूरि होइ हैं।"

इससे पण्डित जी की प्रतिभा और विद्वत्ताका अनुमान सहज ही किया जा सकता है, कर्नाटकी लिपिमें लिखना अर्थकरना उस भाषाके परिज्ञानके बिना नहीं हो सकता।

आप केवल हिन्दी गद्य, भाषाके ही लेखक नहीं थे, किन्तु आपमें पद्य रचना करनेकी क्षमता थी। और हिन्दी भाषाके साथ संस्कृत भाषामें भी पद्य रचना अच्छी तरहसे कर सकते थे। गोम्मटसार ग्रंथकी पूजा उन्होंने संस्कृतके पद्योंमें ही लिखी है जो मुद्रित हो चुकी है और देहलीके धर्मपुराके नये मन्दिरके शास्त्र भंडारमें मौजूद है और वह इस समय मेरे सामने है इसके सिवाय संदृष्टिअधिकारका आदि अंत मंगल भी संस्कृत श्लोकोंमें दिया हुआ हैं। और वह इस प्रकार हैं:—

संदृष्टेर्लब्धिसारस्य क्षपणासारमीयुषः।
प्रकाशिनः पदं स्तौमि नेमिन्दोर्माधवप्रभोः॥

यह पद्य द्व्यर्थक है, प्रथम अर्थमें क्षपणासारके साथ लब्धि-

सारकी संदृष्टिको प्रकाश करने वाले माधवचन्द्रके गुरु आचार्य नेमिचन्द्र सैद्धान्तिकके चरणोंकी स्तुतिकी गई है और दूसरे अर्थमें करण लब्धिके परिणामरूप कर्मोंकी क्षपणाको प्राप्त और समीचीन दृष्टिके प्रकाशक नारायणके गुरु नेमिनाथ भगवान्के चरणोंकी स्तुति का उपक्रम किया गया है।

इसी तरह अन्तिम पद्यभी तीनों अर्थोंको लिये हुए हैं, और उसमें शुद्धात्मा, (अरहंत) अनेकान्तवाणी और उत्तम साधुओंको संदृष्टिकी निर्विघ्न रचनाके लिये नमस्कार किया गया है—वह पद्य इस प्रकार हैः—

शुद्धात्मानमनेकान्तं साधुमुत्तममंगलम् ।
वंदे संदृष्टिसिद्धयर्थं संदृष्टयर्थप्रकाशकम् ॥

हिन्दी भाषाके पद्योंमें भी आपकी कवित्वशक्तिका अच्छा परिचय मिलता है। पाठकोंकी जानकारीके लिये गोम्मटसारके मंगलाचरणका एक पद्य नीचे दिया जाता है जो चित्रालंकारके रहस्यको अच्छी तरहसे व्यक्त करता है उस पद्यके प्रत्येक पदपर विशेष ध्यान देनेसे चित्रालंकारके साथ यमक, अनुप्रास और रूपक आदि अलंकारोंके निर्देश भी निहित प्रतीत होते हैं। वह पद्य इस प्रकार हैं :—

मैं नमों नगन जैन जन ज्ञान ध्यान धन लीन ।
मैंनमान विन दानघन, एनहीन तन छीन ॥

इस पद्यमें बतलाया गया है कि मैं ज्ञान और ध्यान रूपी धनमें लीन रहनेवाले, काम और मान (घमंड) से रहित मेघके समान

धर्मोपदेशकी वृष्टि करनेवाले, पापरहित और क्षीण शरीर वाले उन नग्न जैन साधुओंको नमस्कार करता हूँ। यह पद्य गोमूत्रिका बंधका उदाहरण है इसमें ऊपरसे नीचेकी ओर क्रमशः एक-एक अक्षर छोड़नेसे पद्यकी ऊपरकी लाइन बन जाती है। और इसी तरह नीचेसे ऊपरकी ओर एक-एक अक्षर छोड़नेसे नीचेकी लाइन भी बन जाती है। पर इस तरहसे चित्रबंध कविता दुरूह होनेके कारण पाठकोंकी उसमें शीघ्र गति नहीं होती किन्तु खूब सोचने विचारनेके बाद उन्हें कविताके रहस्यका पता चल पाता है ।

ग्रंथाभ्यास और शास्त्र प्रवचन

आपने अपने ग्रन्थाभ्यासके सम्बन्धमें 'मोक्षमार्गप्रकाशक' पृ० १६-१७ में स्वयं ही सूचित किया है और लिखा है कि—व्याकरण, न्याय, गणित आदि उपयोगी ग्रंथोंके साथ अध्यात्मशास्त्र, गोम्मटसारादि सिद्धान्तग्रंथ सटीक, श्रावक मुनि धर्मके प्ररूपक आचारशास्त्र और कथादि पुराण शास्त्रोंका अभ्यास है जैसा कि उनके निम्न उल्लेखसे प्रकट है:—

"बहुरि हम इस कालविषैं यहां अब मनुष्य पर्याय पाया सो इसविषैं हमारैं पूर्व संस्कारतैं वा भला होनहारतैं जैनशास्त्रनिविषैं अभ्यास करनेका उद्यम होत भया। तातैं व्याकरण, न्याय, गणित- आदि उपयोगी ग्रंथनिका किंचित् अभ्यास करि टीकासहित समयसार, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, नियमसार, गोम्मटसार, लब्धिसार, त्रिलोकसार, तत्त्वार्थ सूत्र इत्यादि शास्त्र अर क्षपणासार पुरु-

पार्थसिद्धयुपाय, अष्टपाहुड, आत्मानुशासन आदि शास्त्र अर श्रावक मुनिका आचारके प्ररूपक अनेक शास्त्र अर सुष्ठु कथा-सहित पुराणादि शास्त्र इत्यादि अनेक शास्त्र हैं तिनि विषैं हमारे बुद्धि अनुसारि अभ्यास वर्तै है।"

ऊपरके इस उल्लेख और मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथमें उद्धृत अनेक ग्रंथोंके उद्धारणोंसे पंडितजीके विशाल अध्ययनका पद-पद पर अनुभव होता है।

पंडित जी गृहस्थ थे—घरमें रहते थे, परन्तु वे सांसारिक विषय-भोगोंमें आसक्त न होकर कमल-पत्रके समान अलिप्त थे, और संवेग निर्वेद आदि गुणोंसे अलंकृत थे। अध्यात्म-ग्रंथोंसे आत्मानुभवरूप सुधारसका पान करते हुए तृप्त नहीं होते थे। उनकी मधुरवाणी श्रोताजनोंको आकृष्ट करती थी, और वे उनकी सरल वाणी सुनकर मंत्र मुग्धसे होते हुए परम सन्तोषका अनुभव करते थे। पंडित टोडरमलजीके घरपर विद्याभिलाषियोंका खासा जमघट सा लगा रहता था। विद्याभ्यासके लिये घरपर जो भी व्यक्ति आता था उसे बड़े प्रेमके साथ विद्याभ्यास कराते थे। इसके सिवाय तत्त्वचर्चाका तो वह केन्द्र ही बन रहा था वहां तत्त्वचर्चाके रसिक मुमुक्षुजन बराबर आते रहते थे और उन्हें आपके साथ विविध विषयोंपर तत्त्वचर्चा करके तथा अपनी शंकाओंका समाधान सुनकर बड़ा ही संतोष होता था। और इस तरह वे पंडितजीके प्रेममय विनम्र व्यवहारसे प्रभावित हुए विना नहीं रहते थे। आपके शास्त्र प्रवचनमें जयपुरके सभी प्रतिष्ठित चतुर और विशिष्ट श्रोताजन आते थे, उनमें

दीवान रतनचंदजी[1] अजबरायजी, त्रिलोकचंदजी पाटणी, महा·

---

१ दीवान रतनचन्दजी और बालचन्दजी उस समय जयपुरके साधर्मियोंमें प्रमुख थे। बड़े ही धर्मात्मा और उदार सज्जन थे। रतनचन्दजीके लघुभ्राता बधीचन्दजी दीवान थे। दीवान रतनचन्दजी वि० सं० १८२१ से पहले ही राजा माधवसिंहजीके समयमें दीवान पदपर आसीन हुए थे और वि० सं० १८२६ में जयपुरके राजा पृथ्वीसिंहके समयमें थे, और उसके बाद भी कुछ-समय रहे हैं। पं० दौलतरामजीने दीवान रतनचन्दजीकी प्रेरणासे वि० सं० १८२७ में पं० टोडरमलजीकी पुरुषार्थसिद्ध्युपायकी अधूरी टीकाको पूर्ण किया था जैसाकि प्रशस्तिके निम्नवाक्योंसे प्रकट है :—

साधर्मिनमें मुख्य हैं रतनचन्द दीवान।
पृथ्वीसिंह नरेशको श्रद्धावान सुजान ॥६॥
तिनके अति रुचि धर्मसौं साधर्मिनसों प्रीत।
देव-शास्त्र-गुरुकी सदा उरमें महा प्रतीत ॥७॥
आनन्द सुत तिनकौ सखा नाम जु दौलतराम।
भृत्य भूपको कुल वणिक जाके बसवे धाम ॥८॥
कछु इक गुरु-प्रतापतैं कीनों ग्रन्थ अभ्यास।
लगन लगी जिन धर्मसौं जिन दासनको दास ॥९॥
तासूं रतन दीवानने कही प्रीति धर येह।
करिये टीका पूरणा उर धर धर्म-सनेह ॥१०॥
तब टीका पूरी करी भाषारूप निधान।
कुशल होय चहुं संघको लहै जीव निज ज्ञान ॥११॥
अट्ठारहसै ऊपरै संवतसत्ताबीस।
[मं]गशिर दिन शनिवार है सुदि दोयज रजनीस ॥१२॥

रामजी[1] त्रिलोकचंदजी सोगानी, श्रीचंदजी सोगानी और नेमचंदजी पाटणीके नाम खास तौरसे उल्लेखनीय हैं वसवा निवासी पं० देवीदास गोधाको भी आपके पास कुछ समय तक तत्त्वचर्चा सुननेका अवसर प्राप्त हुआ था[2]। उनका प्रवचन बड़ाही मार्मिक और सरल होता था, और उसमें श्रोताओं की अच्छी उपस्थिति रहती थी।

समकालीन धार्मिक स्थिति और विद्वद्गोष्ठी

जयपुर राजस्थानमें प्रसिद्ध शहर है उसे आमेरके राजा सवाई जयसिंह ने सं० १७८४में बसाया था। टाड साहबने लिखा है कि उसके बसानेमें विद्याधर नामके एक जैन विद्वान्ने पूरा सहयोग दिया था। उस समय जयपुरकी जो स्थिति थी उसका उल्लेख बाल ब्रह्मचारी रायमलने संवत् १८२१ की चिट्ठीमें दिया है उससे स्पष्ट है कि उस समय जयपुरकी ख्याति जैनपुरीके रूपमें हो रही थी, वहां जैनियोंके सात आठ हजार घर थे; जैनियोंकी इतनी अधिक गृहसंख्या उस समय संभवतः अन्यत्र कहीं भी नहीं थी। इसीसे ब्रह्मचारी रायमलजीने उसे धर्मपुरी बतलाया है। वहांके अधिकांश जैन राज्यके उच्च पदोंपर आसीन थे, और वे राज्यमें सर्वत्र शांति एवं व्यवस्थामें अपना पूरा-पूरा सहयोग देते थे। दीवान रतनचंदजी

---

१ महाराम जी ओसवालजातिके उदासीन श्रावक थे। बड़े ही बुद्धिमान थे और पं० टोडरमलजीके साथ चर्चा करनेमें विशेष रस लेते थे।

२ "सो दिल्ली सूं पढ़कर बसुवा आय पाछैं जयपुरमें थोड़े दिन टोडरमलजी महा बुद्धिमानके पासि सुननेका निमित्त मिल्या, बसुवा गए।"

—सिद्धान्तसारटीका प्रशस्ति

बालचंदजी उनमें प्रमुख थे। उस समय माधवसिंहजी प्रथमका राज्य चल रहा था, वे बड़े प्रजावत्सल थे। राज्यमें सर्वत्र जीवहिंसाकी मनाई थी और वहां कलाल, कसाई और वेश्याएं नहीं थीं। जनता प्राय: सप्तव्यसनसे रहित थी। जैनियोंमें उस समय अपने धर्मके प्रति विशेष प्रेम और आकर्षण था और प्रत्येक साधर्मी भाईके प्रति वात्सल्य तथा उदारताका व्यवहार किया जाता था। जिन पूजन, शास्त्र स्वाध्याय, तत्त्वचर्चा सामायिक और शास्त्र प्रवचनादि क्रियाओंमें श्रद्धा-भक्ति और विनयका अपूर्व दृश्य देखनेमें आता था। कितने ही स्त्री-पुरुष गोम्मटसारादि सिद्धांतग्रंथोंकी तत्त्वचर्चासे परिचित हो गये थे। महिलाएँ भी धार्मिक क्रियाओंके सद् अनुष्ठानमें यथेष्ट भाग लेने लगी थीं। पं० टोडरमलजीके शास्त्र प्रवचनमें श्रोताओंकी अच्छी उपस्थिति रहती थी और उनकी संख्या सातसौ-आठसौसे अधिक हो जाया करती थी। उस समय जयपुरमें कई विद्वान् थे और पठन-पाठनकी सब व्यवस्था सुयोग्य रीतिसे चल रही थी। आज भी जयपुरमें जैनियोंकी संख्या कई सहस्र है और उनमें कितने ही राज्यके पदोंपर प्रतिष्ठित हैं।

साम्प्रदायिक उपद्रव

जयपुर जैसे प्रसिद्ध नगरमें जैनियोंके बढ़ते हुए प्रभुत्व एवं वैभवको सम्प्रदाय-व्यामोहीजन असहिष्णुताकी दृष्टिसे देखते थे, उससे ईर्षा तथा द्वेष रखते थे। और उसे नीचा दिखाने अथवा प्रभुत्वको कम करने की चिन्तामें संलग्न रहते थे और उसके लिये तरह तरहके उपाय भी काममें लानेकी गुप्त योजनाएँ भी बनाई जाती थीं। उनकी

इस असहिष्णुताका निम्न कारण जान पड़ता है वह यह कि—जैनियोंके प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित टोडरमलजीसे शास्त्रार्थमें विजयपाना संभव नहीं था, क्योंकि उनकी मार्मिक सरल एवं युक्तिपूर्ण विवेचन शैलीका सबपर ही प्रभाव पड़े विना नहीं रहता था, और जैनी उस समय धन, वैभव, प्रतिष्ठा आदि सत्कार्योंमें सबसे आगे बढ़े हुए थे, राज्यमें भी उनका कम गौरव नहीं था, और राज्यकार्यमें उनकी बहुमूल्य सेवाओंका मूल्य बराबर आंका जाता था। इन्हीं सब बातोंसे उनकी असहिष्णुता अपनी सीमाका उल्लंघन कर चुकी थी।

संवत् १८१७ में श्याम नामका एक तिवारी ब्राह्मण तत्कालीन राजा माधवसिंहजी प्रथमपर अपना प्रभाव प्रदर्शित कर किसी तरह राजगुरुके पदपर आसीन हो गया और उसने अपनी वाचालतासे राजाको अपने वशमें कर लिया, तथा अवसर देख सहसा ऐसी अंधेर-गर्दी मचाई कि जिसकी स्वप्नमें भी कभी कल्पना नहीं की जा सकती थी। राज्यमें पायेजानेवाले लाखों रुपयेकी लागतके विशाल अनेक जिन मन्दिरोंको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया और उनमें शिवकी मूर्ति रख दी गई, और जिनमूर्तियोंको खंडितकर यत्र-तत्र फिकवा दिया गया, यह सब उपद्रव रायमलजीके लिखे अनुसार डेढ़ वर्ष तक रहा। राजाको जब श्याम तिवारीकी अंधेरगर्दीका पता चला तब उन्होंने उसका गुरु पद खोंसि (छीन) लिया और उसे देश निकाला दे दिया। उसने अपने अधम कृत्यका फल कुछ समय बाद ही पा लिया[1]।

---

१ संवत् अट्ठारहसै जब गए, ऊपर जबै अठारह भये।
तब इक भयो तिवारी श्याम, ढिंभी अति पाखंडको धाम ॥

चुनांचे संवत १८१६ में मगसिर वदी दोइज के दिन जयपुर राज्य के ३३ परगनोंके नाम एक आम हुक्म जारी किया गया जिसमें जैन-धर्मको प्राचीन और ज्यों का त्यों स्थापित करनेकी आज्ञा दी गई है। और तेरापंथ बीसपंथके मन्दिर बनवाने, उनकी पूजामें किसी प्रकारकी रोकटोक न करनेका आदेश दिया गया है और उनकी जायदाद वगैरह जो लूट-पाटकर ले ली गई थी उसे पुनः वापिस दिलानेकी भी आज्ञा दी गई। उस हुक्म नामेका जो सारा अंश 'वीरवाणीके' टोडरमलअंकमें प्रकाशित हुआ था नीचे दिया जाता है :—

"सनद करार मिती मगसिर बदि २ सं० १८१६ अप्रंच हद सरकारीमें सरावगी वगैरह जैनधर्म साधवा वाला सूं धर्ममें चालवाको

तुच्छ अधिक द्विज सबतैं घाटि, दौरत हो साहनकी हाटि।
करि प्रयोग राजा वसि कियो, माधवेश नृप गुरु-पद दियो॥
दिन कितेक बीतै हैं जबै, महा उपद्रव कीन्हौं तबै।
हुक्म भूपको लैके वाह, निसि गिराय देवल दिय ढाह॥
अमल राजको जैनी जहां, नाव न ले जिनमतको तहां।
कोऊ आधो कोऊ सारौ, बच्यो जहां छत्री रखवारो॥
काहू में शिव-मूरति धरदी, ऐसैं मची 'श्याम' की गरदी।
अकस्मात् कोप्यो नृप भारो, दियो दुपहरां देश निकारो॥
दुपटा धोति धरें द्विज निकस्यो, तिय जुत पायन लखि जग बिगस्यो।

सोरठा—किये पापके काम, खोसिलियो, गुरु पद नृपति।
यथा नाम गुण स्याम, जीवत ही पाई कुगति॥

—बुद्धि विलास, आरा प्रति

तकरार छो सो यांको प्राचीन जान ज्यों को त्यों स्थापन करवो फरमायो छै सो माफिक हुक्म श्री हजूरकै लिखा छै—बीस पंथ तेरा पंथ परगनामें देहरा बनाओ व देवगुरु शास्त्र आगै पूजै छा जी भांति पूजो—धर्ममें कोई तरहकी अटकाव न राखे—अर माल मालियत वगैरह देवराको जो ले गया होय सो ताकीद कर दिवाय दीज्यो—केसर वगैरह को आगे जहां से पावे छा तिठा सूं भी दिवावो कीज्यो। मिति सदर"—वीर वाणी वर्ष १, अंक १६ से २१

उसके बाद जयपुर आदि स्थानोंमें पुनः सोत्साह जिनमन्दिर और मूर्तियोंका निर्माण किया गया और अनेक प्रतिष्ठादि महोत्सव भी किये गये। इस तरह पुनः जिनधर्मका उद्योत हुआ।

इन्द्रध्वज पूजामहोत्सव

संवत् १८२१ में जयपुरमें बड़ी धूमधामसे इन्द्रध्वज पूजाका महान् उत्सव हुआ था। उस समयकी बाल ब्रह्मचारी रायमलजीकी लिखी हुई पत्रिकासे[1] ज्ञात होता है कि उसमें चौसठ गजका लम्बा चौड़ा एक चबूतरा बनाया गया था और उसपर एक डेरा लगाया गया था जिसके चार दरवाजे चारों तरफ बनाये गये उसकी रचनामें बीस तीस मन कागजकी रद्दी, भोडल आदि पदार्थोंका उपयोग किया था सब रचना त्रिलोकसारके अनुसार बनाई गई थी और इन्द्रध्वज पूजाका विधान संस्कृतभाषा पाठके अनुसार किया गया था उस चिट्ठीमें अनेक

---

१. देखो, वीरवाणी वर्ष १ अंक ३

ऐतिहासिक वार्तोका उल्लेख किया गया है और यह चिट्ठी दिल्ली, आगरा, भिंड, कोरडा जिहानाबाद, सिरोंज, वासौदा, इन्दौर, औरंगाबाद उदयपुर, नागौर, बीकानेर, जैसलमेर, मुलतान, आदि भारतके विभिन्न स्थानोंको भेजी गई थीं। इससे उसकी महत्ताका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। राज्यकी ओरसे सब प्रकारकी सुविधा प्राप्त थी और दरवारसे यह हुक्म आया—"था कि पूजाजीके अर्थ जो वस्तु चाहिजे सोही दरवारसे ले जावो।" इस तरहकी सुविधा वि० की १५ वीं १६ वीं शताब्दीमें ग्वालियरमें राजा डूंगरसिंह और उनके पुत्र कीर्तिसिंहके राज्य-कालमें जैनियोंको प्राप्त थी। और उनके राज्यमें होनेवाले प्रतिष्ठा-महोत्सवोंमें राज्यकी ओरसे सब व्यवस्था की जाती थी।

रचनाएं और रचनाकाल

पं० टोडरमलजीकी कुल दश रचनाएं हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—१—रहस्यपूर्ण चिट्ठी, २—गोम्मटसारजीवकांडटीका, ३—गोम्मटसारकर्मकाण्डटीका, ४—लब्धिसार-क्षपणासारटीका, ५—त्रिलोकसारटीका, ६—आत्मानुशासनटीका, ७—पुरुषार्थसिद्ध्युपायटीका, ८—अर्थसंदृष्टिअधिकार, ९— मोक्षमार्ग प्रकाशक और १०—गोम्मटसारपूजा।

इनमें आपकी सबसे पुरानी रचना रहस्यपूर्ण चिट्ठी है जो कि विक्रम सम्वत् १८११ की फाल्गुणवदि पञ्चमीको मुलतानके अध्यात्मरसके रोचक खानचंदजी गङ्गाधरजी, श्रीपालजी, सिद्धारथजी

आदि अन्य साधर्मी भाइयोंको उनके प्रश्नोंके उत्तररूपमें लिखी गई थी। यह चिट्ठी अध्यात्मरसके अनुभवसे ओत-प्रोत है। इसमें आध्यात्मिक प्रश्नोंका उत्तर कितने सरल एवं स्पष्ट शब्दोंमें विनयके साथ दिया गया है, यह देखते ही बनता है। चिट्ठीगत शिष्टाचार-सूचक निम्न वाक्य तो पण्डितजीकी आन्तरिक-भद्रता तथा वात्सल्यका खासतौरसे द्योतक है—

"तुम्हारे चिदानन्दघनके अनुभवसे सहजानन्दकी वृद्धि चाहिये।"

गोम्मटसारादिकी सम्यग्ज्ञानचन्द्रिकाटीका

गोम्मटसारजीवकांड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार क्षपणासार और त्रिलोकसार इन मूल ग्रन्थोंके रचयिता आचार्य, नेमिचन्द्र सिद्धांत-चक्रवर्ती हैं। जो वीरनन्दि इंद्रनंदिके वत्स तथा अभयनन्दिके शिष्य थे। और जिनका समय विक्रमकी ११वीं शताब्दी है।

गोम्मटसार ग्रंथपर अनेक टीकाएँ रची गई हैं किन्तु वर्तमानमें उपलब्ध टीकाओंमें मंदप्रबोधिका सबसे प्राचीन टीका है। जिसके कर्ता अभयचंद्र सैद्धांतिक[1] हैं। इस टीकाके आधारसे ही केशव—वर्णीने, जो अभयसूरिके शिष्य थे, कर्नाटक भाषामें 'जीवतत्त्व-

१ अभयचन्द्रकी यह टीका अपूर्ण है, और जीवकाण्डकी ३८३ गाथा तक ही पाई जाती है, इसमें ८३ नं० की गाथाकी टीका करते हुए एक 'गोम्मटसार पञ्चिका' टीकाका उल्लेख निम्न शब्दोंमें किया गया है। "अथवा सम्मूर्छनगर्भोपपात्तान्नाश्रित्य जन्म भवतीति गोम्मटसारपञ्जिकाकारादीनामभिप्रायः।"

प्रबोधिका' नामकी टीका भट्टारक धर्मभूषणके आदेशसे शक सं० १२८१ (वि० सं० १४१६) में बनाई है। यह टीका कोल्हापुरके शास्त्र-भण्डारमें सुरक्षित है और अभी तक अप्रकाशित है। मंदप्रबोधिका और केशववर्णीकी उक्त कनड़ी टीकाका आश्रय लेकर भट्टारक नेमि-चन्द्रने अपनी संस्कृत टीका बनाई और उसका नाम भी कनड़ी टीकाकी तरह 'जीवतत्त्वप्रबोधिका' रक्खा गया है। यह टीकाकार नेमिचंद्र मूलसंघ शारदागच्छ बलात्कारगणके विद्वान् थे, भट्टारक ज्ञान-भूषणका समय विक्रमकी १६वीं शताब्दी है; क्योंकि इन्होंने वि० सं० १५६० में 'तत्त्वज्ञानतरङ्गिणी' नामक ग्रन्थकी रचनाकी है। अतः टीकाकार नेमिचंद्रका भी समय वि० की १६वीं शताब्दी है। इनकी जीवतत्त्वप्रबोधिका' टीका मल्लिभूपाल अथवा सालुवमल्लिराय नामक राजाके समयमें लिखी गई है और—जिनका समय डा० ए० एन० उपाध्येने ईसाकी १६वीं शताब्दी प्रथमका चरण निश्चित किया है *। इससे भी इस टीका और टीकाकारका उक्त समय अर्थात् ईसाकी १६ वीं शताब्दीका प्रथमचरण व विक्रमकी १६ वीं शताब्दीका उत्तरार्ध सिद्ध है।

भ० नेमिचन्दकी इस संस्कृत टीकाके आधारसे ही पंडित टोडर-मल जीने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका बनाई है। उन्होंने उस संस्कृत टीकाको भ्रमवश + केशववर्णीकी टीका समझ लिया है। जैसा कि जीवकाण्डटीका प्रशस्तिके निम्न पद्यसे प्रकट है :—

---

* देखो, अनेकान्त वर्ष ४ किरण १

+ देखो, अनेकान्त वर्ष ४ किरण १

केशववर्णी भव्य विचार, कर्णाटक टीका अनुसार।
संस्कृतटीका कीनी एहु, जो अशुद्ध सो शुद्ध करेहु॥

पंडित जीकी इस भाषाटीकाका नाम 'सम्यग्ज्ञान—चन्द्रिका' है जो उक्त संस्कृत टीकाका अनुवाद होते हुए भी उसके प्रमेयका विशद विवेचन करती है पंडित टोडरमल जीने गोम्मटसार जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड लब्धिसार—क्षपणासार-त्रिलोकसार इन चारों ग्रन्थोंकी टीकाएं यद्यपि भिन्न-भिन्न रूप से की हैं किन्तु उनमें परस्पर सम्बन्ध देखकर उक्त चार। ग्रंथोंकी टीकाओंको एक करके उनका नाम 'सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका' रक्खा है जैसाकि पं० जीकी लब्धिसार भाषाटीका प्रशस्तिके निम्न पद्यसे स्पष्ट है :—

"या विधि गोम्मटसार लब्धिसारग्रंथनि की,
भिन्न भिन्न भाषाटीका कीनी अर्थ गायकैं।
इनिकै परस्पर सहायपनौ देख्यौ।
तातैं एक करि दई हम तिनिको मिलायकैं॥
सम्यग्ज्ञान—चन्द्रिका धर्‌यो है याका नाम।
सो ही होत है सफल ज्ञानानंद उपजायकैं॥
कलिकाल रजनीमें अर्थको प्रकाश करै।
यातैं निज काज कीनै इष्टभावभायकैं॥३०॥

इस टीकामें उन्होंने आगमानुसार ही अर्थ प्रतिपादन किया है, और अपनी ओरसे कषायवश कुछभी नहीं लिखा, यथा—

आज्ञा अनुसारी भये अर्थ लिखे या मांहि।
धरि कषाय करि कल्पना हम कछु कीनों नांहि॥३३॥

टीकाप्रेरक श्रीरायमल और उनकी पत्रिका—

इस टीकाकी रचना अपने समकालीन रायमल नामके एक साधर्मी श्रावकोत्तमकी प्रेरणासे की गई है जो विवेकपूर्वक धर्मका साधन करते थे[1] रायमलजीने अपना कुछ जीवन परिचय एक पत्रिकामें स्वयं लिखा है जिससे ज्ञात होता है कि उन्होंने २२ वर्षकी अवस्थामें साहिपुराके नीलापति साहूकारके सहयोगसे जो देव-शास्त्र-गुरुका श्रद्धालु और अध्यात्म, आगम ग्रन्थोंका पाठी था, षट्द्रव्य, नव पदार्थ, गुणस्थान, मार्गणास्थान, वंध उदय और सत्ताआदिकी तत्त्व चर्चाका मर्मज्ञ था। उसके तीन पुत्र थे, और वे भी जैनधर्मके श्रद्धालु थे। उससे वस्तुके स्वरूपको जानकर उन्होंने तीन चीजोंका त्याग जीवन पर्यन्तके लिये कर दिया—सर्व हरितकायका, रात्रिभोजनका और जीवन पर्यन्तके लिये विवाह न करनेका नियम किया इसके बाद विशेष जिज्ञासु बनकर वस्तुतत्त्वका समीक्षण बरावर करते रहे। रायमलजी बाल ब्रह्मचारी थे और एक देश संयमके धारक थे जैन धर्मके महान् श्रद्धानी थे और उसके प्रचारमें संलग्न रहते थे साथ ही बड़े ही उदार और सरल थे। उनके आचारमें विवेक और विनयकी पुट थी। वे अध्यात्म शास्त्रोंके विशेष प्रेमी थे और विद्वानोंसे तत्त्व-चर्चा करनेमें वड़ा रस लेते थे पं० टोडरमलजी के साथ तत्त्व-चर्चा में बड़ा रस लेते, थे पं० टोडरमलजीकी तत्त्व-चर्चासे वे बहुत ही

१ रायमल्ल साधर्मी एक, धर्मसधैया सहित विवेक।
सो नानाविध प्रेरक भयो, तव यह उत्तम कारज थयो॥

प्रभावित थे। इनकी इस समय दो कृतियां उपलब्ध हैं-एक ज्ञानानंद निर्भर निजरस श्रावकाचार दूसरी कृति चर्चासंग्रह है जो महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक चर्चाओंको लिए हुए हैं। इनके सिवाय दो पत्रिकायें भी प्राप्त हुई हैं जो 'वीर वाणी' में प्रकाशित हो चुकी हैं[1]। उनमें से प्रथम पत्रिकामें अपने जीवनकी प्रारम्भिक घटनाओंका समुल्लेख करते हुए पण्डित टोडरमलजी से गोम्मटसारकी टीका बनानेकी प्रेरणाकी गई है और वह सिंघाणा नगरमें कब और कैसे बनी इसका पूरा विवरण दिया गया। पत्रिका का वह अंश है इस प्रकार है :—

"पीछैं सेखावटीविषैं सिंघाणा नग्र तहां टोडरमलजी एक दिली (ल्ली) का बड़ा साहूकार साधर्मी ताके समीप कर्म—कार्यके अर्थि वहां रहैं, तहां हम गए अर टोडरमलजीसे मिले, नाना प्रकारके प्रश्न किये। ताका उत्तर एक गोम्मटसार नामा ग्रन्थकी साखिसूं देते गए। सो ग्रंथकी महिमा हम पूर्वैं सुणी थी तासूं विशेष देखी, अर टोडरमलजीका (के) ज्ञानकी महिमा अद्भुत देखी, पीछैं उनसूं हम कही—तुम्हारे या ग्रंथका परचै निर्मल भया है, तुमकरि याकी भाषाटीका होय तौ घणां जीवांका कल्याण होय अर जिनधर्मका उद्योत होइ। अब हौं कालके दोष करि जीवांकी बुद्धि तुच्छ रही है तौ आगै यातैं भी अल्प रहैगी। तातैं ऐसा महान् ग्रन्थ पराकृत ताकी मूल गाथा पन्द्रहसैं+ १५०० ताकी टीका संस्कृत अठारह हजार १८००० ताविषैं

1. देखो, वीरवाणी वर्ष १ अङ्क २, ३।

+रायमलजीने गोम्मटसारकी मूल गाथा संख्या पन्द्रह सौ १५०० बतलाई है जबकि उसकी संख्या सत्तरहसौ पांच १७०५ है, गोम्मटसार कर्मकाण्डकी ९७२ और जीवकांडकी ७३३ गाथा संख्या मुद्रित प्रतियोंमें पाई जाती हैं।

अलौकिक चरचाका समूह संदृष्टि वा गणित शास्त्रोंकी आम्नाय संयुक्त लिख्या है ताकी भाव भासना महा कठिन है। अर याके ज्ञान-की प्रवर्ति पूर्वे दीर्घकाल पर्यंत लगाय अव ताईं नाहीं तौ आगैं भी याकी प्रवर्ती कैसैं रहैगी ? तातैं तुम या ग्रन्थकी टीका करनेका उपाय शीघ्र करौ, आयुका भरोसा है नाहीं। पीछैं ऐसैं हमारे प्रेरकपणाको निमित्त करि इनके टीका करनेका अनुराग भया। पूर्वैं भी याकी टीका करनेका इनका मनोरथ था ही, पाछैं हमारे कहनें करि विशेष मनोरथ भया, तव शुभ दिन मुहूरत विषैं टीका करने का प्रारम्भ सिंघाणा नग्रविषैं भया। सो वे तौ टीका वणावते गए हम वांचते गये। वरस तीनमें गोम्मटसारग्रन्थके अड़तीसहजार ३८००० लब्धि-सार—क्षपणासारग्रन्थकी तेरह हजार १३००० त्रिलोकसार ग्रंथकी चौदह हजार १४००० सब मिलि च्यारि ग्रंथांकी पैंसठ हजार टीका भई। पीछैं सवाई जयपुर आये तहां गोम्मटसारदि च्यारों ग्रन्थोंकू सोधि याकी वहुत प्रति उतराईं। जहां सैली थी वहां तहां सुधाइ-सुधाइ पधराईं ऐसे यां ग्रन्थांका अवतार भया।"

इस पत्रिकागत विवरण परसे यह स्पष्ट है कि उक्त सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिकाटीका तीन वर्षमें वनकर समाप्त हुई थी जिसकी श्लोक संख्या पैंसठ हजारके करीब है। और जिसके संशोधनादि तथा अन्य प्रति-योंके उतरवानेमें प्रायः उतनाही समय लगा होगा। इसीसे यह टीका सं० १८१८ में समाप्त हुई है। इस टीकाके पूर्ण होनेपर पण्डितजी वहुत आह्लादित हुए और उन्होंने अपनेको कृतकृत्य समझा। साथ

ही अंतिम मङ्गलके रूपमें पञ्चपरमेष्ठीकी स्तुति की और उन जैसी अपनी दशाके होनेकी अभिलाषा भी व्यक्त की। यथा—

आरंभो पूरण भयो शास्त्र सुखद प्रासाद।
अब भये हम कृतकृत्य उर पायो अति आह्लाद॥

\+ \+ \+

अरहन्त सिद्ध सूर उपाध्याय साधु सर्व,
अर्थके प्रकाशी माङ्गलीक उपकारी हैं।
तिनकौ स्वरूप जानि रागतैं भई जो भक्ति,
कायकौं नमाय स्तुतिकौं उचारी है॥
धन्य धन्य तुमही से काज सब आज भयो,
कर जोरि वारम्बार वंदना हमारी है।
मंगल कल्याण सुख ऐसो हम चाहत हैं,
होहु मेरी ऐसी दशा जैसी तुम धारी है॥

यही भाव लब्धिसारटीका प्रशस्तिमें गद्यरूपमें प्रकट किया है[1]।

लब्धिसारकी यह टीका वि० सं० १८१८ की माघशुक्ला पञ्चमीके दिन पूर्ण हुई है, जैसाकि उसके प्रशस्ति पद्यसे स्पष्ट है :—

संवत्सर अष्टादशयुक्त, अष्टादशशत लौकिकयुक्त।
माघशुक्लपञ्चमिदिन होत, भयो ग्रन्थ पूरन उद्योत॥

---

१ "प्रारब्ध कार्यकी सिद्धि होने करि हम आपको कृतकृत्य मानि इस कार्य करनेकी आकुलता रहित होइ सुखी भये, याकैं प्रसादतैं सर्व आकुलता दूरि होइ हमारैं शीघ्र ही स्वात्मज सिद्धि-जनित परमानन्दकी प्राप्ति होउ।"

—लब्धिसार टीका प्रशस्ति

लब्धिसार-क्षपणासारकी-इस टीकाके अन्तमें अर्थसंदृष्टि नामका एक अधिकार भी साथमें दिया हुआ है, जिसमें उक्त ग्रन्थमें आनेवाली अङ्कसंदृष्टियों और उनकी संज्ञाओं तथा अलौकिक गणितके करण-सूत्रोंका विवेचन किया गया है। यह संदृष्टिअधिकारसे भिन्न है जिसमें गोम्मटसार जीवकाण्ड-कर्मकाण्डकी संस्कृतटीकागत अलौकिक गणितके उदाहरणों, करणसूत्रों, संख्यात, असंख्यात और अनन्तकी संज्ञाओं और अङ्कसंदृष्टियोंका विवेचन स्वतन्त्र ग्रन्थके रूपमें किया गया है, और जो 'अर्थ-संदृष्टि' इस सार्थक नामसे प्रसिद्ध है। यद्यपि टीका ग्रन्थोंके आदिमें पाई जाने वाली पीठिकामें ग्रन्थगत संज्ञाओं एवं विशेषताओंका दिग्दर्शन करा दिया है जिससे पाठकजन उस ग्रन्थके विषयसे परिचित हो सकें। फिर भी उनका स्पष्टीकरण करनेके लिये उक्त अधिकारोंकी रचना की गई है। इसका पर्यालोचन करनेसे संदृष्टि-विषयक सभी बातोंका बोध हो जाता है। हिन्दी-भाषाके अभ्यासी स्वाध्याय प्रेमी सज्जन भी इससे बराबर लाभ उठाते रहे हैं। आपकी इन टीकाओंसे ही दिगम्बर समाजमें कर्मसिद्धान्तके पठन पाठनका प्रचार बढ़ा है और इनके स्वाध्यायी सज्जन कर्म-सिद्धान्तसे अच्छे परिचित देखे जाते हैं। इस सबका श्रेय पं० टोडर-मलजीको ही प्राप्त है।

त्रिलोकसार टीका—

त्रिलोकसार टीका यद्यपि सं० १८२१ से पूर्व बन चुकी थी, परन्तु इसका संशोधनादि कार्य बादको हुआ है और पीठबंध वगैरह बादको

है[1]। पं० दौलतरामजी ने जब सं० १८२७ में पुरुपार्थसिद्ध्युपायकी अधूरी टीकाको पूर्ण किया तब जयपुरमें राजा पृथ्वीसिंहका राज्य था। अतएव संवत् १८२७ से पहले ही माधवसिंहका राज्य करना सुनिश्चित है।

गोम्मटसार पूजा—

यह संस्कृत भाषामें पद्यबद्ध रची हुई छोटी सी पूजाकी पुस्तक है। जिसमें गोम्मटसार के गुणोंकी महत्ता व्यक्त करते हुए उसके प्रति अपनी भक्ति एवं श्रद्धा व्यक्त की गई है।

मृत्युकी दुखद घटना—

पंडितजीकी मृत्यु कब और कैसे हुई? यह विषय अर्सेसे एक पहेली सा बना हुआ है। जैन समाजमें इस सम्बन्धमें कई प्रकारकी किंवदन्तियां प्रचलित हैं; परन्तु उनमें हाथीके पैरतले दबवाकर मरवानेकी घटनाका बहुत प्रचार है। यह घटना कोरी कल्पना ही नहीं है, किन्तु उसमें उनको मृत्युका रहस्य निहित है। पहले मेरी यह धारणा थी कि इस प्रकारकी अकल्पित घटना पं० टोडरमलजी जैसे महान् विद्वानके साथ नहीं घट सकती। परन्तु बहुत कुछ अन्वेषण तथा उसपर काफी विचार करनेके बाद मेरी धारणा अब दृढ़ हो गई है कि उपरोक्त किम्वदन्ती असत्य नहीं है किन्तु वह किसी तथ्यको लिये हुये अवश्य है। जब हम उसपर गहरा विचार करते हैं और पं० जीके व्यक्तित्व तथा उनकी सीधी सादी भद्र परिणतिको

1—देखो भारतके प्राचीन राजवंश' भाग ३ पृ० २३९, २४०।

ओर भी ध्यान देते हैं; जो कभी स्वप्नमें भी पीड़ा देनेका भाव नहीं रखते थे, तब उनके प्रति विद्वेषवश अथवा उनके प्रभाव तथा व्यक्तित्वके साथ घोर ईर्षा रखनेवाले जैनेतर व्यक्तिके द्वारा साम्प्रदायिक व्यामोहवश सुझाये गये अकल्पित एवं अशक्य अपराधके द्वारा अन्धश्रद्धावश बिना किसी निर्णयके यदि राजाका कोप सहसा उमड़ पड़ा हो, और राजाने पंडितजीके लिये बिना किसी अपराधके भी उक्त प्रकारसे 'मृत्युदण्ड' का फतवा दे दिया हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं; क्योंकि जब हम उस समयकी भारतीय रियासती परिस्थितियोंपर ध्यान देते हैं; तो उस समयके भारतीय नरेशों द्वारा अन्धश्रद्धावश किये गये अन्याय–अत्याचारोंका अवलोकन कर लेते हैं, तब उससे हमें आश्चर्यको कोई स्थान नहीं रहता। यही कारण है कि उस समयके विद्वानोंने राज्यके भयसे उनकी मृत्यु आदिके सम्बन्धमें स्पष्ट कुछ भी नहीं लिखा; और उस समय जो कुछ लिखा हुआ प्राप्त हो सका उसे नीचे दिया जाता है। क्योंकि उस समय सर्वत्र रियासतोंमें खासतौर से मृत्युभय और धनादिके अपहरणकी सहस्रों घटनायें घटती रहती थीं, और उनसे प्रजामें घोर आतंक बना रहता था; हाँ आज परिस्थितियां बदल चुकी हैं और अब प्रायः इस प्रकारकी घटनायें कहीं सुननेमें नहीं आतीं।

पंडित टोडरमलजीकी मृत्युके सम्बन्धमें एक दुखद घटनाका उल्लेख पं० बखतराम शाहके 'बुद्धि विलास' में पाया जाता है और वह इस प्रकार है:—

"तब ब्राह्मणनु मतौ यह कियौ, शिव उठानकौ टौना दियौ।
तामैं सबै श्रावगी कैद, करिके डंड किये नृप फैद॥
गुरु तेरह-पंथिनुकौ भ्रमी, टोडरमल्ल नाम साहिमी।
ताहि भूप मार्‌यो पलमाहि, गाड्यो मद्धि गंदगी ताहि॥
— आरा भवन प्रति

इसमें स्पष्ट रूपसे यह बतलाया गया है कि सं० १८१८ के बाद जब जयपुर में जैनधर्मका पुनः विशेष उद्योत होने लगा, तब यह सब कार्य सम्प्रदाय विद्वेषी ब्राह्मणोंको सह्य नहीं हुआ और उन्होंने मिलकर एक गुप्त 'षडयंत्र' रचा—जिसमें ऐसी कोई असह्य घटना घटाकर जैनियोंपर उसका आरोप किया जा सके, और इच्छित कार्यकी पूर्ति होसके, तब सबने एक स्वरसे शिवपिंडीको उखड़वानेकी बात स्वीकार की, और उसका अपराध जैनियोंपर बिना किसी जांचके लगाये जाने का निश्चय किया, अनन्तर तदनुसार घटना घटवाई और राजाको जैनियोंकी ओरसे विद्वेषकी तरह तरहकी बातें सुनाकर राजाको भड़काया और क्रोध उपजाया गया; क्योंकि जैनियोंने किसी धर्मके सम्बंधमें कभी ऐसे विद्वेषकी घटनाको जन्म नहीं दिया और न उसमें भाग ही लिया; हां अपने पर घटाई जाने वाली असह्य घटनाओंको विषके घूंट समान चुपचाप सहा। इतिहास इसका साक्षी है। चुनांचे राजाने घटना सुनते ही बिना किसी जांच पड़तालके क्रोधवश सब जैनियोंको रात्रिमें ही कैद करने और उनके प्रसिद्ध विद्वान पं० टोडरमलजी को पकड़कर मरवा डालनेका हुक्म दे दिया, हुक्म होते

ही उन्हें हाथीके पग तले दाब कर मरवा दिया और उनके शवको शहरकी गंदगीमें गड़वा दिया गया।

सुना जाता है कि जब पंडितजीको हाथीके पग तले डाला गया और हाथीको अंकुश ताड़नाके साथ उनके शरीरपर चढ़नेके लिये प्रेरित किया गया तब हाथी एकदम चिंघाड़के साथ उन्हें देखकर सहम गया और अंकुशके दो वार भी सह चुका पर अपने प्रहारको करनेमें अक्षम रहा। और तीसरा अंकुश पड़ना ही चाहता था कि पंडितजीने हाथीकी दशा देखकर कहा कि हे गजेन्द्र! तेरा कोई अपराध नहीं, जब प्रजाके रक्षकने ही अपराधी निरपराधीकी जांच नहीं की और मरवानेका हुक्म दे दिया तब तू क्यों व्यर्थमें अंकुशका वार सह रहा है, संकोच छोड़ और अपना कार्य कर। इन वाक्यों को सुनकर हाथीने अपना कार्य किया।

चुनांचे किसी ऐसी असह्य घटनाके आरोपका संकेत केशरीसिंह पाटणी सांगाकोंके एक पुराने गुटके में भी पाया जाता है—

"मिती काती सु० ५ ने महादेवकी पिंडि सहेरमाही कछु अमारगी उपाड़ि नाखि तीह परि राजादोष करि सुरावग धरम्या परि दंड नाख्यों।"—वीर वाणी वर्ष १ पृ० २८५।

इन सब उल्लेखोंसे सम्प्रदाय व्यामोही जनोंकी विद्वेषपूर्ण परि-स्थितिका अवलोकन करते हुए उक्त घटनाको किसी भी तरह असं-भव नहीं कहा जा सकता। इस घटनासे जैनियोंके हृदयमें जो पीड़ा हुई उसका दिग्दर्शन कराकर मैं पाठकोंको दुखी नहीं करना चाहता, पर यह निःसंकोच रूपसे कहा जा सकता है कि मल्लजीके इस

विद्वेषवश होने वाले बलिदानको कोई भी जैन अपने जीवनमें नहीं भुला सकता। अस्तु।

राजा माधवसिंहजी प्रथमको जब इस षड्यन्त्रके रहस्यका ठीक पता चला, तब वे बहुत दुखी हुए और अपने कृत्यपर बहुत पछताये। पर 'अब पछताए होत क्या जब चिड़ियां चुग गईं खेत' इसी नीतिके अनुसार अकल्पित कार्य होनेपर फिर केवल पछतावा ही रह जाता है। बादको जैनियोंके साथ वही पूर्ववत् व्यवहार होगया।

अब प्रश्न केवल समयका रह जाता है कि उक्त घटना कब घटी ? यद्यपि इस सम्बन्धमें इतना ही कहा जा सकता है कि सं० १८२१ और १८२४ के मध्यमें माधवसिंहजी प्रथमके राज्य कालमें किसी समय घटी है, परन्तु उसकी अधिकांश सम्भावना सं० १८२४ में जान पड़ती है। चूंकि पं० देवीदास जीकी जयपुरसे बसवा जाने, और उससे वापिस लौटनेपर पुनः पं० टोडरमलजी नहीं मिले, तब उन्होंने उनके लघुपुत्र पण्डित गुमानीरामजीके पासही तत्त्वचर्चा सुनकर कुछ ज्ञान प्राप्त किया, यह उल्लेख सं० १८२४ के बादका है। और उसके अनन्तर देवीदास जी जयपुरमें सं० १८३८ तक रहे हैं।

वीर सेवामन्दिर
७।३३ दरियागंज, देहली।

२१—७—५०

श्रीजिनः

ॐ नमः सिद्धं॥ अथ मोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्र लिख्यते॥ दोहा॥ मंगलमय मंगलकरण॥ वीतराग
विज्ञान॥ नमों ताहि जातैं भए॥ अरहंतादि महान॥१॥ करि मंगल करिहौं महा॥ ग्रंथ करन को काज
जातैं मिलै समाज सब॥ पावै निजपद राज॥२॥ अथ मोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्र का उदय हो है॥ तहां मंग
ल करिए है॥ णमो अरहंताणं॥ णमो सिद्धाणं॥ णमो आयरियाणं॥ णमो उवज्झायाणं॥ णमो लोए
सव्वसाहूणं॥ यहु प्राकृतभाषामय नमस्कारमंत्र है सो महामंगलस्वरूप है॥ बहुरि याका संस्कृत ऐसा
हो है॥ नमोऽर्हद्भ्यः। नमः सिद्धेभ्यः। नमः आचार्येभ्यः। नम उपाध्यायेभ्यः। नमो लोके सर्वसाधुभ्यः। बहु
रि याका अर्थ ऐसा है। नमस्कार अरहंतनि कै अर्थि॥ नमस्कार सिद्धनि कै अर्थि॥ नमस्कार आचार्यनि
कै अर्थि॥ नमस्कार उपाध्यायनि कै अर्थि॥ नमस्कार लोकविषै समस्त साधुनि कै अर्थि ऐसैं याविषै नमस्का
र कीया तातैं याका नाम नमस्कारमंत्र है॥ अब इहां जिनकौं नमस्कार कीया तिनिका स्वरूप चिंत
वन कीजिए है॥ तहां प्रथम अरहंतनि का स्वरूप विचारिए है॥ जे ग्रहस्थपनौं त्यागि मुनिधर्म अंगीकार
करि निजस्वभावसाधन तैं च्यारि घातिकर्मनि कौं खिपाय अनंतचतुष्टयविराजमान भए॥ तहां अ
नंतज्ञान करि तौ अपने अनंतगुणपर्यायसहित समस्त जीवादि द्रव्यनि कौं युगपत विशेषपनैं करि
प्रत्यक्ष जानै है॥ अनंतदर्शन करि तिनिकौं सामान्यपनैं अवलोकै है॥ अनंतवीर्य करि ऐसी सामर्थ्य कौं
धारै है॥ अनंतसुख करि निराकुल परमानंद कौं अनुभवै है॥ बहुरि सर्वथा सर्व रागद्वेषादि विकारभाव
नि करि रहित होय शांतरसरूप परिणए है॥ बहुरि क्षुधा तृषा आदि समस्त दोषनि तैं मुक्त होइ देवाधिदेव

काल्पनिक चित्र

स्वर्गीय पं० टोडरमल जी

ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

आचार्यकल्प पं० टोडरमलजी कृत

मोक्षमार्ग-प्रकाशक

पहला अधिकार

~~~~~~~~~~

[मंगलाचरण]

दोहा

मंगलमय मंगलकरण, वीतरागविज्ञान।
नमौं ताहि जातैं भये, अरहंतादि महान॥
करि मंगल करिहौं महा, ग्रंथकरनको काज।
जातैं मिलै समाज सब, पावै निजपदराज॥२॥

अथ मोक्षमार्गप्रकाशकनाम शास्त्रका उदय हो है। तहां मंगल करिये है,—

णमो अरहंताणं। णमो सिद्धाणं। णमो आइरीयाणं।
णमो उवज्झायाणं। णमो लोए सव्वसाहूणं।

यहु प्राकृतभाषामय नमस्कारमंत्र है, सो महामंगलस्वरूप है। बहुरि याका संस्कृत ऐसा हो है,—

नमोऽर्हद्भ्यः। नमः सिद्धेभ्यः। नमः आचार्येभ्यः। नमः उपाध्यायेभ्यः। नमो लोके सर्वसाधुभ्यः। बहुरि याका अर्थ ऐसा है,—नमस्कार अरहंतनिके अर्थि, नमस्कार सिद्धनिके
~~~~~~~~~~

अर्थि, नमस्कार आचार्यनिके अर्थि , नमस्कार उपाध्यायनिके अर्थि, नमस्कार लोकविषैं सर्वसाधुनिके अर्थि, ऐसें याविषैं नमस्कार किया, तातैं याका नाम नमस्कारमंत्र है। अब इहां जिनकूं नमस्कार किया तिनिका स्वरूप चिंतवन कीजिये है। (जातैं स्वरूप जानैं विना यहु जान्या नाहीं जाय जो मैं कौनकौं नमस्कार करूं तब उत्तमफलकी प्राप्ति कैसें होय[1])।

[अरहंतोंका स्वरूप]

तहां प्रथम अरहंतनिका स्वरूप विचारिये है, जे गृहस्थपनों त्यागि मुनिधर्म अंगीकार करि निजस्वभावसाधनतैं च्यारि घातिया कर्मनिकों खिपाय अनंत चतुष्टयविराजमान भये। तहां अनंतज्ञानकरि तौ अपने अपने अनंत गुणपर्याय सहित समस्त जीवादि द्रव्यनिकों युगपत् विशेषपनैंकरि प्रत्यक्ष जानै हैं। अनंतदर्शनकरि तिनकों सामान्यपनैं अवलोकै हैं। अनंतवीर्यकरि ऐसी (उपर्युक्त) सामर्थ्यकों धारै हैं। अनंतसुखकरि निराकुल परमानंदकों अनुभवै हैं। बहुरि जे सर्वथा सर्व रागद्वेषादिविकारभावनिकरि रहित होय शांतरस रूप परिणए हैं। बहुरि क्षुधा-तृषाआदिसमस्तदोषनितैं मुक्त होय देवाधिदेवपनाकों प्राप्त भये हैं। बहुरि आयुध अंबरादिक वा अंगविकारादिक जे काम-क्रोधादिक निंद्यभावनिके चिह्न तिनकरि रहित जिनका परम औदारिक शरीर भया है। बहुरि जिनके वचननितैं लोकविषैं धर्मतीर्थ प्रवर्त्तै है, ताकरि जीवनिका कल्याण हो है। बहुरि

१—यह पंक्ति खरडा प्रति में नहीं है, संशोधित लिखित प्रतियों में है इसीसे इसे मूल में दिया गया है।

जिनके लौकिक जीवनिकूं प्रभुत्व माननेके कारण अनेक अतिशय अर नानाप्रकार विभव तिनका संयुक्तपना पाइये है। बहुरि जिनकों अपना हितके अर्थि गणधर इंद्रादिक उत्तम जीव सेवैं हैं। ऐसैं सर्वप्रकार पूजनै योग्य श्रीअरहंतदेव हैं, तिनकों हमारा नमस्कार होहु।

[सिद्धों का स्वरूप]

अब सिद्धनिका स्वरूप ध्याइये हैं,— जे गृहस्थअवस्था त्यागि मुनिधर्मसाधनतैं च्यारि घातिकर्मनिका नाश भये अनंतचतुष्टय भाव प्रगट करि केतेक काल पीछें च्यारि अघातिकर्मनिका भी भस्म होतैं परमऔदारिक शरीरकों भी छोरि ऊर्ध्वगमन स्वभावतैं लोकका अग्रभागविषैं जाय विराजमान भये। तहां जिनकै समस्तपरद्रव्यनिका संबंध छूटनेतैं मुक्त अवस्थाकी सिद्धि भई, बहुरि जिनकै चरमशरीरतैं किंचित् ऊन पुरुपाकारवत् आत्मप्रदेशनिका आकार अवस्थित भया, बहुरि जिनकै प्रतिपक्षी कर्मनिका नाश भया तातैं समस्त सम्यक्त्वज्ञान-दर्शनादिक आत्मीक गुण सम्पूर्ण अपने स्वभावकों प्राप्त भये हैं, बहुरि जिनकै नोकर्मका संबंध दूर भया तातैं समस्त अमूर्त्तत्वादिक आत्मीकधर्म प्रकट भये हैं। बहुरि जिनकै भावकर्मका अभाव भया तातैं निराकुल आनंदमय शुद्धस्वभावरूप परिणमन हो है। बहुरि जिनकै ध्यानकरि भव्यजीवनिकै स्वद्रव्यपरद्रव्यका अर औपाधिक भाव स्वभावभावनिका विज्ञान हो है, ताकरि तिनि सिद्धनिकै समान आप होनेका साधन हो है। तातैं साधनेयोग्य जो अपना शुद्धस्वरूप ताके दिखावनेकों प्रतिबिंब समान है। बहुरि जे कृतकृत्य भये हैं तातैं ऐसैं ही अनंत कालपर्यंत रहै हैं ऐसे निष्पन्न भये सिद्ध भगवान तिनकों

हमारा नमस्कार होहु।

अब आचार्य उपाध्याय साधुनिका स्वरूप अवलोकिये है,—

जे विरागी होइ समस्त परिग्रहकों त्यागि शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अंगीकार करि अंतरंगविषैं तौ तिस शुद्धोपयोगकरि आपकों आप अनुभवै हैं परद्रव्यविषै अहंबुद्धि नाहीं धारै हैं। बहुरि अपने ज्ञानादिक स्वभावनिहींकों अपने मानै हैं। परभावनिविषैं ममत्व न करैं हैं। बहुरि जे परद्रव्य वा तिनके स्वभाव ज्ञानविषैं प्रतिभासैं हैं तिनकों जानै तो हैं परंतु इष्ट,अनिष्ट मानि तिनविषैं रागद्वेषनाहीं करैहैं। शरीरकी अनेक अवस्था हो है, वाह्य नाना निमित्त बनैं हैं परंतु तहां किछू भी सुखदुःख मानते नाहीं। बहुरि अपने योग्य वाह्यक्रिया जैसे बनैंहैं तैसैं बनैं हैं, खैंचिकरि तिनिकों करते नाहीं। बहुरि अपने उपयोगकों बहुत नाहीं भ्रमावैं हैं। उदासीन होय निश्चल वृत्तिकों धारै हैं। बहुरि कदाचित् मंदरागके उदयतैं शुभोपयोग भी हो है तिसकरि जे शुद्धोपयोगके वाह्य साधन हैं तिनिविषैं अनुराग करैं हैं परंतु तिस रागभावकों हेय जानिकरि दूरि कीया चाहै हैं। बहुरि तीव्र कषायके उदयका अभावतैं हिंसादिरूप अशुभोपयोग परिणतिका तौ अस्तित्व ही रह्या नाहीं। बहुरि ऐसी अंतरंग अवस्था होतैं वाह्य दिगंवर सौम्यमुद्राके धारी भये हैं। शरीरका सँवारना आदि विक्रियानिकरि रहित भये हैं। वनखंडादि विषैं वसैं हैं। अठाईस मूलगुणनिकों अखंडित पालैं हैं। वाईस परीसहनिकों सहैं हैं। वारहप्रकार तपनिकों आदरैं हैं। कदाचित् ध्यानमुद्रधारि प्रतिमावत निश्चल हो हैं। कदाचित अध्ययनादि वाह्य धर्मक्रियानिविषैं प्रवर्तैं हैं। कदाचित मुनिधर्मका सहकारी

शरीरकी स्थितिके अर्थि योग्य आहार विहारादिक्रियानिविषैं साव-धान हो हैं। ऐसे जैनी मुनि हैं तिन सबनिकी ऐसी ही अवस्था हो है।

[आचार्यका स्वरूप]

तिनिविषैं जे सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यग्चारित्रकी अधिकता करि प्रधानपदकों पाय सङ्घविषैं नायक भये हैं। बहुरि जे मुख्यपनैं तौ निर्विकल्प स्वरूपाचरण विषैं ही मग्न हैं अर जो कदाचित् धर्मके लोभी अन्य जीवादिक तिनिकों देखि रागअंशके उदयतैं करुणा-बुद्धि होय तो तिनिकों धर्मोपदेश देते हैं। जे दीक्षाग्राहक हैं तिनिकों दीक्षा देते हैं जे अपने दोष प्रगट करैं हैं तिनिकों प्रायश्चित विधिकरि शुद्ध करैंहैं। ऐसे आचारन अचरावनवाले आचार्य तिनकों हमारा नमस्कार होहु।

[उपाध्यायका स्वरूप]

बहुरि जे बहुत जैन शास्त्रनिके ज्ञाता होय संघविषैं पठन-पाठनके अधिकारी भये हैं, बहुरि जे समस्त शास्त्रनिका प्रयोजनभूत अर्थ जानि एकाग्र होय अपने स्वरूपकों ध्यावैं हैं। अर जो कदाचित् कपाय अंश उदयतैं तहाँ उपयोग नाहीं थंभै है तौ तिन शास्त्रनिकों आप पढ़ैं हैं वा अन्य धर्मबुद्धीनिको पढ़ावैं हैं। ऐसैं समीपवर्ती भव्यनिको अध्ययन करावनहारे उपाध्याय तिनिकों हमारा नमस्कार होहु।

[साधुका स्वरूप]

बहुरि इन दोय पदवीधारक बिना अन्य समस्त जे मुनिपदके धारक हैं बहुरि जे आत्मस्वभावकों साधै हैं। जैसैं अपना उपयोग परद्रव्यनिविषैं इष्ट अनिष्टपनौं मानि फंसै नाहीं वा भागै नाहीं तैसैं

उपयोगकों सधावै हैं। बहुरि बाह्यतपकी साधनभूत तपश्चरण आदि क्रियानिविषैं प्रवर्तै हैं वा कदाचित् भक्ति वंदनादि कार्यनिविषै प्रवर्तै हैं। ऐसैं आत्मस्वभावके साधक साधु हैं। तिनकों हमारा नमस्कार होहु।

ऐसैं इन अरहंतादिकनिका स्वरूप है सो पूज्यत्वका कारण वीतराग विज्ञानमय है। तिसहीकरि अरहंतादिक स्तुति योग्य महान भये हैं जातैं जीवतत्वकरि तौ सर्व ही जीव समान हैं परंतु रागादिक विकारनिकरि वा ज्ञानकी हीनताकरि तौ जीव निन्दा योग्य हो हैं। बहुरि रागादिककी हीनताकरि वा ज्ञानकी विशेषताकरि स्तुति योग्य हो हैं। सो अरहंत सिद्धनिकै तौ संपूर्ण रागादिककी हीनता अर ज्ञानकी विशेषता होनैंकरि संपूर्ण वीतरागविज्ञानभाव संभवै है। अर आचार्य उपाध्याय साधुनिकै एकादेश रागादिककी हीनता अरज्ञानकी विशेषताकरि एकोदेश वीतरागविज्ञान भाव संभवै है। तातैं ते अरहंतादिक स्तुतियोग्य महान जानने।

बहुरि ए अरहंतादि पद हैं तिनविषैं ऐसा जानना जो मुख्यपनैं तौ तीर्थंकरका अर गौणपनैं सर्वज्ञकेवलीका ग्रहण है यहु पदका प्राकृत-भाषाविषैं अरहंत अर संस्कृतविषैं अर्हत् ऐसा नाम जानना। बहुरि चौदहवां गुणस्थानकै अनंतर समयतें लगाय सिद्ध नाम जानना। बहुरि जिनकों आचार्यपद भया होय ते संघविषैं रहौ वा एकाकी आत्मध्यान करौ वा एकाविहारी होहु वा आचार्यनिविषैं भी प्रधानताकों पाय गणधरपदवी के धारक होहु, तिन सबनिका नाम आचार्य कहिये है। बहुरि पठन-पाठन तौ अन्यमुनि भी करैं हैं, परंतु जिनकैं आचार्यनिकरि दिया उपाध्याय

पद भया होय ते आत्मध्यानादिक कार्य करतैं भी उपाध्याय ही नाम पावै हैं। बहुरि जे पदवीधारक नाहीं ते सर्वमुनि साधुसंज्ञाके धारक जानने। इहां ऐसा नियम नाहीं है जो पंचाचारनिकरि आचार्यपद हो है, पठनपाठनकरि उपाध्यायपद हो है, मूलगुण साधनकरि साधुपद हो है। जातैं ए तौ क्रिया सर्व मुनिनकै साधारण हैं परंतु शब्द नयकरि तिनका अक्षरार्थ तैसैं करिये है। समभिरूढनयकरि पदवीकी अपेक्षा ही आचार्यादिक नाम जानने। जैसैं शब्द नयकरि गमन करै सो गऊ कहिये सो गमन तौ मनुष्यादिक भी करै हैं परंतु समभिरूढ नयकरि पर्याय अपेक्षा नाम है। तैसैं ही यहां समझना।

इहां सिद्धनिकै पहिलै अरहंतनिकौं नमस्कार किया सो कौन-कारण? ऐसा सन्देह उपजै है। ताका समाधान:—

नमस्कार करिये है सो अपने प्रयोजन साधनेकी अपेक्षा करिये सो अरहंतनितैं उपदेशादिकका प्रयोजन विशेष सिद्ध हो है तातैं पहिले नमस्कार किया है। या प्रकार अरहंतादिकका स्वरूप चिंतवन किया। जातैं स्वरूप चिंतवन किये विशेष कार्य सिद्ध हो है। बहुरि इन अरहंतादिकनिकौं पंचपरमेष्ठी कहिये है। जातैं जो सर्वोत्कृष्ट इष्ट होय ताका नाम परमेष्ट है। पंच जे परमेष्ट तिनिका समाहार समुदाय ताका नाम पंचपरमेष्ठी जानना। बहुरि रिषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चंद्रप्रभ, पुष्पदंत, शीतल, श्रेयान, वासुपूज्य, विमल, अनंत, धर्म, शांति, कुंथु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व, वर्द्धमान नामधारक चौबीस तीर्थंकर इस भरतक्षेत्रविषैं वर्तमान धर्मतीर्थके नायक भये, गर्भ जन्म तप

ज्ञान निर्वाण कल्याणकनिविषैं इन्द्रादिकनिकरि विशेप पूज्य होइ अब सिद्धालयविषै विराजै हैं तिनकौं हमारा नमस्कार होहु । वहुरि सीमंधर, युगमंधर,बाहु, सुबाहु, संजातक, स्वयँप्रभ, वृषभानन,अनंत-वीर्य, सूरप्रभ, विशालकीर्ति, वज्रधर, चन्द्रानन, चंद्रवाहु, भुजंगम, ईश्वर, नेमिप्रभ, वीरसेन, महाभद्र, देवयश, अजितवीर्य नामधारक वीसतीर्थंकर पंचमेरु संवँधी विदेहक्षेत्रनिविषैं अवार केवलज्ञानसहित विराजमान हैं तिनकौं हमारा नमस्कार होहु । यद्यपि परमेष्टी पदविषैं इनका गर्भितपना है तथापि विद्यमान कालविषै इनकों विशेष जानि जुदा नमस्कार किया है ।

वहुरि त्रिलोकविषैं जे अकृत्रिम जिनविंव विराजै हैं मध्यलोकविषैं विधिपूर्वक कृत्रिम जिनविंव विराजै हैं जिनिके दर्शनादिकतैं स्वपर-भेद विज्ञान होय है कषाय मंद होय शान्तभाव हो है वा एक धर्मोप-देश विना अन्य अपने हितको सिद्धि जैसें तीर्थंकर केवलीके दर्शना-दिकतैं होय तैसैं हो है, तिन विंवनकौं हमारा नमस्कार होहु । वहुरि केवलीकी दिव्यध्वनिकरि दिया उपदेश ताके अनुसार गणधरकरि रचित अंगप्रकीर्णक तिनकै अनुसरि अन्य आचार्यादिनिकरि रचे ग्रंथादिक हैं जैसैं ये सर्व जिनवचन हैं स्याद्वादचिन्हकरि पहचानने योग्य हैं न्यायमार्गतैं अविरुद्ध हैं तातैं प्रमाणीक हैं जीवनिकों तत्व-ज्ञानके कारण हैं तातैं उपकारी हैं तिनकौं हमारा नमस्कार होहु ।

वहुरि चैत्यालय आर्यिका, उत्कृष्ट श्रावक आदि द्रव्य, अर तीर्थक्षेत्रादि क्षेत्र, अर कल्याणककाल आदि काल, रत्नत्रय आदि भाव, जे मुझकरि नमस्कार करने योग्य हैं तिनकौं नमस्कार करौं

हौं। अर जे किंचित् विनय करने योग्य हैं तिनिका यथा योग्य विनय करौं हौं। ऐसैं अपने इष्टनिका सन्मानकरि मंगल किया है। अब ए अरहंतादिक इष्ट कैसैं हैं सो विचार करिए है,—

जाकरि सुख उपजै वा दुःखविनशै तिस कार्यका नाम प्रयोजन है। बहुरि तिस प्रयोजनकी जाकरि सिद्धि होय सो ही अपना इष्ट है। सो हमारै इस अवसरविषैं वीतरागविशेष ज्ञानका होना सो ही प्रयोजन है जातैं याकरि निराकुल सांचे सुखकी प्राप्ति हो है। अर सर्व आकुलतारूप दुःखका नाश हो है। बहुरि इस प्रयोजनकी सिद्धि अरहंतादिकनिकरि हो है। कैसैं सो विचारिए है,—

[अरहन्तादिकोंसे प्रयोजनसिद्धि]

आत्माके परिणाम तीनप्रकार हैं. संक्लेश[१], विशुद्ध[१], शुद्ध[१], तहां तीव्रकषायरूप संक्लेश हैं, मंदकषायरूप विशुद्ध हैं, कषाय रहित शुद्ध हैं। तहां वीतरागविशेष ज्ञानरूप अपने स्वभावके घातक जो हैं ज्ञानावरणादि घातियाकर्म, तिनिका संक्लेश परिणामकरि तौ तीव्रबन्ध हो है अर विशुद्ध परिणामकरि मंदबंध हो है वा विशुद्ध परिणाम प्रबल होय तौ पूर्वैं जो तीव्र बंध भया था ताकौं भी मंद करै है। अर शुद्ध परिणामकरि बन्ध न हो है। केवल तिनकी निर्जरा ही हो है। सो अरहंतादिविषैं स्तवनादि रूप भाव हो हैं ते कषायनिकी मन्दता लिये हो है तातैं विशुद्ध परिणाम हैं। बहुरि समस्त कषायभाव मिटावनेका साधन है, तातैं शुद्धपरिणामका कारण है सो ऐसे परिणाम करि अपना घातक घातिकर्मका हीनपनाके होनेतैं सहज ही वीतराग विशेषज्ञान प्रगट हो है। जितने अंशनिकरि वह हीन होय

तितने अंशनिकरि यह प्रगट होइ है। ऐसें अरहंतादिक करि अपना प्रयोजन सिद्ध हो है। अथवा अरहंतादिकका आकार अवलोकना वा स्वरूप विचार करना वा वचन सुनना वा निकटवर्ती होना वा तिनकै अनुसार प्रवर्तना इत्यादि कार्य तत्काल ही निमित्तभूत होय रागादिकनिकों हीन करै है। जीव अजीवादिकका विशेषज्ञानकों उपजावै है तातैं ऐसे भी अरहंतादिक करि वीतराग विशेषज्ञानरूप प्रयोजनकी सिद्धि हो है।

इहां कोऊ कहै कि इनिकरि ऐसे प्रयोजनकी तौ सिद्धि ऐसैं हो है परन्तु जाकरि इंद्रियनित सुख उपजै दुःख विनशै ऐसे भी प्रयोजनकी सिद्धि इनिकरि हो है कि नाहीं। ताका समाधान,—

जो अरहंतादिविषैं स्तवनादिरूप विशुद्ध परिणाम हो है ताकरि अघातिया कर्मनिकी साता आदि पुण्यप्रकृतिनिका बंध हो है। बहुरि जो वह परिणाम तीव्र होय तौ पूर्वैं असाताआदि पापप्रकृति बँधी थीं तिनिकों भी मंद करै है अथवा नष्टकरि पुण्यप्रकृतिरूप परिणमावै है। बहुरि तिस पुण्यका उदय होतैं स्वयमेव इन्द्रियसुखकों कारणभूत सामग्री मिलै है। अर पापका उदय दूर होतैं स्वयमेव दुःखकों कारणभूत सामग्री दूर हो है। ऐसैं इस प्रयोजनकी भी सिद्धि तिनकरि हो है। अथवा जिन शासनके भक्त देवादिक हैं ते तिस भक्तपुरुषकै अनेक इन्द्रियसुखकों कारणभूत सामग्रीनिका संयोग करावै हैं। दुःखकों कारणभूत सामग्रीनिकों दूरि करै हैं। ऐसैं भी इस प्रयोजनकी सिद्धि तिनि अरहंतादिकनिकरि हो है। परन्तु इस प्रयोजनतैं किछू अपना भी हित होता नाहीं तातैं यहु आत्मा

कषायभावनितैं बाह्य सामग्रीविषैं इष्ट-अनिष्टपनौं मानि आप ही सुखदुःखकी कल्पना करै है। बिना कषाय बाह्य सामग्री किछू सुखदुःखकी दाता नाहीं। बहुरि कषाय हैं सो सब आकुलतामय हैं तातैं इन्द्रियजनितसुखकी इच्छा करनी दुःखतैं डरना सो यह भ्रम है। बहुरि इस प्रयोजनके अर्थि अरहंतादिककी भक्ति किए भी तीव्रकषाय होनेकरि पापबंध ही हो है तातैं आपकौं इस प्रयोजनका अर्थी होना योग्य नाहीं। जातैं अरहंतादिककी भक्ति करतैं ऐसे प्रयोजन तौ स्वयमेव ही सधै हैं।

ऐसैं अरहंतादिक परम इष्ट मानने योग्य हैं। बहुरि ए अरहंतादिक ही परममंगल हैं। इनविषैं भक्तिभाव भये परममंगल हो है। जातैं 'मंग' कहिये सुख ताहि 'लाति' कहिये देवैं अथवा 'मं' कहिये पाप ताहि 'गालयति' कहिये गालै ताका नाम मंगल है सो तिनकरि पूर्वोक्त प्रकार दोऊ कार्यनिकी सिद्धि हो है। तातैं तिनकैं परममंगलपना संभवै है।

इहां कोऊ पूछै कि प्रथम ग्रंथकी आदिविषैंमंगल ही किया सो कौन कारण? ताका उत्तर—

[अन्यमत मंगल]

जो सुखस्यौं ग्रंथकी समाप्ति होइ पापकरि कोऊ विघ्न न होय। या कारणतैं यहां प्रथम मंगल कीया है।

इहां तर्क—जो अन्यमती ऐसैं मंगल नाहीं करै हैं तिनकैं भी ग्रंथकी समाप्तता अर विघ्नका नाश होना देखिये है, तहां कहा हेतु है? ताका समाधान—

जो अन्यमती ग्रंथ करै हैं तिनविषै मोहके तीव्र उदयकरि मिथ्या-

त्व कषाय भावनिकौं पोषते विपरीत अर्थनिकों धरै हैं तातैं ताकी निर्विघ्न समाप्तता तौ ऐसैं मंगल किये विना ही होइ। जो ऐसे मंगलनिकरि मोह मंद हो जाय तौ वैसा विपरीत कार्य कैसैं बनैं? बहुरि हम यहु ग्रंथ करैं हैं तिसविषैं मोहकी मंदता करि वीतराग तत्वज्ञानकों पोषते अर्थनिकौं धरैंगे ताकी निर्विघ्न समाप्तता ऐसैं मंगल कियैं ही होय। जो ऐसैं मंगल न करैं तौ मोहका तीव्रपना रहै, तब ऐसा उत्तम कार्य कैसे बनैं? बहुरि वह कहै जो ऐसैं तौ मानैंगे, परंतु कोऊ ऐसा मंगल न करै ताकै भी सुख देखिए है पापका उदय न देखिए है। अर कोऊ ऐसा मंगल करै है ताकै भी सुख न देखिये है पापका उदय देखिये है तातैं पूर्वोक्त मंगलपना कैसैं बनै? ताकों कहिये है,—

जो जीवनिकै संक्लेश विशुद्ध परिणाम अनेक जातिके हैं तिनि-करि अनेक कालनिविषैं पूर्वैं बंधे कर्म एक कालविषै उदय आवै हैं। तातैं जैसैं जाकै पूर्वैं बहुत धनका संचय होय ताकै विना कुमाए भी धन देखिए अर देणा न देखिये है। अर जाकै पूर्वैं ऋण बहुत होय ताकै धन कुमावतैं भी देणा देखिये है धन न देखिए है परंतु विचार कीएतैं कुमावना धन होनैंहीका कारण है ऋणका कारण नाहीं। तैसैं ही जाकै पूर्वैं बहुत पुण्य बंध्या होइ ताकै इहां ऐसा मंगल विना किए भी सुख देखिए है। पापका उदय न देखिए है। बहुरि जाकैं पूर्वैं बहुत पाप बंध्या होय ताकै इहां ऐसा मंगल किये भी सुख न देखिए है पापका उदय देखिए है। परंतु विचार किएतैं ऐसा मंगल तौ सुखका ही कारण है पापउदयका कारण नाहीं। ऐसैं पूर्वोक्त

मंगलका मंगलपना बनै है।

बहुरि वह कहै है कि यह भी मानी परंतु जिनशासनके भक्त देवादिक हैं तिनिनें तिस मंगल करनेवालेकी सहायना न करी अर मंगल न करनेवालेको दंड न दिया सो कौन कारण? ताका समाधानः—

जो जीवनिकै सुख दुख होनेका प्रबल कारण अपना कर्मका उदय है ताहीके अनुसारि बाह्य निमित्त बनै है तातैं जाकै पापका उदय होइ ताकै सहायता का निमित्त न बनै है। अर जाकै पुण्यका उदय होइ ताकै दंडका निमित्त न बनै है। यहु निमित्त कैसैं न बनै है सो कहिये है:—

जे देवादिक हैं ते क्षयोपशम ज्ञानतैं सर्वकौं युगपत जानि सकते नाहीं, तातैं मंगल करनेवाले न करनेवाले का जानपना किसी देवादिककै काहू कालविषैं होइ है तातैं जो तिनिका जानपना न होइ तौ कैसैं सहाय करै वा दंड दे। अर जानपना होय तब आपकै जो अति मंदकषाय होइ तौ सहाय करनेके वा दंड देनेके परिणाम ही न होइ। अर तीव्रकषाय होइ तौ धर्मानुराग होइ सकै नाहीं। बहुरि कषायरूप तिस कार्य करनेके परिणाम भये अर अपनी शक्ति नाहीं तौ कहा करै ऐसैं सहाय करने वा दंड देनेका निमित्त नाहीं बनै है। जो अपनी शक्ति होय अर आपकै धर्मानुरागरूप मध्यमकषायका उदयतैं तैसे ही परिणाम होइ अर तिस समय अन्य जीवका धर्म अधर्मरूप कर्तव्य जानै, तब कोई देवादिक किसी धर्मात्माकौं सहाय करै वा किसी अधर्मीकौं दंड दे है। ऐसैं कार्य होनेका किछू नियम तौ है नाहीं।

ऐसैं समाधान कीया। इहां इतना जानना कि सुख होनेकी दुख न होने की सहाय करावनेकी दुख घावनेकी जो इच्छा है सो कषायमय है तत्कालविषैं वा आगामी कालविषैं दुखदायक है। तातैं ऐसी इच्छाकूं छोरि हमतौ एक वीतराग विशेष ज्ञान होनेके अर्थी होइ अरहंतादिककों नमस्कारादिरूप मंगल कीया है। ऐसैं मंगलाचरण करि अब सार्थक मोक्षमार्गप्रकाशकनाम ग्रंथका उद्योत करैं हैं। तहां यहु ग्रंथ प्रमाण है ऐसी प्रतीति आवनेके अर्थि पूर्व अनुसारका स्वरूप निरूपिए है—

[ग्रंथ प्रामाणिकता और आगम-परम्परा]

अकारादि अक्षर हैं ते अनादिनिधन हैं काहूके किए नाहीं इनिका आकार लिखना तौ अपनी इच्छाके अनुसारि अनेक प्रकार है परंतु बोलनेमैं आवै हैं ते अक्षर तौ सर्वत्र सर्वदा ऐसैंही प्रवर्तें हैं सोई कह्या है,—'सिद्धो वर्णसमाम्नायः'। याका अर्थ यहु—जो अक्षरनिका संप्रदाय है सो स्वयंसिद्ध है। बहुरि तिनि अक्षरनिकरि निपजे सत्यार्थके प्रकाशक पद तिनके समूहका नाम श्रुत है सो भी अनादिनिधन हैं। जैसैं 'जीव' ऐसा अनादिनिधन पद है सो जीवका जनावनहारा है। ऐसैं अपने अपने सत्य अर्थके प्रकाशक अनेक पद तिनका जो समुदाय सो श्रुत जानना। बहुरि जैसैं मोती तौ स्वयंसिद्ध है तिनविषैं कोऊ थोरे मोतीनिकों, कोऊ घने मोतीनिकों कोऊ किसी प्रकार गूंथिकरि गहना बनावै है। तैसैं पद तौ स्वयंसिद्ध हैं तिनविषैं कोऊ थोरे पदनिकों कोऊ घने पदनिकों कोऊ किसी प्रकार कोऊ किसीप्रकार गूंथि ग्रंथ बनावैहै यहां मैं भी तिनि सत्यार्थ पदनिकों

मेरी बुद्धि अनुसारि गूंथि[१] ग्रंथ बनाऊं हूं सो मैं मेरी मतिकरि कल्पित झूठे अर्थ के सूचक पद याविषैं नाहीं गूंथूं हौं। तातैं यह ग्रंथ प्रमाण जानना।

इहां प्रश्न—जो तिनि पदनिकी परंपराय इस ग्रंथ पर्यंत कैसैं प्रवर्तै है—ताका समाधान,—

अनादितैं तीर्थंकर केवली होते आये हैं तिनिकै सर्वका ज्ञान हो है तातैं तिनि पदनिका वा तिनिके अर्थनिका भी ज्ञान हो है। बहुरि तिनि तीर्थंकर केवलीनिका जाकरि अन्य जीवनिकैं पदनिका अर्थनिका ज्ञान होय ऐसा दिव्यध्वनिकरि उपदेश हो है। ताकै अनुसारि गणधरदेव अंग प्रकीर्णकरूप ग्रंथ गूंथें हैं। बहुरि तिनके अनुसारि अन्य अन्य आचार्यादिक नाना प्रकार ग्रंथादिककी रचना करैं हैं। तिनिकौं केई अभ्यासैं हैं केई कहैं हैं केई सुनैं हैं ऐसैं परंपराय मार्ग चल्या आवै है।

सो अब इस भरतक्षेत्रविषैं वर्तमान अवसर्पिणी काल है। तिस-विषैं चौवीस तीर्थंकर भए तिनिविषैं श्रीवर्द्धमान नामा अन्तिम तीर्थंकर देव भया। सो केवलज्ञान विराजमान होइ जीवनिकौं दिव्य-ध्वनिकरि उपदेश देत भया। ताके सुननेका निमित्त पाय गौतम नामा गणधर अगम्य अर्थनिकौं भी जानि धर्मानुरागके वशतैं अंग-प्रकीर्णकनिकी रचना करता भया। बहुरि वर्द्धमान स्वामी तौ मुक्त भए, तहां पीछैं इस पंचम कालविषैं तीन केवली भए गौतम १, सुधर्माचार्य २, जंबूस्वामी ३, तहां पीछैं कालदोषतैं केवलज्ञानी

१ जोड़कर या निर्मितकरि।

होनेका तौ अभाव भया। बहुरि केतेक काल ताई द्वादशांगके पाठी श्रुतिकेवली रहे पीछैं तिनिका भी अभाव भया। बहुरि केतेक काल-ताई थोरे अंगनिके पाठी रहे (तिनने[1]यह जानकर जो भविष्यत् कालमें हम सारिखे भी ज्ञानी न रहेंगे, तातैं ग्रंथ रचना आरम्भ करी और द्वादशांगानुकूल प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग द्रव्या-नुयोगके ग्रंथ रचे।) पीछैं तिनका भी अभाव भया। तब आचार्या-दिकनिकरि तिनिके अनुसारि बनाए ग्रंथ वा अनुसारी ग्रंथनिके अनुसारि बनाए ग्रंथ तिनिहीकी प्रवृत्ति रही। तिनिविषैं भी काल दोषतैं दुष्टनिकरि कितेक ग्रंथनिकी व्युच्छित्ति भई वा महान् ग्रंथ-अभ्यासादि न होनेतैं व्युच्छित्ति भई। बहुरि केतेक महान ग्रंथ पाइए हैं तिनिका बुद्धिकी मंदतातैं अभ्यास होता नाहीं। जैसैं दक्षिणमैं गोमट्टस्वामीके निकट मूलविद्री नगरविषैं धवल महाधवल जयधवल पाइए है। परंतु दर्शनमात्र ही हैं। बहुरि कितेक ग्रंथ अपनी बुद्धिकरि अभ्यास करने योग्य पाइए है। तिनि विषैं भी कितेक ग्रंथनिका ही अभ्यास बनै हैं। ऐसैं इस निकृष्ट कालविषैं उत्कृष्ट जैनमतका घटना तौ भया परंतु इस परंपरायकरि अब भी जैन शास्त्रविषैं सत्य अर्थके प्रकाशनहारे पदनिका सद्भाव प्रवर्तै है।

[ग्रंथकारका आगमाभ्यास और ग्रंथरचना]

बहुरि हम इस काल विषैं यहां अब मनुष्यपर्याय पाया सो इस-विषैं हमारैं पूर्व संस्कारतैं वा भला होनहारतैं जैनशास्त्रनिविषैं

१ ( ) इस चिन्ह वाली पंक्तियां खरडा प्रति में नहीं है अन्य सब प्रतियों में है। इसीसे आवश्यक जानि ब्रेकट में दे दी है।

अभ्यास करनेका उद्यम होत भया। तातैं व्याकरण, न्याय, गणित आदि उपयोगी ग्रंथनिका किंचित् अभ्यास करि टीकासहित समयसार, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, नियमसार, गोमट्टसार, लब्धिसार, त्रिलोकसार, तत्त्वार्थसूत्र इत्यादि शास्त्र अर क्षपणासार, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, अष्टपाहुड, आत्मानुशासन आदि शास्त्र अर श्रावक मुनिका आचारके प्ररूपक अनेक शास्त्र अर सुष्ठुकथासहित पुराणादि शास्त्र इत्यादि अनेक शास्त्र हैं तिनिविषैं हमारे बुद्धि अनुसारि अभ्यास वर्तै है। तिसकरि हमारै हू किंचित् सत्यार्थ पदनिका ज्ञान भया है। बहुरि इस निकृष्ट समयविषैं हम सारिखे मंदबुद्धीनितैं भी हीन बुद्धिके धनी घने जन अवलोकिए है। तिनिकौं तिनि पदनिका अर्थज्ञान होनेके अर्थि धर्मानुरागके वशतैं देशभाषामय ग्रंथ करनेकी हमारे इच्छा भई ताकरि हम यहु ग्रंथ बनावैं हैं सो इसविषैं भी अर्थसहित तिनिही पदनिका प्रकाशन हो है। इतना तौ विशेष है जैसैं प्राकृत, संस्कृत शास्त्रनिविषैं प्राकृत, संस्कृत पद लिखिए हैं तैसैं इहां अपभ्रंश लिए वा यथार्थपनाकौं लिए देशभाषारूप पद लिखिए है परंतु अर्थविषै व्यभिचार किछू नाहीं है। ऐसैं इस ग्रंथपर्यन्त तिनि सत्यार्थ पदनिकी परंपराय प्रवर्तै है।

इहां कोऊ पूछै कि परंपराय तौ हम ऐसैं जानी परन्तु इस परंपरायविषैं सत्यार्थ पदनिहीकी रचना होती आई असत्यार्थ पद न मिले ऐसी प्रतीति हमकौं कैसैं होय। ताका समाधान,—

[असत्यपद रचना का प्रतिषेध]

असत्यार्थ पदनिकी रचना अति तीव्र कषाय भए बिना बनैं नाहीं

जातैं जिस असत्य रचनाकरि परंपराय अनेक जीवनिका महा बुरा होय आपकौं ऐसी महा हिंसाका फलकरि नर्क निगोदविषै गमन करना होइ सो ऐसा महाविपरीत कार्य तौ क्रोध मान माया लोभ अत्यन्त तीव्र भए ही होय। सो जैनधर्मविषैं तौ ऐसा कषायवान् होता नाहीं। प्रथम मूल उपदेशदाता तौ तीर्थंकर केवली भये सो तौ सर्वथा मोहके नाशतैं सर्व कषायनि करि रहित ही हैं। बहुरि ग्रन्थ-कर्त्ता गणधर वा आचार्य ते मोहका मन्द उदयकरि सर्व बाह्य आभ्यन्तर परिग्रहकौं त्यागि महा मंदकषायी भए हैं, तिनिकै तिस मंदकषायकरि किंचित शुभोपयोगहीकी प्रवृत्ति पाइए है सो भी तीव्र-कषायी नाहीं है जो वाकै तीव्रकषाय होय तौ सर्वकषायनिका जिस तिस प्रकार नाश करणहारा जो जिनधर्म तिसविषै रुचि कैसैं होइ अथवा जो मोहके उदयतैं अन्य कार्यनिकरि कषाय पोषै है तौ पोषौ परन्तु जिनआज्ञा भंगकरि अपनी कषाय पोषै तौ जैनीपना रहता नाहीं, ऐसैं जिनधर्म्मविषैं ऐसा तीव्रकषायी कोऊ होता नाहीं जो असत्य पदनिकी रचनाकरि परका अर अपना पर्याय पर्यायविषैं बुरा करै।

इहां प्रश्न,—जो कोऊ जैनाभास तीव्रकषायी होय असत्यार्थ पदनिको जैन शास्त्रनिविषैं मिलावै पीछैं ताकी परंपरा चली जाय तौ कहा करिये ?

ताका समाधान—जैसैं कोऊ सांचे मोतिनिके गहनेविषैं झूठे मोती मिलावै परंतु झलक मिलै नाहीं तातैं परीक्षाकरि पारखी ठिगावता भी नाहीं, कोई भोला होय सो ही मोती नामकरि ठिगावै है। बहुरि ताकी परंपरा भी चलै नाहीं, शीघ्र ही कोऊ झूठे मोतीनिका निषेध

करै है। तैसैं कोऊ सत्यार्थ पदनिके समूहरूप जैनशास्त्रनिविषैं असत्यार्थ पद मिलावै, परंतु जैनशास्त्रके पदनिविषैं तौ कषाय मिटावनेका वा लौकिककार्य घटावनेका प्रयोजन है अर उस पापीनैं जे असत्यार्थ पद मिलाए हैं तिनिविषैं कषाय पोषनेका वा लौकिककार्य साधनेका प्रयोजन है ऐसैं प्रयोजन मिलता नाहीं, तातैं परीक्षाकरि ज्ञानी ठिगावते भी नाहीं, कोई मूर्ख होय सो ही जैनशास्त्र नामकरि ठिगावै है वहुरि ताकी परंपरा भी चालै नाहीं, शीघ्र ही कोऊ तिनि असत्यार्थ पदनिका निषेध करै है। वहुरि ऐसे तीव्रकषायी जैनाभास इहां इस निकृष्ट कालविषैं हो हैं उत्कृष्ट क्षेत्र काल वहुत हैं तिन विषैं तौ ऐसे होते नाहीं। तातैं जैनशास्त्रनिविषैं असत्यार्थ पदनिकी परंपरा चालै नाहीं, ऐसा निश्चय करना।

वहुरि वह कहै कि कषायनिकरि तौ असत्यार्थ पद न मिलावैं परंतु ग्रंथ करनेवालेकै क्षयोपशमज्ञान है तातैं कोई अन्यथा अर्थ भासै ताकरि असत्यार्थ पद मिलावै ताकी तौ परंपरा चलै ?

ताका समाधान,—

मूल ग्रंथकर्त्ता तौ गणधरदेव हैं ते आप च्यारिज्ञानके धारक हैं अर साक्षात् केवलीका दिव्यध्वनिउपदेश सुनैं हैं ताका अतिशयकरि सत्यार्थ ही भासै है। अर ताहीके अनुसारि ग्रन्थ बनावैं हैं। सो उन ग्रन्थनिविषैं तौ असत्यार्थ पद कैसैं गूंथे जांय अर अन्य आचार्यादिक ग्रन्थ बनावै हैं ते भी यथायोग्य सम्यग्ज्ञानके धारक हैं। वहुरि ते तिनि मूलग्रन्थनिकी परंपराकरि ग्रन्थ बनावै हैं। वहुरि जिन पदनिका आपकौं ज्ञान न होइ तिनकी तौ आप रचना करै नाहीं अर

जिन पदनिका ज्ञान होइ तिनिकों सम्यग्ज्ञान प्रमाणतैं ठीक करि गूंथै हैं सो प्रथम तो ऐसी सावधानीविषैं असत्यार्थ पद गूंथे जाय नाहीं, अर कदाचित् आपकौं पूर्व ग्रन्थनिके पदनिका अर्थ अन्यथा ही भासै अर अपनी प्रमाणतामैं भो तैसैं ही आय जाय तौ याका किछू सारा[1] नाहीं। परन्तु ऐसैं कोईकौं भासै सबहीकौं तौ न भासै। तातैं जिनकौं सत्यार्थ भास्या होय ते ताका निषेधकरि परंपरा चलने देते नाहीं। बहुरि इतना जानना जिनकौं अन्यथा जाने जीवका बुरा होय ऐसा देव गुरु धर्मादिक वा जीवादिक तत्त्वनिकौं तौ श्रद्धानी जैनी अन्यथा जानै ही नाहीं इनिका तौ जैनशास्त्रनिविषैं प्रसिद्ध कथन है अर जिनिकौं भ्रमकरि अन्यथा जाने भी जिन आज्ञा माननेतैं जीवका बुरा न होइ ऐसैं कोई सूक्ष्म अर्थ है तिनिविषैं किसीकौं कोई अर्थ अन्यथा प्रमाणतामैं ल्यावै तौ भी ताका विशेष दोष नाहीं सो गोमट्टसारविषैं कह्या है,—

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥१॥

याका अर्थ—सम्यग्दृष्टी जीव उपदेश्या सत्य वचनकौं श्रद्धान करै है अर अजाणमाण गुरुके नियोगतैं असत्यकौं भी श्रद्धान करै है ऐसा कह्या है। बहुरि हमारै भी विशेष ज्ञान नाहीं है। अर जिनआज्ञा भंग करनेका बहुत भय है परन्तु इसही विचारके बलतैं ग्रन्थ करनेका साहस करते हैं सो इस ग्रन्थ विषैं जैसैं पूर्व ग्रन्थनिमें वर्नन है तैसैं ही वर्नन करैंगे। अथवा कहीं पूर्व ग्रन्थनिविषैं सामान्य गूढ़

[1] वश नहीं।

वर्नन था ताका विशेष प्रगट करि वर्नन इहां करैंगे सो ऐसैं वर्नन करनेविषैं, मैं तौ बहुत सावधानी राखौंगा। अर सावधानी करते भी कहीं सूक्ष्म अर्थका अन्यथा वर्नन होय जाय तौ विशेष बुद्धिमान होइ सो सँवारिकरि शुद्ध करियौ। यह मेरी प्रार्थना है। ऐसैं शास्त्र करनेका निश्चय किया है। अब इहां कैसे शास्त्र वांचने सुनने योग्य हैं अर तिनि शास्त्रनिके वक्ता श्रोता कैसे चाहिए सो वर्नन करिए है।

[वांचने सुनने योग्य शास्त्र]

जे शास्त्र मोक्षमार्गका प्रकाश करैं तेई शास्त्र वांचने सुनने योग्य हैं जातैं जीव संसारविषैं नाना दुःखनिकरि पीड़ित हैं। सो शास्त्ररूपी दीपककरि मोक्षमार्गकों पावै तौ उस मार्गविषैं आप गमनकरि उन दुःखनितैं मुक्त होय सो मोक्षमार्ग एक वीतरागभाव है. तातैं जिन शास्त्रनिविषैं काहूप्रकार राग-द्वेष-मोह भावनिका निषेध करि वीतरागभावका प्रयोजन प्रगट किया होय तिनिही शास्त्रनिका वांचना सुनना उचित है। बहुरि जिन शास्त्रनिविषैं शृङ्गार भोग कुतूहलादिक पोषि रागभावका अर हिंसा-युद्धादिक पोषि द्वेषभावका अर अतत्त्व-श्रद्धान पोषि मोहभावका प्रयोजन प्रगट किया होय ते शास्त्र नाहीं शस्त्र हैं। जातैं जिन राग द्वेष मोह भावनिकरि जीव अनादितैं दुखी भया तिनकी वासना जीवकैं बिना सिखाई ही थी। बहुरि इन शास्त्रनिकरि तिनहीका पोषण किया भले होनेकी कहा शिक्षा दीनी। जीवका स्वभाव घात ही किया तातैं ऐसे शास्त्रनिका वांचना सुनना उचित नाहीं है। इहां वांचना सुनना जैसे कह्या तैसैं ही जोड़ना सीखना सिखावना विचारना लिखावना आदि कार्य भी उपलक्षणकरि जान

लेनें। ऐसैं साक्षात् वा परंपरायकरि वीतरागभावकौं पोषैं ऐसे शास्त्रहीका अभ्यास करने योग्य है।

[वक्ताका स्वरूप]

अब इनिके वक्ताका स्वरूप कहिये है। प्रथमतौ वक्ता कैसा चाहिए जो जैन श्रद्धानविषै दृढ़ होय जातैं जो आप अश्रद्धानी होय तौ औरकौं श्रद्धानी कैसैं करै? श्रोता तौ आपहीतैं हीनबुद्धिके धारक हैं तिनिकौं कोऊ युक्तिकरि श्रद्धानी कैसैं करै। अर श्रद्धान ही सर्व धर्मका मूल है। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए जाकै विद्याभ्यास करनेतैं शास्त्र वांचनेयोग्य बुद्धि प्रगट भई होय जातैं ऐसी शक्ति बिना वक्ता-पनेका अधिकारी कैसैं होय। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए जो सम्यग्ज्ञानकरि सर्व प्रकारके व्यवहार निश्चयादिरूप व्याख्यानका अभिप्राय पहचानता होय जातैं जो ऐसा न होय तौ कहीं अन्य प्रयोजन लिए व्याख्यान होय ताका अन्य प्रयोजन प्रगटकरि विपरीत प्रवृत्ति करावै। बहुरि वक्ता कैसा चाहिये जाकै जिनआज्ञा भंग करनेका बहुत भय होय। जातैं जो ऐसा न होय तौ कोई अभिप्राय विचारि सूत्रविरुद्ध उपदेश देय जीवनिका बुरा करै। सो ही कह्या है,—

बहुगुणविज्जाणिलयो असुत्तभासी तहावि मुत्तव्वो।
जह वरमणिजुत्तो वि हु विग्घयरो विसहरो लोए ॥१॥

याका अर्थ—जो बहुत क्षमादिक गुण अर व्याकरण आदि विद्याका स्थान है तथापि उत्सूत्रभाषी है तौ छोड़ने योग्य ही है जैसैं उत्कृष्टमणिसंयुक्त है तौ भी सर्प है सो लोकविषैं विघ्नका ही करणहारा है। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए, जाकै शास्त्र वांचि आजीविका

आदि लौकिक कार्य साधनेकी इच्छा न होय। जातैं जो आशावान् होइ तौ यथार्थ उपदेश देइ सकै नाहीं, वाकै तौ किछू श्रोतानिका अभिप्रायके अनुसारि व्याख्यानकरि अपने प्रयोजन साधनेका ही साधन रहै अर श्रोतानितैं वक्ताका पद ऊँचा है परंतु यदि वक्ता लोभी होय तौ वक्ता आप हीन हो जाय श्रोता ऊंचा होय। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए जाकै तीव्र क्रोध मान न होय जातैं तीव्र क्रोधी मानीकी निंदा होय श्रोता तिसतैं डरते रहैं, तब तिसतैं अपना हित कैसैं करैं। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए जो आप ही नाना प्रश्न उठाय आप ही उत्तर करै अथवा अन्य जीव अनेक प्रकारकरि बहुत बार प्रश्न करैं तौ मिष्टवचननिकरि जैसैं उनका सन्देह दूरि होय तैसैं समाधान करै जो आपकै उत्तर देनेकी सामर्थ्य न होय तौ या कहै याका मोकौं ज्ञान नाहीं किसी विशेष ज्ञानीसे पूछकर तिहारे ताईं उत्तर दूंगा अथवा कोई समय पाय विशेष ज्ञानी तुमसौं मिलै तौ पूछ कर अपना सन्देह दूर करना और मोकूं हू बताय देना। जातैं ऐसा न होय तौ अभिमानके वशतैं अपनी पांडिताई जनावनेकौं प्रकरण विरुद्ध अर्थ उपदेशै, तातैं श्रोतानका विरुद्ध श्रद्धान करनेतैं बुरा होय जैन धर्मकी निंदा होय। जातैं जो ऐसा न होइ तौ श्रोतानिका संदेह दूरि न होइ तब कल्याण कैसैं होइ अर जिनमतकी प्रभावना होय सकै नाहीं। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए जाकै अनीतिरूप लोकनिंद्य कार्यनिविषै प्रवृत्ति न होय, जातैं लोकनिंद्य कार्यनिकरि हास्यका स्थान होय जाय, तब ताका वचन कौन प्रमाण करै जिनधर्मकौं लजावै। बहुरि वक्ता कैसा चाहिए जाका कुल हीन न होय अंगहीन न होय स्वर भंग न होय मिष्टवचन होय

प्रभुत्व होय तातैं लोकविषैं मान्य होय जातैं, जौ ऐसा न होय तौ ताकौं वक्तापनाकी महंतता सोभै नाहीं। ऐसा वक्ता होय। वक्ताविषैं ये गुण तौ अवश्य चाहिए सो ही आत्मानुशासनविषै कह्या है।

प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः प्रव्यक्तलोकस्थितिः
प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः।
प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनोहारी परानिन्दया
ब्रूयाद्धर्म्मकथां गणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः ॥१॥

याका अर्थ—बुद्धिमान होइ जानै समस्त शास्त्रनिका रहस्य पाया होय, लोकमर्यादा जाकै प्रगट भई होय, आशा जाकै अस्त भई होय, कांतिमान् होय, उपशमी होय, प्रश्न किये पहले ही जानै उत्तर देख्या होय, बाहुल्यपनैं प्रश्ननिका सहनहारा होय, प्रभु होय, परकी वा परकरि आपकी निन्दारहितपनाकरि परके मनका हरनहारा होय गुणनिधान होय, स्पष्ट मिष्ट जाके वचन होंय, ऐसा सभाका नायक धर्मकथा कहै। बहुरि वक्ताका विशेष लक्षण ऐसा है जो याकै व्याकरण न्यायादिक वा बड़े बड़े जैनशास्त्रनिका विशेष ज्ञान होय तौ विशेषपनै ताकौं वक्तापनौं सोभै। बहुरि ऐसा भी होय अर अध्यात्मरसकरि यथार्थ अपने स्वरूपका अनुभव जाकै न भया होय सो जिनधर्मका मर्म जानैं नाहीं पद्धतिहीकरि वक्ता होय है। अध्यात्मरसमय सांचा जिनधर्मका स्वरूप वाकरि कैसैं प्रगट किया जाय, तातैं आत्मज्ञानी होइ तौ सांचा वक्तापनौं होइ, जातैं प्रवचनसार विषैं ऐसा कह्या है। आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान, संयमभाव ये तीनौं आत्मज्ञानकरि शून्य कार्यकारी नाहीं। बहुरि दोहापाहुडविषैं ऐसा कह्या है—

पंडिय पंडिय पंडिय कण छोडि वितुस कंडिया।
पय-अत्थं तुट्ठोसि परमत्थ ण जाणइ मूढोसि ॥ १ ॥

याका अर्थ–हे पांडे हे पांडे हे पांडे तैं कणछोडि तुस ही कूटैं तू अर्थ अर शब्दविषै संतुष्ट है परमार्थ न जानै है तातैं मूर्ख ही है ऐसा कह्या है अर चौदह विद्यानिविषैं भी पहलै अध्यात्मविद्या प्रधान कही है। तातैं अध्यात्मरसका रसिया वक्ता है सो जिनधर्मके रहस्यका वक्ता जानना। बहुरि जे बुद्धिऋद्धिके धारक हैं वा अवधि-मनःपर्यय केवलज्ञानके धनी वक्ता हैं ते महावक्ता जाननें। ऐसैं वक्तानिके विशेष गुण जानने। सो इन विशेष गुणनिका धारी वक्ताका संयोग मिलै तौ बहुत भला है ही अर न मिलै तो श्रद्धानादिक गुणनिके धारी वक्तानिहीके मुखतैं शास्त्र सुनना। या प्रकार गुनके धारी मुनि वा श्रावक तिनके मुखतैं तौ शास्त्र सुनना योग्य है अर पद्धतिबुद्धिकरि वा शास्त्र सुननेके लोभकरि श्रद्धानादिगुणरहित पापी पुरुषनिके मुखतैं शास्त्र सुनना उचित नाहीं। उक्तं च—

तं जिण आणपरेण य धम्मो सोयव्व सुगुरुपासम्मि।
अह उचिओ सद्धाओ तस्सुवएसस्स कहगाओ ॥ १ ॥

याका अर्थ—जो जिन आज्ञा माननेविषैं सावधान है ताकरि निर्ग्रन्थ सुगुरुहीकै निकटि धर्म सुनना योग्य है अथवा तिन सुगुरुहीके उपदेशका कहनहारा उचित श्रद्धानी श्रावक तातैं धर्म सुनना योग्य है। ऐसा जो वक्ता धर्मबुद्धिकरि उपदेश दाता होय सो ही अपना अर अन्य जीवनिका भला करै है। अर जो कषायबुद्धिकरि उपदेश दे है सो अपना अर अन्य जीवनिका बुरा करै है ऐसा जानना।

ऐसैं वक्ताका स्वरूप कह्या, अब श्रोताका स्वरूप कहैं हैं—

[श्रोताका स्वरूप]

भला होनहार है तातैं जिस जीवकै ऐसा विचार आवै मैं कौन हौं, मेरा कहा स्वरूप है [अरकहांतैं आकर यहां जन्म धारया है और मरकर कहाँ जाऊँगा*] यह चरित्र कैसैं बनि रह्या है? ए मेरै भाव हो हैं तिनका कहा फल लागैगा, जीव दुखी होय रह्या है सो दुःख दूरि होनेका कहा उपाय है मुझकों इतनी बातनिका ठीककरि किछू मेरा हित होय सो करना, ऐसा विचारतैं उद्यमवंत भया है। बहुरि इस कार्यकी सिद्धि शास्त्र सुननतैं होती जानि अतिप्रीतिकरि शास्त्र सुनै है किछू पूछना होय सो पूछै है बहुरि गुरुनिकरि कह्या अर्थकौं अपने अंतरंगविषैं वारंवार विचारै है बहुरि अपने विचारतैं सत्य अर्थनिका निश्चयकरि जो कर्तव्य होय ताका उद्यमी होय है ऐसा तौ नवीन श्रोताका स्वरूप जानना। बहुरि जे जैनधर्म्म के गाढ़े श्रद्धानी हैं अर नाना शास्त्र सुननेकरि जिनकी बुद्धि निर्मल भई है बहुरि व्यवहार निश्चयादिकका स्वरूप नीकै जानि जिस अर्थकौं सुनै हैं ताकौं यथावत् निश्चय जानि अवधारै हैं। बहुरि जब प्रश्न उपजै है तब अति विनयवान होय प्रश्न करै हैं अथवा परस्पर अनेक प्रश्नोत्तरकरि वस्तुका निर्णय करै हैं शास्त्राभ्यासविषैं अति आसक्त हैं धर्म्मबुद्धिकरि निंद्यकार्यनिके त्यागी भए हैं ऐसे शास्त्रनिके श्रोता चाहिए। बहुरि श्रोतानिके विशेष लक्षण ऐसे हैं। जाकैं किछू व्याकरण न्यायादिकका वा बड़े जैनशास्त्रनिका ज्ञान होय तौ श्रोतापनौं विशेष सोभै

* खरड़ा प्रतिमें यह पंक्ति नहीं है। दूसरी कई प्रतियोंमें उपलब्ध है। इसी कारण यहाँ दे दी गई है।

है। बहुरि ऐसा भी श्रोता है अर वाकै आत्मज्ञान न भया होय तौ उपदेशका मरम समझि सकै नाहीं तातैं आत्मज्ञानकरि जो स्वरूपका आस्वादी भया है सो जिनधर्म्मके रहस्यका श्रोता है। बहुरि जो अतिशयवंत बुद्धिकरि वा अवधिमनःपर्ययकरि संयुक्त होय तौ वह महान श्रोता जानना। ऐसैं श्रोतानिके विशेष गुण हैं। ऐसे जिनशास्त्रनिके श्रोता चाहिए। बहुरि शास्त्र सुननेतैं हमारा भला होगा ऐसी बुद्धिकरि जो शास्त्र सुनै हैं परन्तु ज्ञानकी मन्दताकरि विशेष समझैं नाहीं तिनिकै पुण्यबन्ध हो है। कार्य सिद्ध होता नाहीं। बहुरि जे कुलप्रवृत्तिकरि वा सहज योग बननेकरि शास्त्र सुनै हैं वा सुनै तौ हैं परन्तु किछू अवधारण करते नाहीं, तिनकै परिणाम अनुसारि कदाचित् पुण्यबन्ध हो है कदाचित पापबंध हो है। बहुरि जे मद मत्सर भावकरि शास्त्र सुनैं हैं वा तर्क करनेहीका जिनिका अभिप्राय है। बहुरि जे महंतताकै अर्थि वा किसी लोभादिकका प्रयोजनके अर्थि शास्त्र सुनैं हैं। बहुरि जो शास्त्रनिविषैं तौ सुनै हैं परंतु सुहावना नाहीं ऐसे श्रोतानिकै केवल पापबन्ध ही हो है। ऐसा श्रोतानिका स्वरूप जानना। ऐसैं ही यथासंभव सीखना सिखावना आदि जिनिकै पाइए तिनका भी स्वरूप जानना। या प्रकार शास्त्रका वक्ता श्रोताका स्वरूप कह्या सो उचित शास्त्रकौं उचित वक्ता होय बांचना उचित श्रोता होय सुनना योग्य है। अब यहु मोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्र रचिए है ताका सार्थकपना दिखाइए है—

[मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथकी सार्थकता]

इस संसार अटवीविषैं समस्त जीव हैं ते कर्मनिमित्त-

निपजे जे नानाप्रकार दुःख तिनकरि पीड़ित हो रहे हैं । बहुरि तहां मिथ्या अन्धकार व्याप्त होय रहा है। ताकरि तहांतैं मुक्त होनेका मार्ग पावते नाहीं तड़फि तड़फि तहां ही दुःखकौं सहैं हैं। बहुरि ऐसे जीवनिका भला होनेकौं कारण तीर्थंकर केवली भगवान् सो ही भया सूर्य ताका भया उदय ताकी दिव्यध्वनिरूपी किरणनिकरि तहांतैं मुक्त होनेका मार्ग प्रकाशित किया जैसैं सूर्यकै ऐसी इच्छा नाहीं जो मै मार्ग प्रकाशूँ; परंतु सहज ही वाकी किरण फैलै हैं ताकरि मार्गका प्रकाशन हो है तैसैं ही केवली वीतराग है तातैं ताकै ऐसी इच्छा नाहीं जो हम मोक्षमार्ग प्रगट करैं परंतु सहज ही अघातिकर्मनिका उदयकरि तिनिका शरीररूप पुद्गल दिव्यध्वनिरूप परिणमै है ताकरि मोक्षमार्गका प्रकाशन हो है। बहुरि गणधरदेवनिकै यहु विचार आया जहां केवली सूर्यका अस्तपना होइ तहाँ जीव मोक्षमार्गकौं कैसैं पावैं अर मोक्षमार्ग पाए विना जीव दुख सहैंगे ऐसी करुणाबुद्धिकरि अंग प्रकीर्णकादिरूप ग्रंथ तेई भए महान् दीपक तिनका उद्योत किया। बहुरि जैसैं दीपकरि दीपक जोवनेतैं दीपकनिकी परंपरा प्रवर्तै तैसैं आचार्यादिकनिकरि तिन ग्रन्थनितैं अन्यग्रंथ वनाए। बहुरि तिनिहूतैं किनिहू अन्य ग्रन्थ बनाए ऐसे ग्रन्थनितैं ग्रन्थ होनेतैं ग्रन्थनिकी परंपरा वर्तै है। मैं भी पूर्वग्रन्थनितैं इस ग्रन्थकौं बनावौं हौं। बहुरि जैसैं सूर्य वा सर्व दीपक हैं ते मार्गकौं एकरूप ही प्रकाशै हैं तैसैं दिव्यध्वनि वा सर्व ग्रंथ हैं ते मोक्षमार्गकौं एकरूप ही प्रकाशैं हैं। सो यह भी ग्रन्थ मोक्षमार्गकौं प्रकाशै है। बहुरि जैसैं प्रकाशै भी नेत्ररहित वा नेत्रविकार सहित पुरुष हैं तिनिकूं मार्ग सूझता नाहीं तौ दीपककै तौ

मार्गप्रकाशकपनेका अभाव भया नाहीं, तैसैं प्रगट किये भी जे मनुष्य ज्ञान रहित हैं वा मिथ्यात्वादि विकारसहित हैं तिनिकूं मोक्षमार्ग सूझता नाहीं तौ ग्रन्थकै तौ मोक्षमार्गप्रकाशकपनेका अभाव भया नाहीं। ऐसैं इस ग्रन्थका मोक्षमार्गप्रकाशक ऐसा नाम सार्थक जानना।

इहां प्रश्न जो मोक्षमार्गके प्रकाशक पूर्व ग्रन्थ तौ थे ही तुम नवीन ग्रन्थ काहे कौं बनावो हौ ?

ताका समाधान —

जैसैं बड़े दीपकनिका तौ उद्योत बहुत तैलादिकका साधनतैं रहै है जिनिकै बहुत तैलादिककी शक्ति न होइ तिनिकौं स्तोक दीपक जोइ दीजिये तौ वै उसका साधन राखि ताके उद्योततैं अपना कार्य करैं तैसैं बड़े ग्रन्थनिका तौ प्रकाश बहुत ज्ञानादिकका साधनतैं रहै है जिनिकै बहुत ज्ञानादिककी शक्ति नाहीं तिनिकूं स्तोक ग्रन्थ बनाय दीजिये तौ वै वाका साधन राखि ताके प्रकाशतैं अपना कार्य करैं। तातैं यह स्तोक सुगम ग्रन्थ बनाइए है। बहुरि इहां जो मैं यहु ग्रन्थ बनाऊं हूँ सो कषायनितैं अपना मान बधावनेकौं वा लोभ साधनेकौं वा यश होनेकौं वा अपनी पद्धति राखनेकौं नाहीं बनावौं हौं। जिनिकै व्याकरण न्यायादिकका वा नयप्रमाणादिकका वा विशेष अर्थनिका ज्ञान नाहीं तातैं तिनिकै बड़े ग्रन्थनिका अभ्यास तौ बनि सकै नाहीं। बहुरि कोई छोटे ग्रन्थनिका अभ्यास बनै तौ भी यथार्थ अर्थ भासै नाहीं। ऐसैं इस समयविषैं मंदज्ञानवान जीव बहुत देखिये हैं तिनिका भला होनेके अर्थि धर्मबुद्धितैं यह भाषामय ग्रन्थ बनावौं हौं, बहुरि जैसैं बड़े दरिद्रीकौं अवलोकनमात्र चिन्तामणिकी प्राप्ति

होय अर वह न अवलोकै बहुरि जैसैं कोढीकूं अमृत पान करावै अर वह न करै तैसैं संसारपीड़ित जीवकौं सुगम मोक्षमार्गके उपदेश का निमित्त बनै अर वह अभ्यास न करै तौ वाके अभाग्यकी महिमा हमतैं तौ होइ सकै नाहीं। वाका होनहारहीकौं विचारै अपने समता आवै। उक्तं च—

साहीणे गुरुजोगे जे ण सुणंतीह धम्मवयणाइं।
ते धिट्ठदुट्ठचित्ता अह सुहडा भव-भयविहूणा ॥१॥

स्वाधीन उपदेशदाता गुरुका योग जुड़ें भी जे जीव धर्म्म वचननिकौं नाहीं सुनैं हैं ते धीठ हैं अर उनका दुष्टचित्त है अथवा जिस संसारभयतैं तीर्थंकरादिक डरे तिस संसार भयकरि रहित हैं ते बड़े सुभट हैं। बहुरि प्रवचनसारविषैं भी मोक्षमार्गका अधिकार किया तहां प्रथम आगमज्ञान ही उपादेय कह्या सो इस जीवका तौ मुख्य कर्त्तव्य आगमज्ञान है। याकों होतैं तत्वनिका श्रद्धान हो है तत्वनिका श्रद्धान भए संयमभाव हो है अर तिस आगमतैं आत्मज्ञानकी भी प्राप्ति हो है तब सहज ही मोक्षकी प्राप्ति हो है। बहुरि धर्म्मके अनेक अंग हैं तिनिविषैं एक ध्यान बिना यातैं ऊँचा और धर्म्मका अंग नाहीं है तातैं जिस तिस प्रकार आगम अभ्यास करना योग्य है। बहुरि इस ग्रन्थका तौ बांचना सुनना विचारना घना सुगम है कोऊ व्याकरणादिकका भी साधन न चाहिए, तातैं अवश्य याका अभ्यासविषैं प्रवर्त्तौ तुम्हारा कल्याण होयगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषै पीठबन्ध—
प्ररूपक प्रथम अधिकार समाप्त भया ॥१॥

दूसरा अधिकार

[संसार अवस्थाका स्वरूप]

दोहा

मिथ्याभाव अभावतैं, जो प्रगटै निजभाव ॥
सो जयवंत रहौ सदा, यह ही मोक्षउपाव ॥१॥

अब इस शास्त्रविषैं मोक्षमार्गका प्रकाश करिए है। तहां बन्धनतैं छूटनेका नाम मोक्ष है। सो इस आत्माकै कर्म्मका बन्धन है बहुरि तिस बन्धनकरि आत्मा दुखी होय रहा है। बहुरि याकै दुःख दूरि करनेहीका निरन्तर उपाय भी रहै है परन्तु सांचा उपाय पाए बिना दुःख दूरि होता नाहीं अर दुःख सह्या भी जाता नाहीं तातैं यहु जीव व्याकुल होय रह्या है ऐसे जीवकौं समस्त दुःखका मूल कारण कर्म बन्धन है ताका अभावरूप मोक्ष है सोही परम हित है। बहुरि याका सांचा उपाय करना सो ही कर्तव्य है तातैं इसहीका याकौं उपदेश दीजिए है। तहां जैसैं वैद्य है सो रोगसहितमनुष्यकौं प्रथम तौ रोगका निदान बतावै। ऐसैं यहु रोग भया है। बहुरि उस रोगके निमित्ततैं याकै जो जो अवस्था होती होय सो बतावै ताकरि याकै निश्चय होय जो मेरै ऐसैं ही रोग है। बहुरि तिस रोगके दूरि करनेका उपाय अनेक प्रकार बतावै अर तिस उपायकी याकौं प्रतीति अनावै। इतना तौ वैद्यका बतावना है बहुरि जो वह रोगी ताका साधन करै तौ रोगतैं मुक्त होइ अपना स्वभावरूप प्रवर्तै सो यहु रोगीका कर्तव्य है। तैसैं ही इहां कर्मबन्धनयुक्त जीवकौं प्रथम तौ कर्मबन्धनका निदान बताइए है ऐसैं यहु कर्मबन्धन भया है। बहुरि उस कर्मबन्धनके निमित्ततैं याकै जो जो अवस्था होती है सो सो बताइए है। ताकरि जीवकैं

निश्चय होय जो मेरे ऐसैं ही कर्मबन्धन है। बहुरि तिस कर्मबन्धनके दूरि होनेका उपाय अनेक प्रकार बताइए हैं अर तिस उपायकी याकौ प्रतीति अनाइये है इतना तौ शास्त्रका उपदेश है। बहुरि यहु जीव ताका साधन करै तौ कर्मबन्धनतैं मुक्त होय अपना स्वभावरूप प्रवर्तै सो यहु जीवका कर्तव्य है सो इहां प्रथम ही कर्मबन्धनका निदान बताहै।

[कर्मबन्धनका निदान]

बहुरि कर्म्मबन्धन होतैं नाना उपाधिक भावनिविषै परिभ्रमणपनौं पाइए है एक रूप रहनौं न हो है तातैं कर्मबन्धनसहित अवस्थाका नाम संसार अवस्था है। सो इस संसार अवस्थाविषै अनन्तानन्त जीव द्रव्य हैं ते अनादिहीतैं कर्मबन्धन सहित हैं ऐसा नाही है जो पहलैं जीव न्यारा था अर कर्म न्यारा था पीछैं इनिका संयोग भया। तौ कैसैं है—जैसैं मेरुगिरि आदि अकृत्रिम स्कन्धनिविषैं अनंते पुद्गल-परमाणु अनादितैं एक बन्धनरूप हैं। पीछैं तिनमैं केई परमाणु भिन्न हो हैं केई नए मिलैं हैं। ऐसैं मिलना बिछुरना हुवा करै है। तैसैं इस संसारविषैं एक जीव द्रव्य अर अनंते कर्मरूप पुद्गलपरमाणु तिनिका अनादितैं एक बन्धनरूप है पीछैं तिनिमैं केई कर्मपरमाणु भिन्न हो हैं केई नये मिलैं हैं। ऐसैं मिलना बिछुरना हुवा करै है।

बहुरि इहां प्रश्न—जो पुद्गलपरमाणु तौ रागादिकके निमित्ततैं कर्मरूप हो हैं अनादि कर्मरूप कैसैं हैं ?

ताका समाधान—निमित्त तौ नवीन कार्य होय तिसविषै ही संभवे है। अनादि अवस्थाविषैं निमित्तका किछू प्रयोजन नाहीं। जैसैं नवीन पुद्गल- परमाणूनिका बंधान तौ स्निग्ध रूक्ष गुणके अंशनही

करि हो है अर मेरुगिरि आदि स्कन्धनिविषैं अनादि पुद्गलपरमाणूनिका बन्धान है तहां निमित्तका कहा प्रयोजन है ? तैसैं नवीन परमाणूनिका कर्मरूप होना तौ रागादिकनि ही करि हो है अर अनादि पुद्गलनिपरमाणूकी कर्मरूप ही अवस्था है। तहाँ निमित्तका कहा प्रयोजन है ? बहुरि जो अनादिविषैं भी निमित्त मानिए तौ अनादिपना रहै नाहीं। तातैं कर्मका बन्ध अनादि मानना। सो तत्वप्रदीपिका प्रवचनसार शास्त्रकी व्याख्याविषैं जो समान्यज्ञेयाधिकार है तहाँ कह्या है। रागादिकका कारण तौ द्रव्यकर्म है, अर द्रव्यकर्मका कारण रागादिक है। तब उहां तर्क करी जो ऐसैं इतरेतराश्रयदोष लागै वह वाकै आश्रय वह वाकै आश्रय कहीं थंभाव नाहीं है. तब उत्तर ऐसा दिया है—

नैवं, अनादिप्रसिद्धद्रव्यकर्मसम्बन्धस्य तत्र हेतुत्वेनोपादानात्[1] ।

याका अर्थ—ऐसैं इतरेतराश्रय दोष नाहीं है। जातैं अनादिका स्वयंसिद्ध द्रव्यकर्मका संबंध है ताका तहां कारणपनाकरि ग्रहण किया है। ऐसैं आगममैं कह्या है। बहुरि युक्तिनैं भी ऐसैं ही संभवै है जो कर्मनिमित्त विना पहले जीवकै रागादिक कहिए तौ रागादिक जीवका निज स्वभाव होय जाय जातैं परनिमित्त विना होइ ताहीका नाम स्वभाव है। तातैं कर्मका संबंध अनादि ही मानना।

बहुरि इहां प्रश्न जो न्यारे न्यारे द्रव्य अर अनादितै तिनिका संबंध ऐसैं कैसैं संभवै ?

१ नहि अनादिप्रसिद्धद्रव्यकर्माभिसंबद्धस्यात्मनः प्राक्तनद्रव्यकर्मणस्तत्र हेतुत्वेनोपादानात् ॥ प्रवचनसार टीका. २। २९

ताका समाधान,—जैसैं ठेठिहीसूं जल दूधका वा सोना किट्टिकका वा तुष कणका वा तैल तिलका संवन्ध देखिए है नवीन इनिका मिलाप भया नाहीं तैसैं अनादिहीसौं जीव कर्म्मका सम्वन्ध जानना नवीन इनिका मिलाप नाहीं भया। बहुरि तुम कही कैसैं संभवै? अनादितैं जैसैं केई जुदे द्रव्य हैं तैसैं केई मिले द्रव्य हैं इस संभवनें-विषै किछू विरोध तौ भासता नाहीं।

बहुरि प्रश्न जो संवंध वा संयोग कहना तौ तब संभवै जब पहले जुदे होइ पीछै मिलैं। इहां अनादि मिले जीव कर्म्मनिका संबंध कैसैं कह्या है।

ताका समाधान—अनादितैं तौ मिले थे परन्तु पीछैं जुदे भए तब जान्या जुदे थे तौ जुदे भए। तातैं पहले भी भिन्न ही थे। ऐसैं अनुमानकरि वा केवलज्ञानकरि प्रत्यक्ष भिन्न भासैं हैं। तिसकरि तिनिका बन्धान होतैं भिन्नपना पाइए है। बहुरि तिस भिन्नताकी अपेक्षा तिनका सम्वन्ध वा संयोग कह्या है जातैं नए मिलौ वा मिले ही होहु भिन्न द्रव्यनिका मिलापविषै ऐसैं ही कहना संभवै है। ऐसैं इनि जीवनिका अर कर्म्मका अनादिसम्वन्ध है।

तहां जीवद्रव्य तौ देखने जाननेरूप चैतन्यगुणका धारक है। अर इन्द्रियगम्य न होने योग्य अमूर्त्तीक है। संकोचविस्तारशक्तिकौं लिए असंख्यातप्रदेशी एकद्रव्य है। बहुरि कर्म्म है सो चेतनागुण-रहित जड़ है अर मूर्त्तीक है अनंत पुद्गल परमाणूनिका पिंड है। तातैं एक द्रव्य नाहीं है। ऐसैं ए जीव अर कर्म्म हैं सो इनिका अनादिसम्बन्ध है तौ भी जीवका कोई प्रदेश कर्म्मरूप न हो है अर

कर्म्मका कोई परमाणु जीवरूप न हो है। अपने अपने लक्षणकौं धरें जुदे जुदे ही रहैं हैं। जैसैं सोना रूपाका एक स्कन्ध होइ तथापि पीतादि गुणनिकौं धरें सोना जुदा रहै है स्वेततादि गुणनिकौं धरें रूपा जुदा रहै है, तैसैं जुदे जानने।

इहां प्रश्न—जो मूर्त्तीक मूर्त्तीकका तौ बन्धान होना बनै अमूर्त्तीक मूर्त्तीकका बन्धान कैसैं बनै?

ताका समाधान—जैसैं अव्यक्त इन्द्रियगम्य नाहीं ऐसे सूक्ष्मपुद्गल, अर व्यक्त इन्द्रियगम्य हैं ऐसे स्थूलपुद्गल, तिनका बन्धान होना मानिए है, तैसैं इन्द्रियगम्य होने योग्य नाहीं ऐसा अमूर्त्तीक आत्मा अर इन्द्रियगम्य होने योग्य मूर्तीककर्म्म इनिका भी बन्धान होना मानना। बहुरि इस बन्धानविषैं कोऊ किसीकौं करै तौ है नाहीं। यावत् बन्धान रहै तावत् साथि रहै बिछुरै नाहीं, अर कारणकार्यपना तिनिकै बन्या रहै इतना ही यहां बंधान जानना। सो मूर्तीक अमूर्तीकके ऐसैं बंधान होने विषै किछू विरोध है नाहीं। या प्रकार जैसैं एक जीवकै अनादिकर्म्मसंबंध कह्या तैसैं ही जुदा जुदा अनंत जीवनिकै जानना।

बहुरि सो कर्म्म ज्ञानावरणादि भेदनिकरि आठ प्रकार है, तहाँ च्यारि घातियाकर्म्मनिके निमित्ततैं तो जीवके स्वभावका घात हो है, तहाँ ज्ञानावरणकरि तौ जीवके स्वभाव दर्शन ज्ञान तिनिकी व्यक्तता नाहीं हो है तिनि कर्म्मनिका क्षयोपशमके अनुसारि किंचित् ज्ञान दर्शनकी व्यक्तता रहै है। बहुरि मोहनीयकरि जीवकै स्वभाव नाहीं ऐसे मिथ्याश्रद्धान वा क्रोध मान माया लोभादिक कषाय तिनिकी व्यक्तता हो है। बहुरि अंतरायकरि जीवका स्वभाव दान लेनेकी

समर्थतारूप वीर्य ताकी व्यक्तता न हो है ताका क्षयोपशमके अनुसारि किंचित् शक्ति हो है ऐसे घातिकर्म्मनिके निमित्ततैं जीवके स्वभावका घात अनादिहीतैं भया है ऐसैं नाहीं जो पहलै तौ स्वभावरूप शुद्ध आत्मा था पीछैं कर्म्मनिमित्ततैं स्वभाव घात होनेकरि अशुद्ध भया।

इहां तर्क—जो घात नाम तौ अभावका है सो जाका पहलै सद्भाव होय ताका अभाव कहना बनै इहां स्वभावका तौ सद्भाव है ही नाहीं घात किसका किया ?

ताका समाधान—जीवविषै अनादिहीतैं ऐसी शक्ति पाइए है जो कर्म्मका निमित्त न होइ तौ केवलज्ञानादि अपने स्वभावरूप प्रवर्तै परंतु अनादिहीतैं कर्म्मका संबंध पाइए है। तातैं तिस शक्तिका व्यक्तपना न भया सो शक्तिअपेक्षा स्वभाव है ताका व्यक्त न होने देनेकी अपेक्षा घात किया कहिए है।

बहुरि च्यारि अघातिया कर्म्म हैं तिनिके निमित्ततैं इस आत्माकै बाह्यसामग्रीका संबंध बनै है तहां वेदनीयकरि तौ शरीरविषै वा शरीरतैं बाह्य नानाप्रकार सुख दुःखको कारण परद्रव्यनिका संयोग जुरै है अर आयुकरि अपनी स्थितिपर्यंत पाया शरीरका संबंध नाहीं छूटि सकै है। अर नामकरि गति जाति शरीरादिक निपजै है। अर गोत्रकरि ऊंचा-नीचा कुलकी प्राप्ति हो है ऐसैं अघातिकर्म्मनिकरि बाह्य सामग्री भेली होय है ताकरि मोहके उदयका सहकार होतैं जीव सुखी दुःखी हो है। अर शरीरादिकनिके संबंधतैं जीवके अमूर्त्तत्वादि स्वभाव अपने स्वार्थकौं नाहीं करै है। जैसैं कोऊ शरीरकौं पकरै तौ आत्मा भी पकर्या जाय। बहुरि यावत् कर्म्मका उदय रहै तावत् बाह्य सामग्री तैसैं ही बनी रहै

अन्यथा न होय सकै ऐसा इनि अघातिकर्म्मनिका निमित्त जानना।

इहां कोऊ प्रश्न करै कि कर्म्म तौ जड़ हैं किछू बलवान नाहीं तिनिकरि जीवके स्वभावका घात होना वा बाह्यसामग्रीका मिलना कैसैं संभवै ?

ताका समाधान जो कर्म आप कर्त्ता होय उद्यमकरि जीवके स्वभावकौं घातै बाह्य सामग्रीकौं मिलावै तब कर्म्मकै चेतनपनौं भी चाहिए अर बलवानपनौं भी चाहिए सो तौ है नाहीं, सहज ही निमित्तनैमित्तिक संबंध है। जब उन कर्मनिका उदयकाल होय तिस कालविषैं आपही आत्मा स्वभावरूप न परिणमै विभावरूप परिणमै वा अन्य द्रव्य हैं ते तैसैं ही संबंधरूप होय परिणमैं। जैसैं काहू पुरुषकै सिर परि मोहनधूलि परी है तिसकरि सो पुरुष बावला भया तहां उस मोहनधूलिकै ज्ञान भी न था अर बलवानपना भी न था अर बावलापना तिस मोहनधूलिही करि भया देखिए है। मोहनधूलिका तौ निमित्त है अर पुरुष आप ही बावला हुआ परिणमै है। ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक बनि रह्या है। बहुरि जैसैं सूर्यका उदयका कालविषैं चकवा चकवीनिका संयोग होय तहां रात्रिविषै किसीनैं द्वेषबुद्धितैं जोरावरीकरि जुदे किए नाहीं दिवसविषै काहूनैं करुणाबुद्धितैं ल्यायकरि मिलाए नाहीं सूर्यउदयका निमित्त पाय आप ही मिलैं हैं अर सूर्यास्तका निमित्तपाय आपही बिछुरैं हैं। ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक बनि रह्या है। तैसैं ही कर्म्मका भी निमित्त नैमित्तिकभाव जानना। ऐसैं कर्म्मका उदयकरि अवस्था होय है बहुरि तहां नवीन बंध कैसैं हो है सो कहिए है—

[द्रव्य बंध विचार]

जैसैं सूर्यका प्रकाश है सो मेघपटलतैं जितना व्यक्त नाहीं तितनेका

तौ तिसकालविषैं अभाव है बहुरि तिस मेघपटलका मंदपनातैं जेता प्रकाश प्रगटै है सो तिस सूर्यकेस्वभावका अंश है मेघपटलजनित नाहीं है। तैसैं जीवका ज्ञान दर्शन वीर्य स्वभाव है सो ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतरायके निमित्ततैं जितने व्यक्त नाहीं तितनैका तौ तिसकालविषैं अभाव है। बहुरि तिन कर्म्मनिका क्षयोपशमतैं जेता ज्ञान, दर्शन वीर्य प्रगट है सो तिस जीवकेस्वभावका अंश ही है कर्म्मजनित उपाधिक भाव नाहीं है। सो ऐसा स्वभावके अंशका अनादितैं लगाय कबहूं अभाव न हो है। याहीकरि जीवका जीवत्वपना निश्चय कीजिए है। जो यह देखनहार जाननहार शक्तिकौं धरैं वस्तु है सो ही आत्मा है। बहुरि इस स्वभावकरि नवीन कर्म्मका वंध नाहीं है; जातैं निज स्वभाव ही बन्धका कारन होय तौ बन्धका छूटना कैसैं होय। बहुरि तिन कर्म्मनिके उदयतैं जेता ज्ञान दर्शन वीर्य अभावरूप है ताकरिभी बन्ध नाहीं है जातैं आपहीका अभाव होतै अन्यकौं कारण कैसैं होय। तातैं ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतरायके निमित्ततैं निपजे भाव नवीनकर्म्मबन्धके कारन नाहीं।

बहुरि मोहनीय कर्म्मकरि जीवकै अयथार्थश्रद्धानरूप तौ मिथ्यात्वभावहो है वा क्रोध मान माया लोभादिक कषाय होय हैं ते यद्यपि जीवके अस्तित्वमय हैं जीवतैं जुदे नाहीं; जीवही इनिका कर्ता है जीवके परिणमनरूप ही ये कार्य हैं तथापि इनिका होना मोहकर्म्मके निमित्ततैं ही है कर्म्मनिमित्त दूरि भए इनिका अभाव ही है तातैं ए जीवके निजस्वभाव नाहीं उपाधिकभाव हैं। बहुरि इनि भावनिकरि नवीनबन्ध हो है तातैं मोहके उदयतैं निपजे भाव बन्धके कारन हैं। बहुरि अघातिकर्म्मनिके

उदयतैं बाह्य सामग्री मिलै है तिनिविषै शरीरादिक तौ जीवके प्रदेशनिसौं एक क्षेत्रावगाही होय एकबन्धानरूप ही हो है। अर धन कुटुम्बादिक आत्मातैं भिन्नरूप हैं सो ए सर्व बन्धके कारन नाहीं हैं जातैं परद्रव्य बंधका कारन न होय। इनिविषै आत्माकै ममत्वादिरूप मिथ्यात्वादिभाव हो है सोई बंधका कारन जानना।

[योग और उससे होनेवाले प्रकृति बन्ध प्रदेश बन्ध]

बहुरि इतना जानना जो नामकर्मके उदयतैं शरीर वा वचन वा मन निपजै है तिनिकी चेष्टाके निमित्ततैं आत्माके प्रदेशनिका चंचलपना हो है। ताकरि आत्माकै पुद्गलवर्गणासौं एक बन्धान होनेकी शक्ति हो है ताका नाम योग है। ताके निमित्ततैं समय समय प्रति कर्मरूप होने योग्य अनंत परमाणूनिका ग्रहण हो है। तहां अल्पयोग होय तौ थोरे परमाणूनिका ग्रहण होय बहुत योग होय तो घने परमाणूनिका ग्रहण होय। बहुरि एक समय विषै जे पुद्गलपरमाणु ग्रहे तिनिविषैं ज्ञानावरणादि मूलप्रकृति वा तिनिकी उत्तर प्रकृतीनिका जैसे सिद्धांतविषैं कह्या है तैसें बटवारा हो है तिस बटवारा माफिक परमाणु तिनि प्रकृतिनिरूप आपही परिणमै हैं। विशेष इतना कि योग दोय प्रकार है शुभयोग अशुभयोग। तहां धर्मके अंगनिविषै मनवचनकायकी प्रवृत्ति भए तौ शुभयोग हो है अर अधर्म अंगनिविषैं तिनिकी प्रवृत्ति भए अशुभयोग हो है। सो योग शुभ होहु वा अशुभयोग होहु सम्यक्त्व पाएविना घातियाकर्मनिकी तौ सर्वप्रकृतीनिका निरन्तर बंध हुवा ही करै है। कोई समय किसी भी प्रकृतिका बन्ध हुवा बिना रहता नाही। इतना विशेष है जो मोहनीयके हास्य शोक युगलविषैं रति

अरति युगलविषैं तीनौं वेदनविष एकैं काल एक एक ही प्रकृतीनिका बन्ध हो है। बहुरि अघातियानिकी प्रकृतीनिविषैं शुभोपयोग होतैं सातावेदनीय आदि पुण्यप्रकृतीनिका बन्ध हो है। मिश्रयोग होतैं केई पुण्यप्रकृतीनिका केई पापप्रकृतीनिका बन्ध हो है। ऐसा योगके निमित्त तैं कर्मका आगमन हो है। तातैं योग है सो आस्रव है। बहुरि याकरि ग्रहे कर्मपरमाणूनिका नाम प्रदेश है तिनिका बंध भया, अर तिनिविषै मूल उत्तरप्रकृतीनिका विभाग भया तातैं योगनिकरि प्रदेशबन्ध वा प्रकृतिबन्धका होना जानना।

[कषायसे स्थिति और अनुभागबन्ध]

बहुरि मोहके उदयतैं मिथ्यात्व क्रोधादिक भाव हो है, तिनि सबनिका नाम सामान्यपनै कषाय है। ताकरि तिनिकर्मप्रकृतिनिकी स्थितिबन्धै है सो जितनी स्थिति बँधे तिसविषैं अबाधाकाल छोड़ि तहां पीछैं यावत् बँधी स्थितिपूर्ण होय तावत समय समय तिस प्रकृतिका उदय आया ही करै। सो देव मनुष्य तिर्यचायु विना अन्य सर्व घातिया आघातिया प्रकृतीनिका अल्पकषाय होतैं थोरा स्थिति-बन्ध होय बहुत कषाय होतैं घना स्थितिबन्ध होय। इनि तीन आयू-निका अल्पकषायतैं बहुत अर बहुत कषायतैं अल्प स्थितिबन्ध जानना बहुरि तिस कषायहीकरि तिनि कर्मप्रकृतीनिविषैं अनुभागशक्तिका विशेष हो है सो जैसा अनुभाग बंधै तैसा ही उदयकालविषै तिनि प्रकृतिनिका घना वा थोरा फल निपजै है। तहां घातिकर्मनिकी सब प्रकृतिनिविषै वा अघातिकर्मनिकी पाप प्रकृतिनिविषैं तौ अल्पकषाय होतैं थोरा अनुभाग बंधै है। बहुत कषाय होतैं घना अनुभाग बंधै

है। बहुरि पुण्यप्रकृतिनिविषैं अल्पकषाय होतैं घना अनुभाग बंधै है। बहुत कषाय होतैं थोरा अनुभाग बंधै हैं। ऐसैं कषायनिकरि कर्मप्रकृतिनिकै स्थिति अनुभागका विशेष भया तातैं कषायनिकरि स्थितिबंध अनुभागबंधका होना जानना। इहाँ जैसैं बहुत भी मदिरा है अर ताविषै थोरे कालपर्यंत थोरी उन्मत्तता उपजावनेकी शक्ति है तौ वह मदिरा हीनपनाकौं प्राप्त है। बहुरि थोरी भी मदिरा है ताविषै बहुत कालपर्यंत घनी उन्मत्तता उपजावनेकी शक्ति है तौ वह मदिरा अधिकपनाकौं प्राप्त है। तैसैं घने भी कर्मप्रकृतिनिके परमाणु हैं अर तिनिविषै थोरे कालपर्यंत थोरा फल देने की शक्ति है तौ ते कर्मप्रकृति हीनताकौं प्राप्त है। बहुरि थोरे भी कर्मप्रकृतिनिके परमाणु हैं अर तिनिविषैं बहुत कालपर्यंत बहुत फल देनेकी शक्ति है तौ ये कर्मप्रकृति अधिकपनाकौं प्राप्त हैं तातैं योगनिकरि भया प्रकृतिबन्ध प्रदेशबंध बलवान नाहीं। कषायनिकरि किया स्थितिबंध अनुभागबंध ही बलवान है तातैं मुख्यपनैं कषाय ही बंधका कारन जानना। जिनिकौं बंध न करना होय ते कषाय मतिकरौ।

[जड़ पुद्गल परमाणुओंका यथायोग्य प्रकृतिरूप परिणमन]

बहुरि इहाँ कोऊ प्रश्न करै कि पुद्गलपरमाणु तौ जड़ हैं, उनकै किछू ज्ञान नाहीं कैसैं यथायोग्य प्रकृतिरूप होय परिणमैं हैं?

ताका समाधान—जैसैं भूख होतैं मुखद्वारकरि ग्रह्या हुवा भोजनरूप पुद्गलपिंड सो मांस शुक्र शोणित आदि धातुरूप परिणमैं है। बहुरि तिस भोजनके परमाणुनिविषै यथायोग्य कोई धातुरूप थोरे कोई धातुरूप घने परमाणु हो हैं। बहुरि तिनिविषै केई परमाणुनिका

विषै अहंकार ममकार करै है। सो इस बुद्धिकरि तिनिके उपजावनेकी वा बधावनेकी चिंताकरि निरंतर व्याकुल रहै है। नानाप्रकार कष्ट सहकरि भी तिनिका भला चाहै है। बहुरि जो विषयनिकी इच्छा हो है कषाय हो है, बाह्य सामग्रीविषै इष्ट अनिष्टपनौं मानै है उपाय अन्यथा करै है सांचा उपायकौं न श्रद्धहै है अन्यथा कल्पना करै है सो इनि सबनिका मूलकारन एक मिथ्यादर्शन है। याका नाश भए सबनिका नाश होइ जाय तातैं सब दुखनिका मूल यह मिथ्यादर्शन है बहुरि इस मिथ्यादर्शनके नाशकाका उपाय भी नाहीं करै है। अन्यथा श्रद्धानकौं सत्यश्रद्धान मानै, उपाय काहेकौं करै। बहुरि संज्ञी पंचेन्द्रिय कदाचित् तत्त्वनिश्चय करनेका उपाय विचारै। तहां अभाग्यतैं कुदेव कुगुरु कुशास्त्रका निमित्त बनै तौ अतत्त्वश्रद्धान पुष्ट होइ जाय। यह तौ जानै इनतैं मेरा भला होगा, वे ऐसा उपाय करैं जाकरि यह अचेत होय जाय। वस्तुस्वरूपका विचार करनेका उद्यमी भया सो विपरीत विचारविषै दृढ होइ जाय। तब विषयकषायकी वासना बधनैतैं अधिक दुःखी होय। बहुरि कदाचित् सुदेव सुगुरु सुशास्त्रका भी निमित्त बनि जाय तौ तहां तिनिका निश्चय उपदेशकौं तौ श्रद्धहै नाहीं, व्यवहारश्रद्धानकरि अतत्त्वश्रद्धानी ही रहै। तहां मंदकषाय वा विषय इच्छा घटै तौ थोरा दुखी होय पीछैं बहुरि जैसाका तैसा होइ जाय। तातैं यह संसारी उपाय करै सो भी झूठा ही होय। बहुरि इस संसारीकै एक यह उपाय है जो आपकै जैसा श्रद्धान है तैसैं पदार्थनिकौं परिणमाया चाहै सो वे परिणमैं तौ याका सांचा श्रद्धान होइ जाय। परंतु अनादिनिधन वस्तु जुदे जुदे अपनीमर्यादा लिये परिणमैं हैं। कोऊ कोऊकै आधीन

नाहीं। कोऊ किसीका परिणमाया परिणमै नाहीं। तिनिकौं परिणमाया चाहै सो उपाय नाहीं। यह तौ मिथ्यादर्शन ही है। तौ सांचा उपाय कहा है? जैसैं पदार्थनिका स्वरूप है तैसैं श्रद्धान होइ तौ सर्व दुःख दूरि होइ जाय। जैसैं कोऊ मोहित होय मुरदाकौं जीवता मानै वा जिवाया चाहै सो आप ही दुखी हो है। बहुरि वाकौं मुरदा मानना अर यह जिवाया जीवैगा नाहीं ऐसा मानना सो ही तिस दुःख दूरि होनेका उपाय है। तैसैं मिथ्यादृष्टी होइ पदार्थनिकौं अन्यथा मानैं अन्यथा परिणमाया चाहै तौ आप ही दुखी हो है। बहुरि उनकौं यथार्थ मानना, अर ए परिणमाए अन्यथा परिणमैंगे नाहीं ऐसा मानना सो ही तिस दुःखके दूरि होनेका उपाय है। भ्रमजनित दुःखका उपाय भ्रम दूरि करना ही है। सो भ्रम दूरि होनेतैं सम्यक्श्रद्धान होय सो ही सत्य उपाय जानना।

[चरित्रमोहसे दुःख और उसकी निवृत्ति]

बहुरि चरित्रमोहके उदयतैं क्रोधादि कषायरूप वा हास्यादि नोकषायरूप जीवके भाव हो हैं। तब यह जीव क्लेशवान् होय दुखी होता संता विह्वल होय नाना कुकार्यनिविषै प्रवर्तै है। सोई दिखाइए है—जब याकै क्रोधकषाय उपजै, तब अन्यका बुरा करनेकी इच्छा होइ। बहुरि ताकेअर्थि अनेक उपाय विचारै। मरमच्छेद गालीप्रदानादिरूप वचन बोलै। अपने अंगनि करि वा शस्त्रपाषाणादिकरि घात करै अनेक कष्ट करि सहनेकरि वा धनादि खर्चनेकरि वा मरणादिकरि अपना भी बुरा अन्यका बुरा करने का उद्यम करै। अथवा औरनिकरि बुरा होता जानै तौ औरनिकरि बुरा करावै। वाका स्वयमेव

होय तौ अनुमोदना करै। वाका बुरा भए अपना किछू भी प्रयोजन-सिद्धि न होय तौ भी वाका बुरा करै। बहुरि क्रोध होतैं कोई पूज्य वा इष्ट भी बीचि आवै तौ उनकौं भी बुरा कहै। मारने लगि जाय; किछू विचार रहता नाहीं। बहुरि अन्यका बुरा न होइ तौ अपने अंतरंग-विषै आप ही बहुत सन्तापवान होइ वा अपने ही अंगनिका घात करै वा विषादिकरि मरि जाय ऐसी अवस्था क्रोध होतैं हो है। बहुरि जब याकै मानकषाय उपजै तब औरनिकौं नीचा वा आपकौं ऊंचा दिखावनेकी इच्छा होइ। बहुरि ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै अन्यकी निंदा करै आपकी प्रशंसा करै। वा अनेक प्रकारकरि औरनिकी महिमा मिटावै आपकी महिमा करै। महाकष्टकरि धनादिकका संग्रह किया ताकौं विवाहादि कार्यनिविषै खरचै वा देना करि भी खरचै। मूए पीछैं हमारा जस रहैगा ऐसा विचारि अपना मरन करिकैं भी अपनी महिमा बधावै। जो अपना सन्मानादि न करै ताकौं भयादिक दिखाय दुःख उपजाय अपना सन्मान करावै। बहुरि मान होतैं कोई पूज्य बड़े होहिं तिनिका भी सन्मान न करै किछू विचार रहता नाहीं बहुरि अन्य नीचा आप ऊंचा न दीसै तौ अपने अंतरंगविषै आप बहुत सन्तापवान होय वा अपने अंगनिका घात करै वा विषादकरि मरि जाय ऐसी अवस्था मान होतैं हैं। बहुरि जब याकै मायाकषाय उपजै, तब छलकरि कार्य सिद्ध करनेकी इच्छा होय। बहुरि ताके अर्थि अनेक उपाय विचारै, नानाप्रकार कपटके वचन कहै, कपटरूप शरीरकी अवस्था करै, बाह्य वस्तुनिकौं अन्यथा दिखावै, बहुरि जिन-विषै अपना मरन जानैं ऐसेभी छलकरै बहुरि कपट प्रगट भए अपना

बहुत बुरा होइ मरनादिक होइ तिनिकौं भी न गिनै। बहुरि माया होतैं कोई पूज्य वा इष्टका भी संबंध बनैं तौ उनस्यौं भी छल करै, किछू विचार रहता नाहीं। बहुरि छलकरि कार्यसिद्धि न होइ तौ आप बहुत सन्तापवान होय, अपने अंगनिका घात करै, वा विषादि-करि मरि जाय। ऐसी अवस्था माया होतैं हो है। बहुरि जब याकै लोभ कषाय उपजै तब इष्टपदार्थका लाभकी इच्छा होय ताकै अर्थि अनेक उपाय विचारै। ताके साधनरूप वचन बोलै। शरीरकी अनेक चेष्टा करै। बहुत कष्ट सहै। सेवा करै, विदेशगमन करै, जाकरि मरन होता जानै, सो भी कार्य करै। घना दुःख जिनविषै उपजै ऐसा कार्य प्रारम्भ करै। बहुरि लोभ होतैं पूज्य वा इष्टका भी कार्य होय तहां भी अपना प्रयोजन साधै किछू विचार रहता नाहीं। बहुरि तिस इष्ट-वस्तुकी प्राप्ति न होय वा इष्टका वियोग होइ तौ आप बहुत सन्ताप-वान होय अपने अंगनिका घात करै वा विषादकरि मरि जाय। ऐसी अवस्था लोभ होतैं हो है। ऐसैं कषायनिकरि पीड़ित हूवा इन अव-स्थानिविषैं प्रवर्तै है।

बहुरि इनि कषायनिकी साथि नोकषाय हो हैं। जहाँ जब हास्य कषाय होइ तब आप विकसित होइ प्रफुल्लित होइ सो यह ऐसा जानना जैसा वायवालेका हंसना, नाना रोगकरि आप पीड़ित है, कोई कल्पनाकरि हंसने लागि जाय है। ऐसैं ही यह जीव अनेक पीड़ासहित हैं कोई झूठी कल्पनाकरि आपका सुहावताकार्य मानि हर्ष मानैं है। परमार्थतैं दुखी हो है। सुखी तौ कषायरोग मिटैं होगा। बहुरि जब रति उपजै है, तब इष्ट वस्तुविषै अतिआसक्त

हो है। जैसैं बिल्ली मूंसाकौं पकरि आसक्त हो है। कोऊ मारै तौ भी न छोरै। सो इहां इष्टपना है। बहुरि वियोग होनेका अभिप्रायलिये आसक्तता हो है तातैं दुःखही है। बहुरि जब अरति उपजै तब अनिष्ट वस्तुका संयोग पाय महा व्याकुल हो है। अनिष्टका संयोग भया सो आपकूं सुहावता नाहीं। सो यह पीड़ा सही न जाय तातैं ताका वियोग करनेको तड़फड़ै है सो यह दुःख ही है। बहुरि जब शोक उपजै है तब इष्टका वियोग वा अनिष्टका संयोग होतैं अतिव्याकुल होइ सन्ताप उपजावै, रोवै पुकारै असावधान होइ जाय अपना अंगघात करै मरि जाय। किछू सिद्धि नाहीं तौ भी आपही महादुःखी हो है। बहुरि जब भय उपजै है तब काहूको इष्टवियोग अनिष्टसंयोगका कारन जानि डरै अतिविह्वल होइ भागै वा छिपै वा सिथिल होइ जाय कष्ट होनेके ठिकानै प्राप्त होय वा मरि जाइ सो यह दुःखरूप ही है। बहुरि जुगुप्सा उपजै है तब अनिष्ट वस्तुकौं घृणा करै। ताका तौ संयोग भया आप घृणाकरि भाग्या चाहै खेदखिन्न होइ कै वाकूं दूरि किया चाहै, महादुःखकौं पावै है। बहुरि तीनूं वेदनिकरि जब काम उपजै है तब पुरुषवेदकरि स्त्रीसहित रमनेको अर स्त्रीवेदकरि पुरुषसहित रमनेकी अर नपुन्सकवेदकरि दोऊनिस्यौं रमनेकी इच्छा हो है। तिसकरि अति व्याकुल हो है। आताप उपजै है। निर्लज्ज हो है धन खर्चै है। अपजसकौं न गिनै है। परम्परा दुःख होइ वा दंडादिक होय वाकौं न गिनै है। काम पीड़ातैं बाउला हो है। मरि जाय है। सो रसग्रंथनिविषै कामकी दश दशा कही हैं। तहां बाउला होना मरन होना लिख्या है। वैद्यकशास्त्रनिमैं ज्वरके भेदनिविषै कामज्वर

मरनका कारन लिख्या है। प्रत्यक्ष कामकरि मरनपर्यंत होते देखिए है। कामांधकै किछू विचार रहता नाहीं। पिता, पुत्री वा मनुष्य तिर्यंचणी इत्यादितैं रमने लगि जाय है। ऐसी कामकी पीड़ा महत्-दुःखरूप है। या प्रकार कषाय वा नोकषायनिकरि अवस्था हो है। इहां ऐसा विचार आवै है जो इनि अवस्थानिविषै न प्रवर्तै तौ क्रोधादिक पीड़ैं अर अवस्थानिविषै प्रवर्तै तौ मरनपर्यंत कष्ट होइ। वहां मरनपर्यंत कष्ट तौ कबूल करिए है, अर क्रोधादिककी पीड़ा सहनी कबूल न करिए है। तातैं यह निश्चय भया जो मरनादिकतैंभी कषायनिकी पीड़ा अधिक है। बहुरि जब याकै कषायका उदय होइ, तब कषाय किए विना रह्या जाता नाहीं। बाह्य कषायनिके कारन आय मिलैं तौ उनके आश्रय कषाय करै। न मिलैं तौ आप कारन बनावै। जैसैं व्यापारादि कषायनिका कारन न होइतौ जूआ खेलना वा अन्य क्रोधादिकके कारन अनेक ख्याल खेलना वा दुष्टकथा कहनी सुननी इत्यादिक कारन बनावै है। बहुरि काम क्रोधादि पीड़ैं शरीरविषै तिनिरूप कार्य करनेकी शक्ति न होय तौ औषधि बनावै अन्य अनेक उपाय करै। बहुरि कोई कारन बनै नाहीं तौ अपने उपयोगविषै कषायनिकौं कारणभूत पदार्थनिका चितवनिकरि आप ही कषायरूप परिणमैं। ऐसैं यह जीव कषायभावनिकरि पीड़ित हुवा महान् दुःखी हो है। बहुरि जिस प्रयोजनकौं लिये कषायभाव भया है तिस प्रयोजनकी सिद्धि होय तौ यह मेरा दुःख दूरि होय अर मोकूं सुख होय। ऐसैं विचारि तिस प्रयोजनकी सिद्धि होनेकै अर्थि अनेक उपाय करना सो तिस दुःखदूर होनेका उपाय मानै है। सो इहां कषायभावनितैं

जो दुःख हो है, सो तो सांचा ही है। प्रत्यक्ष आप ही दुखी हो है। बहुरि यह उपाय करै है सो झूंठा है। काहेतैं सो कहिए है—क्रोधविषै तौ अन्यका बुरा करना, मानविषै औरनिकूं नीचा करि आप ऊंचा होना, मायाविषै छलकरि कार्यसिद्धि करना, लोभविषै इष्टका पावना, हास्यविषै विकसित होनेका कारन बन्या रहना, रतिविषै इष्टसंयोगका बन्या रहना, अरतिविषै अनिष्टका दूरि होना, शोकविषै शोकका कारन मिटना, भयविषै भयका मिटना, जुगुप्साविषै जुगुप्साका कारन दूरि होना, पुरुषवेदविषै स्त्रीस्यों रमना, स्त्रीवेदविषै पुरुषस्यों रमना, नपुन्सकवेदविषै दोऊनिस्यों रमना, ऐसैं प्रयोजन पाइए है। सो इनिकी सिद्धि होय तौ कषाय उपशमनेतैं दुःख दूरि होय जाय सुखी होय परन्तु इनिकी सिद्धि इनके किए उपायनिके आधीन नाहीं, भवितव्यके आधीन है। जातैं अनेक उपाय करते देखिये है अर सिद्धि न हो है। बहुरि उपाय बनना भी अपने आधीन नाहीं, भवितव्यके आधीन है। जातैं अनेक उपाय करना विचारै और एक भी उपाय न होता देखिए है। बहुरि काकतालीय न्यायकरि भवितव्य ऐसा ही होय जैसा आपका प्रयोजन होय तैसा ही उपाय होय अर तातैं कार्यकी सिद्धि भी होय जाय, तौ तिस कार्यसम्बन्धी कोई कषायका उपशम होय, परन्तु तहां थंभाव होता नाहीं। यावत् कार्यसिद्ध न भया तावत् तो तिस कार्यसम्बन्धी कषाय था। जिस समय कार्यसिद्ध भया तिस ही समय अन्य कार्यसम्बन्धी कषाय होय जाय। एक समयमात्रभी निराकुल रहै नाहीं। जैसैं कोऊ क्रोधकरि काहूका बुरा विचारै था वाका बुरा होय चुक्या, तब अन्यस्यौं क्रोध-

करि वाका बुरा चाहनैं लाग्या अथवा थोरी शक्ति थी तब छोटेनिका बुरा चाहै था घनी शक्ति भई तब बड़ेनिका बुरा चाहने लाग्या। ऐसैं ही मानमायालोभादिककरि जो कार्य विचारै था सो सिद्ध होइ चुक्या, तब अन्यविषैं मानादिक उपजाय तिसकी सिद्धि किया चाहै। थोरा शक्ति थी तब छोटे कार्यकी सिद्धि किया चाहै था, घनी शक्ति भई तब बड़े कार्य की सिद्धि करनेका अभिलाष भया। कषायनिविषैं कार्य-का प्रमाण होइ तौ तिसकार्यकी सिद्धि भए सुखी होइ जाय, सो प्रमाण है नाहीं। इच्छा वधती ही जाय। सोई आत्मानुशासनविषैं कह्या है—

"आशागर्तः प्रतिप्राणि यस्मिन्विश्वमणूपमम्।
कस्मिन् किं [1]कियदायाति वृथा यो विषयैषिता ॥१॥"

याका अर्थ—आशारूपी खाडा प्राणी प्राणी प्रति पाइए है। अनं-तानंत जीव हैं तिनि सबनिकै ही आशा पाइए है। बहुरि वह आशा-रूपी खाड़ा कैसा है, जिस एक ही खाड़ेविषै समस्तलोक अणुसमान है। अर लोक एक ही, सो अब इहां कौन कौनकै कहा कितना वट-वारै[2] आवै। तुम्हारै यह विषयनिकी इच्छा है सो वृथा ही है। इच्छा पूर्ण तौ होती ही नाहीं। तातैं कोई कार्यसिद्धि भए भी दुःख दूरि न होय अथवा कोई कषाय मिटै तिस ही समय अन्य कषाय होइ जाय। जैसैं काहूकौं मारनेवाले बहुत होंय जब कोई वाकूं न मारै तब अन्य मारने लगि जाय। तैसैं जीवकौं दुःख द्यावनेवाले अनेक कषाय हैं।

---

१ कस्य किं कियदायाति वृथा वो विषयैषिता - आत्मानुशासन ३६
२ बांटमें—हिस्सेमें।

जब क्रोध न होय तब मानादिक होइ जाय जब मान न होइ, तब क्रोधादिक होइ जाय। ऐसैं कषायका सद्भाव रह्या ही करै। कोई एक समय भी कषायरहित होय नाहीं। तातैं कोई कषायका कोई कार्य सिद्ध भए भी दुःख दूर कैसैं होइ? बहुरि याकै अभिप्राय तौ सर्वकषायनिका सर्व प्रयोजन सिद्ध करनेका है सो होइ तौ सुखी होइ। सो तो कदाचित् होइ सकै नाहीं। तातैं अभिप्रायविषै शास्वता दुःखी ही रहै है। तातैं कषायनिका प्रयोजनकौं साधि दुःख दूरिकरि सुखी भया चाहै है, सो यह उपाय झूंठा हीं है। तौ सांचा उपाय कहा है? सम्यग्दर्शनज्ञानतैं यथावत् श्रद्धान वा जानना होइ, तब इष्ट अनिष्टबुद्धि मिटै। बहुरि तिनहीके बलकरि चारित्रमोहका अनुभाग हीन होइ। ऐसैं होते कषायनिका अभाव होइ, तब तिनिकी पीड़ा दूरि होय तब प्रयोजन भी किछू रहै नाहीं। निराकुल होनैतैं महासुखी होइ। तातैं सम्यग्दर्शनादिक ही इस दुःख मेटनेका सांचा उपाय हैं। बहुरि अंतरायका उदयतैं जीवके मोहकरि दान लाभ भोग उपभोग वीर्य शक्तिका उत्साह उपजै, परंतु होइ सकै नाहीं। तब परम आकुलता होइ सो यह दुःखरूप है ही। याका उपाय यह करै है, जो विघ्नके बाह्य कारन सूझै तिनिके दूरि करनेका उद्यम करै सो यह झूंठा उपाय हैं उपाय किये भी अंतरायका उदय होतैं विघ्न होता देखिए है। अंतरायका क्षयोपशम भए,उपाय विना भी कार्यविषैंविघ्न न हो है। तातैं विघ्नका मूलकारन अंतराय है। बहुरि जैसै कूकराकै पुरुषकरि वाही हुई लाठीकी लागी। वह कूकरा लाठीस्यौं वृथा ही द्वेष करै है। तैसैं जीवकै अंतरायकरि निमित्तभूत किया बाह्य चेतन अचेतन द्रव्यकरि विघ्न भया

यह जीव तिनि बाह्य द्रव्यनिस्यौं वृथा खेद करै हैं। अन्य द्रव्य याकै विघन किया चाहै अर याकै न होइ। बहुरि अन्य द्रव्य विघन किया न चाहै अर याकै होइ। तातैं जानिए है अन्यद्रव्यका किछू वश नाहीं जिनका वश नाहीं तिनिस्यौं काहेकौं लरिये। तातैं यह उपाय झूंठा है। तौ सांचा उपाय कहा है? मिथ्यादर्शनादिकतैं इच्छाकरि उत्साह उपजै था सो सम्यग्दर्शनादिककरि दूरि होय। अर सम्यग्दर्शनादिकहीकरि अंतरायका अनुभाग घटै तब इच्छा तौ मिटि जाय शक्ति वधि जाय तब वह दुःख दूरि होइ निराकुल सुख उपजै। तातैं सम्यग्दर्शनादिक ही सांचा उपाय है। बहुरि वेदनीयके उदयतैं दुख सुखके कारनका संयोग हो हैं तहां केई तौ शरीरविषै ही अवस्था हो हैं। केई शरीरकी अवस्थाकौं निमित्तभूत बाह्य संयोग हो है। केई बाह्य ही वस्तूनिका संयोग हो है। तहां असाताके उदयकरि शरीरविषै तौ क्षुधा, तृषा, उछ्वास, पीड़ा, रोग इत्यादि हो है। बहुरि शरीरकी अनिष्ट अवस्थाकौं निमित्तभूत बाह्य अतिशीत उष्ण पवन बंधनादिकका संयोग हो है। बहुरि बाह्य शत्रु कुपुत्रादिक वा कुवर्णादिक सहित स्कंधनिका संयोग हो है। सो मोहकरि इनिविषै अनिष्टबुद्धि हो है। जब इनिका उदय होय तब मोहका उदय ऐसा ही आवै जाकरि परिणामनिमैं महाव्याकुल होइ इनिकौं दूरि किया चाहै। यावत् ए दूरि न होंय तावत् दुःखी हो है सो इनिकौं होतैं तौ सर्वही दुख मानै हैं। बहुरि साताके उदयकरि शरीरविषै आरोग्यवानपनौ बलवानपनौ इत्यादि हो है। बहुरि शरीरकी इष्ट अवस्थाकौं निमित्तभूत बाह्य खानपानादिक वा सुहावना पवनादिकका संयोग हो है। बहुरि बाह्य मित्र सुपुत्र स्त्री किंकर हस्ती घोटक

धन धान्य मन्दिर वस्त्रादिकका संयोग हो है सो मोहकरि इनिविषै इष्टबुद्धि हो है। जब इनिका उदय होय तब मोहका उदय ऐसा ही आवै जाकरि परिणामनिमैं चैन मानै। इनिकी रक्षा चाहै। यावत् रहै तावत् सुख मानै। सो यहु सुख मानना ऐसौ है जैसैं कोऊ घनें रोगनिकरि बहुत पीड़ित होय रह्या था ताकै कोई उपचारकरि कोई एक रोगकी कितेक काल किछू उपशांतता भई तब वह पूर्व अवस्थाकी अपेक्षा आपकौं सुखी कहै, परमार्थतैं सुख है नाहीं। तैसैं यहु जीव घनें दुखनिकरि बहुत पीड़ित होइ रह्या था ताकै कोई प्रकार करि कोऊ इक दुःखकी कितेककाल किछू उपशंतता भई। तब यहु पूर्व अवस्थाकी अपेक्षा आपकौं सुखी कहै, परमार्थतैं सुख है नाहीं। बहुरि याकौं असाताका उदय होतैं जो होय ताकरि तौ दुःख भासै है। तातैं ताके दूरि करने का उपाय करै है। अर साताका उदय होतैं जो होइ ताकरि सुख भासै है तातैं ताकौं होनेका उपाय करै है। सो यहु उपाय झूठा है। प्रथम तौ याका उपाय याकै आधीन नाहीं। वेदनीयकर्मका उदयकै आधीन है। असाताके मेटनैके अर्थि साताकी प्राप्तिके अर्थि तो सर्वहीकै यत्न रहै है, परन्तु काहूकै थोरा यत्न किए भी वा न किए भी सिद्धि होइ जाय, काहूके बहुत यत्न किए भी सिद्धि न होइ, तातैं जानिए है याका उपाय याकै आधीन नाहीं। बहुरि कदाचित् उपाय भी करै अर तैसा ही उदय आवै तौ थोरै काल किंचित् काहू प्रकारकी असाताका कारन मिटै अर साताका कारन होइ तहां भी मोहके सद्भावतैं तिनिकौं भोगनेकी इच्छाकरि आकुलित होय। एक भोग्य-वस्तुकौं भोगनेकी इच्छा होइ, वह यावत् न मिलै तावत् तो वाकी

इच्छाकरि आकुल होइ। अर वह मिल्या अर उसही समय अन्यकौं भोगनेंकी इच्छा होइ जाय, तब ताकरि आकुल होइ। जैसै काहूकौं स्वाद लेनेकी इच्छा भई थी वाका आस्वाद जिस समय भया तिस ही समय अन्य वस्तुका स्वाद लेनेकी वा स्पर्शनादि करनेकी इच्छा उपजै है। अथवा एक ही वस्तुकौं पहिले अन्य प्रकार भोगनेकी इच्छा होइ वह यावत् न मिलै तावत् वाकौ आकुलता रहै। अर वह भोग भया अर उसही समय अन्य प्रकार भोगनेकी इच्छा होइ। जैसैं स्त्रीको देख्या चाहै था जिस समय अवलोकन भया उसही समय रमनेकी इच्छा हो है। बहुरि ऐसैं भोग भोगतैं भी तिनिक अन्य उपायकरनेको आकुलता हो है तौ तिनिकौं छोरि अन्य उपाय करनेकौं लागै है। तहां अनेक प्रकार आकुलता हो है। देखो एक धनका उपाय करनेमैं व्यापारादिक करतैं बहुरि वाकी रक्षा करनेमैं सावधानी करतैं केती आकुलता हो है। बहुरि क्षुधा तृषा शीत उष्ण मलश्लेष्मादि असाताका उदय आया हो करै, ताका निराकरणकरि सुख मानै सो काहेका सुख है। यह तौ रोगका प्रतीकार है। यावत् क्षुधादिक रहैं तावत् तिनिकौं मिटावनेकी इच्छाकरि आकुलता होइ, वह मिटै तब कोई अन्य इच्छा उपजै ताकी आकुलता होइ। बहुरि क्षुधादिक होइ तब उनकी आकुलता होइ आवै। ऐसैं याकै उपाय करतैं कदाचित् असाता मिटि साता होइ तहां भी आकुलता रह्या ही करै, तातैं दुख ही रहै है। बहुरि ऐसैं भी रहना तौ होता नाहीं, आपकौं उपाय करतैं करतैं ही कोई असाताका उदय ऐसा आवै ताका किछू उपाय बनि सकै नाहीं। अर ताकी पीड़ा बहुत होय सही जाय नाहीं। तब ताकी आकुलताकरि विह्वल

होइ जाइ तहां महादुखी होइ। सो इस संसारमें साताका उदय तौ कोई पुण्यका उदयकरि काहूकै कदाचित् ही पाईए है घने जीवनिकै बहुत काल असाताहीका उदय रहै है। तातैं उपाय करै सो झूठा है। अथवा बाह्य सामग्रीतैं सुख दुख मानिए है सो ही भ्रम है। सुख दुख तौ साता असाताका उदय होतैं मोहका निमित्ततैं हो है। सो प्रत्यक्ष देखिये है। लक्ष धनका धनीकै सहस्रधनका व्यय भया तब वह दुखी हो है। अर शत धनका धनीकै सहस्रधन भया तब वह सुख मानै है। बाह्य सामग्री तौ वाकै यातैं निन्याणवै गुणी है। अथवा लक्षधनका धनीकै अधिक धनकी इच्छा है तौ वह दुखी है अर शत धनका धनीकै सन्तोष है तौ यहु सुखी है। बहुरि समान वस्तु मिलैं कोऊ सुख मानै है कोऊ दुख मानै है। जैसैं काहूकौं मोटा वस्त्रका मिलना दुखकारी होइ काहूकौं सुखकारी होइ। बहुरि शरीरविषै क्षुधा आदि पीड़ा वा बाह्य इष्टकावियोग अनिष्टका संयोग भए काहूकै बहुत दुख होइ काहूकै थोरा होइ काहूकै न होइ। तातैं सामग्रीकै आधीन सुख दुख नाहीं। साता असाताका उदय होतैं मोहपरिणमनके निमित्ततैं ही सुखदुख मानिए है।

इहां प्रश्न—जो बाह्य सामग्रीकी तौ तुम कहौ हो, तैसै ही है, परन्तु शरीरविषै तौ पीड़ा भए दुखी होइ ही होइ अर पीड़ा न भए सुखी होइ सो यहतौ शरीरअवस्था ही कै आधीन सुख दुख भासै है।

ताका समाधान - आत्माका तौ ज्ञान इन्द्रियाधीन है। अर इन्द्रिय शरीरका अंग है। सो यामैं जो अवस्था बीतै ताका जाननैरूप ज्ञान परिणमैं ताकी साथि ही मोहभाव होइ। ताकरि शरीर अवस्थाकरि

सुख दुख विशेष जानिए है। बहुरि पुत्रधनादिकस्यौं अधिक मोह होइ तौ अपना शरीरका कष्ट सहै ताका थोरा दुख मानै उनकौं दुख भए वा संयोग मिटैं बहुत दुख मानै। अर मुनि हैं सो शरीरकौं पीड़ा होतैं भी किछू दुख मानते नाहीं। तातैं सुख दुख मानना तौ मोहहीकै आधीन है। मोहकै अर वेदनीयकै निमित्तनैमित्तिक संबंध है, तातैं साता असाताका उदयतैं सुख दुखका होना भासै है। बहुरि मुख्यपनै केतीक सामग्री साताके उदयतैं हो है केतीक असाताका उदयतैं हो है तातैं सामग्रीनिकरि सुख दुख भासै है। परन्तु निर्द्धार किए मोह-हीतैं सुख दुखका मानना हो है औरनिकरि सुख दुख होनेका नियम नाहीं। केवलीकै साता असाताका उदय भी है अर सुख दुखकौं कारण सामग्रीका भी संयोग है। परंतु मोहका अभावतैं किंचिन्मात्र भीं सुख दुख होता नाहीं। तातैं सुख दुख मोहजनित ही मानना। तातैं तूं सामग्रीके दूरकरनेका वा होनेका उपायकरि दुःख मेट्या चाहै सुखी भया चाहै। सो यहु उपाय झूठा है, तो सांचा उपाय कहा है ?

सम्यग्दर्शनादिकतैं भ्रम दूरि होइ तब सामग्रीतैं सुख दुख भासै नाहीं अपने परिणामहीतैं भासै। बहुरि यथार्थ विचारका अभ्यास-करि अपने परिणाम जैसैं सामग्रीके निमित्ततैं सुखी दुखी न होइ तैसैं साधन करै। बहुरि सम्यग्दर्शनादि भावनाहीतैं मोह मंद होइ जाइ तब ऐसी दशा होइ जाइ जो अनेक कारण मिलौ आपकौं सुख दुख होइ नाहीं। तब एक शांतदशारूप निराकुल होइ सांचा सुखकौं अनु-भवै तब सर्व दुख मिटै सुखी होइ। यहु सांचा उपाय है। बहुरि आयुकर्मके निमित्ततैं पर्यायका धारना सो जीवितव्य है

पर्याय छूटना सो मरन है। बहुरि यहु जीव मिथ्यादर्शनादिकतैं पर्यायहीकौं आपो अनुभवै है। तातैं जीवितव्य रहै अपना अस्तित्व मानै है। मरन भये अपना अभाव होना मानै है। इसही कारणतैं सदाकाल याकै मरनका भय रहै है। तिस भयकरि सदा आकुलता रहै है। जिनकौं मरनका कारन जानै तिनिस्यौं बहुत डरै। कदाचित् उनका संयोग बनै तौ महाविह्वल होइ जाय। ऐसैं महा दुखी रहैं है। ताका उपाय यहु करै है जो मरनके कारननिकौं दूर राखै है वा उनस्यौं आप भागै है। बहुरि औषधादिकका साधन करै है गढ़ कोट आदिक बनावै है इत्यादि उपाय करै है। सो यहु उपाय झूठा है, जातैं आयु पूर्ण भए तौ अनेक उपाय करै है अनेक सहाई होइ तौ भी मरन होइ ही होइ। एक समयमात्र भी न जीवै। अर यावत् आयु पूरी न होइ तावत् अनेक कारन मिलौ सर्वथा मरन न होइ, तातैं उपाय किए मरन मिटता नाहीं। बहुरि आयुकी स्थिति पूर्ण होइ ही होइ। तातैं मरन भी होइ ही होइ याका उपाय करना झूठा ही है तौ सांचा उपाय कहा है?

सम्यग्दर्शनादिकतैं पर्यायविषैं अहंबुद्धि छूटै अनादिनिधन आप चैतन्यद्रव्य है तिसविषै अहंबुद्धि आवै। पर्यायकौं स्वांग समान जानै तब मरनका भय रहै नाहीं। बहुरि सम्यग्दर्शनादिकहीतैं सिद्धपद पावै तब मरनका अभाव ही होइ। तातैं सम्यग्दर्शनादिक ही सांचा उपाय है।

बहुरि नामकर्मके उदयतैं गति जाति शरीरादिक निपजै हैं तिनिविषैं पुण्यके उदयतैं जे हो हैं ते तौ सुखके कारन हो हैं। पापके उदयतैं हो हैं ते दुखके कारण हो हैं। सो इहां सुख मानना भ्रम है।

बहुरि यहु दुखके कारन मिटावनेका सुखके कारन होनेका उपाय करै सो झूठा है। सांचा उपाय सम्यग्दर्शनादिक हैं। सो जैसैं वेदनीयका कथन करतें निरूपण किया तैसैं इहांभी जानना। वेदनीय अर नामकै सुख दुखका कारनपनाकी समानतातैं निरूपणकी समानता जाननी। बहुरि गोत्र कर्मके उदयतैं नीच ऊंच कुलविषै उपजै है। तहां ऊंचा कुलविषै उपजै आपकौं ऊंचा मानैं है अर नीचा कुलविषै उपजै आपकौं नीचा मानैं है सो कुल पलटनेका उपाय तौ याकौं भासै नाहीं। तातैं जैसा कुल पाया तिस ही कुलविषैं आपो मानै है। सो कुल अपेक्षा आपकौं ऊंचा नीचा मानना भ्रम है। ऊंचा कुलका कोई निंद्य कार्य करै तौ वह नीचा होइ जाय। अर नीच कुलविषैं कोई श्लाघ्य कार्य करै तौ वह ऊंचा होइ जाय। लोभादिकतैं नीच कुल-वालेकी उच्चकुलवाला सेवा करने लगि जाय। बहुरि कुल कितेक काल रहै? पर्याय छूटें कुलकी पलटनि होइ जाय। तातैं ऊंचा नीचा कुल-करि आपकूं ऊंचा नीचा मानैं। ऊंचाकुलवालेकौं नीचा होनेके भयका अर नीचाकुलवालेकौं पाएहुए नीचपनेका दुख ही है। तो याका सांचा उपाय कहा है? सो कहिए है सम्यग्दर्शनादिकतैं ऊंचा नीचा कुलविषै हर्ष विषाद न मानैं। बहुरि तिनिहीतैं जाकी बहुरि पलटनि न होइ ऐसा सर्वतैं ऊंचा सिद्धपद पावै, तब सब दुख मिटै, सुखी होइ (तातैं सम्यग्दर्शनादिक दुख मेटने अरु सुख करनेका सांचा उपाय हैं[1])

या प्रकार कर्मका उदयकी अपेक्षा मिथ्यादर्शनादिकके निमित्ततैं संसारविषै दुख ही दुख पाइए है ताका वर्नन किया।

---

१ यह पंक्ति खरड़ा प्रति में नहीं है।

अब इस ही दुखकौं पर्याय अपेक्षाकरि वर्णन करिए है।

[एकेन्द्रिय जीवोंके दुःख]

इस संसारविषैं बहुत काल तौ एकेन्द्रिय पर्यायहीविषैं बीतै है। तातैं अनादिहीतैं तौ नित्यनिगोदविषै रहना, बहुरि तहांतैं निकसना ऐसैं जैसैं भारभूनतैं चणाका उछटि जाना सो तहांतैं निकसि अन्य पर्याय धरै तौ त्रसविषैं तो बहुत थोरे ही काल रहै। एकेंद्रीहीविषैं बहुत काल व्यतीत करै है। तहां इतरनिगोदविषैं बहुत रहना होइ। अर कितेक काल पृथिवी अप तेज वायु प्रत्येक वनस्पतीविषैं रहना होय। नित्यनिगोदतैं निकसै पीछैं त्रसविषैं तौ रहनेका उत्कृष्ट काल साधिक दोहजार सागर ही है। अर एकेन्द्रियविषैं उत्कृष्ट रहनेका काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन मात्र है अरु पुद्गल परिवर्तनका काल ऐसा है जाका अनंतवाँ भागविषैं भी अनंते सागर हो हैं। तातैं इस संसारीकै मुख्यपनैं एकेन्द्रिय पर्यायविषै ही काल व्यतीत हो है। तहां एकेन्द्रियकै ज्ञानदर्शनकी शक्ति तौ किंचिन्मात्र ही रहै है। एक स्पर्शन इन्द्रियके निमित्ततैं भया मतिज्ञान अर ताके निमित्ततैं भया श्रुतज्ञान, अर स्पर्शनइन्द्रियजनित अचक्षुदर्शन जिनकर शीत उष्णादिककौं किंचित् जानै देखै है। ज्ञानावरण दर्शनावरणके तीव्र उदयकरि यातैं अधिक ज्ञानदर्शन न पाइए है। अर विषयनिकी इच्छा पाइए है तातैं महा दुखी हैं। बहुरि दर्शनमोहके उदयतैं मिथ्यादर्शन हो है ताकरि पर्यायहीकौं आपो श्रदहै है। अन्यविचार करनेकी शक्ति ही नाहीं। बहुरि चारित्रमोहके उदयतैं तीव्र क्रोधादि कषायरूप परिणमैं हैं जातैं उनकै केवली भगवानने कृष्ण नील कापोत ए तीन अशुभ लेश्या ही

कही हैं। सो ए तीव्र कषाय होतैं ही हो हैं सो कषाय तौ बहुत अर शक्ति सर्वप्रकारकरि महा हीन तातैं बहुत दुखी होय रहे हैं। किछू उपाय कर सकते नाहीं।

इहां कोऊ कहै—ज्ञान तौ किंचिन्मात्र ही रह्या है वे कहा कषाय करैं?

ताका समाधान—जो ऐसा तौ नियम है नाहीं जेता ज्ञान होइ तेता ही कषाय होय। ज्ञान तौ क्षयोपशम जेता होय तेता हो है। सो जैसैं कोऊ आंधा बहरा पुरुषकै ज्ञान थोरा होतैं भी बहुत कषाय होते देखिए है तैसैं एकेन्द्रियकै ज्ञान थोरा होतैं भी बहुत कषायका होना मानना है। बहुरि बाह्य कषाय प्रगट तब हो है जब कषायकै अनुसारि किछू उपाय करै। सो वै शक्तिहीन हैं तातैं उपाय करि सकते नाहीं। तातैं उनकी कषाय प्रगट नाहीं हो है। जैसैं कोऊ पुरुष शक्तिहीन है ताकै कोई कारणतैं तीव्र कषाय होइ, परन्तु किछू करि सकते नाहीं। तातैं वाका कषाय बाह्य प्रगट नाहीं हो है यूं ही अतिदुखी होइ। तैसैं एकेन्द्रिय जीव शक्तिहीन हैं। तिनिकैं कोई कारणतैं कषाय हो है परन्तु किछू कर सकै नाहीं, तातैं उनकी कषाय बाह्य प्रगट नाहीं हो है वै ही आप दुखी हो हैं। बहुरि ऐसा जानना, तहां कषाय बहुत होय अर शक्तिहीन होय तहां घना दुख हो है बहुरि जैसैं कषाय घटता जाय शक्ति बधती जाय तैसैं दुःख घटता हो है। सो एकेन्द्रियनिकै कषाय बहुत अर शक्तिहीन तातैं एकेन्द्रिय जीव महा दुखी हैं। उनके दुख वै ही भोगवै हैं। अर केवली जानै हैं। जैसैं सन्निपातीका ज्ञान घटि जाय अर बाह्य शक्तिके हीनपनैतैं अपना दुख प्रगट भी न

करि सकै; परन्तु महादुखो है, तैसैं एकेन्द्रियका ज्ञान थोरा है अर बाह्य शक्तिहीनपना तातैं अपना दुखकौं प्रगट भी न करि सकै है परन्तु महादुखी है। बहुरि अन्तरायके तीव्र उदयकरि चाह्या होता नाहीं। तातैं भी दुखी ही हो है। बहुरि अघातिकर्मनिविषैं विशेषपनैं पाप-प्रकृतिका उदय है तहां असातावेदनीयका उदय होवैं तिसके निमित्ततैं महादुखी हो है। पवनतैं टूटै है। बहुरि वनस्पती है सो शीत उष्ण-करि सूकि जाय है, जल न मिलै सूकि जाय है, अगनिकरि बलै है ताकौं कोऊ छेदै है भेदै है मसलै है खाय है तोरै है इत्यादि अवस्था हो है। ऐसैं ही यथासम्भव पृथ्वी आदिविषैं अवस्था हो है। तिनि अवस्थाकौं होतैं वै महादुखी हो हैं जैसैं मनुष्यकै शरीरविषैं ऐसी अवस्था भए दुख हो है तैसैं ही उनकै हो है। जातैं इनिका जानपना स्पर्शन इन्द्रियतैं होइ सो वाकै स्पर्शनइन्द्रिय है ही, ताकरि उनकौं जानि मोहके वशतैं महाव्याकुल हो है। परन्तु भागनैकी वा लरनैकी वा पुकारनैकी शक्ति नाहीं तातैं अज्ञानीलोक उनके दुखकौं जानते नाहीं। बहुरि कदाचित् किंचित् साताका उदय होइ सो वह बलवान् होता नाहीं। बहुरि आयुकर्मतैं इनि एकेंद्रिय जीवनिविषै जे अपर्याप्त हैं तिनिकै तौ पर्यायकी स्थिति उश्वासके अठारहवैं भाग मात्र ही है। अर पर्याप्तनिकी अन्तर्मुहूर्त्त आदि कितेकवर्ष पर्यंत है। सो आयु थोरा तातैं जन्ममरण हूवा ही करै, ताकरि दुखी हैं। बहुरि नामकर्म-विषै तिर्यंचगति आदि पापप्रकृतिनिका ही उदय विशेषपनै पाइए है। कोई हीनपुण्यप्रकृतिका उदय होइ ताका बलवानपना नाहीं तातैं तिनिकरि भी मोहके वशतैं दुखी हो है। बहुरि गोत्रकर्मविषैं

नीच गोत्रहीका उदय है तातैं महंतता होय नाहीं। तातैं भी दुखी ही है। ऐसैं एकेन्द्रिय जीव महादुःखी है अर इस संसारविषै जैसैं पाषाण आधारविषैं तौ बहुत काल रहै है निराधार आकाशविषैं तौ कदाचित् किंचिन्मात्रकाल रहै, तैसैं जीव एकेन्द्रिय पर्यायविषैं बहुत-काल रहै है अन्य पर्यायविषैं तौ कदाचित किंचिन्मात्र काल रहै है। तातैं यहु जीव संसारविषै महादुखी है

[दो इन्द्रियादिक जीवोंके दुःख]

बहुरि द्वीन्द्रिय तेन्द्रिय चतुरिन्द्रिय असंज्ञीपंचेंद्रिय पर्यायनिकौं जीव धरै तहां भी एकेन्द्रियवत् दुख जानना। विशेष इतना—इहां क्रमतैं एक एक इन्द्रियजनित ज्ञानदर्शनकी वा किछू शक्तिकी अधिकता भई है बहुरि बोलने चालनेकी शक्ति भई है। तहां भी जे अपर्याप्त हैं वा पर्याप्त भी हीनशक्तिके धारक हैं, छोटे जीव हैं, तिनिकी शक्ति प्रगट होती नाहीं। बहुरि केई पर्याप्त बहुत शक्तिके धारक बड़े जीव हैं, तिनिकी शक्ति प्रगट हो है। तातैं ते जीव विषयनिका उपाय करै हैं दुख दूरि होनेका उपाय करै हैं क्रोधादिककरि काटना, मारना, लरना, छलकरना, अन्नादिका संग्रह करना, भागना इत्यादि कार्य करै हैं। दुखकरि तड़फड़ाट करना, पुकारना, इत्यादि क्रिया करै हैं। तातैं तिनिका दुख किछू प्रगट भी हो है। सो लट कीड़ी आदि जीवनिकै शीत उष्ण छेदन भेदनादिकतैं वा भूख तृषा आदितैं परम दुख देखिए है। जो प्रत्यक्ष दीसै ताका विचार करि लैना। इहां विशेष कहा लिखैं। ऐसैं द्वीन्द्रियादिक जीव भी महादुखी ही जानने।

[नारकगतिके दुःख]

बहुरि संज्ञीपंचेंद्रियनिविषैं नारकी जीव हैं ते तौ सर्व प्रकार घने दुखी हैं। ज्ञानादिकी शकित किछू है परन्तु विषयनिकी इच्छा बहुत। अर इष्टविषयनिकी सामग्री किंचित् भी न मिलै तातैं तिस शक्तिके होनेकरि भी घने दुखी हैं। बहुरि क्रोधादि कषायका अति तीव्रपना पाइए है। जातैं उनकै कृष्णादि अशुभ-लेश्या ही हैं। तहां क्रोधमानकरि परस्पर दुख देनेका निरंतर कार्य पाइए है। जो परस्पर मित्रता करैं तौ यह दुख मिटि जाय। अर अन्यकौं दुख दीए किछू उनका कार्य भी होता नाहीं, परंतु क्रोधमान-का अति तीव्रपना पाईए है ताकरि परस्पर दुख देनैंहीकी बुद्धि रहै। विक्रियाकरि अन्यकौं दुखदायक शरीरके अंग बनावै वा शस्त्रादि बनावैं तिनिकरि अन्यकौं आप पीड़ैं। अर आपको कोई और पीड़ै। कदाचित् कषाय उपशांत होय नाहीं। बहुरि माया लोभकी भी अति तीव्रता है परंतु कोई इष्टसामग्री तहां दीखै नाहीं। तातैं तिनि कषाय-निका कार्य प्रकट करि सकते नाहीं तिनिकरि अंतरंगविषै महादुखी हैं। बहुरि कदाचित् किंचित् काई प्रयोजन पाय तिनिका भी कार्य हो है। बहुरि हास्य रति कषाय हैं। परंतु बाह्यनिमित्त नाहीं तातैं प्रगट होते नाहीं, कदाचित् किंचित् किसी कारणतैं हो हैं। बहुरि अरति शोक भय जुगुप्सा इनिके बाह्य कारण बनि रहे हैं, तातैं ए कषाय प्रगट तीव्र होइ है। बहुरि वेदनिविषैं नपुंसक वेद है। सो इच्छा तौ बहुत और स्त्री पुरुषस्यौं रमनेका निमित्त नाहीं, तातैं महापीड़ित हैं। ऐसैं कषायनिकरि अति दुखी हैं। बहुरि वेदनीयविषै असाताहीका

उदय है ताकरि तहां अनेक वेदनाका निमित्त है। शरीरविषै काढ़ कास स्वासादि अनेक रोग युगपत पाइए है अर तहांको माटोहीका भोजन मिलै है सो माटी भी ऐसा है जो इहां आवै तौ ताका दुर्गंधतैं केई कोशनिके मनुष्य मरि जाएँ। अर शीत उष्ण तहां ऐसा है जो लक्षयोजनका लोहका गोला होइ सो भी तिनिकरि भस्म होइ जाय। कहीं शीत है कहीं उष्ण है। बहुरि पृथिवी तहां शस्त्रनितैं भी महातीक्ष्ण कंटकनिकरि सहित है। बहुरि तिस पृथिवीविषैं वन हैं सो शस्त्र की धारा समान पत्रादि सहित हैं। नदी है सो ताका स्पर्श भए शरीर खंड खंड होइ जाय ऐसे जल सहित है। पवन ऐसा प्रचंड है जाकरि शरीर दग्ध हुआ जाय है। बहुरि नारको नारकीकौं अनेक प्रकार पीड़ैं घाणीमें पेलैं खंड खंड करैं हांडीमें रांधैं कोरडा मारैं तप्त लोहादिकका स्पर्श करावै। इत्यदि वेदना उपजावैं। तीसरी पृथवी पर्यंत असुरकुमार देव जाय ते आप पीड़ा दें वा परस्पर लडावैं। ऐसी वेदना होतैं भी शरीर छूटै नाहीं, पारावत खंड खंड होइ जाइ तौ भी मिलि जाय, ऐसी महा पीड़ा है। बहुरि साताका निमित्त तौ किछू है नाहीं। कोई अंश कदाचित् कोईकै अपनी मानितैं कोई कारण अपेक्षा साताका उदय होहै सो बलवान् नाहीं। बहुरि आयु तहां बहुत जघन्य दशहजार वर्ष, उत्कृष्ट तेतीस सागर। इतने काल ऐसे दुख तहां सहनै होंय। बहुरि नामकर्मकी सर्वपापप्रकृतिनिहीका उदय है एक भी पुन्यप्रकृतिका उदय नाहीं तिनिकरि महादुखी हैं। बहुरि गोत्रविषै नीचगोत्रहीका उदय है ताकरि महंतता न होइ तातैं दुखी ही हैं। ऐसैं नरकगतिविषैं महादुःख जाननें।

[तिर्यंचगतिके दुःख]

बहुरि तिर्यंचगतिविषै बहुत लब्धि अपर्याप्त जीव हैं तिनिका तौ उश्वासकै अठारवैं भाग मात्र आयु है। बहुरि केई पर्याप्त भी छोटे जीव हैं। सो इनिकी शक्ति प्रगट भासै नाहीं। तिनिकै दुख एकेंद्रियवत् जानना। ज्ञानादिकका विशेष है सो विशेष जानना। बहुरि बड़े पर्याप्त जीव केई सम्मूर्छन हैं। केई गर्भज हैं। तिनिविषै ज्ञानादिक प्रगट हो है सो विषयनिकी इच्छाकरि आकुलित हैं। बहुतकौं तौ इष्टविषयकी प्राप्ति नाहीं है। काहूकौं कदाचित् किंचित् हो है। बहुरि मिथ्यात्व भावकरि अतत्त्वश्रद्धानी होय रहे हैं। बहुरि कषाय मुख्यपनै तीव्र ही पाइए है। क्रोध मानकरि परस्पर लरै हैं भक्षण करै हैं दुख देइ हैं, माया लोभकरि छल करै हैं, वस्तुकौं चाहै हैं, हास्यादिककरि तिनिकषायनिका कार्यनिविषैं न प्रवर्तै हैं। बहुरि काहूकै कदाचित् मंदकषाय हो है परन्तु थोरे जीवनिकैं हो है तातैं मुख्यता नाहीं। बहुरि वेदनीयविषै मुख्य असाताका उदय है ताकरि रोग पीड़ा क्षुधा तृषा छेदन भेदन बहुत भारवहन शीत उष्ण अंगभंगादि अवस्था हो है ताकरि दुखी होते प्रत्यक्ष देखिए है। तातैं बहुत न कह्या है। काहूकै कदाचित् किंचित् साताका भी उदय हो है परन्तु थोरे जीवनिकैं हो है। मुख्यता नाहीं। बहुरि आयु अन्तर्मुहूर्त आदि कोटिवर्ष पर्यंत है। तहां घने जीव स्तोक आयुके धारक हो हैं। तातैं जन्ममरनका दुःख पावै हैं। बहुरि भोगभूमियांकी बड़ी आयु है। अर उनकै साताका भी उदय है सो वे जीव थोरे हैं। बहुरि नामकर्मकी मुख्यपनै तौ तिर्यंचगति आदि पापकृतिनिका हो

उदय है। काहूकै कदाचित् केई पुण्यप्रकृतिनिका भी उदय हो है परन्तु थोरे जीवनिकै थोरा हो है मुख्यता नाहीं। बहुरि गोत्रविषै नीचगोत्र-हीका उदय है तातैं हीन होइ रहे हैं। ऐसैं तिर्यंचगतिविषैं महादुःख जानने।

[मनुष्यगतिके दुख]

बहुरि मनुष्यगतिविषै असंख्याते जीव तौ लब्धिअपर्याप्त हैं ते सम्मूर्छन ही है तिनिकी तौ आयु उश्वासके अठारवै भागमात्र है बहुरि केई जीव गर्भमैं आय थोरे ही कालमैं मरन पावै हैं। तिनिकी तौ शक्ति प्रगट भासै नाहीं है। तिनिकै दुख एकेंद्रियवत् जानना। विशेष है सो विशेष जानना। बहुरि गर्भजनिके कितेक काल गर्भमैं रहना पीछैं बाह्य निकसना हो है। सो तिनिका दुखका वर्णन कर्मअपेक्षा पूर्वैं वर्णन किया है तैसैं जानना। वह सर्व वर्णन गर्भज मनुष्यनिकै संभवै है अथवा तिर्यंचनिका वर्णन किया है तैसैं जानना। विशेष यहु है इहां कोई शक्तिविशेष पाइए है वा राजादिकनिकै विशेष साताका उदय हो है। वा क्षत्रियादिकनिकै उच्चगोत्रका भी उदय हो है। बहुरि धन कुटुंबादिकका निमित्त विशेष पाइए है इत्यादि विशेष जानना। अथवा गर्भ आदि अवस्थाके दुख प्रत्यक्ष भासै हैं। जैसैं विष्टाविषैं लट उपजै तैसैं गर्भमैं शुक्र शोणितका बिन्दुकौं अपना शरीररूपकरि जीव उपजै। पीछैं तहां क्रमतैं ज्ञानादिकको वा शरीरकी वृद्धि होइ। गर्भका दुख बहुत है। संकोचरूप अधोमुख क्षुधातृषादिसहित तहां काल पूरण करे। बहुरि बाह्य निकसै तब बाल्यअवस्थामैं महा दुख हो है। कोऊ कहै बाल्यावस्थामें दुख थोरा है, सो नाहीं है। शक्ति

थोरी है तातैं व्यक्त न होय सकै है। पीछैं व्यापारादि वा विषय-इच्छा आदि दुखनिकी प्रगटता हो है। इष्ट अनिष्ट जनित आकुलता रहवो ही करै। पीछैं वृद्ध होइ तब शक्तिहीन होइ जाइ। तब परमदुखी हो है। सो ए दुख प्रत्यक्ष होते देखिए है। हम बहुत कहा कहैं। प्रत्यक्ष जाकौं न भासै सो कह्या कैसैं सुनैं। काहूकै कदाचित किंचित साताका उदय हो है सो आकुलतामय है। अर तीर्थंकरादि पद मोक्षमार्ग पाए विना होंय नाहीं। ऐसैं मनुष्य पर्यायविषै दुख ही हैं। एक मनुष्य पर्यायविषैं कोई अपना भला होनैका उपाय करै तौ होय सकै है। जैसैं काना सांठा[1] कीजड़ वा बांड़[2] तौ चूंसने योग्यही नाहीं। अर बीचिकी पेली कांनी सो भी चूंसी जाय नाहीं। कोई स्वादका लोभी वाकूं विगारै तौ विगारो। अर जो वाकौं बोइ दे तो वाके बहुत सांठे होंइ, तिनिका स्वाद बहुत मीठा आवै। तैसे मनुष्यपर्यायका वालकवृद्धपना तौ भोगने योग्य नाहीं। अर बीचिकी अवस्था सो रोग क्लेशादिकरि युक्त-तहां सुख होइ सकै नाहीं। कोई विषयसुखका लोभी वाको विगारै तौ विगारो। अर जो याकौं धर्मसाधनविषैं लगावै तौ बहुत ऊंचे पदकौं पावै। तहां सुख बहुत निराकुल पाइए। तातैं इहां अपना हित साधना, सुख होनैका भ्रमकरि वृथा न खोवना।

[देवगतिके दुख]

बहुरि देवपर्यायविषैं ज्ञानादिककी शक्ति किछू औरनितैं विशेष है। मिथ्यात्वकरि अतत्त्वश्रद्धानी होय रहे हैं। बहुरि तिनिकै कषाय

---

१ गन्ना। २ गन्नेके ऊपरका फीका भाग।

किछू मंद है। तहां भवनवासी व्यंतर ज्योतिष्कनिकै कषाय बहुत मंद नाहीं अर उपयोग तिनिका चंचल बहुत अर किछू शक्ति भी है सो कषायनिके कार्यनिविषै प्रवर्तै हैं। कुतूहल विषयादि कार्यनिविषैं लगि रहे हैं। सो तिस आकुलताकरि दुखी ही हैं। बहुरि वैमानिकनिकै ऊपरिऊपरि विशेष मंदकषाय है अर शक्ति विशेष है तातैं आकुलता घटनैतैं दुख भी घटता है! इहां देवनिकै क्रोधमान कषाय है परन्तु कारन थोरा है। तातैं तिनिके कार्यकी गौणता है। काहूका बुरा करना वा काहूकौं हीन करना इत्यादि कार्य निकृष्ट देवनिकै तौ कौतूहलादि-करि होइ है। अर उत्कृष्ट देवनिकै थोरा हो है मुख्यता नाहीं। बहुरि माया लोभ कषायनिके कारण पाइए हैं। तातैं तिनिके कार्यकी मुख्यता है तातैं छल करना विषयसामग्रीकी चाहि करनी इत्यादि कार्य विशेष हो है। सो भी ऊंचे ऊंचे देवनिकै घाटि[1] है। बहुरि हास्य रति कषायके कारन घने पाइए हैं तातैं इनिकेकार्यनिकी मुख्यता है बहुरि अरति शोक भय जुगुप्सा इनिके कारन थोरे हैं तातैं तिनिके कार्यनिकी गौणता है। बहुरि स्त्रीवेद पुरुषवेदका उदय है अर रमनेका भी निमित्त है सो कामसेवन करै हैं। ए भी कषाय ऊपरि ऊपरि मंद हैं। अहमिंद्रनिकै वेदनिकी मंदताकरि कामसेवनका अभाव है। ऐसैं देवनिकै कषायभाव हैं सो कषायहीतैं दुख है। अर इनिकै कषाय जेता थोरा है तितना दुख भी थोरा है तातैं औरनिकी अपेक्षा इनिकौं सुखी कहिए है। परमार्थतैं कषायभाव जीवै है ताकरि दुखी ही हैं। बहुरि वेदनीयविषै साताका उदय बहुत है। तहां भवनत्रिककै थोरा है।

1 कम है।

वैमानिकनि ऊपरि ऊपरि विशेष है। इष्ट शरीरकी अवस्था स्त्रीमंदिरादि सामग्रीका संयोग पाइए है। बहुरि कदाचित् किंचित् असाताका भी उदय कोई कारणकरि हो है। तहां निकृष्टदेवनिकै किछू प्रगट भी है। अर उत्कृष्ट देवनिकै विशेष प्रगट नाहीं है। बहुरि आयु बड़ी है। जघन्य दशहजारवर्ष उत्कृष्ट तेतीस सागर है। यातैं अधिक आयुका धारी मोक्षमार्ग पाए विना होता नाहीं। सो इतना काल विषयसुखमैं मगन रहै हैं। बहुरि नामकर्मकी देवगति आदि सर्व पुण्यप्रकृतिनिहीका उदय है। तातैं सुखका कारण है। अर गोत्रविषैं उच्चगोत्रहीका उदय है तातैं महंतपदकौं प्राप्त हैं ऐसैं इनिकै पुण्यउदयकी विशेषताकरि इष्ट सामग्री मिली है अर कषायनिकरि इच्छा पाइए है। तातैं तिनिके भोगवनेविषै आसक्त होइ रहे हैं; परन्तु इच्छा अधिक ही रहै है तातैं सुखी होते नाहीं। ऊंचे देवनिकै उत्कृष्ट पुण्यका उदय है कषाय बहुत मंद है, तथापि तिनिकै भी इच्छाका अभाव होता नाहीं, तातैं परमार्थतैं दुखी ही हैं। ऐसैं सर्वत्र संसारविषै दुख ही दुख पाइए है। ऐसैं पर्यायअपेक्षा दुख वर्णन किया।

[दुखका सामान्य स्वरूप]

अब इस सर्व दुखका सामान्यस्वरूप कहिए है। दुखका लक्षण आकुलता है सो आकुलता इच्छा होतैं हो है। सोई संसारीजीवकै इच्छा अनेक प्रकार पाइए है। एक तौ इच्छा विषयग्रहण की है सो देख्या जान्या चाहै। जैसैं वर्ण देखनेको, राग सुनने की, अव्यक्तकौं जानने इत्यादिकी इच्छा हो है। सो तहां अन्य किछू पीड़ा नाहीं। परन्तु यावत् देखै जानै नाहीं, तावत् महाव्याकुल होइ।

इस इच्छाका नाम विषय है। बहुरि एक इच्छा कषायभावनिके अनुसारि कार्य करने की है सो कार्य किया चाहै। जैसे बुरा करनेकी हीन करनेका इत्यादि इच्छा हो है। सो इहां भी अन्य कोई पीड़ा नाहीं। परन्तु यावत् वह कार्य न होइ तावत् महाव्याकुल होय। इस इच्छाका नाम कषाय है। बहुरि एक इच्छा पापके उदयतैं शरीरविषैं वा बाह्य अनिष्ट कारण मिलैं तब उनके दूरि करनेकी हो है। जैसैं रोग पीड़ा क्षुधा आदिका संयोग भए उनके दूर करनेका इच्छा हो है सो इहां यहु ही पीड़ा मानै है। यावत् वह दूरि न होइ तावत महाव्याकुल रहै। इस इच्छाका नाम पापका उदय है। ऐसैं इनि तीन प्रकारकी इच्छा होतैं सर्व ही दुख मानै हैं सो दुख ही है। बहुरि एक इच्छा बाह्य निमित्ततैं बनै है सो इनि तीनप्रकार इच्छानिके अनुसारि प्रवर्तनेका इच्छा हो है। सो तीन प्रकार इच्छानिविषै एक एक प्रकार का इच्छा अनेक प्रकार है। तहां केई प्रकारकी इच्छा पूरन करनेका कारन पुण्यउदयतैं मिलै। तिनिका साधन युगपत् होइ सकै नाहीं। तातैं एककौं छोरि अन्यकौं लागै आगैं भी वाकौं छोरि अन्यकौं लागै जैसैं काहूकैं अनेक सामग्री मिली है। वह काहूकौं देखै है वाकौं छोरि राग सुनै है वाकौ छोरि काहूका बुरा करने लगि जाय वाकौं छोरि भोजन करै है अथवा देखनेविषैं ही एककौं देखि अन्यकौं देखै है। ऐसैं ही अनेक कार्यनिकी प्रवृत्तिविषैं इच्छा हो है सो इस इच्छाका नाम पुण्यका उदय है। याकौं जगत सुख मानै है सो सुख है नाहीं दुख ही है। काहेतैं—प्रथम तौ सर्वप्रकार इच्छा पूरन होनेके कारण काहूकै भी न बनैं। अर केई प्रकार इच्छा पूरन करनेके कारण

तौ युगपत् तिनिका साधन न होइ। सो एकका साधन यावत् न होइ तावत् वाकी आकुलता रहै है वाका साधन भए उसही समय अन्यका साधनकी इच्छा हो है तब वाकी आकुलता होइ। एक समय भी निराकुल न रहै, तातैं दुख ही है। अथवा तीनप्रकारके इच्छा रोगके मिटावनेका किंचित् उपाय करै है, तातैं किंचित् दुख घाटि हो है सर्व दुखका तौ नाश न होइ तातैं दुख ही है। ऐसैं संसारी जीवनिकै सर्वप्रकार दुख ही है। बहुरि यहां इतना जानना,—तीन-प्रकार इच्छानिकरि सर्वजगत पीड़ित है अर चौथी इच्छा तौ पुण्य का उदय आए होइ सो पुण्यका बन्ध धर्मानुरागतैं होइ सो धर्मानु-रागविषैं जीव थोरा लागै। जीव तौ बहुत पापक्रियानिविषैं ही प्रवर्तै है। तातैं चौथी इच्छा कोई जीवकै कदाचित् कालविषैंही हो है। बहुरि इतना जानना—जो समान इच्छावान् जीवनिकी अपेक्षा तौ चौथी इच्छावालाकै किछू तीनप्रकार इच्छाके घटनैतैं सुख कहिये है। बहुरि चौथी इच्छावालाकी अपेक्षा महान् इच्छावाला चौथी इच्छा होतैं भी दुखी हो है। काहूकै बहुत विभूति है अर वाकै इच्छा बहुत है तौ वह हुत आकुलतावान् है। अर जाकै थोरी विभूति है अर वाकै इच्छा थोरी है तौ वह थोरा आकुलतावान् है। बहुरि काहूकै इष्ट सामग्री मिली है परन्तु ताकै उनके भोगवनेकी वा अन्य सामग्रीकी इच्छा बहुत है तौ वह जीव घना आकुलतावान् है। तातैं सुखी दुखी होना इच्छाके अनुसार जानना, बाह्य कारनकै आधीन नाहीं हैं। नारकी दुखी अर देव सुखी कहिए है सो भी इच्छाहीकी अपेक्षा कहिए है। तातैं नारकीनिकै तीव्रकषायतैं इच्छा बहुत है। देवनिकै मंद कषायतैं

इच्छा थोरी है । बहुरि मनुष्य तिर्यंच भी सुखी दुखी इच्छाइीकी अपेक्षा जाननें। तीव्रकषायतैं जाकै इच्छा बहुत ताकौं दुखी कहिए है। मंदकषायतैं जाकै इच्छा थोरी ताकौं सुखी कहिए है। परमार्थतैं दुखी ही घना वा थोरा है सुख नाहीं है देवादिककौं भी सुखी मानिये है सो भ्रम ही है। उनकै चौथी इच्छाकी मुख्यता है तातैं आकुलित हैं। या प्रकार जो इच्छा है सो मिथ्यात्व अज्ञान असंयमतैं हो है। बहुरि इच्छा है सो आकुलतामय है अर आकुलता है सो दुःख है। ऐसैं सर्व जीव संसारी नानाप्रकारके दुखनिकरि पीड़ित ही होइ रहे हैं।

[दुखनिवृत्तिका उपाय]

अब जिन जीवनिकौं दुखतैं छूटना होय सो इच्छा दूरि करनेका उपाय करो बहुरि इच्छा दूरि तब ही होइ जब मिथ्यात्व अज्ञान असंयमका अभाव होइ। अर सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी प्राप्ति होय। तातैं इस ही कार्यका उद्यम करना योग्य है। ऐसा साधन करतैं जेती जेती इच्छा मिटै तेता ही दुख दूरि होता जाय। बहुरि जब मोहके सर्वथा अभावतैं सर्वथा इच्छाका अभाव होइ तब सर्व दुख मिटै सांचा सुख प्रगटै । बहुरि ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतरायका अभाव होइ तब इच्छाका कारण क्षयोपशम ज्ञान दर्शनका वा शक्तिहीनपनाका भी अभाव होइ। अनंतज्ञानदर्शनवीर्यकी प्राप्ति होइ। बहुरि केतेक काल पीछैं अघाति कर्मनिका भी अभाव होइ, तब इच्छाके बाह्य कारन तिनिका भी अभाव होइ। सो मोह गए पीछैं एकै काल किछू इच्छा उपजावनेकौं समर्थ थे नाहीं, मोह होतैं कारण थे। तातैं कारन कहे

है सो इनिका भी अभाव भया । तब सिद्धपदकौं प्राप्त हो हैं । तहां दुखका वा दुखके कारननिका सर्वथा अभाव होनैतैं सदाकाल अनौपम्य अखंडित सर्वोत्कृष्ट आनंदसहित अनंतकाल विराजमान रहै हैं। सोई दिखाइए है—

ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशम होतैं वा उदय होतैं मोहकरि एक एक विषय देखने जाननेकी इच्छाकरि महाव्याकुल होता था, सो अब मोहका अभावतैं इच्छाका भी अभाव भया । तातैं दुखका अभाव भया है । बहुरि ज्ञानावरण दर्शनवरणका क्षय होनैतैं सर्व इंद्रियनिकौं सर्वविषयनिका युगपत् ग्रहण भया, तातैं दुखका कारण भी दूरि भया है सोई दिखाइए है—जैसैं नेत्रकरि एक विषयकौं देख्या चाहै था, अब त्रिकालवर्ती त्रिलोकके सर्व वर्णनिकौं युगपत् देखै है । कोऊ विना देख्या रह्या नाहीं, जाके देखनेकी इच्छा उपजै । ऐसैं हो स्पर्शनादिककरि एक एक विषयकौं ग्रह्या चाहै था, अब त्रिकालवर्ती त्रिलोकके सर्व स्पर्श रस गंध शब्दनिकौं युगपत् ग्रहै है कोऊ विना ग्रह्या रह्या नाहीं जाके ग्रहणकी इच्छा उपजै ।

इहां कोऊ कहै शरीरादिक विना ग्रहण कैसैं होइ ?

ताका समाधान—इन्द्रियज्ञान होतैं तौ द्रव्यइन्द्रियादिविना ग्रहण न होता था । अब ऐसा प्रभाव प्रगट भया जो विना ही इंद्रिय ग्रहण हो है । इहां कोऊ कहै, जैसैं मनकरि स्पर्शादिककौं जानिए है तैसैं जानना होता होगा । त्वचा जीभ आदिकरि ग्रहण हो है तैसैं न होता होगा । सो ऐसैं नाहीं है । मनकरि तौ स्मरणादि होतैं अस्पष्ट जानना किछू हो है । इहां तौ स्पर्शरसादिककौं जैसैं त्वचा जीभ इत्यादिकरि

स्पर्शै स्वादै सूंघै देखै सुनै जैसा स्पष्ट जानना हो है तिसतैं भी अनंत गुणा स्पष्ट जानना तिनिकै हो है। विशेष इतना भया है—वहां इन्द्रियविषयका संयोग होतैं ही जानना होता था इहां दूर रहे भी वैसा ही जानना हो है। सो यहु शक्तिकी महिमा है। बहुरि मनकरि किछू अतीत अनागतकौं वा अव्यक्तकौं जान्या चाहै था, अत्र सर्व ही अनादितैं अनंतकालपर्यंत जे सर्व पदार्थनिके द्रव्य क्षेत्र काल भाव तिनिकौं युगपत् जानै है कोऊ विना जान्या रह्या नाहीं, जाके जाननेकी इच्छा उपजै। ऐसैं इन दुख और दुखनिके कारण तिनिका अभाव जानना। बहुरि मोहके उदयतैं मित्यात्व वा कषायभाव होते थे तिनि का सर्वथा अभाव भया तातैं दुखका अभाव भया। बहुरि इनिके कारणनिका अभाव भया तातैं दुखके कारणका भी अभाव भया। सो कारणका अभाव दिखाइए है—

सर्व तत्त्व यथार्थ प्रतिभासैं,अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यात्व कैसैं होइ? कोऊ अनिष्ट रह्या नाहीं निंदक स्वयमेव अनिष्ट पावै नाहीं है अर क्रोध कौनसौं करै? सिद्धनितैं ऊंचा कोई है नाहीं। इन्द्रादिक आपहीतैं नमै हैं इष्ट पावैं हैं कौनस्यौं मान करै? सर्व भवितव्य भासि गया, कार्य रह्या नाहीं। काहूस्यौं प्रयोजन रह्या नाहीं। काहेका लोभ करै? कोऊ अन्य इष्ट रह्या नाहीं। कौन कारणतैं हास्य होइ? कोऊ अन्य इष्ट प्रीतिकरने योग्य है नाहीं। इहां कहा रति करै? कोऊ दुखदायक संयोग रह्या नाहीं,कहां अरति करै? कोऊ इष्टअनिष्टसंयोग वियोग होता नाहीं, काहेकौं शोक करै? कोऊ अनिष्ट करनेवाला कारन रह्या नाहीं, कौनका भय करै? सर्व वस्तु अपने स्वभाव लिएभासै आपकौं अनिष्ट

नाहीं कहां जुगुप्सा करै ? कामपीड़ा दूर होनैतैं स्त्रीपुरुष उभयस्यौं रमनेका किछू प्रयोजन रह्या नाहीं, काहेकौं पुरुष स्त्री नपुंसकवेद रूप भाव होइ ? ऐसैं मोह उपजनेंके कारणनिका अभाव जानना। बहुरि अंतरायके उदयतैं शक्ति हीनपनाकरि पूरन न होती थी। अब ताका अभाव भया। तातैं दुखका अभाव भया । बहुरि अनंत शक्ति प्रगट भई, तातैं दुखके कारणका भी अभाव भया।

इहां कोऊ कहै, दान लाभ भोग उपभोग तौ करते नाहीं, इनकी शक्ति कैसैं प्रगट भई ?

ताका समाधान—ए कार्य रोगके उपचार थे। जब रोग ही नाहीं तब उपचार काहेकौं करै। तातैं इनिकार्यनिका सद्भाव तौ नाहीं। अर इनिका रोकनहारा कर्मका अभाव भया, तातैं शक्ति प्रगटी कहिए है। जैसैं कोऊ नाहीं गमन किया चाहै ताकौं काहूनै रोक्या था तब दुखी था। जब वाकै रोकना दूरि भया, अर जिह कार्यकै अर्थि गया चाहै था, सो कार्य न रह्या तब गमन भी न किया। तब वाकै गमन न करतैं भी शक्ति प्रगटी कहिए। तैसैं ही इहां जानना। बहुरि ज्ञानादिकी शक्तिरूप अनन्तवीर्य प्रगट उनकै पाइए है। बहुरि अघाति कर्मनिविषै मोहतैं पापप्रकृतिनिका उदय होतैं दुख मानै था। पुण्यप्रकृतिका उदयकौं सुख मानै था। परमार्थतैं आकुलताकरि सर्व दुख ही था। अब मोहके नाशतैं सर्व आकुलता दूरि होनेतैं सर्व दुःखका नाश भया। बहुरि जिन कारननिकरि दुख मानै था, ते तौ कारन सर्व नष्ट भए। अर जिनिकरि किंचित दुख दूरि होनेतैं सुख मानै था, सो अब मूलहीमैं दुख रह्या नाहीं। तातैं तिनि दुखके उपचारनिका

किछू प्रयोजन रह्या नाहीं, जो तिनिकरि कार्यकी सिद्धि किया चाहे। ताकी स्वयमेव ही सिद्धि होइ रही है। इसहीका विशेष दिखाइये है—

वेदनीयविषैं असाताका उदयतैं दुखके कारन शरीरविषैं रोग क्षुधादिक होते थे। अब शरीर ही नाहीं तब कहां होय? अर शरीरकी अनिष्ट अवस्थाकौं कारन आतापादिक थे सो अब शरीर विना कौनकौं कारन होंय? अर बाह्य अनिष्ट निमित्त वनैं था, सो अब इनिकै अनिष्ट रह्या ही नाहीं। ऐसैं दुखका कारनका तौ अभाव भया। बहुरि साताके उदयतैं किंचित् दुख मेटनेके कारन औषधि भोजनादिक थे, तिनिका प्रयोजन रह्या नाहीं। अर इष्ट कार्य पराधीन रह्या नाहीं, तातैं बाह्य भी मित्रादिककौं इष्ट माननेका प्रयोजन रह्या नाहीं। इनिकरि दुख मेट्या चाहै था, वा इष्ट किया चाहै था, सो अब संपूर्ण दुख नष्ट भया। अर संपूर्ण इष्ट पाया। बहुरि आयुके मित्ततैं मरण जीवन था तहां मरणकरि दुःख मानै था सो अविनाशी पद पाया, तातैं दुखका कारन रह्या नाहीं। बहुरि द्रव्य प्राणनिकौं धरैं कितेक काल जीवनैं मरनतैं सुख मानै था, तहां भी नरकपर्यायविषैं दुखकी विशेषताकरि तहां जीवना न चाहै था, सो अब इस सिद्धपर्यायविषैं द्रव्यप्राणविना ही अपने चैतन्य प्राणकरि सदाकाल जीवै है। अर तहां दुखका लवलेश भी न रह्या है। बहुरि नामकर्मतैं अशुभ गति जाति आदि होतैं दुख मानै था, सो अब तिनि सबनिका अभाव भया, दुख कहांतैं होय? अर शुभगति जाति आदि होतैं किंचित् दुख दूरि होनेतैं सुख मानै था, सो अब तिनि विना ही सर्व दुखका नाश अर सर्व सुखका प्रकाश पाइए है। तातैं

तिनिका भी किछू प्रयोजन रह्या नाहीं। बहुरि गोत्रके निमित्ततैं नीचकुल पाए दुख मानै था सो ताका अभाव होनेतैं दुखका कारन रह्या नाहीं। बहुरि उच्चकुल पाए सुख मानै था सो अब उच्चकुल बिना ही त्रैलोक्यपूज्य उच्चपदकौं प्राप्त है। या प्रकार सिद्धनिकै सर्व कर्मके नाश होनेतैं सर्व दुख । नाश भया है।

दुखका तौ लक्षण आकुलता है सो आकुलता तब ही हो है, जब इच्छा होइ। सो इच्छाका वा इच्छाके कारणनिका सर्वथा अभाव भया तातैं निराकुल होय सर्व दुखरहित अनन्त सुखकौं अनुभवै है। जातैं निराकुलपना ही सुखका लक्षण है। संसारविषैं भी कोई प्रकार निराकुलित होइ तब ही सुख मानिए है। जहां सर्वथा निराकुल भया तहां सुख संपूर्ण कैसैं न मानिए? या प्रकार सम्यग्दर्शनादि साधनतैं सिद्धपद पाए सर्व दुखका अभाव हो है। सर्व सुख प्रगट हो है।

अब इहां उपदेश दीजिए है—हे भव्य हे भाई जो तोकूं संसारके दुख दिखाए, ते तुझविषै बीतैं हैं कि नाहीं सो विचारि। अर तू उपाय करै है ते झूठे दिखाए सो ऐसैं ही है कि नाहीं सो विचारि। अर सिद्धपद पाए सुख होय कि नाहीं, सो विचारि। जो तेरै प्रतीति जैसैं कही है तैसैं ही आवै है सो तूं संसारतैं छूटि सिद्धपद पावनेका हम उपाय कहै हैं सो करि, विलंब मति करै। इह उपाय किए तेरा कल्यान होगा।

इति श्रीमोक्षमार्ग प्रकाशक, नाम शास्त्रविषै संसारदुखका वा मोक्षसुखका निरूपक तृतीयअधिकार सम्पूर्ण भया ॥३॥

चौथा अधिकार

[मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चरित्रका निरूपण]

दोहा

इस भवके सब दुखनिके, कारन मिथ्याभाव।
तिनिकी सत्ता नाश करि, प्रगटै मोक्षउपाव ॥ १ ॥

अब इहां संसार दुखनिके बीजभूत मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्र हैं तिनिका स्वरूप विशेष निरूपण कीजिए है। जैसैं वैद्य है सो रोगके कारननिका विशेष कहै तो रोगी कुपथ्य सेवन न करै तब रोगरहित होय, तैसैं इहां संसारके कारननिका विशेष निरूपण करिए है। तौ संसारी मिथ्यात्वादिकका सेवन न करै, तब संसार-रहित होय। तातैं मिथ्यादर्शनादिकनिका विशेष कहिए है—

[मिथ्यादर्शनका स्वरूप]

यहु जीव अनादितैं कर्मसंबंधसहित है। याकै दर्शनमोहके उदयतैं भया जो अतत्त्वश्रद्धान ताका नाम मिथ्यादर्शन है। जातैं तद्भाव तत्त्व जो श्रद्धान करने योग्य अर्थ है ताका जो भाव स्वरूप ताका नाम तत्त्व है। तत्त्व नाहीं ताका नाम अतत्त्व है। अरजो अतत्त्व है सो असत्य है, तातैं इसहीका नाम मिथ्या है। बहुरि ऐसैं ही यहु है, ऐसा प्रतीतिभाव ताका नाम श्रद्धान है। इहां श्रद्धानहीका नाम दर्शन है। यद्यपि दर्शनका नाम अर्थ सामान्य अवलोकन है तथापि इहां प्रकरणके वशतैं इस ही धातुका अर्थ श्रद्धान जानना। सो ऐसैं ही सर्वार्थसिद्धिनाम सूत्रकी टीकाविषैं कह्या है। जातैं सामान्यअवलोकन

संसारमोक्षकौं कारण होइ नाहीं। श्रद्धान ही संसार मोक्षकौं कारण है, तातैं संसारमोक्षका कारणविषैं दर्शनका अर्थ श्रद्धान ही जानना। बहुरि मिथ्यारूप जो दर्शन कहिए श्रद्धान ताका नाम मिथ्यादर्शन है। जैसैं वस्तुका स्वरूप नाहीं, तैसैं मानना जैसैं है तैसैं न मानना ऐसा विपरीताभिनिवेश कहिए विपरीत अभिप्राय ताकौं लीए मिथ्यादर्शन हो है।

इहां प्रश्न:—जो केवलज्ञान विना सर्वपदार्थ यथार्थ भासैं नाहीं। अर यथार्थ भासें विना यथार्थ श्रद्धान न होइ। तातैं मिथ्यादर्शनका त्याग कैसैं बनै?

ताका समाधान—पदार्थनिका जानना न जानना अन्यथा जानना तौ ज्ञानावरण के अनुसारि है। बहुरि प्रतीति हो है सो जाने ही हो है। विना जाने प्रतीति कैसैं आवै? यहु तौ सत्य है। परंतु जैसैं कोऊ पुरुष है सो जिनस्यौं प्रयोजन नाहीं, तिनिकौं अन्यथा जानै। वा यथार्थ जानै। बहुरि जैसैं जानै तैसैं ही मानै, किछू वाका बिगार सुधार है नाहीं, तातैं बाउला स्याणा नाम पावै नाहीं। बहुरि जिनस्यौं प्रयोजन पाइए है, तिनिकौं जो अन्यथा जानै अर तैसे ही मानै तौ बिगार होइ, तातैं वाकौं बाउला कहिए। बहुरि तिनिकौं जो यथार्थ जानै अर तैसैं ही मानै, तौ सुधार होइ। तातैं वाकौं स्याणा कहिए। तैसैं ही जीव है सो जिनस्यौं प्रयोजन नाहीं, तिनिकौं अन्यथा जानौ, वा यथार्थ जानौ। बहुरि जैसैं जानै तैसैं श्रद्धान करै, किछू याका बिगार सुधार नाहीं। तातैं मिथ्यादृष्टी सम्यग्दृष्टी नाम पावै नाहीं। बहुरि जिनस्यौं प्रयोजन पाइए है तिनिकौं जो अन्यथा जानै अर तैसैं

ही श्रद्धान करै तौ विगार होइ। तातैं याकौं मिथ्यादृष्टि कहिए। वहुरि तिनिकौं जो यथार्थ जानै। अर तैसैं ही श्रद्धान करै, तौ सुधार होइ। तातैं याकौं सम्यग्दृष्टी कहिए। इहां इतना जानना कि अप्रयोजनभूत वा प्रयोजनभूत पदार्थनिका न जानना। वा यथार्थ अयथार्थ जानना जो होइ तामैं ज्ञानकी हीनता अधिकता होना, इतना जीवका विगार सुधार है। ताका निमित्त तौ ज्ञानावरण कर्म है। वहुरि तहां प्रयोजनभूत पदार्थनिकौं अन्यथा वा यथार्थ श्रद्धान किए जीवका किछू और भी विगार सुधार हो है। तातैं याका निमित्त दर्शनमोह नामा कर्म है।

इहां कोऊ कहै कि जैसा जानै तैसा श्रद्धान करै तातैं ज्ञानावरणहीकै अनुसारि श्रद्धान भासै है इहां दर्शनमोहका विशेष निमित्त कैसैं भासै ?

ताका समाधान,—प्रयोजनभूत जीवादि तत्त्वनिका श्रद्धान करने योग्य ज्ञानावरणका क्षयोपशम तौ सर्व संज्ञी पंचेन्द्रियनिकैं भया है। परंतु द्रव्यलिंगी मुनि ग्यारह अंग पर्यंत पढैं वा ग्रैवेयकके देव अवधिज्ञानादियुक्त हैं तिनिकै ज्ञानावरणका क्षयोपशम बहुत होतैं भी प्रयोजनभूत जीवादिकका श्रद्धान न होइ। अर तिर्यंचादिककै ज्ञानावरणका क्षयोपशम थोरा होतैं भी प्रयोजनभूत जीवादिकका श्रद्धान होइ, तातैं जानिए है ज्ञानावरणहीकै अनुसारि श्रद्धान नाहीं। कोइ जुदा कर्म है सो दर्शनमोह है। याकै उदयतैं जीवकै मिथ्यादर्शन हो है, तब प्रयोजनभूत जीवादितत्त्वनिका अन्यथा श्रद्धान करै है।

इहां कोऊ पूछै कि प्रयोजनभूत अप्रयोजनभूत पदार्थ कौन है ?

[प्रयोजन अप्रयोजनभूत पदार्थ]

ताका समाधान--इस जीवकेप्रयोजन तौ एकयहुही है कि दुख न होय, सुख होय। अन्य किछू भी कोई ही जीवकै प्रयोजन है नाहीं। बहुरि दुखका न होना, सुखका होना एक ही है, जातैं दुखका अभाव सोई सुख है। सो इस प्रयोजनकी सिद्धि जीवादिकका सत्य श्रद्धान किए हो है। कैसैं? सो कहिए है.

प्रथम तो दुख दूरि करनैविषैं आपापरका ज्ञान अवश्य चाहिए। जो आपापरका ज्ञान नाहीं होय तौ आपका पहिचाने विना अपना दुख कैसैं दूरि करै। अथवा आपापरकौं एक जानि अपना दुखदूरि करनेकै अर्थि परका उपचार करै तौ अपना दुख दूरि कैसैं होइ? अथवा आपतैं पर भिन्न, अर यहु परविषै अहंकार ममकार करै तातैं दुख ही होय। आपापरका ज्ञान भए दुख दूरि हो है। बहुरि आपापरका ज्ञान जीव अजीवका ज्ञान भए ही होइ। जातैं आप जीव है शरीरादिक अजीव हैं। जो लक्षणादिककरि जीव अजीवकी पहिचान होइ, तौ आपापरको भिन्नपनौ भासै। तातैं जीव अजीवकौं जानना, अथवा जीव अजीवका ज्ञान भए जिन पदार्थनिका अन्यथा श्रद्धानतैं दुख होता था तिनिका यथार्थ ज्ञान होनेतैं दुख दूरि होइ। तातैं जीव अजीवकौं जानना। बहुरि दुखका कारन तौ कर्मबंधन है। अर ताका कारन मिथ्यात्वादिक आस्रव हैं। सो इनिकौं न पहिचानै इनिकौं दुखका मूलकारन न जानै तौ इनिका अभाव कैसैं करै? अर इनिका अभाव न करै तब कर्मबंधन होइ, तातैं दुख ही होइ। अथवा मिथ्यात्वादिक भाव हैं सो ए दुखमय हैं। सो इनिकौं जैसेके तैसे न

जानै, तौ इनिका अभाव न करै। तब दुखीही रहै। तातैं आस्रवकौं जानना। बहुरि समस्त दुखका कारण कर्मबंधन है सो याकौं न जानै तब यातैं मुक्त होनेका उपाय न करै। तब ताके निमित्ततैं दुखी होइ। तातैं बंधकौं जानना। बहुरि आस्रवका अभाव करना सो संवर है। याका स्वरूप न जानै तौ याविषैं न प्रवर्तैं तब आस्रव ही रहै। तातैं वर्तमान वा आगामी दुख ही होइ। तातैं संवरकौं जानना। बहुरि कथंचित् किंचित्कर्मबंधका अभाव ताका नाम निर्जरा है सो याकौं न जानै तब याकी प्रवृत्तिका उद्यमी न होइ। तब सर्वथा बंध ही रहै तातैं दुख ही होइ। तातैं निर्जराकौं जानना। बहुरि सर्वथा सर्व कर्मबंधका अभाव होना ताका नाम मोक्ष है। सो याकौं न पहिचानै तौ याका उपाय न करै, तब संसारविषै कर्मबंधतैं निपजे दुखनिहीकौं सहै, तातैं मोक्षकौं जानना। ऐसैं जीवादि सप्त तत्त्व जानने। बहुरि शास्त्रादि करि कदाचित् तिनिकौं जानै अर ऐसैं ही है ऐसी प्रतीति न आई तौ जानैं कहा होय तातैं तिनिका श्रद्धान करना कार्यकारी है। ऐसैं जीवादि तत्त्वनिका सत्यश्रद्धान किएही दुख होनेका अभावरूप प्रयोजनकी सिद्धि हो है। तातैं जीवादिक पदार्थ हैं ते ही प्रयोजनभूत जानने। बहुरि इनिके विशेषभेद पुण्यपापादिकरूप तिनिका भी श्रद्धान प्रयोजनभूत है जातैं सामान्यतैं विशेष बलवान् है। ऐसैं ये पदार्थ तौ प्रयोजनभूत हैं तातैं इनका यथार्थ श्रद्धान किए तौ दुख न होइ सुख होय। अर इनिकौं यथार्थ श्रद्धान किए विना दुख हो है सुख न हो है बहुरि इनि विना अन्य पदार्थ हैं ते अप्रयोजनभूत हैं। जातैं तिनिकौं यथार्थश्रद्धान करो वा मति करो इनका श्रद्धान किछू सुखदुखकौं कारन नाहीं।

इहां प्रश्न उपजै है, जो पूर्वं जीव अजीव पदार्थ कहे तिनिविषै तौ सर्व पदार्थ आय गए तिनि विना अन्य पदार्थ कौन रहे, जिनिकौं अप्रयोजनभूत कहे।

ताका समाधान—पदार्थ तौ सर्व जीव अजीवविषै ही गर्भित हैं; परन्तु तिन जीव अजीवनिके विशेष बहुत हैं। तिनिविषैं जिन विशेषनिकरि सहित जीव अजीवको यथार्थ श्रद्धान किये स्व-परका श्रद्धान होय, रागादिक दूर करनेका श्रद्धान होइ, तातैं सुख उपजै। अयथार्थ श्रद्धान किए स्व-परका श्रद्धान न होइ, रागादिक दूरि करनेका श्रद्धान न होइ। तातैं दुख उपजै। तिनिविशेषनिकरि सहित जीव अजीव पदार्थतौ प्रयोजनभूत जानने। बहुरि जिनि विशेषनिकरि सहित जीव अजीवकौं यथार्थ श्रद्धान किए वा न किए स्व-परका श्रद्धान होइ वा न होइ अर रागादिक दूरि करनेका श्रद्धान होइ वा न होइ, किछू नियम नाहीं। तिनिविशेषनिकरि सहित जीव अजीव पदार्थ अप्रयोजनभूत जाननें। जैसैं जीव अर शरीरका चैतन्य मूर्त्तत्वादिविशेषनिकरि श्रद्धान करना तौ प्रयोजनभूत है। अर मनुष्यादि पर्यायनिका वा घटपटादिका अवस्था आकारादिविशेपनिकरि श्रद्धान करना अप्रयोजनभूत है। ऐसैं ही अन्य जानने। या प्रकार कहे जे प्रयोजनभूत जीवादिक तत्त्व तिनिका अयथार्थ श्रद्धान ताका नाम मिथ्यादर्शन जानना। अब संसारी जीवनिकै मिथ्यादर्शनकी प्रवृत्ति कैसैं पाइए है सो कहिए है। इहां वर्णन तौ श्रद्धानका करना है, परंतु जानै तब श्रद्धान करै, तातैं जाननेकी मुख्यताकरि वर्णन करिए है।

[मिथ्यादर्शनकी प्रवृत्ति]

अनादितैं जीव है सो कर्मके निमित्ततैं अनेक पर्याय धरै है तहां

पूर्व पर्यायकौं छोरै नवीन पर्याय धरै। बहुरि वह पर्याय है सो एक तौ आप आत्मा अर अनन्त पुद्गलपरमाणुमय शरीर तिनिका एक पिंड बंधानरूप है। बहुरि जीवकै तिसपर्यायविषैं यह मैं हौं ऐसें अहंबुद्धि हो है। बहुरि आप जीव है ताका स्वभाव तौ ज्ञानादिक है अर विभाव क्रोधादिक हैं। अर पुद्गल परमाणूनिके वर्ण गंध रस स्पर्शादि स्वभाव हैं तिनि सबनिकौं अपना स्वरूप मानै है। ए मेरे हैं ऐसैं ममबुद्धि हो है। बहुरि आप जीव है ताकौं ज्ञानादिककी वा क्रोधादिककी अधिकहीनतारूप अवस्था हो है। अर पुद्गलपरमाणूनिकी वर्णादि पलटनेरूप अवस्था हो है तिनिसबनिकौं अपनी अवस्था मानैं है। ए मेरी अवस्था हैं। ऐसैं ममबुद्धि करै है। बहुरि जीवकै अर शरीरकै निमित्तनैमित्तिक संबंध है तातैं जो क्रिया हो है ताकौं अपनी मानै है। अपना दर्शनज्ञानस्वभाव है ताकी प्रवृत्तिकौं निमित्त मात्र शरीरका अंगरूपस्पर्शनादि द्रव्यइंद्रिय हैं। यहु तिनिकौं एक मानि ऐसें मानै है जो हस्तादि स्पर्शनकरि मैं स्पर्श्या, जीभकरि चाख्या, नासिकाकरि सूंघ्या, नेत्रकरि देख्या, काननिकरि सुन्या, ऐसैं मानैं है। मनोवर्गणारूप आठपांखुड़ीका फूल्या कमलकै आकारि हृदयस्थानविषै द्रव्यमन है दृष्टिगम्य नाहीं ऐसा है सो शरीरका अंग है ताका निमित्त भए स्मरणादिरूप ज्ञानकी प्रवृत्ति हो है। यहु द्रव्यमनकौं अर ज्ञानकौं एक मानि ऐसैं मानै है कि मैं मनकरि जान्या। बहुरि अपने बोलनेकी इच्छा हो है तब अपने प्रदेशनिकौं जैसैं बोलना बनै तैसैं हलावै, तब एकक्षेत्रावगाहसंबंधतैं शरीरके अंग भी हालैं तातैं निमित्ततैं भाषावर्गणारूप पुद्गलवचनरूप परिणमैं। यहु सबकौं एक मानि

ऐसैं मानै जो मैं बोलों हौं। बहुरि अपने गमनादिक क्रियाकी वा वस्तु ग्रहणादिककी इच्छा होय तब अपनें प्रदेशनिकौं जैसैं कार्य बनै, तैसैं हलावै, तब एक क्षेत्रावगाहतैं शरीरके अंग हालैं तब वह कार्य बनै। अथवा अपनी इच्छाबिना शरीर हालै तब अपने प्रदेश भी हालैं यहु सबकौं एक मानि ऐसैं मानैं, मैं गमनादिकार्य करौं हौं, वा वस्तु ग्रहौं हौं। वा मैं किया है इत्यादिरूप मानै है। बहुरि जीवकै कषायभाव होय तब शरीरकी ताकै अनुसारि चेष्टा होइ जाय। जैसैं क्रोधादिक भए रक्तनेत्रादि होइ जाय। हास्यादि भए प्रफुल्लित वदनादि होइ जाय पुरुषवेदादि भए लिंगकाठिन्यादि होइ जांय। यहु सबकौं एक मानि ऐसा मानैं कि ए कार्य सर्व मैं करौं हौं। बहुरि शरीरविषै शीत उष्ण क्षुधा तृषा रोग इत्यादि अवस्था होइ है ताके निमित्ततैं मोहभावकरि आप सुख दुख मानैं। इन सबनिकौं एक जानि शीतादिककौं वा सुखदुखकौं अपने ही भए मानैं है, बहुरि शरीरका परमाणूनिका मिलना बिछुरनादि होनेकरि वा तिनिकी अवस्था पलटनेकरि वा शरीरस्कंधका खंडादि होनेकरि स्थूल कृशादिक वा बाल वृद्धादिक वा अंगहीनादिक होय। अर ताकै अनुसार अपने प्रदेशनिका संकोच विस्तार होइ, यहु सबकौं एक मानिमैं स्थूल हौं, मैं कृश हौं, मैं बालक हौं, मैं वृद्ध हौं, मेरे इनि अंगनिका भंग भया है इत्यादि रूप मानै है। बहुरि शरीरकी अपेक्षा गतिकुलादिक होइ तिनिकौं अपने मानि मैं मनुष्य हौं, मैं तिर्यंच हौं, मैं क्षत्रिय हौं, मैं वैश्य हौं, इत्यादिरूप मानै है। बहुरि शरीर संयोग होनें छूटनेकी अपेक्षा जन्म मरण होय। तिनिकौं अपना जन्म मरण

मानि मैं उपज्या, मैं मरूंगा ऐसा मानै है। बहुरि शरीरहीकी अपेक्षा अन्यवस्तुनिस्यौं नाता मानै है। जिनिकरि शरीर निपज्या तिनिकौं आपके माता पिता मानै है। जो शरीरकौं रमावै ताकौं अपनी रमनी मानै है। जो शरीरकरि निपज्या ताकौं अपना पुत्र मानैं है। जो शरीरकौं उपकारी ताकौं मित्र मानैं है। जो शरीरका बुरा करै ताकौं शत्रु मानैं है इत्यादिरूप मानि हो है। बहुत कहा कहिए जिस तिस-प्रकारकरि आप अर शरीरकौं एक ही मानै हैं। इन्द्रियादिकका नाम तौ इहां कह्या है। याकौं तौ किछू गम्य नाहीं। अचेत हुवा पर्याय-विषैं अहंबुद्धि धारै है। सो कारन कहा है? सो कहिए है।

इस आत्माकै अनादितैं इन्द्रियज्ञान है ताकरि आप अमूर्तीक है सो तौ भासै नाहीं, अर शरीर मूर्तीक है सो ही भासै। अर आत्मा काहूकौं आपौ जानि अहंबुद्धि धारै ही धारै, सो आप जुदा न भास्या तब तिनिका समुदायरूप पर्यायविषैं ही अहंबुद्धि धारै है। बहुरि आपकै अर शरीरकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध घना ताकरि भिन्नता भासै नाहीं। बहुरि जिसविचारकरि भिन्नता भासै सो मिथ्यादर्शनके जोरतैं होइ सकै नाहीं। तातैं पर्यायहीविषैं अहंबुद्धि पाइए है। बहुरि मिथ्यादर्शनकरि यहु जीव कदाचित् बाह्यसामग्रीका संयोग होतैं तिनिकौं भी अपनो मानैं है। पुत्र, स्त्री, धन, धान्य, हाथी घोरे मंदिर किंकरादिक प्रत्यक्ष आपतैं भिन्न अर सदाकाल अपने आधीन नाहीं, ऐसे आपकौं भासैं, तौ भी तिनविषैं ममकार करै है। पुत्रादिक-विषै ए हैं, सो मैं ही हौं ऐसी भी कदाचित् भ्रमबुद्धि हो है। बहुरि मिथ्यादर्शनतैं शरीरादिकका स्वरूप अन्यथा ही मानैं है। अनित्यका

नित्य मानै है, भिन्नकौं अभिन्न मानै, दुखके कारनकौं सुखका कारन मानैं, दुखकौं सुख मानैं इत्यादि विपरीत भासै है। ऐसैं जीव अजीव तत्त्वनिका अयथार्थ ज्ञान होतैं अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि इस जीवकैं मोहके उदयतैं मिथ्यात्व कषायादिक भाव हो हैं। तिनकौं अपना स्वभाव मानै है। कर्म उपाधितैं भए न जानै है। दर्शन ज्ञान उपयोग, अर ए आस्रवभाव तिनकौं एक मानैं हैं। जातैं इनिका आधारभूत तौ एक आत्मा, अर इनिका परिणमन एकै काल होइ, तातैं याकौं भिन्नपनौं न भासै, अर भिन्नपनौं भासनेंका कारन जो विचारै है सो मिथ्यादर्शनके बलतैं होइ सकै नाहीं। बहुरि ए मिथ्यात्व कषायभाव आकुलतालिए हैं, तातैं वर्त्तमान दुःखमय हैं। अर कर्मबंधके कारन हैं, तातैं आगामी दुख उपजावैंगे तिनिकौं ऐसैं न मानैं हैं। आप भला जानि इन भावनिरूप होइ प्रवर्तै है। बहुरि यहु दुखी तौ अपने इन मिथ्यात्वकषायभावनितैं होइ अर वृथा ही औरनिकौं दुख उपजावनहारे मानै। जैसैं दुखी तौ मिथ्यात्वश्रद्धानतैं होइ अर अपनें श्रद्धानके अनुसार जो पदार्थ न प्रवर्त्तैं ताकौं दुखदायक मानै। बहुरि दुखी तौ क्रोधतैं हो है अर जासौं क्रोध किया होय ताकौं दुखदायक मानैं। दुखी तौ लोभतैं होइ अर इष्ट वस्तुकी अप्राप्तिकौं दुखदायक मानैं, ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि इनि भावनिका जैसा फल लागै, तैसा न भासै है। इनकी तीव्रताकरि नरकादिक हो हैं। मन्दताकरि स्वर्गादिक हो हैं। तहां घनी थोरी आकुलता हो है सो भासै नाहीं, तातैं बुरे न लागै हैं। कारन कहा है— ए आपके किए भासैं तिनकौं बुरे कैसै मानै है? बहुरि ऐसैं ही

आस्रव तत्त्वका अयथार्थ ज्ञान होतैं अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि इनि आस्रवभावनिकरि ज्ञानावरणादिकर्मनिका बंध हो है। तिनिका उदय होतैं ज्ञानदर्शनका हीनपना होना, मिथ्यात्व-कषायरूप परिणमन, चाह्या न होना, सुखदुखका कारन मिलना, शरीरसंयोग रहना, गतिजातिशरीरादिकका निपजना, नीचा ऊंचा कुल पावना होय। सो इनके होनेविषैं मूलकारन कर्म है। ताकौं तौ पहिचानै नाहीं, जातैं वह सूक्ष्म है याकौं सूझता नाहीं। अर वह आपकौं इनि कार्यनिका कर्त्ता दीसै नाहीं, तातैं इनके होनेंविषैं कै तौ आपकौं कर्त्ता मानैं, कै काहू औरकौं कर्त्ता मानैं। अर आपका वा अन्यका कर्त्तापना न भासै तौ गहलरूप होइ भवितव्य मानैं। ऐसैं ही बंधतत्त्वका अयथार्थ ज्ञान होतैं अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि आस्रवका अभाव होना सो संवर है। जो आस्रवकौं यथार्थ न पहिचानैं, ताके संवरका यथार्थश्रद्धान कैसैं होइ? जैसैं काहूकै अहित आचरण है। वाकौं वह अहित न भासै, तौ ताके अभावकौं हितरूप कैसैं मानै? तैसैं ही जीवकै आस्रवकी प्रवृत्ति है। याकौं यहु अहित न भासै तौ ताके अभावरूप संवरकौं कैसैं हित मानै। बहुरि अनादितैं इस जीवकै आस्रवभाव ही भया, संवर कबहूं न भया, तातैं संवरका होना भासै नाहीं। संवर होतैं सुख हो है सो भासै नाहीं। संवरतैं आगामी दुख न होसी सो भासै नाहीं। तातैं आस्रवका तौ संवर करै नाहीं, अर तिन अन्य पदार्थनिकौं दुखदायक मानै है। तिनिहीके न होनेका उपाय किया करै है सो वे अपनैं आधीन नाहीं। वृथा ही खेदखिन्न हो है। ऐसैं संवरतत्त्वका

अयथार्थ ज्ञान होतैं अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि बंधका एकदेश अभाव होना सो निर्जरा है। जो बंधकौं यथार्थ न पहचानैं, ताकै निर्जराका यथार्थ श्रद्धान कैसैं होय? जैसैं भक्षण किया हुवा विषआदिकतैं दुःख होता न जानैं तौ ताकै उपाल[1] का उपायकौं कैसैं भला जानैं। तैसैं बंधनरूप किए कर्मनितैं दुख होता न जानैं, तौ तिनिकी निर्जराका उपायकौं कैसैं भला जानैं। बहुरि इस जीवकै इन्द्रियनितैं सूक्ष्मरूप जे कर्म तिनिका तौ ज्ञान होता नाहीं। बहुरि तिनविषैं दुखकूं कारनभूत शक्ति है, ताका ज्ञान नाहीं। तातैं अन्य पदार्थनिहीके निमित्तकौं दुखदायक जानि तिनिके ही अभाव करनेका उपाय करै है। सो वे अपने आधीन नाहीं। बहुरि कदाचित् दुख दूरि करनेके निमित्त कोई इष्ट संयोगादि कार्य बनै है सो वह भी कर्मके अनुसारि बनै है। तातैं तिनिका उपाय करि वृथा ही खेद करै है। ऐसैं निर्जरातत्त्वका अयथार्थ ज्ञान होतैं अयथार्थ श्रद्धान हो है।

बहुरि सर्व कर्मबंधका अभाव ताका नाम मोक्ष है। जो बंधकौं वा बंधजनित सर्व दुखनिकौं नाहीं पहिचानैं, ताकै मोक्षका यथार्थ श्रद्धान कैसैं होइ जैसैं काहूकै रोग है वह तिस रोगकौं वा रोग-जनित दुःखनिकौं न जानै, तौ सर्वथा रोगके अभावकौं कैसैं भला जानै?

तैसैं याकै कर्मबंधन है यहु तिस बंधनकौं वा बंधजनित दुखकौं न जानै, तौ सर्वथा बंधके अभावकौं कैसैं भला जानै? बहुरि इस जीवकै कर्मका वा तिनकी शक्तिका तौ ज्ञान नाहीं, तातैं बाह्यपदा-

१ नष्ट करने।

र्थनिकौं दुखका कारन जानि तिनकैं सर्वथा अभाव करनेका उपाय करै है। अर यहु तौ जानैं, सर्वथा दुख दूरि होनेका कारन इष्ट सामग्रीनिकौं मिलाय सर्वथा सुखी होना,सो कदाचित् होय सकै नाहीं यहु वृथा ही खेद करै है। ऐसैं मिथ्यादर्शनतैं मोक्षतत्त्वनिका अयथार्थ ज्ञान होनेतैं अयथार्थ श्रद्धान हो है। या प्रकार यहु जीव मिथ्यादर्शनतैं जीवादि सप्त तत्त्वप्रयोजनभूत हैं तिनिका अयथार्थ श्रद्धान करै है। वहुरि पुण्यपाप हैं ते इनिहीके विशेष हैं। सो इनि पुण्यपापनिकी एक जाति है तथापि मिथ्यादर्शनतैं पुण्यकौं भला जानै है। पापकौं बुरा जानैं है। पुण्यकरि अपनी इच्छाके अनुसार किंचित् कार्य बनैं है, ताकौं भला जानैं है। पापकरि इच्छाके अनुसारि कार्य न बनैं, ताकौं बुरा जानै है सो दोन्यौं ही आकुलताके कारन हैं, तातैं बुरे ही हैं। वहुरि यहु अपनी मानितैं तहां सुखदुख मानै है। परमार्थतैं जहां आकुलता है तहां दुख ही है। तातैं पुण्यपापके उदयकौं भला बुरा जानना भ्रम ही है। वहुरि केई जीव कदाचित् पुण्यपापके कारन जे शुभ अशुभ भाव तिनिकौं भले बुरे जानैं हैं सो भी भ्रम ही है। जातैं दोऊ ही कर्मबन्धनके कारन हैं। ऐसें पुण्यपापका अयथार्थज्ञान होतैं अयथार्थश्रद्धान हो है। या प्रकार अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यादर्शनका स्वरूप कह्या। यहु असत्यरूप है तातैं याहीका नाम मिथ्यात्व है। वहुरि यहु सत्यश्रद्धानतैं रहित है तातैं याहीका नाम अदर्शन है।

[मिथ्याज्ञानका स्वरूप]

अब मिथ्याज्ञानका स्वरूप कहिए है—प्रयोजनभूत जीवादि

तत्त्वनिका अयथार्थ जानना ताका नाम मिथ्याज्ञान है। ताकरि तिनिके जाननेविषैं संशय विपर्यय अनध्यवसाय हो है। तहां ऐसैं है कि ऐसैं हैं, ऐसा परस्पर विरुद्धता लिए दोयरूप ज्ञान ताका नाम संशय है। जैसैं 'मैं आत्मा हौं कि शरीर हौं' ऐसा जानना। बहुरि ऐसैं ही है ऐसा वस्तुस्वरूपतैं विरुद्धतालिए एकरूप ज्ञान ताका नाम विपर्यय है। 'जैसैं मैं शरीर हौं' ऐसा जानना। बहुरि 'किछू है' ऐसा निर्द्धाररहित विचार ताका नाम अनध्यवसाय है। जैसैं 'मैं कोई हौं' ऐसा जानना। या प्रकार प्रयोजनभूत जीवादि तत्त्वनिविषैं संशय विपर्यय अनध्यवसायरूप जो जानना होय ताका नाम मिथ्याज्ञान है। बहुरि अप्रयोजनभूत पदार्थनिकौं यथार्थ जानैं वा अयथार्थ जानौं ताकी अपेक्षा मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान नाम नाहीं है। जैसैं मिथ्यादृष्टि जेवरीकौं जेवरी जानैं तौ सम्यग्ज्ञान नाम न होय। अर सम्यग्दृष्टि जेवरीकौं सांप जानैं तौ मिथ्याज्ञान नाम न होय।

इहां प्रश्न,—जो प्रत्यक्ष सांचा झूठा ज्ञानकौं सम्यग्ज्ञान मिथ्याज्ञान कैसैं न कहिए ?

ताका समाधान—जहां जाननेहीका—सांच झूंठ निर्द्धार करने हीका-प्रयोजन होय, तहां तौ कोई पदार्थ है ताका सांचा झूठा जानने की अपेक्षा ही मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान नाम पावैं है। जैसैं प्रत्यक्ष परोक्षप्रमाणका वर्णनविषैं कोई पदार्थ हो है ताका सांचा जाननेरूप सम्यग्ज्ञानका ग्रहण किया है। संशयादिरूप जाननेकौं अप्रमाणरूप मिथ्याज्ञान कह्या है। बहुरि इहां संसारमोक्षके कारणभूत सांचा झूंठा जाननेका निर्द्धार करना है सो जेवरी सर्पादिकका यथार्थ वा

अन्यथा ज्ञान संसार-मोक्षका कारन नाहीं। तातैं तिनकी अपेक्षा इहां मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान न कह्या। इहां प्रयोजनभूत जीवादिक-तत्त्वनिहीका जाननेकी अपेक्षा मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान कह्या है। इस ही अभिप्रायकरि सिद्धान्तविषैं मिथ्यादृष्टिका तौ सर्वजानना मिथ्या-ज्ञान ही कह्या, अर सम्यग्दृष्टिका सर्वजानना सम्यग्ज्ञान कह्या।

इहां प्रश्न,—जो मिथ्यादृष्टीकै जीवादि तत्त्वनिका अयथार्थ जानना है ताकौं मिथ्याज्ञान कहौ। जेवरी सर्पादिकके यथार्थ जाननेंकौं तौ सम्यग्ज्ञान कहौ ?

ताका समाधान—मिथ्यादृष्टि जानै है, तहां वाकै सत्ता असत्ता का विशेष नाहीं है। तातैं कारणविपर्यय वा स्वरूपविपर्यय वा भेदा-भेदविपर्ययकौं उपजावै है। तहां जाकौं जानै है ताका मूल कारनकौं न पहिचानै। अन्यथा कारण मानैं सो तो कारणविपर्यय है। बहुरि जाकौं जानैं ताका मूलवस्तुतत्त्वरूप स्वरूप ताकौं नहीं पहिचानैं, अन्यथास्वरूप मानै सो स्वरूपविपर्यय है। बहुरि जाकौं जानै ताकौं यहु इनतैं भिन्न हैं यहु इनतैं अभिन्न हैं ऐसा न पहचानैं, अन्यथा भिन्न अभिन्नपनौं मानै सो भेदाभेदविपर्यय है। ऐसैं मिथ्यादृष्टीकै जाननेंविषैं विपरीतता पाइए है। जैसैं मतवाला माताकौं भार्या मानै, भार्याकौं माता मानै, तैसैं मिथ्यादृष्टीकै अन्यथा जानना है। बहुरि जैसैं काहू-कालविषै मतवाला माताकौं माता वा भार्याकौं भार्या भी जानैं तौ भी वाकै निश्चयरूप निर्द्धारकरि श्रद्धान लिए जानना न हो है। तातैं वाकै यथार्थज्ञान न कहिए। तैसैं मिथ्यादृष्टी काहूकालविषैं किसी पदार्थकौं सत्य भी जानै तौ भी वाकै निश्चयरूप निर्धारकरि श्रद्धान-

लिए जानना न हो है। अथवा सत्य भी जानै परंतु तिनिकरि अपना प्रयोजन तौ अयथार्थ ही साधै है तातैं वाकै सम्यग्ज्ञान न कहिए। ऐसा मिथ्यादृष्टीकै ज्ञानकौं मिथ्याज्ञान कहिए है।

इहां प्रश्न –जो इस मिथ्याज्ञानका कारन कौन है ?

ताका समाधान—मोहके उदयतैं जो मिथ्यात्वभाव होय सम्यक्त्व न होय सो इस मिथ्याज्ञानका कारन है। जैसैं विषके संयोगतैं भोजन भी विषरूप कहिए तैसैं मिथ्यात्वके संबंधतैं ज्ञान है सो मिथ्याज्ञान नाम पावै है।

इहां कोऊ कहै ज्ञानावरणका निमित्त क्यों न कहौ ?

ताका समाधान—ज्ञानावरणके उदयतैं तौ ज्ञानका अभावरूप अज्ञानभाव हो है। बहुरि क्षयोपशमतैं किंचित् ज्ञानरूप मतिज्ञान आदि ज्ञान हो है। जो इनिविषै काहूकौं मिथ्याज्ञान काहूकौं सम्यग्ज्ञान कहिए तौ दोऊहीका भाव मिथ्यादृष्टी वा सम्यग्दृष्टीकैं पाइए है तातैं तिनि दोऊनिकै मिथ्याज्ञान वा सम्यग्ज्ञानका सद्भाव होइ जाय तौ सिद्धांतविषैं विरुद्ध होइ। तातैं ज्ञानावरणका निमित्त बनैं नाहीं।

बहुरि इहां कोऊ पूछे कि जेवरी सर्पादिकके अयथार्थज्ञानका कौन कारन है तिसहीकौं जीवादितत्त्वनिका अयथार्थ यथार्थज्ञानका कारन कहौ, ?

ताका उत्तर—जो जाननेंविषै जेता अयथार्थपना हो है तेता तौ ज्ञानावरणका उदयतैं हो है। अर जेता यथार्थपना हो है तेता ज्ञानावरणके क्षयोपशमतैं हो है। जैसैं जेवरीकौं सर्प जान्यां सो यथार्थ जाननेकी शक्तिका कारण उदय में हो है, तातैं अयथार्थ जानै है। बहुरि जेवरी-

कौं जेवरी जानी सो यथार्थ जाननेकी शक्तिका कारण क्षयोपशम है तातैं यथार्थ जानै है। तैसैं ही जीवादि तत्त्वनिका यथार्थ जाननेकी शक्ति न होने वा होनेविषैं ज्ञानावरणहीका निमित्त है; परंतु जैसैं काहूपुरुषकै क्षयोपशमतैं दुखकौं वा सुखकौं कारणभूत पदार्थनिकौं यथार्थ जाननेकी शक्ति होय तहां जाकै असातावेदनीयका उदय होय सो दुःखकौं कारनभूत जो होय तिसहीकौं वेदै। सुखका कारनभूत पदार्थनिकौं न वेदै, अर जो सुखका कारनभूत पदार्थकौं वेदै तौ सुखी हो जाय। सो असाताका उदय होतैं होय सकै नाहीं। तातैं इहां दुखकौं कारनभूत अर सुखकौंकारणभूत पदार्थ वेदनेंविषैं ज्ञानावरणका निमित्त नाहीं, असाता साताका उदय ही कारणभूत है। तैसैं ही जीवकै प्रयोजनभूत जीवादिकतत्त्व अप्रयोजनभूत अन्य तिनिकै यथार्थ जाननेकी शक्ति होय। तहां जाकै मिथ्यात्वका उदय होय सो जे अप्रयोजनभूत होय, तिनिहीकौं वेदै, जानै प्रयोजनभूतकौं न जानै। जो प्रयोजनभूतकौं जानै तौ सम्यग्ज्ञान होय जाय सो मिथ्यात्वका उदय होतैं होइ सकै नाहीं। तातैं इहां प्रयोजनभूत अप्रयोजनभूत पदार्थ जाननेविषैं ज्ञानावरणका निमित्त नाहीं। मिथ्यात्वका उदय अनुदय ही कारणभूत है। इहां ऐसा जानना—जहां एकेन्द्रियादिककै जीवादि तत्त्वनिका यथार्थ जाननेकी शक्ति ही न होय तहां तौ ज्ञानावरणका उदय अर मिथ्यात्वका उदयतैं भया मिथ्याज्ञान अर मिथ्यादर्शन इनदोऊनिका निमित्त है। बहुरि जहां संज्ञी मनुष्यादिकै क्षयोपशमादि लब्धि होतैं शक्ति होय अर न जानै तहां मिथ्यात्वके उदयहीका निमित्त जानना याहीतैं मिथ्याज्ञानका मुख्य कारण ज्ञानावरण न कह्या मोहका उदयतैं

भया भाव सो ही कारण कह्या है।

बहुरि इहां प्रश्न—जो ज्ञान भए श्रद्धान हो है तातैं पहिलै मिथ्याज्ञान कहौ पीछैं मिथ्यादर्शन कहौ ?

ताका समाधान—है तौ ऐसैं ही, जाने विना श्रद्धान कैसैं होय। परंतु मिथ्या अर सम्यक् ऐसी संज्ञा ज्ञानकै मिथ्यादर्शन सम्यग्दर्शनके निमित्ततैं हो है। जैसैं मिथ्यादृष्टी वा सम्यग्दृष्टी सुवर्णादि पदार्थकौं जानै तौ समान है; परंतु सो ही जानना मिथ्यादृष्टिकै मिथ्याज्ञान नाम पावै सम्यग्दृष्टीकै सम्यग्ज्ञान नाम पावै। ऐसैं ही सर्व मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञानकौं कारन मिथ्यादर्शन सम्यग्दर्शन जानना। तातैं जहां सामान्यपनै ज्ञान श्रद्धानका निरूपण होय तहां तौ ज्ञान कारणभूत है ताकौं पहिले कहना अर श्रद्धान कार्यभूत है ताकौं पीछैं। बहुरि जहां मिथ्यासम्यग्ज्ञान श्रद्धानका निरूपण होय तहां श्रद्धान कारणभूत है ताकौं पहिले कहना, ज्ञान कार्यभूत है ताकौं पीछैं कहना।

बहुरि प्रश्न—जो ज्ञान श्रद्धान तौ युगपत् हो हैं इनविषै कारण कार्यपना कैसैं कहौ हौ ?

ताका समाधान—वह होय तौ वह होय इस अपेक्षा कारणकार्यपना हो है। जैसैं दीपक अर प्रकाश युगपत् हो है तथापि दीपक होय तौ प्रकाश होय, तातैं दीपक कारण है प्रकाश कार्य है। तैसैं ही ज्ञान श्रद्धान है वा मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञानकै वा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानकै कारणकार्यपना जानना।

बहुरि प्रश्न—जो मिथ्यादर्शनके संयोगतैं ही मिथ्याज्ञान नाम पावै है तौ एक मिथ्यादर्शन ही संसारका कारण कहना, श्रा

मिथ्याज्ञान जुदा काहेकौं कह्या ?

ताका समाधान,—ज्ञानहीकी अपेक्षा तौ मिथ्यादृष्टि वा सम्यग्दृष्टिकै क्षयोपशमतैं भया यथार्थ ज्ञान तामैं किछू विशेष नाहीं, अर यहु ज्ञान केवलज्ञानविषैं भी जाय मिलै है, जैसैं नदी समुद्र मैं मिलै। तातैं ज्ञानविषैं किछु दोष नाहीं; परन्तु क्षयोपशमज्ञान जहां लागै तहां एक ज्ञेयविषै लागै, सो यहु मिथ्यादर्शनके निमित्ततैं अन्य ज्ञेयनिविषै तौ ज्ञान लागै, अर प्रयोजनभूत जीवादि तत्वनिका यथार्थ निर्णय करनेंविषै न लागै, सो यहु ज्ञानविषै दोष भया। याकौं मिथ्याज्ञान कह्या। बहुरि जीवादितत्त्वनिका यथार्थ श्रद्धान न होय सो यहु श्रद्धानविषैं दोष भया। याकौं मिथ्यादर्शन कह्या। ऐसैं लक्षणभेदतैं मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान जुदा कह्या। ऐसैं मिथ्याज्ञानका स्वरूप कह्या। इसहीकौं तत्वज्ञानके अभावतैं अज्ञान कहिए है। अपना प्रयोजन न सधै तातैं याहीकौं कुज्ञान कहिए है।

[मिथ्याचारित्रका स्वरूप]

अब मिथ्याचारित्रका स्वरूप कहिए है—चारित्रमोहके उदयतैं कषाय भाव होइ ताका नाम मिथ्याचारित्र है। इहां अपने स्वभावरूप प्रवृत्ति नाहीं। झूठी परस्वभावरूप प्रवृत्ति किया चाहै सो बनै नाहीं, तातैं याका नाम मिथ्याचारित्र है। सोई दिखाइए है—अपना स्वभाव तौ दृष्टा ज्ञाता है सो आप केवल देखनहारा जाननहारा तौ रहै नाहीं। जिन पदार्थनिकौं देखै जानै तिनविषैं इष्ट अनिष्टपनौं मानैं, तातैं रागी द्वेषी होय काहूका सद्भावकौं चाहै काहूका अभावकौं चाहै। सो उनका सद्भाव अभाव याका किया होता

नाहीं। जातैं कोइ द्रव्य कोई द्रव्यका कर्त्ता हर्त्ता नाहीं। सर्व द्रव्य अपने अपने स्वभावरूप परिणमै हैं। यहु वृथा ही कषायभावकरि आकुलित हो है। बहुरि कदाचित् जैसैं आप चाहै तैसैं ही पदार्थ परिणमैं तौ अपना परिणमाया तौ परिणम्या नाहीं। जैसै गाड़ा चालै है अर वाकौं बालक धकोयकरि ऐसा मानैं कि याकौं मैं चलावो हौं। सो वह असत्य मानैं है जो वाका चलाया चालै है तौ वह न चालै तब क्यौं न चलावै? तैसैं पदार्थ परिणमैं हैं अर उनको यहु जीव अनुसारी होयकरि ऐसा मानैं जो याकौं मैं ऐसै परिणमावौं हौं। सो यहु असत्य मानै हैं। जो याका परिणमाया परिणमैं तौ वह तैसैं न परिणमैं तब क्यों न परिणमावैं? सो जैसैं आप चाहै तैसैं तौ पदार्थका परिणमन कदाचित् ऐसैं ही बनाव बनैं तब हो है। बहुत परिणमन तौ आप न चाहै, तैसैं ही होता देखिए है। तातैं यहु निश्चय है अपना किया काहूका सद्भाव अभाव होइ ही नाहीं। कषायभाव करनेतैं कहा होय? केवल आप ही दुखी होय। जैसैं कोऊ विवाहादि कार्य विषैं जाका किछू कह्या न होय अर वह आप कर्त्ता होय कषाय करै तौ आप ही दुखी होय, तैसैं जानना। तातैं कषायभाव करना ऐसा है जैसा जलका बिलोवना किछू कार्यकारी नाहीं। तातैं इनि कषायनिकी प्रवृत्तिकौं मिथ्याचारित्र कहिए है। बहुरि कषायभाव हो है सो पदार्थनिकौं इष्ट अनिष्ट मानैं हो है। सो इष्ट अनिष्ट मानना भी मिथ्या है। जातैं कोई पदार्थ इष्ट अनिष्ट है नाहीं। कैसैं सो कहिए है--

[इष्ट-अनिष्टकी मिथ्याकल्पना]

आपकौं सुखदाइक उपकारी होइ ताकौं इष्ट कहिए। आपकौं दुख-

दायक अनुपकारी होय ताकौं अनिष्ट कहिए। सो लोकमैं सर्व पदार्थ अपने २ स्वभावहीके कर्त्ता हैं। कोऊ काहूकौं सुखदुखदायक उपकारी अनुपकारी है नाहीं। यहु जीव अपने परिणामनिविषै तिनकौं सुखदायक उपकारी मानि इष्ट जानै है-अथवा दुखदायक अनुपकारी जानि अनिष्ट मानै है। जातैं एक ही पदार्थ काहूकौं इष्ट लागै है काहूकौं अनिष्ट लागै है। जैसैं जाकौं वस्त्र न मिलैं ताकौं मोटा वस्त्र इष्ट लागै अर जाकौं महीन वस्त्र मिलै ताकौं अनिष्ट लागै है। सूकरादिककौं विष्ठा इष्ट लागै है। देवादिककौं अनिष्ट लागै है। काहूकौं मेघवर्षा इष्टलागै है, काहूकौं अनिष्टलागै है। ऐसैंही अन्य जाननें। बहुरि याही प्रकार एक जीवकौं भी एक ही पदार्थ काहूकालविषै इष्ट लागै है काहूकालविषै अनिष्ट लागै है। बहुरि यहु जीव जाकौं मुख्यपनैं इष्ट मानैं सो भी अनिष्ट होता देखिए है। इत्यादि जानने। जैसैं शरीर इष्ट है सो रोगादिसहित होय तब अनिष्ट होइ जाय। पुत्रादिक इष्ट हैं सो कारणपाय अनिष्ट होते देखिए है। इत्यादि जाननें। बहुरि यहु जीव जाकौं मुख्यपनै अनिष्ट मानैं सो भी इष्ट होता देखिये है। जैसैं गाली अनिष्ट लागै है सो सासरेमैं इष्ट लागै है। इत्यादि जाननें। ऐसैं पदार्थनिविषैं इष्ट अनिष्टपनौं है नाहीं। जो पदार्थविषैं इष्ट अनिष्टपनौ होतो, तौ जो पदार्थ इष्ट होता, सो सर्वको इष्ट ही होता जो अनिष्ट होता सो अनिष्ट ही होता, सौ है नाहीं। यहु जीव आप ही कल्पनाकरि तिनकौं इष्ट अनिष्ट मानै है। सो यहु कल्पना झूठी है। बहुरि पदार्थ है सो सुखदायक उपकारी वा दुखदायक अनुपकारी हो है। सो आपही नाहीं हो है पुण्यपापके उदयके अनुसारि हो है

जाकै पुण्यका उदय हो है ताकै पदार्थनिका संयोग सुखदायक उपकारी हो है जाकै पापका उदयहो है ताकै पदार्थनिका संयोग दुखदायक अनुपकारी हो है सो प्रत्यक्ष देखिये है। काहूकै स्त्रीपुत्रादिक सुखदायक हैं काहूकै दुखदायक है व्यापार किए काहूकै नफा हो है काहूकै टोटा हो है। काहूकै शत्रुभी किंकर हो हैं। काहूकै पुत्र भी अहितकारी हो है। तातैं जानिये है पदार्थ आपही इष्ट अनिष्ट होते नाहीं। कर्म उदयके अनुसारि प्रवर्तैं हैं। जैसैं काहूकै किंकर अपने स्वामीके अनुसारि किसी पुरुषकौं इष्ट अनिष्ट उपजावैं तौ किछू किंकरनिका कर्तव्य नाहीं। उनके स्वामीका कर्तव्य है। जो किंकरनिहीकौं इष्ट अनिष्ट मानै सो झूठ है। तैसैं कर्मके उदयतैं प्राप्त भए पदार्थ कर्मके अनुसारि जीवकौं इष्ट अनिष्ट उपजावैं तौ किछू पदार्थनिका कर्त्तव्य नाहीं कर्मका कर्त्तव्य है जो पदार्थनिकौं इष्ट अनिष्ट मानै सो झूठ है। तातैं यहु वात सिद्ध भई कि पदार्थनिकौं इष्ट अनिष्ट मानि तिनिविषैं राग द्वे करना मिथ्या है।

इहां कोऊ कहै कि बाह्य वस्तुनिका संयोग कर्मनिमित्ततैं वनै है तौ कर्मनिविषैं तौ रागद्वेष करना।

ताका समाधान—कर्म तौ जड़ हैं उनकै किछू सुख दुःख देनेकी इच्छा नाहीं। वहुरि वै स्वयमेवतौ कर्मरूप परिणमैं नाहीं। याके भावनिके निमित्ततैं कर्मरूप हो हैं। जैसैं कोऊ अपने हाथ करि भाटा[1] लेइ अपना सिर फोरै तौ भाटाका कहा दोष है? तैसैं ही जीव अपने रागादिक भावनिकरि पुद्गलकौं कर्मरूप परिणमाय अपना

---

[1] पत्थर

बुरा करै तो कर्मके कहा दोष है। तातैं कर्मस्यौं भी रागद्वेष करना मिथ्या है। या प्रकार परद्रव्यनिकौं इष्ट अनिष्ट मानि रागद्वेष करना मिथ्या है। जो परद्रव्य इष्ट अनिष्ट होता अर तहाँ रागद्वेष करता तौ मिथ्या नाम न पाता, वे तौ इष्ट अनिष्ट हैं नाहीं अर यहु इष्ट अनिष्ट मानि रागद्वेष करै, तातैं इनि परिणामनिकौं मिथ्या कह्या है। मिथ्यारूप जो परिणमन ताका नाम मिथ्याचारित्र है।

अब इस जीवकै रागद्वेष होय हैं, ताका विधान वा विस्तार दिखाइए है—

[रागद्वेषकी प्रवृत्ति]

प्रथम तौ इस जीवकै पर्यायविषैं अहंबुद्धि है सो आपकौं वा शरीरकौं एक जानि प्रवर्तै है। बहुरि इस शरीरविषैं आपकौं सुहावै ऐसी इष्ट अवस्था हो है, तिसविषै राग करै है। आपकौं न सुहावै ऐसी अनिष्ट अवस्था है तिसविषै द्वेष करै है। बहुरि शरीरकी इष्ट अवस्थाके कारणभूत बाह्य पदार्थनिविषै तौ राग करै है अर ताके घातकनिविषै द्वेष करै है। बहुरि शरीरकी अनिष्ट अवस्थाके कारणभूत बाह्य पदार्थनिविषै तौ द्वेष करै है अर ताके घातकनिविषैं राग करै है। बहुरि इनिविषैं जिन बाह्य पदार्थनिसौं राग करै हैं तिनिके कारनभूत अन्य पदार्थनिविषै राग करै हैं तिनिके घातकनिविषैं द्वेष करै है। बहुरि जिन बाह्य पदार्थनिस्यौं राग करै हैं तिनिके कारनभूत अन्य पदार्थनिविषै द्वेष करै हैं तिनिके घातकनिविषैं राग करै है। बहुरि इनिविषैं भी जिनस्यौं राग करै हैं तिनिके कारण वा घातक अन्य पदार्थनिविषै राग वा द्वेष करै हैं। अर जिनस्यौं द्वेष है तिनि-

के कारण वा घातक अन्य पदार्थनिविषै द्वेष वा राग करै है। ऐसैं ही राग द्वेषकी परंपरा प्रवर्तै है। बहुरि केई वाह्य पदार्थ शरीरकी अवस्थाकौं कारण नाहीं तिनिविषैं भी रागद्वेष करै है। जैसैं गऊ आदिके पुत्रादिकतैं किछू शरीरका इष्ट होय नाहीं, तथापि तहां राग करै है। जैसैं कूकरा आदिकै बिलाई आदिक आवतैं किछू शरीरका अनिष्ट होय नाहीं तथापि तहां द्वेष करै है। बहुरि केई वर्ण गन्ध शब्दादिकके अवलोकनादिकतैं शरीरका इष्ट होता नाहीं तथापि तिनिविषै राग करै है। केई वर्णादिकके अवलोकनादिकतैं शरीरके अनिष्ट होता नाहीं, तथापि तिनिविषै द्वेष करै है। ऐसैं भिन्न वाह्य पदार्थनिविषैं रागद्वेष हो है। बहुरि इनिविषै भी जिनस्यौं राग करै है तिनिके कारण अर घातक अन्यपदार्थनिविषैं राग वा द्वेष करै है। अर जिनस्यौं द्वेष करै है तिनिके कारण वा घातक अन्यपदार्थ तिनिविषै द्वेष वा राग करै है। ऐसैंही यहांभी रागद्वेषकी परंपरा प्रवर्तै है।

इहां प्रश्न—जो अन्यपदार्थनिविषै तौ रागद्वेषकरनेका प्रयोजन जान्या, परन्तु प्रथम ही तौ मूलभूत शरीरकी अवस्थाविषै वा शरीर की अवस्थाकौं कारण नाहीं, तिनिपदार्थनिविषैं इष्ट अनिष्ट मानने का प्रयोजन कहा है?

ताका समाधान—जो प्रथम मूलभूत शरीरकी अवस्था आदिक हैं तिनिविषै भी प्रयोजन विचारि राग करै तौ मिथ्याचारित्र काहेकौं नाम पावै तिनिविषै विना ही प्रयोजन रागद्वेष करै है अर तिनिहीके अर्थि अन्यस्यौं रागद्वेष करै तातैं सर्व रागद्वेष परिणतिका नाम मिथ्याचारित्र कह्या है।

इहां प्रश्न—जो शरीरकी अवस्था वा बाह्य पदार्थनिविषै इष्ट अनिष्ट माननेका प्रयोजन तौ भासै नाहीं अर इष्ट अनिष्ट माने बिना रह्या जाता नाहीं, सो कारण कहा है ?

ताका समाधान—इस जीवकै चारित्रमोहका उदयतैं रागद्वेष भाव होय सो ए भाव कोई पदार्थका आश्रयबिना होय सकै नाहीं। जैसैं राग होय सो कोई पदार्थविषै होय। द्वेष होय सो कोई पदार्थविषै ही होय। ऐसैं तिनिपदार्थनिकै अर रागद्वेषके निमित्तनैमित्तिक संबंध है। तहां विशेष इतना जो केई पदार्थ तौ मुख्यपनै रागकौं कारण हैं। केई पदार्थ मुख्यपनै द्वेषकौं कारण हैं। केई पदार्थ काहूकौं काहूकालविषैं रागके कारण हो हैं, काहूकौं काहूकालविषैं द्वेषके कारण हो हैं। इहां इतना जानना—एक कार्य होनेविषैं अनेक कारण चाहिए हैं सो रागादिक होनेविषैं अन्तरंग कारण मोहका उदय है, सो तौ बलवान् है। अर बाह्य कारण पदार्थ है सो बलवान् नाहीं है। महामुनिनिकै मोह मन्द होतैं बाह्य पदार्थनिका निमित्त होतैं भी रागद्वेष उपजते नाहीं। पापी जीवनिकै मोह तीव्र होतै बाह्यकारण न होतैं भी तिनिका संकल्पहीकरि रागद्वेष हो है। तातैं मोहका उदय होतैं रागादिक हो हैं। तहां जिस बाह्यपदार्थका आश्रयकरि रागभाव होना होय, तिसविषै बिना ही प्रयोजन वा किछू प्रयोजनलिए इष्टबुद्धि हो है। बहुरि जिस पदार्थका आश्रयकरि द्वेषभाव होना होय, तिसविषैं बिना ही प्रयोजन वा किछू प्रयोजनलिए अनिष्टबुद्धि हो है। तातैं मोहका उदयतैं पदार्थनिकौं इष्ट अनिष्ट माने बिना रह्या जाता नाहीं है। ऐसैं पदार्थनिकै विषैं इष्ट अनिष्टबुद्धि होतैं जो रागद्वेष परिणमन

होय ताका नाम मिथ्याचारित्र जानना। बहुरि इनि रागद्वेषनिहीके विशेष क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेदरूप कषायभाव हैं ते सर्व इस मिथ्याचारित्रहीके भेद जाननें। इनिका वर्णन पूर्वैं कियाही है। बहुरि इस मिथ्याचारित्रविषैं स्वरूपाचरणचारित्रका अभाव है तातैं याका नाम अचारित्र भी कहिए। बहुरि यहां परिणाम मिटैं नाहीं, अथवा विरक्त नाहीं, तातैं याहीका नाम असंयम कहिए है वा अविरत कहिए है। जातैं पांच इन्द्रिय अर मनके विषयनिविषैं बहुरि पंचस्थावर अर त्रसकी हिंसाविषैं स्वच्छन्दपना होय। अर इनिके त्यागरूप भाव न होय सोई असंयम वा अविरति बारह प्रकार कह्या है सो कषायभाव भए ऐसैं कार्य हो हैं। तातैं मिथ्याचारित्रका नाम असंयम वा अविरति जानना। बहुरि इसही का नाम अव्रत जानना। जातैं हिंसा अनृत स्तेय अब्रह्म, परिग्रह इनि पापकार्यनिविषैं प्रवृत्तिका नाम अव्रत है। सो इनिका मूलकारण प्रमत्तयोग कह्या है। प्रमत्तयोग है सो कषायमय है तातैं मिथ्याचारित्रका नाम अव्रत भी कहिए है। ऐसैं मिथ्याचारित्रका स्वरूप कह्या। या प्रकार इस संसारी जीवकै मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्ररूप परिणमन अनादितैं पाइए है। सो ऐसा परिणमन एकेन्द्रिय आदि असंज्ञीपर्यंततौ सर्वजीवनिकै पाइए है। बहुरि संज्ञी पंचेन्द्रियनिविषै सम्यग्दृष्टी बिना अन्य सर्व जीवनिकै ऐसा ही परिणमन पाइए है। परिणमनविषै जैसा जहां संभवै तैसा तहां जानना। जैसैं एकेन्द्रियादिककै इंद्रियादिकनिकी हीनता अधिकता पाइए है वा धन पुत्रादिक का संबंध मनुष्यादिककै

ही पाइए है सो इनिकै निमित्ततैं मिथ्यादर्शनादिकका वर्णन किया है। तिसविषैं जैसा विशेष संभवै तैसा जानना। बहुरि एकेन्द्रिय जीव इन्द्रिय शरीरादिक का नाम जानै नाहीं है; परंतु तिस नामका अर्थरूप जो भाव है तिसविषै पूर्वोक्त प्रकार परिणमन पाइए है। जैसैं मैं स्पर्शनकरि स्परसौं हौं,शरीर मेरा है ऐसा नाम न जानै है तथापि इसका अर्थरूप जो भाव है तिस रूप परिणमै है। बहुरि मनुष्यादिकके केई नाम भी जानै है अर ताके भावरूप परिणमैं है। इत्यादि विशेष संभवै सो जान लैना। ऐसैं ए मिथ्यादर्शनादिकभाव जीवकै अनादितैं पाइये है नवीन ग्रहे नाहीं। देखो याकी महिमा कि जो पर्याय धरै है तहां बिनाही सिखाए मोहके उदयतैं स्वमेव ऐसा ही परिणमन हो है। बहुरि मनुष्यादिककै सत्य विचार होनेके कारण मिलैं तौ भी सम्यक् परिणमन होय नाहीं। श्रीगुरुके उपदेशका निमित्त बनैं, वै बारबार समझावैं, यहु किछू विचार करै नाहीं। बहुरि आपकौं भी प्रत्यक्ष भासैं, सो तौ न मानैं, अर अन्यथा ही मानै। कैसैं, सो कहिए है—

मरण होतैं शरीर आतमा प्रत्यक्ष जुदा हो हैं। एक शरीरकौं छोरि आत्मा अन्य शरीर धरै है, सो व्यंतरादिक अपने पूर्व भवका सम्बन्ध प्रगट करते देखिए हैं। परन्तु याकै शरीरतैं भिन्नबुद्धि न होय सकै है। स्त्रीपुत्रादिक अपने स्वार्थके सगे प्रत्यक्ष देखिए हैं। उनका प्रयोजन न सधै तब ही विपरीत होते देखिए हैं। यहु तिनिविषैं ममत्व करै है। अर तिनिकै अर्थि नरकादिकविषैं गमनकौं कारण नाना पाप उपजावैं हैं। धनादिक सामग्री अन्यकी अन्यकैं होती

देखिए है यह तिनकौं अपनी मानै है। बहुरि शरीरकी अवस्था वा बाह्यसामग्री स्वयमेव होती विनशती दीसै है। यहु वृथा आप कर्त्ता हो है। तहां जो अपने मनोरथ अनुसारि कार्य होय ताकौं तौ कहै मैं किया। अर अन्यथा होय ताकौं कहै मैं कहा करौं? ऐसैं ही होना था वा ऐसैं क्यौं भया। ऐसा मानै, सो कै तौ सर्वका कर्त्ता ही होना था, कै अकर्त्ता रहना था। सो विचार नाहीं। बहुरि मरण अवश्य होगा ऐसा जानैं, परन्तु मरणका निश्चयकरि किछू कर्तव्य करै नाहीं। इस पर्यायसम्बन्धी ही यत्न करै है। बहुरि मरणका निश्चयकरि कबहूँ तौ कहै, मैं मरूंगा शरीरकौं जलावैंगे। कबहू कहै जस रह्या तौ हम जीवते ही हैं। कबहू कहै पुत्रादिक रहैंगे तौ मैं ही जीवौंगा। ऐसैं बाउलाकीसी नाईं वाकै किछू सावधानी नाहीं। बहुरि आपकौं परलोकविषै प्रत्यक्ष जाता जानै, ताका तौ इष्ट अनिष्टका किछू उपाय नाहीं। अर इहां पुत्र पोता आदि मेरी संततिविषै घनेकाल ताईं इष्ट रह्या करै अनिष्ट न होइ। ऐसैं अनेक उपाय करै है। काहूका परलोक भए पीछैं इस लोककी सामग्रीकरि उपकार भया देख्या नाहीं। परन्तु याकै परलोक होनेका निश्चय भए भी इस लोककी सामग्रीहीका यतन रहै है। बहुरि विषयकपायकी प्रवृत्तिकरि वा हिंसादि कार्यकरि आप दुखी होय, खेदखिन्न होय, औरनिका वैरी होय, इस लोकविषै निंद्य होय, परलोकविषै बुरा होय सो प्रत्यक्ष आप जानै तथापि तिनिहीविषै प्रवर्त्तै। इत्यादि अनेक प्रकार प्रत्यक्ष भासै ताकौं भी अन्यथा श्रद्दहै जानै आचरै, सो यह मोहका माहात्म्य है। ऐसैं यहु मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्र-रूप अनादितैं जीव परिणमैं है। इस ही परिणमनकरि संसारविषै

अनेक प्रकार दुख उपजावनहारे कर्मनिका सम्बन्ध पाइए है। एई भाव दुःखनिके बीज हैं अन्य कोई नाहीं। तातैं हे भव्य जो दुखतैं मुक्त भया चाहै तौ इनि मिथ्यादर्शनादिक विभावनिका अभाव करना यह ही कार्य है इस कार्यके किए तेरा परम कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषै मिथ्यादर्शनज्ञान-चारित्रका निरूपणरूप चौथा अधिकार सम्पूर्ण भया ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अधिकार

[विविधमत-समीक्षा]

दोहा

बहुविधि मिथ्यागहनकरि, मलिन भयो निजभाव।
ताको होत अभाव ह्वै, सहजरूप दरसाव ॥ १ ॥

अथ यहु जीव पूर्वोक्त प्रकारकरि अनादितैं मिथ्यादर्शनज्ञान-चारित्ररूप परिणमै है ताकरि संसारविषै दुख सहतो संतो कदाचित् मनुष्यादिपर्यायनिविषै विशेष श्रद्धानादि करनेकी शक्तिकों पावै। तहाँ जो विशेष मिथ्याश्रद्धानादिकके कारणनिकरि तिनि मिथ्या-श्रद्धानादिककों पोषै तौ तिस जीवका दुखतैं मुक्त होना अति दुर्लभ हो हैं। जैसैं कोई पुरुष रोगी है सो किछू सावधानीकों पाय कुपथ्य सेवन करै तौ उस रोगीका सुलझना कठिन ही होय। तैसैं यहु जीव मिथ्यात्वादि सहित है सो किछू ज्ञानादि शक्तिकों पाय विशेष विपरीत श्रद्धानादिकके कारणनिका सेवन करै, तौ इस जीवका मुक्त

होना कठिन ही होय। तातैं जैसैं वैद्य कुपथ्यनिका विशेष दिखाय तिनिके सेवनकौं निषेधै, तैसैं ही इहां विशेष मिथ्याश्रद्धानादिकके कारणनिका विशेष दिखाय तिनिका निषेध करिए है। इहां अनादितैं जे मिथ्यात्वादि भाव पाइए है ते तौ अगृहीतमिथ्यात्वादि जानने। जातैं ते नवीन ग्रहण किए नाहीं। बहुरि तिनिके पुष्ट करनेके कारणनिकरि विशेष मिथ्यात्वादिभाव होय ते गृहीतमिथ्यात्वादि जाननें। तहां अगृहीतमिथ्यात्वादिकका तौ पूर्वैं वर्णन किया है सो ही जानना। अर गृहीतमिथ्यात्वादिकका अब निरूपण कीजिए है सो जानना—

[गृहीत मिथ्यात्व]

कुदेव कुगुरु कुधर्म अर कल्पिततत्त्व तिनिका श्रद्धान सो तौ मिथ्यादर्शन है। बहुरि जिनिकैविषै विपरीत निरूपणकरि रागादि पोपे होय ऐसे कुशास्त्र तिनिविषैं श्रद्धानपूर्वक अभ्यास सो मिथ्याज्ञान है। बहुरि जिस आचरणविषैं कषायनिका सेवन होय अर ताकौं धर्मरूप अंगीकार करें सो मिथ्याचारित्र है। अब इनका विशेष दिखाइए है,—बहुरि इन्द्र लोकपाल इत्यादि। अद्वैतब्रह्म खुदा पीर पैगंबर इत्यादि। बहुरि भैरू क्षेत्रपाल देवी दिहाड़ी सती इत्यादि। बहुरि शीतला चौथि सांझी गणगोरि होली इत्यादि। बहुरि सूर्य चन्द्रमा ग्रह अऊत पितर व्यंतर इत्यादि। बहुरि गऊ सर्प इत्यादि। बहुरि अग्नि जल वृक्ष इत्यादि। बहुरि शास्त्र दवात वासण इत्यादि अनेक तिनिका अन्यथा श्रद्धानकरि तिनकौं पूजैं। बहुरि तिनकरि अपना कार्य सिद्ध किया चाहैं सो वै कार्य सिद्धिके कारन नाहीं, तातैं ऐसे श्रद्धानकौं गृहीतमिथ्यात्व

कहिए है। तहां तिनिका अन्यथा श्रद्धान कैसैं हो है सो कहिए है,—

[सर्वव्यापी अद्वैत ब्रह्म]

अद्वैतब्रम्हकौं[1]सर्वव्यापी सर्वका कर्त्ता मानैं सो कोई है नाहीं। प्रथम वाकौं सर्वव्यापी मानैं सो सर्व पदार्थ तौ न्यारे न्यारे प्रत्यक्ष हैं वा तिनिके स्वभाव न्यारे न्यारे देखिए है इनिकौं एक कैसैं मानिए है ? एक मानना तौ इनि प्रकारनिकरि है— एक प्रकार तौ यहु है—जो सर्व न्यारे न्यारे हैं तिनिके समुदायकी कल्पनाकरि ताका किछू नाम धरिए। जैसैं घोटक हस्ती इत्यादि भिन्न भिन्न हैं तिनिके समुदायका नाम सेना है। तिनितैं जुदा कोई सेना वस्तु नाहीं। सो इस प्रकारकरि सर्वपदार्थनिका जो नाम ब्रह्म है तौ ब्रह्म कोई जुदा वस्तु तौ न ठहर्‍या बहुरि एक प्रकार यहु है- जो व्यक्ति अपेक्षा तौ न्यारे न्यारे हैं तिनिकौं जाति अपेक्षा कल्पनाकरि एक कहिए है। जैसैं सौ घोटक (घोड़ा) हैं ते व्यक्तिअपेक्षा तौ जुदे जुदे सौ ही हैं तिनिके आकारादिककी समानता देखि एक जाति कहैं, सो वह जाति तिनतैं जुदी ही तौ कोई है नाहीं। सो इस प्रकारकरि जो सबनिकी कोई एक जाति अपेक्षा एक ब्रह्म मानिए है तौ ब्रह्म जुदा तौ कोई न ठहर्‍या।

बहुरि एक प्रकार यहु है जो पदार्थ न्यारे न्यारे हैं तिनिके

---

१ "सर्वं वै खल्विदं ब्रह्म" छान्दोग्योपनिषद् प्र० खं० १४ मं० १"
"नेह नानास्ति किंचन" कठोपनिषद् अ० २ व० ४१ मं० ११
"ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्मदक्षिणतश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्॥
—मुण्डको० खंड २, मं० ११

मिलापतैं एक स्कंध होय ताकौं एक कहिए। जैसैं जलके परमाणू न्यारे न्यारे हैं तिनिका मिलाप भए समुद्रादि कहिए। अथवा जैसैं पृथिवीके परमाणूनिका मिलाप भए घटआदि कहिए। सो इहां समुद्रादि वा घटादिक हैं ते तिन परमाणूनितैं भिन्न कोई जुदा तौ वस्तु नाहीं। सो इस प्रकारकरि जो सर्व पदार्थ न्यारे २ हैं परंतु कदाचित् मिलि एक हो जाय हैं सो ब्रह्म है, ऐसैं मानिए तौ इनितैं जुदा तौ कोई ब्रह्म न ठहरया। बहुरि एक प्रकार यहु है—अंग तौ न्यारे न्यारे हैं अर जाके अंग है सो अंगी एक है। जैसैं नेत्र हस्त-पादादिक भिन्न भिन्न हैं अर जाकैं ए हैं सो मनुष्य एक है। सो इस प्रकारकरि जो सर्व पदार्थ तौ अंग हैं अर जाकै ए हैं सो अंगी ब्रह्म है। यहु सर्व लोक विराटस्वरूप ब्रह्मका अंग है, ऐसैं मानिए तौ मनुष्यकै हस्तपादादिक अंगनिकै परस्पर अंतराल भए तौ एकत्वपना रहता नाहीं। जुड़े रहें ही एक शरीर नाम पावै। सो लोकविषै तौ पदार्थनिकै अंतराल परस्पर भासै हैं। याका एकत्वपना कैसैं मानिए? अंतराल भए भी एकत्व मानिए तौ भिन्नपना कहां मानिएगा।

इहां कोऊ कहै कि समस्त पदार्थनिके मध्यविषै सूक्ष्मरूप ब्रह्मके अंग हैं तिनिकरि सर्व जुरि रहे हैं ताकौं कहिए है,—

जो अंग जिस अंगतैं जुरया है तिसहीतैं जुरया रहै है कि टूटि टूटि अन्य अन्य अंगनिस्यौं जुरया करै है। जो प्रथम पक्ष ग्रहेगा तौ सूर्यादि गमन करै हैं, तिनिकी साथि जिन सूक्ष्म अंगनितैं वह जुरे हैं ते भी गमन करैं। बहुरि उनकौं गमन करते वे सूक्ष्म अंग अन्य स्थूल अंगनितैं जुरे रहैं, ते भी गमन करै हैं सो ऐसैं सर्व लोक अस्थिर

होइ जाय। जैसैं शरीरका एक अंग खींचैं सर्व अंग खींचे जांय, तैसैं एक पदार्थकौं गमनादि करतैं सर्व पदार्थनिका गमनादि होय, सो भासै नाहीं। बहुरि जो द्वितीय पक्ष ग्रहैगा, तो अंग टूटनेंतैं भिन्नपना होय ही जाय तब एकत्वपना कैसैं रह्या? तातैं सर्वलोकका एकत्वकौं ब्रह्म मानना कैसैं संभवै? बहुरि एक प्रकार यहु है—जो पहलैं एक था पीछैं अनेक भया, बहुरि एक होय जाय तातैं एक है। जैसैं जल एक था सो वासणनिमैं जुदा जुदा भया। बहुरि मिलै तब एक होय वा जैसैं सोनाका [1]गदा एक था सो कंकण कुंडलादिरूप भया, बहुरि मिलिकरि सोनाका एक गदा होय जाय। तैसैं ब्रह्म एक था, पीछैं अनेकरूप भया बहुरि एक होयगा तातैं एक ही है। इस प्रकार एकत्व मानै है, तौ जब अनेकरूप भया तब जुर्‌या रह्या कि भिन्न भया। जो जुर्‌या कहैगा तौ पूर्वोक्त दोष आवैंगा। भिन्न भया कहैगा तौ तिसकालि तौ एकत्व न रह्या। बहुरि जल सुवर्णादिककौं भिन्न भए भी एक कहिए है सो तौ एकजाति अपेक्षा कहिए है। सो सर्व पदार्थनिकी एक जाति भासै नाहीं। कोऊ चेतन है कोऊ अचेतन है इत्यादि अनेकरूप हैं तिनकी एक जाति कैसैं कहिए? बहुरि पहिले एक था पीछैं भिन्न भया मानै है, तौ जैसैं एक पाषाणादि फूटि टुकड़े होय जाय है तैसैं ब्रह्मके खंड होय गए, बहुरि तिनिका एकठा होना मानै है तौ तहां तिनिका स्वरूप भिन्न रहै है कि एक होइ जाय है। जो भिन्न रहै है तौ तहां अपने अपने स्वरूपकरि भिन्न ही है। अर एक होइ जाय है तौ जड़ भी चेतन होइ जाय वा चेतन जड़ होइ

१. डला या पासा।

जाय। तहां अनेक वस्तुनिका एक वस्तु भया, तब काहू कालविषैं अनेक वस्तु काहू कालविषैं एक एक वस्तु ऐसा कहना बनैं। अनादि अनंत एक ब्रह्म है ऐसा कहना बनै नाहीं। बहुरि जो कहैगा लोकरचना होतैं वा न होतैं ब्रह्म जैसाका तैसा ही रहै है, तातैं ब्रह्म अनादि अनंत है। सो हम पूछैं हैं लोकविषैं पृथिवी जलादिक देखिए है ते जुदे नवीन उत्पन्न भए हैं तौ ए न्यारे भए ब्रह्म न्यारा रहा, सर्वव्यापी अद्वैतब्रह्म न ठहरया। बहुरि जो ब्रह्म ही इन स्वरूप भया तौ कदाचित् लोक भया कदाचित् ब्रह्म भया तौ जैसाका तैसा कैसैं रह्या? बहुरि वह कहै हैं जो सब ही ब्रह्म तो लोकस्वरूप न हो है वाका कोई अंश हो है। ताकौं कहिए है,—जैसैं समुद्रका एक बिन्दु विषरूप भया तहां स्थूलदृष्टिकरि तौ गम्य नाहीं परंतु सूक्ष्मदृष्टि दिए तौ एकबिन्दुअपेक्षा समुद्रकै अन्यथापना भया। तैसैं ब्रह्मका एक अंश भिन्न होय एकरूप भया। तहां स्थूलविचारकरि तौ किछू गम्य नाहीं, परन्तु सूक्ष्मविचार किए तौ एक अंशअपेक्षा ब्रह्मकै अन्यथापना भया। यहु अन्यथापना और तौ काहूकै भया नाहीं। ऐसैं सर्वरूप ब्रह्मकौं मानना भ्रम ही है।

बहुरि एक प्रकार यहु है—जैसैं आकाश सर्वव्यापी एक है तैसैं ब्रह्म सर्वव्यापी एक है। सो इसप्रकार मानैं है, तौ आकाशवत् बड़ा ब्रह्मकौं मानि, वा जहां घटपटादिक हैं तहां जैसैं आकाश है तैसैं तहां ब्रह्म भी है ऐसा भी मांनि। परंतु जैसैं घटपटादिककौं अर आकाशकौं एक ही कहिए तौ कैसैं बनै? तैसैं लोककौं अर ब्रह्मकौं एक मानना कैसैं संभवै? बहुरि आकाशका तौ लक्षण सर्वत्र भासै है तातैं ताका तौ सर्वत्र सद्भाव मानिए है। ब्रह्मका तो लक्षण सर्वत्र भासता नाहीं, तातैं

ताका सर्वत्र सद्भाव कैसैं मानिए ? ऐसैं इस प्रकारकरि भी सर्वरूप ब्रह्म नाहीं है। ऐसैं ही विचारतैं किसी भी प्रकारकरि एक ब्रह्म संभवै नाहीं। सर्व पदार्थ भिन्न भिन्न ही भासै हैं।

इहां प्रतिवादी कहै है—जो सर्व एक ही है परंतु तुम्हारे भ्रम है, तातैं तुमकौं एक भासै नाहीं। बहुरि तुम युक्ति कही, सो ब्रह्मका स्वरूप युक्तिगम्य नाहीं। वचन अगोचर है। एक भी है अनेक भी है। जुदा भी है मिल्या भी है। वाकी महिमा ऐसी ही है तावैं कहिए है—

जो प्रत्यक्ष तुमकौं वा हमकौं वा सबनिकौं भासै, ताकौं तौ तू भ्रम कहै। अर युक्तिकरि अनुमान करिए सो तू कहै है कि सांचा स्वरूप युक्तिगम्य है ही नाहीं। बहुरि कहै सांचा स्वरूप वचन अगोचर है तौ वचन विना कैसैं निर्णय करै ? बहुरि कहै एक भी है अनेक भी है जुदा भी है मिल्या भी है सो तिनिकी अपेक्षा बतावै नाहीं, बाउले-कीसी नाईं ऐसैं भी है ऐसैं भी है ऐसा कहि याकौं महिमा बतावै ! सो जहां न्याय न होय है तहां झूठे ऐसे ही वाचालपना करै है, सो करो। न्याय तौ जैसैं सांच है तैसैं ही होयगा।

[ब्रह्मइच्छासे जगतकी सृष्टि]

बहुरि अब तिस ब्रह्मकौं लोकका कर्ता मानै हैं ताकौं मिथ्या दिखा-इए है—प्रथम तौ ऐसा मानै हैं जो ब्रह्मकै ऐसी इच्छा भई कि "एकोऽहं बहु स्यां" कहिए मैं एक हौं सो बहुत होस्यौं। तहां पूछिए है—पूर्व अव-स्थामैं दुखी होय तब अन्य अवस्थाकौं चाहै। सो ब्रह्म एकरूप अवस्था तैं बहुत रूप होनेकी इच्छा करी सो तिस एक रूप अवस्थाविषै कहा दुख था ? तब वह कहै है जो दुख तौ न था, ऐसा ही

कौतूहल उपज्या। ताकौं कहिए है–जो पूर्वै थोरा सुखी होय अर कुतूहल किए घना सुखी होय सो कुतूहल करना विचारै। सो ब्रम्हकै एक अवस्थातैं बहुत अवस्थारूप भए घना सुख होना कैसैं संभवै? बहुरि जो पूर्वै ही संपूर्ण सुखी होय, तौ अवस्था काहेकौं पलटै। प्रयोजन विना तौ कोई किछू कर्त्तव्य करै नाहीं। बहुरि पूर्वैं भी सुखी होगा इच्छा अनुसारि कार्य भए भी सुखी होगा; परंतु इच्छा भई तिसकाल तौ दुखी होय। तब वह कहै है ब्रह्मकै जिसकाल इच्छा हो है तिसकाल हीं कार्य हो है तातैं दुखी न हो है। तहां कहिए है,–स्थूलकालकी अपेक्षा तौ ऐसैं मानौ; परंतु सूक्ष्मकालकी अपेक्षा तौ इच्छाका अर कार्यका होना युगपत् सभवै नाहीं। इच्छा तौ तब ही होय जब कार्य न होय। कार्य होय तब इच्छा न रहै, तातैं सूक्ष्मकालमात्र इच्छा रही, तब तौ दुखी भया होगा। जातैं इच्छा है सो ही दुःख है और कोई दुःका स्वरूप है नाहीं। तातैं ब्रह्मकै इच्छा कैसैं बनैं?

[ब्रह्मकी माया।]

बहुरि वै कहै है इच्छा होतैं ब्रह्मकी माया प्रगट भई सो ब्रह्मकै माया भई तब ब्रह्म भी मायावी भया, शुद्धस्वरूप कैसैं रह्या? बहुरि ब्रह्मकै अर मायाकै दंडी दंडवत् संयोगसंवंध है कि अग्नि उष्णवत् समवायसंवंध है। जो संयोगसंवंध है तौ ब्रह्म भिन्न है माया भिन्न है अद्वैत ब्रह्म कैसैं रह्या? बहुरि जैसैं दंडी दंडकौं उपकारी जानि ग्रहै है तैसैं ब्रह्म मायाकौं उपकारी जानै है तौ ग्रहै है, नाहीं तौ काहेकौं ग्रहै? बहुरि जिस मायाकौं ब्रह्म ग्रहै ताका निषेध करना कैसैं संभवै, वह तौ उपादेय भई। बहुरि जो समवायसंवंध है तौ जैसैं अग्निका उष्णत्व

स्वभाव है तैसैं ब्रह्मका मायास्वभाव ही भया। जो ब्रह्मका स्वभाव है ताका निषेध करना कैसैं संभवै ? यहु तौ उत्तम भई।

बहुरि वे कहैं हैं कि ब्रह्म तौ चैतन्य है, माया जड़ है सो समवाय-संबंधविषै ऐसे दोय स्वभाय संभवै नाहीं। जैसैं प्रकाश अर अंधकार एकत्र कैसैं संभवैं ? बहुरि वह कहै है,—मायाकरि ब्रह्म आप तौ भ्रमरूप होता नाहीं, ताकी मायाकरि जीव भ्रमरूप हो है। ताकौं कहिए है,—जैसैं कपटी अपने कपटकौं आप जानै, सो आप भ्रमरूप न होय वाके कपटकरि अन्य भ्रमरूप होय जाय। तहां कपटी तौ वाहीकौं कहिए, जानै कपट किया। ताकै कपटकरि अन्य भ्रमरूप भए, तिनिकौं तौ कपटी न कहिए। तैसैं ब्रह्म अपनी मायाकौं आप जानै सो आप तौ भ्रमरूप न होय वाकी मायाकरि अन्य जीव भ्रमरूप होइ है। तहां मायावी तौ ब्रह्महीकौं कहिए, ताकी मायाकरि अन्य जीव भ्रमरूप भए तिनकौं मायावी काहेकौं कहिए है।

बहुरि पूछिए है वे जीव ब्रह्मतैं एक हैं कि न्यारे हैं। जो एक हैं तौ जैसैं कोऊ आप ही अपने अंगनिकौं पीड़ा उपजावै तौ ताकौं बावला कहिए है। तैसैं ब्रह्म आप ही आपतैं भिन्न नाहीं ऐसे अन्य जीव तिनिकौं मायाकरि दुखी करै है सो कैसैं बनै बहुरि जो न्यारे हैं तौ जैसैं कोऊ भूत बिना ही प्रयोजन औरनिकौं भ्रम उपजाय पीड़ा उपजावै तैसैं ब्रह्म बिना ही प्रयोजन अन्य जीवनिकौं माया उपजाय पीड़ा उपजावै सो भी बनै नाहीं, ऐसैं माया ब्रह्मकी कहिए है, सो कैसैं संभवै ?

[जीवोंकी चेतनाको ब्रह्मकी चेतना मानना]

बहुरि वे कहै हैं माया होतैं लोक निपज्या तहां जीवनिकै जो

चेतना सो तौ ब्रह्मस्वरूप है। शरीरादिक माया है, तहां जैसैं जुदे जुदे बहुत पात्रनिविषै जल भर्‍या है तिन सबनिविषै चन्द्रमाका प्रतिबिंब जुदा जुदा पड़ै है। चंद्रमा एक है। तैसैं जुदे जुदे बहुत शरीरनिविषैं ब्रह्मका चैतन्य प्रकाश जुदा जुदा पाइए है। ब्रह्म एक है। तातैं जीवनिकैं चेतना है सो ब्रह्महीकी है। सो ऐसा कहना भी भ्रम ही है। जातैं शरीर जड़ है याविषैं ब्रह्मका प्रतिबिंबतैं चेतना भई,तौ घटपटादि जड़ हैं तिनविषैं ब्रह्मका प्रतिबिंब क्यौं न पड्या अर चेतना क्यौं न भई ? बहुरि वह कहै है शरीरकौं तौ चेतन नाहीं करै है जीवकौं करै है। तब वाकौं पूछिए है कि जीवका स्वरूप चेतन है कि अचेतन है। जो चेतन है तौ चेतनका चेतन कहा करैगा। अचेतन है तौ शरीरकी वा घटादिककी वा जीवकी एक जाति भई। बहुरि वाकौं पूछिए है-ब्रह्मकी अर जीवनिकी चेतना एक है कि भिन्न है। जो एक है तौ ज्ञानका अधिक हीनपना कैसैं देखिए है। बहुरि ए जीव परस्पर वह वाकी जानीकौं न जानै वह वाकी जानीकौं न जानै सो कारण कहा ? जो तू कहैगा यहु घट उपाधिका भेद है तौ घटउपाधि होतैं तौ चेतना भिन्न भिन्न ठहरी। घटउपाधि मिटैं याकी चेतना ब्रह्ममैं मिलैगी कै नाश हो जायगी ? जो नाश हो जायगी तौ यहु जीव तौ अचेतन रहि जायगा। अर तू कहैगा जीव ही ब्रह्ममैं मिलि जाय है तौ तहां ब्रह्मविषैं मिलैं याका अस्तित्व रहै है कि नाहीं रहै है। जो अस्तित्व रहै है तौ यहु रह्या, याकी चेतना याकैं रही, ब्रह्मविषै कहा मिल्या ? अर जो अस्तित्व न रहै है तौ याका नाश ही भया ब्रह्मविषै कौन मिल्या ? बहुरि जो तू कहैगा ब्रह्मकी अर जीवनिकी चेतना भिन्न

भिन्न है तौ ब्रह्म अर सर्वजीव आप ही भिन्न भिन्न ठहरे। ऐसैं जीवनिकै चेतना है सो ब्रह्मकी है। ऐसैं भी बनै नाहीं।

[शरीरादिकका मायारूप होना]

शरीरादि मायाके कहो सो माया ही हाड मांसादिरूप हो है कि मायाके निमित्ततैं और कोई तिनरूप हो है। जो माया ही होय है तौ मायाकै वर्ण गंधादिक पूर्वै ही थे कि नवीन भए। जो पूर्वै ही थे तौ पूर्वै तौ माया ब्रह्मकी थी, ब्रह्म अमूर्त्तीक है तहाँ वर्णादि कैसैं संभवै ? बहुरि जो नवीन भए तौ अमूर्त्तीकका मूर्त्तिक भया तब अमूर्त्तीकस्वभाव शाश्वता न ठहर्या। बहुरि जो कहैगा मायाके निमित्ततैं और कोई हो है तौ और पदार्थ तौ तू ठहरावता ही नाहीं, भया कौन ? जो तू कहैगा नवीन पदार्थ निपजे। तौ ते मायातैं भिन्न निपजे कि अभिन्न निपजे। मायातैं भिन्न निपजे तौ मायामयी शरीरादिक काहेकौं कहै। वै तौ तिनपदार्थमय भये। अर अभिन्न निपजे तौ माया ही तद्रूप भई, नवीन पदार्थ निपजे काहेकौं कहै। ऐसैं शरीरादिक मायास्वरूप हैं ऐसा कहना भ्रम है।

बहुरि वै कहै हैं मायातैं तीन गुण निपजे—राजस १ तामस २ सात्त्विक ३। सो यहु भी कहना कैसैं बनै ? जातैं मानादि कषायरूप भावकौं राजस कहिए है, क्रोधादिकषायरूप भावकौं तामस कहिए है, मंदकषायरूप भावकौं सात्त्विक कहिए है। सो ए तौ भाव चेतनामई प्रत्यक्ष देखिए है। अर मायाका स्वरूप जड़ कहो हो, सो जड़तैं ए भाव कैसैं निपजैं। जो जड़कै भी होंइ तौ पाषाणादिककै भी होंय। सो तौ चेतनास्वरूप जीव तिनिहीकै ए भाव दीसैं हैं। तातैं ए भाव मायातैं निपजे नाहीं। जो मायाकौं चेतन ठहरावै तौ यहु मानैं। सो

मायाकौं चेतन ठहराए शरीरादिक मायातैं निपजे कहैगा तौ न मानैंगे, तातैं निर्द्धारकर, भ्रमरूप मानैं नफा कहा है ?

बहुरि वै कहै हैं तिनिगुणनितैं ब्रह्मा विष्णु महेश ए तीन देव प्रगट भए सो कैसैं संभवै है ? जातैं गुणीतैं तौ गुण होंइ गुणतैं गुणी कैसैं निपजै। पुरुषतैं तौ क्रोध होय क्रोधतैं पुरुष कैसैं निपजै। बहुरि इनि गुणनिको तौ निन्दा करिए है। इनिकरि निपजे ब्रह्मादिक तिनिकौं पूज्य कैसैं मानिए है। बहुरि गुण तौ मायामई अर इनिकौं ब्रह्मके अवतार[1] कहिए है सो ए तौ मायाके अवतार भए, इनिकौं ब्रह्मके अवतार कैसैं कहिए है ? बहुरि ए गुण जिनिकै थोरे भी पाइए तिनिकौं तौ छुड़ावनेका उपदेश दीजिए अर जे इनिहीकी मूर्ति तिनिकौं पूज्य मानिए। यह कहा भ्रम है। बहुरि तिनिका कर्त्तव्य भी इनमई भासै है। कुतूहलादिक वा स्त्रीसेवनादिक वा युद्धादिक कार्य करै हैं सो तिनि राजसादि गुणनिकरि ही ये क्रिया हो है। सो इनिकै राजसादिक पाइये हैं ऐसा कहौ। इनिकौं पूज्य कहना परमेश्वर कहना तौ बनै नाहीं। जैसैं अन्य संसारी हैं तैसैं ए भी हैं। बहुरि कदाचित् तू कहैगा, संसारी तौ मायाके आधीन हैं सो विना जाने तिन कार्य-

---

१ ब्रह्मा, विष्णु और शिव यह तीनों ब्रह्मकी प्रधान शक्तियाँ हैं।

—विष्णुपु० अ० २२–५८

कल्पकालके प्रारम्भमें परमब्रह्म परमात्माने रजोगुणसे उत्पन्न होकर ब्रह्मा बनकर प्रजाकी रचना की। प्रलयके समय तमोगुणसे उत्पन्न हो काल (शिव) बनकर उस सृष्टिको ग्रस लिया। उसी परमात्माने सत्वगुणसे उत्पन्न हो नारायण बनकर समुद्रमें शयन किया। —वायुपु० अ० ७,६८-६९।

निकौं करै हैं। ब्रह्मादिककै माया आधीन है सो ए जानते ही इनि कार्यनिकौं करे हैं सो यहु भी भ्रम ही है। जातैं मायाकै आधीन भए तौ काम क्रोधादिही निपजै हैं और कहा हो है। सो ए ब्रह्मादिकनिकै तौ कामक्रोधादिककी तीव्रता पाइए है। कामकी तीव्रताकरि स्त्रीनिकै वशीभूत भए नृत्यगानादि करते भए, विह्वल होते भए, नानाप्रकार कुचेष्टा करते भए, बहुरि क्रोधके वशीभूत भए अनेक युद्धादि कार्य करते भए, मानके वशीभूत भए आपकी उच्चता प्रकट करने के अर्थि अनेक उपाय करते भए, मायाकै वशीभूत भए अनेक छल करते भए, लोभकै वशीभूत भए परिग्रहका संग्रह करते भए इत्यादि बहुत कहा कहिए। ऐसैं वशीभूत भए, चीरहरणादि निर्लज्जनिकी क्रिया और दधि लुन्टनादि चौरनिकी क्रिया, अर रुंडमाला धारणादि बाउलेनिकी क्रिया,[1] बहुरूपधारणादि भूतनिकी क्रिया, गौचरावणादि नीच कुलवालों की क्रिया इत्यादि जे निंद्यक्रिया तिनिकौं तौ करते भए, यातैं अधिक मायाके वशीभूत भए कहा क्रिया हो है सो जानी न परी। जैसैं कोऊ मेघपटलसहित अमावस्याकी रात्रिकौं अंधकार रहित मानैं तैसैं बाह्य कुचेष्टासहित तीव्र काम क्रोधादिकनिके धारी ब्रह्मादिकनिकौं माया-रहित मानना है।

बहुरि वह कहै कि इनिकौं कामक्रोधादि व्याप्त नाही ऐसा यहु भी परमेश्वरकी लीला है। याकौं कहिए है—ऐसै कार्य करै है ते इच्छाकरि करैं है कि बिना इच्छा करै है। जो इच्छाकरि करै

1 नानारूपाय मुण्डाय वरूथपृथुदण्डिने ।
नमः कपालहस्ताय दिग्वाससाय शिखण्डिने ॥ [illegible]

हैं तौ स्त्रीसेवनकी इच्छाहीका नाम काम है युद्ध करनेकी इच्छाहीका नाम क्रोध है इत्यादि ऐसैं ही जानना। बहुरि जे विना इच्छा करै हैं है तौ आप जाकौं न चाहै ऐसा कार्य त ...वश भए ही होइ, सो परवशपना कैसैं संभवै? बहुरि तू लीला बतावै है सो परमेश्वर अवतार धारि इन कार्यनिकरि लीला करै है तौ अन्य जीवनिकौं इनि कार्यनितैं छुड़ाय मुक्त करनेका उपदेश काहेंकौं दीजिए है। क्षमा सन्तोष शील संयमादिकका उपदेश सर्व झूठा भया।

बहुरि वह कहै है कि परमेश्वरकौं तौ किछू प्रयोजन नाहीं। लोकरीतिकी प्रवृत्तिके अर्थि वा भक्तनिकी रक्षा दुष्टनिका निग्रह ताके अर्थि अवतार धरै[१] है। तौ याकौं पूछिए है– प्रयोजन विना चीटी हू कार्य न करै, परमेश्वर काहेकौं करै। बहुरि प्रयोजन भी कहो लोकरीतिकी प्रवृत्तिके अर्थि करै है। सो जैसैं कोई पुरुष आप कुचेष्टाकरि अपने पुत्रनिकौं सिखावै, बहुरि वह तिस चेष्टारूप प्रवर्तै तब उनकौं मारै, तौ ऐसै पिताकौं भला कैसैं कहिए। तैसैं ब्रह्मादिक आप कामक्रोधरूप चेष्टाकरि अपने निपजाए लोकनिकौं प्रवृत्ति करावै। बहुरि वह लोक तैसैं प्रवर्तै तब उनकौं नरकादिकविषैं डारै। नरकादिक इनही भावनिका फल शास्त्रविषैं लिख्या है सो ऐसै प्रभुकौं भला कैसैं मानिए? बहुरि तैं यहु प्रयोजन कह्या कि भक्तनिकी रक्षा दुष्टनिका निग्रह करना सो भक्तनिकौं दुखदायक जे दुष्ट भए ते परमेश्वरकी इच्छाकरि भए कि विना इच्छाकरि भए।

१—परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥८॥—गीता ४—८

जो इच्छाकरि भए तौ जैसैं कोऊ अपने सेवककौं आप ही काहूकौं कहकरि मरावै बहुरि पीछे तिस मारनेवालेकौं आप मारै सो ऐसे स्वामीकौं भला कैसैं कहिए। तैसैं ही जो अपने भक्तकौं आप ही इच्छाकरि दुष्टनिकरि पीड़ित करावै बहुरि पीछैं तिनि दुष्टनिकौं आप अवतार धारि मारै तौ ऐसे ईश्वरकौं भला कैसैं मानिए? बहुरि जो तू कहैगा कि विना इच्छा दुष्ट भए तौ कै तौ परमेश्वरकै ऐसा आगामी ज्ञान न होगा जो ए दुष्ट मेरे भक्तनिकौं दुख देवैंगे कै पहिलैं ऐसे शक्ति न होगी जो इनिकौं ऐसे न होनै दे। बहुरि याकौं पूछिए है जो ऐसे कार्यके अर्थि अवतार धारया, सो कहा, विना अवतार धारें शक्ति थी कि नाहीं। जो थी तौ अवतार काहेकौं धारै, अर न थी तौ पीछैं सामर्थ्य होनेका कारण कहा भया। तब वह कहै है ऐसैं किए विना परमेश्वरकी महिमा प्रगट कैसैं होय। याकौं पूछिए है कि अपनी महिमाके अर्थि अपने अनुचरनिका पालन करै प्रतिपक्षीनिका निग्रह करै सो ही राग-द्वेष है। सो रागद्वेष तौ लक्षण संसारी जीवका है। जो परमेश्वरकै भी रागद्वेष पाइए है तौ अन्य जीवनिकौं रागद्वेष छोरि समता भाव करनेका उपदेश काहेकौं दीजिए। बहुरि रागद्वेषकै अनुसारि कार्य करना विचारया सो कार्य थोरे वा बहुत काल लागे विना होय नाहीं, तावत् काल आकुलता भी परमेश्वरकै होती होसी। बहुरि जैसैं जिस कार्यकौं छोटा आदमी ही कर सकै तिस कार्यकौं राजा आप आय करै तौ किछू राजाकी महिमा होती नाहीं, निंदा ही होय। तैसैं जिस कार्यकौं राजा वा व्यंतरदेवादिक करि सकैं तिस कार्यकौं परमेश्वर आप अवतार धारि करै ऐसा

मानिए तौ किछू परमेश्वरकी महिमा होती नाहीं, निंदा ही है। बहुरि महिमा तौ कोई और होय ताकौं दिखाइए है। तू तौ अद्वैत ब्रह्म मानैं है कौनकौं महिमा दिखावै है। अर महिमा दिखावनेका फल तौ स्तुति करावना है सो कौंनपै स्तुति कराया चाहै है। बहुरि तू तौ कहै है सर्व जीव परमेश्वरकी इच्छा अनुसारि प्रवर्तै हैं अर आपकै स्तुति करावनेकी इच्छा है तौ सबकौं अपनी स्तुतिरूप प्रवर्त्तावो काहेकौं अन्य कार्य करना परै। तातैं महिमाके अर्थि भी कार्य करना न बनैं।

बहुरि वह कहै है—परमेश्वर इनि कार्यनिकौं करता संता भी अकर्त्ता है याका निर्द्धार होता नाहीं। याकौं कहिए है—तू कहैगा वह मेरी माता भी है अर बांझ भी है तो तेरा कहा कैसैं मानैंगे। जो कार्य करै ताकौं अकर्त्ता कैसैं मानिए। अर तू कहै निर्द्धार होता नाहीं सो निर्द्धार विना मानि लैंना ठहर्‌या तौ आकाशके फूल, गधेके सींग भी मानो, ऐसा असंभव कहना युक्त नाहीं। ऐसैं ब्रह्मा, विष्णु, महेशका होना कहै हैं, सो मिथ्या जानना।

बहुरि वै कहै हैं—ब्रह्मा तौ सृष्टिकौं उपजावै है, विष्णु रक्षा करै है, महेश संहार करै है। सो ऐसा कहना भी न संभवै है। जातैं इनि कार्यनिकौं करतैं कोऊ किछू किया चाहै कोऊ किछू किया चाहै तव परस्पर विरोध होय। अर जो तू कहैगा ए तौ एक परमेश्वरका ही स्वरूप है विरोध काहेकौं होय। तौ आप ही उपजावै आप ही क्षपावै ऐसे कार्यमें कौन फल है। जो सृष्टि आपकौं अनिष्ट है तौ काहेकौं उपजाई। अर इष्ट है तौ काहेकौं क्षपोई। अर जो पहिलै इष्ट

लागी, तब उपजाई, पीछैं अनिष्ट लागी तब ढ्पाई ऐसैं है तौ परमेश्वर का स्वभाव अन्यथा भया कि सृष्टिका स्वरूप अन्यथा भया। जो प्रथम पक्ष ग्रहैगा तौ परमेश्वरका एक स्वभाव न ठहर्या। सो एक स्वभाव न रहनेका कारण कौन है? सो बताय, बिनाकारण स्वभावकी पलटनि काहेकौं होय। अर द्वितीय पक्ष ग्रहैगा तौ सृष्टि तौ परमेश्वर के आधीन थी वाकौं ऐसी काहेकौं होनैं दीनी, जो आपकौं अनिष्ट लागै।

बहुरि हम पूछै हैं—ब्रह्मा सृष्टि उपजावै है सो कैसैं उपजावै है। एक तौ प्रकार यहु है—जैसैं मंदिर चुननेवाला चूना पत्थर आदि सामग्री एकठीकरि आकारादि बनावै है। तैसैं ही ब्रह्मा सामग्री एकठीकरि सृष्टि रचना करै है तौ ए सामग्री जहांतैं ल्याय एकठी करी सो ठिकाना बताय। अर एक ब्रह्मा ही एती रचना बनाई, सो पहिलै पीछैं बनाई होगी कै अपने शरीरकै हस्तादि बहुत किए होंगे सो कैसैं है सो बताय। जो बतावैगा तिसहीमैं विचार किए विरुद्ध भासैगा।

बहुरि एक प्रकार यहु है—जैसैं राजा आज्ञा करै ताके अनुसार कार्य होय, तैसैं ब्रह्माकी आज्ञाकरि सृष्टि निपजै है तौ आज्ञा कौनकौं दई। अर जिनिकौं आज्ञा दई वै कहांतैं सामग्री ल्याय कैसैं रचना करै है, सो बताय।

बहुरि एक प्रकार यहु है—जैसैं ऋद्धिधारी इच्छा करै ताके अनुसारि कार्य स्वयमेव बनै। तैसैं ब्रह्मा इच्छा करै ताके अनुसारि सृष्टि निपजै है, तौ ब्रह्मा तौ इच्छाहीका कर्त्ता भया। लोक तौ स्वयमेव ही निपज्या। बहुरि इच्छा तौ परमब्रह्म कीनी थी [illegible]

कर्त्तव्य कहा भया, जातैं ब्रह्माकौं सृष्टिका निपजावनहारा कह्या। बहुरि तू कहैगा परमब्रह्म भी इच्छा करी अर ब्रह्मा भी इच्छा करी तब लोक निपज्या, तो जानिए है केवल परमब्रह्मकी इच्छा कार्यकारी नाहीं। तहां शक्तिहीनपना आया।

बहुरि हम पूछैं हैं—जो लोक केवल बनाया हुवा बनै है तौ बनावनहारा तौ सुखके अर्थि बनावै सो इष्ट ही रचना करै। इस लोकविषैं तौ इष्ट पदार्थ थोरे देखिए है, अनिष्ट घनें देखिए है। जीवनिविषै, देवादिक बनाए सो तौ रमनेके अर्थि वा भक्ति करावनेके अर्थि बनाए अर लट कीड़ी कूकर सूअर सिंहादिक बनाये सो किस अर्थि बनाए। ए तौ रमणीक नाहीं। भक्ति करते नाहीं। सर्व प्रकार अनिष्ट ही हैं। बहुरि दरिद्री दुखी नारकीनिकौं देखें आपकौं जुगुप्सा ग्लानि आदि दुख उपजै ऐसे अनिष्ट काहेकौं बनाए। तहां वह कहै है,—जो जीव अपने पापकरि लट कीड़ी दरिद्री नारकी आदि पर्याय भुगतै है। याकौं पूछिए है कि पीछैं तौ पापहीका फलतै ए पर्याय भए कहो, परंतु पहलैं लोकरचना करतैं ही इनिकौं बनाए सो किस अर्थि बनाए। बहुरि पीछैं जीव पापरूप परिणए सो कैसैं परिणए। जो आप ही परिणए कहोगे तौ जानिए है ब्रह्मा पहलैं तौ निपजाए पीछैं याकै आधीन न रहे इसकारणतैं ब्रह्माकौं दुःख ही भया। बहुरि जो कहोगे—ब्रह्माके परिणमाए परिणमै हैं तौ तिनिकौं पापरूप काहेकौं परिणमाए। जीव तौ आपके निपजाए थे उनका बुरा किस अर्थि किया। तातैं ऐसैं भी न बनै। बहुरि अजीवनिविषैं सुवर्ण सुगंधादि सहित वस्तु बनाए, सो तौ रमणेके अर्थि बनाए; कुवर्ण दुर्गंधादिसहित

वस्तु दुःखदायक बनाए सो किस अर्थि बनाए। इनिका दर्शनादिककरि ब्रह्माकै किछू सुख तौ नाहीं उपजता होगा। बहुरि तू कहैगा, पापी जीवनिकौं दुख देनेकै अर्थि बनाए, तौ आपहीके निपजाए जीव तिनि-स्यौं ऐसी दुष्टता काहेकौं करी। जो तिनिकौं दुखदायक सामग्री पहलैं ही बनाई। बहुरि धूलि पर्वतादिक वस्तु केतीक ऐसी हैं जे रमणीक भी नाहीं, अर दुखदायक भी नाहीं। तिनिकौं किसै अर्थि बनाए। स्वयमेव तौ जैसैं तैसैं ही होय अर बनावनहारा तौ जो बनावै सो प्रयोजनलीए ही बनावै। तातैं ब्रह्मा सृष्टिका कर्त्ता कैसैं कहिए है ?

बहुरि विष्णुकौं लोकका रक्षक कहै हैं। रक्षक होय सो तौ दोय ही कार्य करै। एक तौ दुख उपजावनेके कारण न होने दे, अर एक विनशनेके कारण न होने दे। सो तौ लोकविषैं दुखहीके उपजनेके कारण जहां तहां देखिए है। अर तिनिकरि जीव-निकौं दुख ही देखिए है। क्षुधा तृषादिक लगि रहे हैं। शीत उष्णादिक करि दुख हो है। जीव परस्पर दुख उपजावै है। शस्त्रादि दुखके कारण बनि रहे हैं। बहुरि विनशनेके कारण अनेक बनि रहे हैं। जीवनिकै रोगादिक वा अग्नि विष शस्त्रादिक पर्यायके नाशके कारण देखिए है। अर इन जीवनिकै भी विनशनेके कारण देखिए है। सो ऐसैं दोय प्रकारहीकी रक्षा तौ कीन्ही नाहीं। तौ विष्णु रक्षक होय कहा किया। वह कहै है—विष्णु रक्षक ही है। देखो क्षुधा तृषादिकके अर्थि अन्न जलादिक किए हैं। कीड़ीकौं कण कुंजरकौं मण पहुंचावै है। संकटमैं सहाय करै है। मरणके कारण

बनें[1]टीटोड़ीकीसी नाईं उबारै है। इत्यादि प्रकारकरि विष्णु रक्षा करै है। याकौं कहिए है,—ऐसैं है तौ जहां जीवनिकै क्षुधातृषादिक बहुत पीड़ैं, अर अन्न जलादिक मिलैं नाहीं, संकट पड़ैं सहाय न होय, किंचित कारण पाइ मरण होय जाय, तहां विष्णुकी शक्ति ही न भई कि वाकौं ज्ञान ही न भया। लोकविषैं बहुत तौ ऐसैं ही दुखी हो हैं मरण पावै हैं विष्णु रक्षा काहेकौं न करी। तब वह कहै है, यहु जीवनिके अपनें कर्तव्यका फल है। तब वाकौं कहिए है कि, जैसैं शक्तिहीन लोभी झूठा वैद्य काहूकै किछू भला होइ ताकौं तौ कहै मेरा किया भया है। अर जहां बुरा होय मरण होय, तब कहै याका ऐसा ही होनहार था। तैसैं ही तू कहै है कि, भला भया तहां, तौ विष्णुका किया भया अर बुरा भया सो याका जीवनिके कर्तव्यका फल भया। ऐसैं झूठी कल्पना काहेकौं कीजिए। कै तौ बुरा वा भला दोऊ विष्णुका किया कहौ, कै अपना कर्तव्यका फल कहौ। जो विष्णुका किया भया, तौ घनें जीव दुःखी अर शीघ्र मरते देखिए है सो ऐसा कार्य करै ताकौं रक्षक कैसैं कहिए? बहुरि अपने कर्त्तव्यका फल है तौ करैगा सो पावैगा, विष्णु कहा रक्षा करैगा? तब वह कहै है, जे विष्णुके भक्त हैं तिनिकी रक्षा करै है। याकौं कहिए है कि जो ऐसा है तौ कीड़ी कुंजर आदि भक्त नाहीं उनकै अन्नादिक पहुँचावनैंविषै वा संकट मैं सहाय होनैंविषैं वा मरण न होनैंविषैं विष्णुका

---

१ (टिटहरी) एक प्रकारका पक्षी एक समुद्रके किनारे रहती थी। उसके अंडे समुद्र बहा ले जाता था, सो उसने दुखी होकर गरुड़ पक्षीकी मारफत विष्णुसे अर्ज की, तौ उन्होंने समुद्रसे अंडे दिलवा दिये। ऐसी पुराणोंमें कथा है।

कर्त्तव्य मानि सर्वका रक्षक काहेकौं मानैं। भक्तनिहीका रक्षक मानि। सो भक्तनिका भी रक्षक दीसता नाहीं। जातैं अभक्त भी भक्त पुरुषनिकौं पीड़ा उपजावते देखिए है। तब वह कहै है,—घनी ही जायगा (जगह) प्रह्लादादिककी सहाय करी है। याकौं कहै हैं,—जहां सहाय करी तहां तौ तू तैसैं ही मानि। परन्तु हम तौ प्रत्यक्ष म्लेच्छ मुसलमान आदि अभक्त पुरुषनिकरि भक्त पुरुष पीड़ित होते देखि वा मन्दिरादिकौं विघ्न करते देखि पूछै हैं कि इहां सहाय न करै है सो शक्ति ही नाहीं,कि खबर नाहीं। जो शक्ति नाहीं तौ इनितैं भी हीनशक्तिका धारक भया। खबरि नाहीं तौ जाकौं एती भी खबर नाहीं, सो अज्ञान भया। अर जो तू कहैगा, शक्ति भी है अर जानै भी है इच्छा ऐसी ही भई, तौ फिर भक्तवत्सल काहेकौं कहै। ऐसैं विष्णुकौं लोकका रक्षक मानना बनता नाहीं।

बहुरि वै कहै हैं—महेश संहार करै है, सो वाकौं पूछिए है। प्रथम तौ महेश संहार सदा करै है कि महाप्रलय हो है तब ही करै है। जो सदा करै है तौ जैसैं विष्णुकी रक्षा करनेकरि स्तुति कीनी, तैसैं याकी संहार करनेकरि निंदा करो। जातैं रक्षा अर संहार प्रतिपक्षी हैं। बहुरि यहु संहार कैसैं करै है। जैसैं पुरुष हस्तादिककरि काहूकौं मारै वा काहूकरि मरावै तैसैं महेश अपने अंगनिकरि संहार करै है, वा आज्ञाकरि मरावै है। तौ क्षण क्षणमैं संहार तौ घने जीवनिका सर्व लोकमैं हो है यहु कैसैं कैसैं अंगनिकरि वा कौन कौनकौं आज्ञा देय युगपत् कैसैं संहार करै है। बहुरि महेश तौ इच्छा ही करै है याकी इच्छातैं स्वयमेव उनका संहार हो है। तौ याकै सदा काल मारने

रूप परिणाम ही रह्या करते होंगे। अर अनेकजीवनिके युगपत् मारनेकी इच्छा कैसें होती होगी। बहुरि जो महाप्रलय होतैं संहार करै है तौ परमब्रह्मकी इच्छा भए करै है कि वाकी विना इच्छा ही करै है। जो इच्छा भए करै है तौ परमब्रह्मकै ऐसा क्रोध कैसें भया जो सर्वका प्रलय करनेकी इच्छा भई। जातैं कोई कारण विना नाश करनेकी इच्छा होय नाहीं। अर नाश करनेकी जो इच्छा ताहीका नाम क्रोध है,सो कारन बताय। बहुरि तू कहैगा परमब्रह्म यह ख्याल(खेल)बनाया था बहुरि दूरि किया कारन किछु भी नाहीं, तौ ख्याल बनानैवालाकौं भी ख्याल इष्ट लागै तब बनावै है। अनिष्ट लागै है तब दूरि करै है। जो याकौं यहु लोक इष्ट अनिष्ट लागैहै,तौ याकै लोकस्यों रागद्वेष भया। साक्षीभूत परब्रह्मका स्वरूप काहेकौं कहो हौ। साक्षीभूत तौ वाका नाम है जो स्वयमेव जैसैं होय तैसैं देख्या जान्या करै। जो इष्ट अनिष्ट मानि उपजावै, नष्ट करै ताकौं साक्षीभूत कैसैं कहिए, जातैं साक्षीभूत रहना अर कर्त्ता हर्ता होना ए दोऊ परस्पर विरोधी हैं। एककैं दोऊ संभ नाहीं। बहुरि परमब्रह्मकै पहिलै तौ इच्छा यहु भई थी कि 'मैं एक हौं सो बहुत होस्यों' तब बहुत भया। अब ऐसी इच्छा भई होसी जो "मैंबहुत हौं सो एक होस्यों" सो जैसैं कोऊ भोलपतैं कार्य करि पीछैं तिस कार्यकौं दूरि किया चाहै, तैसैं परमब्रह्म बहुत होय एक होनेकी इच्छा करी सो जानिये है कि बहुत होनेका कार्य किया होय सो भोलपहीतैं किया आगामी ज्ञानकरि किया होता तौ काहेकौं ताके [illegible]रि करनेकी इच्छा होती।

बहुरि जो परमब्रह्मकी इच्छा विना ही महेश संहार करै है तौ यहु

परमब्रह्मका वा ब्रह्मका विरोधी भया। बहुरि पूछैं हैं यहु महेश लोककौं कैसैं संहार करैहै अपने अंगनिहीकरि संहार करै है कि इच्छा होतैं स्वयमेवही संहार होयहै? जो अपने अंगनिकरि संहार करैहै तौ सर्वका युगपत संहार कैसैं करै है? बहुरि याकी इच्छा होतैं स्वयमेव संहार हो हैतौ इच्छातौ परमब्रह्म कीन्ही थी यानैं संहार कहा किया?

बहुरि हम पूछै हैं कि संहार भए सर्व लोकनिविषै जीव अजीव थे ते कहाँ गए? तब वह कहै है—जीवनिविषैं भक्त तो ब्रह्मविषै मिले अन्य मायाविषै मिले। अब याकौं पूछिये है कि माया ब्रह्मतैं जुदी रहै है कि पीछैं एक होय जाय है। जो जुदी रहै है तौ ब्रह्मवत् माया भी नित्य भई। तब अद्वैतब्रह्म न रह्या। अर माया ब्रह्ममें एक होय जाय है तौ जे जीव मायामें मिले थे ते भी मायाकी साथि ब्रह्ममें मिल गए। तौ महाप्रलय होतैं सर्वका परमब्रह्ममें मिलना ठहर्‍या ही तौ मोक्षका उपाय काहेकौं करिए। बहुरि जे जीव मायामें मिले, ते बहुरि लोकरचना भए वे ही जीव लोकविषैं आवैंगे कि वे तौ ब्रह्ममें मिल गए थे कि नए उपजैंगे। जो वे ही आवैंगे तौ जानिए है जुदे जुदे रहे हैं मिले काहेकौं कहो। अर नए उपजैंगे तौ जीवका अस्तित्व थोरा कालपर्यंत ही रहै, काहेकौं मुक्त होनेका उपाय कीजिए। बहुरि वह कहै है कि पृथिवी आदिक हैं ते मायाविषै मिलै है सो माया अमूर्त्तीक सचेतन है कि मूर्त्तीक अचेतन है। जो अमूर्त्तीक सचेतन है तौ अमूर्त्तीक में मूर्त्तीक अचेतन कैसैं मिलै? अर मूर्त्तीक अचेतन है तौ यहु ब्रह्ममैं मिलै है कि नाहीं। जो मिलै है तौ याके मिलनेतैं ब्रह्म भी मूर्त्तीक अचेतनकरि मिश्रित भया। अर न

मिलै है तौ अद्वैतता न रही। अर जू कहैगा ए सर्व अमूर्त्तीक चेतन होइ जाय है तौ आत्मा अर शरीरादिककी एकता भई, सो यहु संसारी एकता मानै ही है, याकौं अज्ञानी काहेकौं कहिए। बहुरि पूछैं हैं—लोकका प्रलय होतैं महेशका प्रलय हो है कि न हो है। जो हो है तौ युगपत् हो है कि आगैं पीछैं हो है जो युगपत् हो है तौ आप नष्ट होता लोककौं नष्ट कैसैं करै। अर आगे पीछैं हो है तौ महेश लोककौं नष्टकरि आप कहां रह्या, आप भी तो सृष्टिविषैं हो था, ऐसैं महेशकौं सृष्टिका संहारकर्त्ता मानै है सो असंभव है। या प्रकारकरि वा अन्य अनेकप्रकारकरि ब्रम्हा विष्णु महेशकौं सृष्टिका उपजावनहारा, रक्षा करनहारा संहार करनहारा न बनैं तातैं लोककौं अनादिनिधन मानना।

इस लोकविषैं जे जीवादि पदार्थ हैं ते न्यारे न्यारे अनादिनिधन हैं। बहुरि तिनिकी अवस्थाकी पलटनि हूवा करै है। तिस अपेक्षा उपजते विनशते कहिए है। बहुरि जे स्वर्ग नरक द्वीपादिक हैं ते अनादितैं ऐसैं ही हैं अर सदाकाल ऐसैं ही रहैंगे। कदाचित् तू कहैगा बिना बनाए ऐसे आकारादिक कैसैं भए, सो भए होंय तौ बनाए ही होंय। सो ऐसा नाहीं है जातैं अनादितैं ही जे पाइए तहां तर्क कहा। जैसैं तू परमब्रह्मका स्वरूप अनादिनिधन मानै है तैसैं ए जीवादिक वा स्वर्गादिक अनादिनिधन मानिए हैं। तू कहैगा जीवादिक वा स्वर्गादिक कैसैं भए? हम कहैंगे परमब्रह्म कैसैं भया। तू कहैगा इनकी रचना ऐसी कौन करी हम कहैंगे परमब्रह्मकौं ऐसा कौन बनाया तू कहैगा परमब्रह्म स्वयंसिद्ध है। हम कहैं हैं जीवादिक वा स्वर्गादिक स्वयंसिद्ध हैं तू कहैगा इनकी अर परब्रह्मकी समानता कैसैं संभवै? तौ सम्भवनेविषैं दूषण बताय।

लोककौं नवा उपजावना ताका नाश करना तिनविषैं तौ हम अनेक दोष दिखाये। लोककौं अनादिनिधन माननेतैं कहा दोष है? सो तू बताय। जो तू परमब्रह्म मानैं है सो जुदा ही कोई है नाहीं। ए संसारविषैं जीव हैं ते ही यथार्थ ज्ञानकरि मोक्षमार्ग साधनतैं सर्वज्ञ वीतराग हो हैं।

इहां प्रश्न—जो तुम तौ न्यारे न्यारे जीव अनादिनिधन कहो हो। मुक्त भए पीछैं तो निराकार हो हैं तहां न्यारे न्यारे कैसें संभवैं?

ताका समाधान—जो मुक्त भए पीछैं सर्वज्ञकौं दीसै है कि नाहीं दीसै है। जो दीसै है तौ किछू आकार दीसना ही होगा। विना आकार देखें कहा देख्या। अर न दीसै है तौ कै तौ वस्तु ही नाहीं, कै सर्वज्ञ नाहीं। तातैं इन्द्रियगम्य आकार नाहीं तिस अपेक्षा निराकार है अर सर्वज्ञ ज्ञानगम्य है तातैं आकारवान है। जब आकारवान ठहरया तब जुदा जुदा होय तौ कहा दोष लागै? बहुरि जो तू जाति अपेक्षा एक कहै तौ हम भी मानैं हैं। जैसें गेहूँ भिन्न भिन्न हैं तिनकी जाति एक है ऐसें एक मानें तौ किछू दोष है नाहीं। या प्रकार यथार्थ श्रद्धानकरि लोकविषैं सर्व पदार्थ अकृत्रिम जुदे जुदे अनादिनिधन मानने। बहुरि जो वृथा ही भ्रमकरि सांच झूठका निर्णय न करै तौ तू जानैं तेरे श्रद्धानका फल तू पावैगा।

[ब्रह्मतैं कुलप्रवृत्ति आदिका प्रतिषेध]

बहुरि वै ही ब्रह्मातैं पुत्रपौत्रादिककरि कुलप्रवृत्ति कहैं हैं। बहुरि कुल-

निविषैं राक्षस मनुष्य देव तिर्यंचनिकै परस्पर प्रसूतिभेद बतावै हैं। तहां देवतैं मनुष्य वा मनुष्यतैं देव वा तिर्यंचतैं मनुष्य इत्यादि कोई माता कोई पितातैं कोई पुत्रपुत्रीका उपजना बतावैं सो कैसैं संभवै ? बहुरि मनहीकरि वा पवनादिकरि वा वीर्य सूंघने आदिकरि प्रसूति होनी बतावै हैं, सो प्रत्यक्षविरुद्ध भासै है। ऐसैं होतैं पुत्रपौत्रादिकका नियम कैसैं रह्या ? बहुरि बड़े बड़ेमहंतनिकौं अन्य अन्य मातापितातैं भए कहैं हैं। सो महंतपुरुष कुशीलो मातापिताकै कैसैं उपजैं ? यहु तौ लोविषैं गालि है। ऐसा कहि उनकी महंतता काहेकौं कहिए है।

[अवतारवाद विचार]

बहुरि गणेशादिककी मैल आदिकरि उत्पत्ति बतावै हैं। वा काहूके अंग काहूकै जुरैजुरै बतावै हैं। इत्यादि अनेक प्रत्यक्ष विरुद्ध कहै हैं। बहुरि चौईसअवतार[1] भए कहै हैं, तहां केई अवतारनिकौं पूर्णावतार कहैं हैं। केईनिकौं अंशावतार कहै हैं। सो पूर्णावतार भए, तब ब्रह्म अन्यत्र व्यापि रह्या कि न रह्या। जो रह्या तौ इनि अवतारनिकौं पूर्णावतार काहेकौं कहौ, जो न रह्या तौ एतावन्मात्र ही ब्रह्म रह्या। बहुरि अंशावतार भए तहां ब्रह्मका अंश तौ सर्वत्र कहौ हौ, इनविषै कहा अधिकता भई। बहुरि कार्य तौ तुच्छ तिसकै वास्तै आप ब्रह्म अवतार

---

१ सनत्कुमार १ शूकरावतार २ देवर्षिनारद ३ नरनारायण ४ कपिल ५ दत्तात्रय ६ यज्ञपुरुष ७ ऋषभावतार ८ पृथु अवतार ९ १० मत्स्य ११ कच्छप १२ धन्वन्तरि १३ मोहिनी १४ नृसिंहअवतार १५ वामन १६ परशुराम १७ व्यास १८ हंस १९ रामावतार २० कृष्णावतार २१ हयग्रीव २२ हरि २३ बुद्ध २४ और कल्कि ये २४ अवतार माने जाते हैं।

धारया कहै सो जानिये है विना अवतार धारैं ब्रह्मकी शक्ति तिस कार्यके करनेकी न थी। जातैं जो कार्य स्तोक उद्यमतैं होइ तहां बहुत उद्यम काहेकौं करिए। बहुरि अवतारनिविषै मच्छ कच्छादि अवतार भए सो किंचित् कार्य करनेके अर्थि हीन तिर्यंच पर्यायरूप भए, सो कैसैं संभवै? बहुरि प्रहलादके अर्थि नरसिंह-अवतार भए सो हरिणांकुशकौं ऐसा काहेकौं होनैं दिया। अर कितनेक काल अपने भक्तकौं काहेकौं दुख दाया। बहुरि ऐसा रूप काहेकौं धरया। बहुरि नाभिराजाकै वृषभावतार भया बतावै हैं सो नाभिकौं पुत्रपनेका सुख उपजावनेकौं अवतार धारया। घोरतपश्चरण किस अर्थि किया। उनकौं तौ किछु साध्य था ही नहीं। अर कहैगा जगतके दिखावनेकौं किया तौ कोई अवतार तौ तपश्चरण दिखावै। कोई अवतार भोगादिक दिखावै जगत किसकौं भला जानि लागै।

बहुरि वह कहै है—एक अरहंत नाम का राजा भया है सो वृषभावतारका मत अंगीकारकरि जैनमत प्रगट किया सो जैनविषै कोई अरहंत भया नाहीं। जो सर्वज्ञपद पाय पूजने योग्य होय ताहीका नाम अर्हत है। बहुरि राम कृष्ण इनि दोऊ अवतारनिकौं मुख्य करै हैं सो रामावतार कहा किया। सीताके अर्थि विलापकरि रावणसौं लरि वाकूं मारि राज किया। अर कृष्णावतार पहलैं गुवालिया होय परस्त्री गोपिकानिकै अर्थि नाना विपरीति निंद्य चेष्टाकरि पीछैं जरासिंधु आदिकौं

---

१ भागवत स्कंध ५ अ० ६ ७-११

२ विष्णु पु० अं० ४ अ० १३ श्लोक ११ से १८ तक

वायुपुराण अ० ९८ और भागवत स्कंध १२ अ० १ १८

मारि राज किया। सो ऐसे कार्य करने मैं कहा सिद्धि भई। बहुरि रामकृष्णादिक का एक स्वरूप कहैं। सो बीच मैं इतने काल कहां रहे? जो ब्रह्मविषै रहे, तौ जुदे रहे कि एक रहे। जुदे रहे तौ जानिए है ए ब्रह्मतैं जुदे रहे हैं। एक रहे तौ राम ही कृष्ण भया सीता ही रुक्मिणी भई इत्यादि कैसैं कहिए है। बहुरि रामावतारविषैं तौ सीताकौं मुख्य करैं अर कृष्णावतारविषैं सीताकौं रुक्मिणी भई कहैं ताको तौ प्रधान न कहैं, राधिका कुमारी ताकौं मुख्य करै। बहुरि पूछैं तब कहैं राधिका भक्त थी, सो निजस्त्रीकौं छोरि दासीका मुख्य करना कैसैं बनैं? बहुरि कृष्णके तौ राधिकासहित परस्त्री सेवनके सर्व विधान भए। सो यहु भक्ति कैसी करी। ऐसे कार्य तौ महनिंद्य हैं। बहुरि रुक्मिणीको छोरि राधाकौं मुख्य करी, सो परस्त्री सेवनकौं भला जानि करी होसी। बहुरि एक राधाहीविषैं आसक्त न भया अन्य गोपिका कुब्जा[1] आदि अनेक परस्त्रीनिविषै भी आसक्त भया। सो यहु अवतार ऐसे ही कार्यका अधिकारी भया। बहुरि कहै—लक्ष्मी वाको स्त्री है अर धनादिककौं लक्ष्मी कहैं सो ए तौ पृथ्वी आदिविषैं जैसैं पाषाण धूलि है तैसैं ही रत्न सुवर्णादि धन देखिए है। जुदी ही लक्ष्मी कौन जाका भर्त्तार नारायण है बहुरि सीतादिककौं मायाका स्वरूप कहैं सो इनिविषैं आसक्त भए तब मायाविषैं आसक्त कैसैं न भया। कहां ताई कहिए जो निरूपण करैं सो विरुद्ध करैं। परन्तु जीवनिकौं भोगादिककी वार्त्ता सुहावै, तातैं तिनिका कहना वल्लभ लागै है ऐसे अवतार कहे हैं इनिकौं ब्रह्मस्वरूप कहैं हैं। बहुरि औरनिकौं भी ब्रह्मस्वरूप कहै हैं। एक तौ महादेवकौं ब्रह्मस्वरूप मानै हैं। ताकौं

१ भागवतस्कंध १० अ० ४८,—१—११

योगी कहै हैं, सो योग किसै अर्थि गह्या। बहुरि रुंडमाला पहरैं हैं सो हाड़ांका छीनवा भी निंद्य है ताकौं गलेमैं किसै अर्थि धारै है। सर्पादि सहित है सो यामैं कौन भलाई है। आक धतूरा खाय है सो यामैं कौन भलाई है त्रिशूलादि राखै है कौनका भय है। बहुरि पार्वती संग भी है सो योगी होय स्त्री राखै सो ऐसा विपरीतपना काहेकौं किया। कामासक्त था तौ घरहीमैं रह्या होता। बहुरि यानैं नाना प्रकार विपरीत चेष्टा कीन्हीं ताका प्रयोजन तौ किछू भासै नाहीं बाउलेकासा कर्त्तव्य भासै ताकौं ब्रह्मस्वरूप कहैं।

बहुरि कृष्णकौं याका सेवक कहैं कबहू याकौं कृष्णका सेवक कहैं कबहू दोऊनिकौं एक ही कहैं कछू ठिकाना नाहीं। बहुरि सूर्यादिककौं ब्रह्मका स्वरूप कहैं। बहुरि ऐसा कहैं जो विष्णु कह्या सो धातुनिविषैं सुवर्ण, वृक्षनिविषैं कल्पवृक्ष, जूवाविषैं झूठ इत्यादिमें मैं ही हौं। सो किछू पूर्वापर विचारैं नाहीं। कोई एक अंगकरि संसारी जाकौं महंत मानै ताहीकौं ब्रह्मका स्वरूप कहै। सो ब्रह्म सर्वव्यापी है ऐसा विशेष काहेकौं किया। अर सूर्यादिविषैं वा सुवर्णादिविषैं ही ब्रह्म है तौ सूर्य उजारा करै है सुवर्ण धन है इत्यादि गुणनिकरि ब्रह्म मान्या सो सूर्यवत् दीपादिक भी उजाला करै है सुवर्णवत् रूपा लोहा आदि भी धन हैं इत्यादि गुण अन्य पदार्थनिविषैं भी हैं तिनिकौं भी ब्रह्म मानौं। बड़ा छोटा मानौं, परन्तु जाति तौ एक भई। सो झूठी महंतता ठहरावनेके अर्थि अनेकप्रकार युक्ति बनावै हैं।

बहुरि अनेक ज्वालामालिनी आदि देवीनिकौं मायाका स्वरूप कहि हिंसादिक पाप उपजाय पूजना ठहरावै हैं सो माया तौ निंद

है ताका पूजना कैसैं संभवै ? अर हिंसादिक करना कैसैं भला होय। बहुरि गऊ सर्प आदि पशु अभक्ष्यभक्षणादिसहित तिनिकौं पूज्य कहैं। अग्नि पवन जलादिककौं देव ठहराय पूज्य कहै। वृक्षादिककौं युक्ति बनाय पूज्य कहैं। बहुत कहा कहिए, पुरुषलिंगी नाम सहित जे होंय तिनिविषैं ब्रह्मकी कल्पना करैं, अर स्त्रीलिंगी नाम सहित होंय तिनिविषैं मायाकी कल्पनाकरि अनेक वस्तुनिका पूजन ठहरावैं हैं। इनिके पूजे कहा होगया सो किछू विचार नाहीं। झूठे लौकिक प्रयोजनके कारण ठहराय जगतकौं भ्रमावै हैं। बहुरि वै कहै हैं—विधाता शरीरकौं घड़ै है, बहुरि यम मारै है, मरते (समय) यमके दूत लेनै आवै हैं, मूएं पीछैं मार्गविषैं बहुतकाल लागै है, बहुरि तहां पुण्य पाप का लेखाकरैं हैं, बहुरि तहां दंडादिक दे हैं। सो ए कल्पित झूठी युक्ति है। जीव तो समय समय अनंते उपजैं मरैं तिनका युगपत् ऐसे होना कैसे संभवै ? अर ऐसैं माननेका कोई कारण भी भासै नाहीं।

बहुरि मूए पीछैं श्राद्धादिककरि वाका भला होना कहैं सो जीवतां तो काहूके पुण्य-पापकरि कोई सुखी दुखी होता दीसै नाहीं, मूएं पीछैं कैसैं होइ। ए युक्ति मनुष्यनिकौं भ्रमाय अपने लोभ साधनेकै अर्थि बनाई है। कीड़ी पतंग सिंहादिक जीव भी तौ उपजैं मरैं हैं उनकौं तौ प्रलयके जीव ठहरावैं। सो जैसैं मनुष्यादिकके जन्म मरण होते देखिए है, तैसैं ही उनके होते देखिए है। झूठी कल्पना किए कहा सिद्धि है ? बहुरि वे शास्त्रनिविषैं कथादिक निरूपै हैं तहां विचार किए विरुद्ध भासै।

[यज्ञमें पशुवधसे धर्म कल्पना]

बहुरि यज्ञादिक करनां धर्म ठहरावैं हैं। सो तहां बड़े जीवनिका होम करै हैं, अग्न्यादिकका महा आरम्भ करै है, तहां जीवघात हो है सो उनहीके शास्त्रविषैं वा लोकविषैं हिंसाका निषेध है सो ऐसे निर्दय हैं किछू गिनै नाहीं। अर कहैं—"यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः" यज्ञ ही कै अर्थि पशु बनाए हैं। तहां घातकरनेका दोष नाहीं। बहुरि मेघादिकका होना शत्रु आदिका विनशना इत्यादि फल दिखाय अपने लोभकै अर्थि राजादिकनिकौं भ्रमावै। सो कोई विषतैं जीवनां कहै, सो प्रत्यक्ष विरुद्ध है तैसें हिंसा किएं धर्म अर कार्यसिद्धि कहना प्रत्यक्ष विरुद्ध है। परन्तु जिनिकी हिंसा करनी कही, तिनिकी तौ किछू शक्ति नाहीं उनकी काहूकौं पीर नाहीं। जो किसी शक्तिवान वा इष्टका होम करना ठहराया होता, तौ ठीक पड़ता। बहुरि पापका भय नाहीं, तातैं पापी दुर्बलके घातक होय अपने लोभके अर्थि अपना वा अन्यका बुरा करनेविषैं तत्पर भए है।

बहुरि मोक्षमार्ग ज्ञानयोग भक्तियोग करि दोय प्रकार प्ररूपै हैं। अब अन्य मत कौ ज्ञानयोग करि मोक्षमार्ग कहैं ताका स्वरूप कहिये है:—

[ज्ञानयोग मीमांसा]

एक अद्वैत सर्वव्यापी परमात्माकौं जानना ताकौं ज्ञान कहै हैं सो ताका मिथ्यापना तौ पूर्वै कह्या ही है। बहुरि आपकौं सर्वथा शुद्ध ब्रह्मस्वरूप मानना, काम क्रोधादिक वा शरीरादिककौं भ्रम जानना ताकौं ज्ञान कहै हैं सो यहु भ्रम है। आप शुद्ध है तौ मोक्षका उपाय काहेकौं करै है। आप शुद्धब्रह्म ठहर्या, तब कर्तव्य कहा रह्या? बहुरि प्रत्यक्ष आपकै काम क्रोधादिक होते देखिए, अर शरीरादिकका संयोग देखिए

देखिए है सो इनिका अभाव होगा, तब होगा, वर्त्तमानविषै इनिका सद्भाव मानना भ्रम कैसैं भया ? बहुरि कहै हैं, मोक्षका उपाय करना भी भ्रम है जैसैं जेवरी तौ जेवरी ही है ताकौं सर्प जानै था सो भ्रम था—भ्रम मेंटें जेवरी ही है। तैसैं आप तौ ब्रह्म ही है आपकौं अशुद्ध जानैं था सो भ्रम था भ्रम मेंटें आप ब्रह्म ही है। सो ऐसा कहना मिथ्या है। जो आप शुद्ध होय अर ताकौं अशुद्ध जानै तो भ्रम, अर आप कामक्रोधादिसहित अशुद्ध होय रह्या ताकौं अशुद्ध जानै तौ भ्रम कैसै होइ ? शुद्ध जानैं भ्रम होइ झूठा भ्रम-करि आपकौं शुद्ध ब्रह्म मानें कहा सिद्धि है। बहुरि तू कहैगा ए काम क्रोधादिक तौ मनके धर्म हैं ब्रह्म न्यारा है तौ तुझकौ पूछिए है—मन तेरा स्वरूप है कि नाहीं। जो है तौ काम क्रोधादिकभी तेरे ही भए। अर नाहीं है तौ तू ज्ञानस्वरूप है कि जड़ है। जो ज्ञानस्वरूप है तौ तेरै तो ज्ञान मन वा इंद्रियद्वारा ही होता दीसै है। इनि विना कोई ज्ञान बतावै तौ ताकौं जुदा तेरा स्वरूप मानैं, सो भासता नाहीं बहुरि 'मन ज्ञाने' धातुतैं मन शब्दनिपजै है सो मन तौ ज्ञानस्वरूप है। सो यहु ज्ञान किसका है ताकौं वताय। सो जुदा कोऊ भासै नाहीं। बहुरि जो तू जड़ है तौ ज्ञान विना अपने स्वरूपका विचार कैसैं करै है। यहु बनै नाहीं। बहुरि तू कहै है ब्रह्म न्यारा है सो वह न्यारा ब्रह्म तू ही है कि और है। जो तू ही है तौ तेरे 'मैं ब्रह्म हौं' ऐसा माननेवाला जो ज्ञान है सो तौ मनस्वरूप ही है मनतैं जुदा नाहीं। आपा मानना आपहीविषैं होय। जाकौं न्यारा जानैं तिसविषैं आपा मान्यो जाय नाहीं। सो मनतैं न्यारा ब्रह्म है तौ मनरूप ज्ञान ब्रह्मविषैं आपा काहेकौं मानै

है। बहुरि जो ब्रह्म और ही है तौ तू ब्रह्मविषैं आपा काहेकौं मानैं। तातैं भ्रम छोड़ि ऐसा मानि जैसैं स्पर्शनादि इंद्रिय तौ शरीरका स्वरूप है सो जड़ है याकै द्वारि जो जानपनौ हो है सो आत्माका स्वरूप है। तैसैं ही मन भी सूक्ष्म परमाणूनिका पुंज है सो शरीरहीका अंग है। ताकै द्वारि जानपना हो है वा कामक्रोधादि भाव हो हैं सो सर्व आत्माका स्वरूप है। विशेष इतना जो जानपनां तौ निज स्वभाव है, काम क्रोधादिक उपाधिक भाव हैं तिनकरि आत्मा अशुद्ध है। जब कालपाय क्रोधादिक मिटैंगे अर जानपनाकै मन इंद्रियका आधीनपनां मिटैगा, तब केवल ज्ञानस्वरूप आत्मा शुद्ध होगा। ऐसैं ही बुद्धि अहंकारादिक भी जानि लेनें। जातैं मन अर बुद्ध्यादिक एकार्थ हैं। अहंकारादिक हैं ते काम क्रोधादिकवत् उपाधिक भाव हैं। इनिकौं आपतैं भिन्न जानना भ्रम है। इनकौं अपनें जानि उपाधिक भावनिके अभाव करनेका उद्यम करना योग्य है। बहुरि जिनितैं इनिका अभाव न होय सकै, अर अपनी महंतता चाहैं ते जीव इनिकौं अपने न ठहराय स्वच्छंद प्रवर्तें हैं। काम क्रोधादिक भावनिकौं बधाय विषयसामग्रीनिविषैं वा हिंसादिकार्यनिविषैं तत्पर हो हैं। बहुरि अहंकारादिकका त्यागकौं भी अन्यथा मानैं हैं। सर्वकौं परब्रह्म मानना कहीं आपो न मानना ताकौं अहंकारका त्याग बतावैं सो मिथ्या है। जातैं कोई आप है कि नाहीं जो है तौ आपविषैं आपो कैसैं न मानिए जो आप नाही है तो सर्वकौं ब्रह्म कौन मानै है? तातैं शरीरादि परविषैं अहंबुद्धि न करनी। तहां करता न होना, सो अहंकारका त्याग है। आपविषैं अहंबुद्धि करनेका दोष नाहीं। बहुरि सर्वकौं समान जानना

कोईविषैं भेद न करना ताकौं राग द्वेषका त्याग बतावै हैं सो भी मिथ्या है। जातैं सर्व पदार्थ समान हैं नाहीं। कोई चेतन हैं कोई अचेतन हैं कोई कैसा है कोई कैसा है। तिनिकौं समान कैसें मानिए? तातैं परद्रव्यनिकौं इष्ट अनिष्ट न मानना, सो रागद्वेषका त्याग है। पदार्थनिका विशेष जाननें मैं तौ किछू दोष है नाहीं। ऐसैं ही अन्य मोक्षमार्गरूप भावनिकौ अन्यथा कल्पना करै हैं। बहुरि ऐसी कल्पनाकरि कुशील सेवै हैं अभक्ष्य भखै हैं वर्णादि भेद नाहीं करै है हीन क्रिया आचरै हैं इत्यादि विपरीतरूप प्रवर्त्तै है। जब कोऊ पूछै तब कहै हैं ए तौ शरीरका धर्म है अथवा जैसी प्रालब्धि है तैसैं हो, है अथवा जैसैं ईश्वरकी इच्छा हो है तैसैं हो है। हमकौं तौ विकल्प न करना। सो देखो झूठ, आप जांनि जांनि प्रवर्त्तै ताकौं तौ शरीरका धर्म बतावै। आप उद्यमी होय कार्य करै ताकौं प्रालब्धि कहै। आप इच्छाकरि सेवै ताकौं ईश्वरकी इच्छा बतावै। विकल्प करै अर हमकौं तौ विकल्प न करना। सो धर्मका आश्रय लेय विषयकषाय सेवनें, तातैं ऐसी झूंठी युक्ति बनावै हैं। जो अपने परिणाम किछू भी न मिलावै तौ हम याका कर्त्तव्य न मानैं। जैसैं आप ध्यान धरैं तिष्टै कोऊ अपने ऊपरि वस्त्र गेरि आवै तहां आप किछू सुखी न भया, तहां तौ ताका कर्त्तव्य नाहीं सो सांच, अर आप वस्त्रकौं अंगीकारकरि पहरै, अपनी शीतादिक वेदना मिटाय सुखी होय, तहां जो कर्त्तव्य न मानै सो कैसैं बनै बहुरि कुशील सेवना अभक्ष्य भखणा इत्यादि कार्य तौ परिणाम मिलें विना होते ही नाहीं। तहां अपना कर्त्तव्य कैसैं न मानिए। तातैं काम क्रोधादिका अभाव ही

भया होय तौ तहां किसी क्रियानिविषै प्रवृत्ति संभवै ही नाहीं। अर जो कामक्रोधादि पाईए है तौ जैसैं ए भाव थोरे होंय, तैसैं प्रवृत्ति करनी। स्वच्छन्द होय इनिकौं वधावना युक्त नाहीं।

[भक्तियोग मीमांसा]

तहां भक्ति निर्गुण सगुण भेदकरि दोयप्रकार कहै हैं। तहां अद्वैत परब्रह्मकी भक्ति करनी सो निर्गुणभक्ति है। सो ऐसैं करै है,—तुम निराकार हौ, निरंजन हौ, मन वचनकै अगोचर हौ, अपार हौ, सर्वव्यापी हौ, एक हौ, सर्वके प्रतिपालक हौ, अधमउधारक हौ सर्व के कर्त्ता हर्त्ता हौ, इत्यादि विशेषणनिकरि गुण गावै हैं। सो इनिविषैं केई तौ निराकारादि विशेषण हैं सो अभावरूप हैं तिनितैं सर्वथा मानें अभाव ही भासै। जातैं आकारादि बिना वस्तु कैसैं होइ। बहुरि केई सर्वव्यापी आदि विशेषण असंभवी हैं सो तिनिका असंभवपना पूर्वैं दिखाया ही है। बहुरि ऐसा कहै—जीवबुद्धिकरि मैं तिहारा दास हौं, शास्त्रदृष्टिकरि तिहारा अंश हौं, तत्त्वबुद्धिकरि तू ही मैं हौं सो ए तीनों ही भ्रम हैं। यहु भक्तिकरनहारा चेतन है कि जड़ है। जो चेतन है तौ यहु चेतना ब्रह्मकी है कि इसहीकी है। जो ब्रह्मकी है तौ मैं दास हौं ऐसा मानना तौ चेतनाहीकै भया सो चेतना ब्रह्मका स्वभाव ठहरया। अर स्वभाव स्वभावीकै तादात्म्यसंबंध है। तहां दास अर स्वामी का संबंध कैसैं बनै? दासस्वामीका संबंध तौ भिन्नपदार्थ होय तब ही बनै। बहुरि जो यहु चेतना इसहीकी है तौ यहु अपनी चेतनाका धनी जुदा पदार्थ ठहरया। तौ मैं अंश हौं वा जो तू है सो मैं हौं ऐसा कहना झूठा भया। बहुरि जो भक्ति करनहारा जड़ है

तौ जड़कै बुद्धिका होना असंभव है ऐसी बुद्धि कैसैं भई। तातैं 'मैं दास हौं' ऐसा कहना तौ तब ही बनैं जब जुदे-जुदे पदार्थ होंय। अर 'तेरा मैं अंश हौं' ऐसा कहना बनैं ही नाहीं। जातैं 'तू' अर 'मैं' ऐसा तौ भिन्न होय तब ही बनैं, सो अंश अंशी भिन्न कैसैं होय? अंशी तौ कोई जुदा वस्तु है नाहीं, अंशनिका समुदाय सो ही अंशी है। अर 'तू है सो मैं हूँ' ऐसा वचन ही विरुद्ध है एक पदार्थविषैं आपो भी मानैं अर पर भी मानैं सो कैसैं संभवै? तातैं भ्रम छोड़ि निर्णय करना। बहुरि केई नाम ही जपैं हैं? सो जाका नाम जपैं ताका स्वरूप पहचानें बिना केवल नामहीका जपना कैसैं कार्यकारी होय। जो तू कहेगा नामहीका अतिशय है तौ जो नाम ईश्वरका है सो ही नाम किसी पापीपुरुषका धर्‍या, तहां दोऊनिका नाम उच्चारणविषैं फलकी समानता होय सो कैसैं बनैं। तातैं स्वरूपका निर्णयकरि पीछैं भक्तिकरनेयोग्य होय ताकी भक्ति करनी। ऐसैं निर्गुणभक्तिका स्वरूप दिखाया।

बहुरि जहां काम क्रोधादिकरि निपजे कार्यनिका वर्णनकरि स्तुत्यादि करिए ताकौं सगुणभक्ति कहै हैं। तहां सगुणभक्तिविषैं लौकिक श्रृंगार वर्णन जैसैं नायक नायिकाका करिए तैसैं ठाकुरठकुरानीका वर्णन करै हैं। स्वकीया परकीया स्त्रीसम्बन्धी संयोगवियोगरूप सर्वव्यवहार तहां निरूपै हैं। बहुरि स्नान करतीं स्त्रीनिका वस्त्र चुरावना दधि लूटनां, स्त्रीनिकै पगां पड़ना, स्त्रीनिकै आगैं नाचना इत्यादि जिन कार्यनिकौं संसारी जीव भी करते लज्जित होंय तिनि कार्यनिका करना ठहरावै हैं। ऐसा कार्य अतिकामपीड़ित भए ही बनैं। बहुरि

युद्धादिक किए कहैं तो ए क्रोधके कार्य हैं। अपनी महिमा दिखावनेंके अर्थि उपाय किए कहैं सो ए मानके कार्य हैं। अनेक छल किए कहैं सो मायाके कार्य हैं। विषयसामग्रीकी प्राप्तिके अर्थि यत्न किए कहैं सो ए लोभके कार्य हैं। कूतूहलादिक किए कहैं सो हास्यादिकके कार्य हैं। ऐसें ए कार्य क्रोधादिकरि युक्त भए ही बनें। या प्रकार काम-क्रोधादिकरि निपजे कार्यनिकौं प्रगटकरि कहैं हम स्तुति करें हैं। सो काम क्रोधादिके कार्य ही स्तुतियोग्य भए तौ निंद्य कौन ठहरैंगे। जिनकी लोकविषैं शास्त्रविषैं अत्यंत निंदा पाइए तिनि कार्यनिका वर्णनकरि स्तुति करना तौ हस्तचुगलकासा कार्य भया। हम पूछैं हैं-कोऊ किसीका नाम तौ कहै नाहीं अर ऐसे कार्यनिका निरूपण करि कहै कि किसीनैं ऐसे कार्य किए हैं. तव तुम वाकौं भला जानौं कि बुरा जानौं। जो भला जानौं, तौ पापी भले भए। बुरा कौन रह्या, बुरे जानौं तौ ऐसे कार्य कोई करो सो ही बुरा भया। पक्षपातरहित न्याय करौ। जो पक्षपातकरि कहौगे, ठाकुरका ऐसा वर्णन करना भी स्तुति है तौ ठाकुर ऐसे कार्य किस अर्थि किए। ऐसे निंद्यकार्य करनेमैं कहा सिद्धि भई? कहौगे, प्रवृत्ति चलावनेंकै अर्थि किए, तौ परस्त्री सेवन आदि निंद्यकार्यनिकी प्रवृत्ति चलावनेमैं आपकैं वा अन्यकैं कहा नफा भया। तातैं ठाकुरकैं ऐसा कार्य करना संभवै नाहीं। बहुरि जो ठाकुर कार्य नाहीं किए, तुम ही कहो हो, तौ जामैं दोष न था तिसकौं दोष लगाया, तातैं ऐसा वर्णन करना तौ निंदा है स्तुति नाहीं। बहुरि स्तुति करतैं जिन गुण-निका वर्णन करिए तिस रूप ही परिणाम होय वा तिनिविषैं

अनुराग आवै। सो काम क्रोधादि कार्यनिका वर्णन करना आप भी कामक्रोधादिरूप होय अथवा कामक्रोधादिविषै अनुरागी होय तौ ऐसे भाव तौ भले नाहीं। जो कहोगे, भक्त ऐसा न करैं हैं तौ परिणाम भए बिना वर्णन कैसैं किया। तिनिका अनुराग भए बिना भक्ति कैसैं करी! सो ए भाव ही भले होंय तौ ब्रह्मचर्यकौं वा क्षमादिककौं भले काहेकौं कहिए। इनिकै तौ परस्पर प्रतिपक्षीपनां है। बहुरि सगुणभक्तिकरनेके अर्थि रामकृष्णादिककी मूर्ति भी शृंगारादि किए वक्रत्वादिसहित स्त्रीआदि संगलिए बनावैं हैं, जाकौं देखतैं ही कामक्रोधादि भाव प्रगट होय आवैं। बहुरि महादेवके लिंगहीका आकार बनावै हैं। देखो विडंबना, जाका नाम लिए ही लाज आवै, जगत् जिसकौं ढांकका राखै ताका आकारका पूजन करावै हैं। कहा अन्य अंग वाकै न थे। परन्तु घनी विडंबना ऐसे ही किए प्रगट होय। बहुरि सगुणभक्तिकै अर्थि नानाप्रकार विषयसामग्री भेली करैं, बहुरि नाम तौ ठाकुरका करै अर तिनिकौं भोगवै, भोजनादि बनावै बहुरि ठाकुरकौं भोग लगाया कहैं आपही प्रसादकी कल्पनाकरि ताका भक्षणादि करै। इहां पूछिये है, प्रथम तौ ठाकुरकै क्षुधा तृषादिककी पीड़ा होसी। न होइ तौ ऐसी कल्पना कैसैं संभवै। अर क्षुधादिकरि पीड़ित होय सो व्याकुल होइ तब ईश्वर दुखी भया औरका दुःख दूरि कैसैं करै, बहुरि भोजनादि सामग्री आप तौ उनकै अर्थि अर्पण करी, पीछैं प्रसाद तौ ठाकुर देवै तब होय आपहीका तौ किया न होय। जैसैं कोऊ राजाकी भेंट करै पीछैं राजा बकसै तौ याकौं ग्रहण करना योग्य, अर आप राजा की भेंट करै अर राजा तौ किछू कहै

नाहीं, आप ही 'राजा मोकूं बकसी' ऐसे कहि वाकौं अंगीकार करै तौ यहु ख्याल (खेल) भया। तैसैं इहां भी ऐसैं किए भक्ति तौ भई नाहीं, हास्य करना भया। बहुरि ठाकुर अर तू दोय हौ कि एक हौ। दोय हौ तौ भेंट करी पीछैं ठाकुर बकसै सो ग्रहण कीजै। आपही तैं ग्रहण काहेकौं करै है। अर तू कहैगा ठाकुरकी तौ मूर्ति है तातैं मैं ही कल्पना करौं हौं, तौ ठाकुरका करनेका कार्य तैं ही किया तब तू ही ठाकुर भया। बहुरि जो एक हौ, तौ भेंट करनी प्रसाद कहना झूंठा भया। एक भए यहु व्यवहार संभवै नाहीं। तातैं भोजनाशक्त पुरुषनिकरि ऐसी कल्पना करिए है। बहुरि ठाकुरकै अर्थि नृत्य गानादि करावना, शीत ग्रीषम वसंत आदि ऋतुनिविषै संसारी-निविषै संभवती ऐसी विषयसामग्री मेली करनी इत्यादि कार्य करै। तहां नाम तो ठाकुरका लेना अर इंद्रियनिकै विषय अपने पोषनै सो विषयाशक्त जीवनिकरि ऐसा उपाय किया है। बहुरि जन्म विवाहादिककी वा सोवना जागना इत्यादिककी कल्पना तहां करै है सो जैसे लड़की गुड़ीनिका ख्याल करि कुतूहल करै, तैसे यहु कुतूहल करना है। किछू परमार्थरूप गुण है नाहीं। बहुरि बालकवत् ठाकुरका स्वांग बनाय चेष्टा दिखावै। तातैं अपने विषय पोषै अर कहै यहु भी भक्ति इत्यादि कहा कहिए। ऐसी अनेक विपरीतता सगुण भक्ति विषै पाइए हैं। ऐसैं दोय प्रकार भक्तिकरि मोक्ष मार्ग कह्या। सो ताकौं मिथ्या दिखाया।

[पवनादि साधनद्वारा ज्ञानी होनेका खण्डन]

बहुरि कई जीव पवनादिकका साधनकरि आपकौं ज्ञानी कहै है

तहां इडा पिंगल सुषुम्णारूप नासिकाद्वारकरि पवन निकसै,तहां वर्णादिक भेदनि पवनहीकौं पृथ्वी तत्त्वादिकरूप कल्पना करै हैं। ताका विज्ञान करि किछू साधनतैं निमित्तका ज्ञान होय तातै जगतकौं इष्ट अनिष्ट वतावै आप महंत कहावै सो यह तौ लौकिक कार्य है किछू मोक्षमार्ग नाहीं। जीवनिकौं इष्ट अनिष्ट वताय उनकै राग द्वेष वधावै अर अपनै मान लोभादिक निपजावै यामैं कहा सिद्धि है? वहुरि प्राणायामादिका साधनकरै पवनकौं चढ़ाय समाधि लगाई कहै, सो यहु तौ जैसैं नट साधनतैं हस्तादिक क्रिया करै तैसैं यहां भी साधनतैं पवनकरि क्रिया करी। हस्तादिक अर पवन ए तौ शरीर हीके अंग हैं। इनिके साधनतैं आत्महित कैसैं सधै? वहुरि तू कहैगा—तहां मनका विकल्प मिटै है सुख उपजै है यमकै वशीभूतपना न हो है सो यहु मिथ्या है। जैसैं निद्राविषैं चेतनाकी प्रवृत्ति मिटै है तैसै पवन साधनतैं यहां चेतनाकी प्रवृत्ति मिटै है। तहां मनकौं रोकि राख्या है किछू वासना तौ मिटी नाहीं। तातैं मनका विकल्प मिट्या न कहिए। अर चेतना विना सुख कौन भोगवै है। तातैं सुख उपज्या न कहिए। अर इस साधनवाले तौ इस क्षेत्रविषैं भए हैं तिनिविषैं कोई अमर दीसता नाहीं। अग्नि लगाए ताका भी मरण होता दीसै है तातैं यमकै वशीभूत नाहीं, यहु झूठी कल्पना है। वहुरि जहां साधनविषैं किछू चेतना रहै अर तहां साधनतैं शब्द सुनैं, ताकौं अनहद नाद वतावै। सो जैसैं वीणादिकके शब्द सुननेतैं सुख मानना तैसैं तिसके सुननेतैं सुख मानना है। इहां तौ विषयपोषण भया, परमार्थ तौ किछू नाहीं ठहरथा। वहुरि पवनका निकसनैं पैठनैंविषैं 'सोहं' ऐसे

शब्दकी कल्पनाकरि ताकौं 'अजया जाप' कहै हैं। सो जैसैं तीतरके शब्दविषैं 'तू ही' शब्दकी कल्पना करै हैं किछू तीतर अर्थ अवधारि ऐसा शब्द कहता नाहीं। तैसैं यहां 'सोहं' शब्दकी कल्पना है। किछू पवन अर्थ अवधारि ऐसा शब्द कहता नाहीं। बहुरि शब्दके जपने सुननेतैं ही तौ किछू फलप्राप्ति नाहीं। अर्थ अवधारे फलप्राप्ति हो है। सो 'सोहं' शब्दका तौ अर्थ यहु है 'सो हूँ छूं' यहां ऐसी अपेक्षा चाहिए है, 'सो' कौन ? तब ताका निर्णय किया चाहिए। जातैं तत् शब्दकै अर यत् शब्दकै नित्यसंबंध है। तातैं वस्तुका निर्णयकरि ताविषैं अहंबुद्धि धारनें विषैं 'सोहं' शब्द बनै। तहां भी आपकौं आप अनुभवै, तहां तौ 'सोहं' शब्द संभवै नाहीं। परकौं अपने स्वरूप बतावनेविषै 'सोहं' शब्द संभवै है। जैसैं पुरुष आपकौं आप जानै, तहां 'सो हूं छूं' ऐसा काहेकौं विचारै। कोई अन्यजीव आपकौं न पहचानता होय अर कोई अपना लक्षण न पहचानता होय, तब वाकौं कहिए 'जो ऐसा है सो मैं हौं' तैसैं ही यहां जानना। बहुरि कोई ललाट भौंहारा नासिकाके अग्रभागके देखनेका साधनकरि त्रिकुटी आदिका ध्यान भया कहि परमार्थ मानैं, सो नेत्रकी पूतरी फिरै मूर्तीक वस्तु देखी, यामैं कहा सिद्धि है। बहुरि ऐसे साधननितैं किंचित् अतीत अनागतादिकका ज्ञान होय वा वचनसिद्धि होय वा पृथ्वी आकाशादि-विषैं गमनादिककी शक्ति होय वा शरीरविषैं आरोग्यतादिक होय तौ ए तौ सर्व लौकिक कार्य हैं। देवादिककै स्वयमेव ही ऐसी शक्ति पाइए

है। इनितैं किछू अपना भला तौ होता नाहीं, भला तौ विषयकषायकी वासना मिटैं होय। सो ए तौ विषयकषाय पोषनेंके उपाय हैं। तातैं ए सर्व साधन किछू हितकारी हैं नाहीं। इनिविषैं कष्ट बहुत मरणादि पर्यंत होय अर हित सधै नाहीं। तातैं ज्ञानी वृथा ऐसा खेद करै नाहीं। कषायी जीव ही ऐसे साधनविषैं लागै हैं। बहुरि काहूकौं बहुत तपश्चरणादिककरि मोक्षका साधन कठिन बतावै हैं। काहूकौं सुगमपनैं ही मोक्षभया कहैं। उद्धवादिककौं परम भक्त कहैं तिनकौं तौ तपका उपदेश दिया कहैं, वेश्यादिककै विना परिणाम केवल नामादिकहीतैं तरना बतावैं, किछू थल है नाहीं। ऐसैं मोक्षमार्गकौं अन्यथा प्ररूपै हैं।

[मोक्षके विभिन्न स्वरूप]

बहुरि मोक्षस्वरूपकौं भी अन्यथा प्ररूपै हैं। तहां मोक्ष अनेक प्रकार बतावै हैं। एक तौ मोक्ष ऐसा कहै हैं—जो वैकुंठधामविषैं ठाकुर ठकुराणीसहित नानाभोगविलास करै हैं तहां जाय प्राप्त होय अर तिनिकी टहल किया करै, सो मोक्ष है। सो यहु तौ विरुद्ध है। प्रथम तौ ठाकुर भी संसारीवत् विषयाशक्त होय रह्या है। तौ जैसा राजादिक है तैसा ही ठाकुर भया। बहुरि अन्य पासि टहल करावनी भई तब ठाकुरकै पराधीनपना भया। बहुरि जो यहु मोक्षकौं पाय तहां टहल किया करै तौ जैसैं राजा की चाकरी करनी, तैसैं यह भी चाकरी भई तहां पराधीन भए सुख कैसैं होय ? तातैं यहु भी बनै नाहीं।

बहुरि एक मोक्ष ऐसा कहै हैं—ईश्वरकै समान आप हो है सो भी मिथ्या है। जो उसके समान और भी जुदा होय है तौ बहुत ईश्वर भए। लोकका कर्त्ता हर्त्ता कौन ठहरैगा, सबही ठहरैं तौ भिन्न

इच्छा भए परस्पर विरुद्ध होय। एक ही है तौ समानता न भई। न्यून है ताकै नीचापनेंकरि उच्चता होनेकी आकुलता रही, तब सुखी कैसैं होय? जैसैं छोटा राजा कै बड़ा राजा संसारविषैं हो है तैसैं छोटा बड़ा ईश्वर मुक्तिविषैं भी भया सो बनैं नाहीं।

बहुरि एक मोक्ष ऐसा कहै हैं—जो वैकुंठविषैं दीपककीसी एक ज्योति है। तहां ज्योतिविषैं ज्योति जाय मिलै है। सो यहु भी मिथ्या है। दीपककी ज्योति तौ मूर्त्तीक अचेतन है, ऐसी ज्योति तहां कैसैं संभवै? बहुरि ज्योतिमैं ज्योति मिलैं यहु ज्योति रहै है कि विनशि जाय है। जो रहै है तौ ज्योति बधती जायगी। तब ज्योतिविषैं हीनाधिकपनौं होसी। अर विनशि जाय है तौ आपकी सत्ता नाश होय ऐसा कार्य उपादेय कैसैं मानिए। तातैं ऐसैं भी बनैं नाहीं।

बहुरि एक मोक्ष ऐसा कहै हैं—जो आत्मा ब्रह्म ही है, मायाका आवरण मिटे मुक्ति ही है। सो यहु भी मिथ्या है। यहु मायाका आवरणसहित था तब ब्रह्मस्यौं एक था कि जुदा था। जो एक था तौ ब्रह्म ही मायारूप भया अर जुदा था तौ माया दूरि भए ब्रह्मविषैं मिलै है तब याका अस्तित्व रहै है कि नाहीं, जो रहै है, तौ सर्वज्ञकौं तौ याका अस्तित्व जुदा भासै, तब संयोग होनेतैं मिल्या कहौ; परन्तु परमार्थतैं तो मिल्या नाहीं। बहुरि अस्तित्व नाहीं रहै है तौ आपका अभाव होना कौन चाहै, तातैं यहु भी न बनै।

बहुरि एक प्रकार मोक्षकौं ऐसा भी केई कहै हैं जो बुद्धि आदिकका नाश भए मोक्ष हो है। सो शरीरके अंगभूत मन इंद्रिय तिनिकै आधीन

ज्ञान न रह्या। काम क्रोधादिक दूरि भए असैं कहना तौ वनैं है अर तहां चेतनताका भी अभाव भया मानिए तौ पाषाणादि समान जड़ अवस्थाकौं कैसैं भली मानिए। बहुरि भला साधन करतैं तौ ज्ञानपना वधै है बहुत भला साधन किए ज्ञानपनेका अभाव होना कैसैं मानिए? बहुरि लोकविषैं ज्ञानकी महंततातैं जड़पनाकी महंतता नाहीं, तातैं यहु वनै नाहीं। असैं ही अनेकप्रकार कल्पनाकरि मोक्षकौं बतावैं छूसो कि यथार्थ तौ जानैं नाहीं, संसार अवस्थाकी मुक्ति अवस्थाविषैं कल्पना-करि अपनी इच्छा अनुसारि बकै हैं। याप्रकार वेदांतादि मतनिविषै अन्यथा निरूपण करै हैं।

[मुस्लिम मत विचार]

बहुरि असैं ही मुसलमानोंके मतविषैं अन्यथा निरूपण करै हैं जैसैं वै ब्रह्मकौं सर्वव्यापी एक निरंजन सर्वका कर्त्ता हर्त्ता मानै हैं तैसैं ए खुदाकौं मानै हैं। बहुरि जैसैं वै अवतार भए मानैं है तैसैं ए पैगंबर भए मानैं हैं। जैसैं वै पुण्य पापका लेखा लेना यथायोग्य दंडादिक देना ठहरावै हैं तैसैं ए खुदाकै ठहरावै हैं। बहुरि जैसैं वै ईश्वरकी भक्तितैं मुक्ति कहै हैं तैसैं ए खुदाकी भक्तितैं कहै हैं। बहुरि जैसैं वै कहीं दया पोषैं कहीं हिंसा पोषैं, तैसैं ए भी कहीं मेहर करनी पोषैं कहीं जिवह करना पोषैं। बहुरि जैसैं वै कहीं तपश्चरण करना पोषैं कहीं विषयसेवन पोषैं तैसैं ही ए भी पोषैं हैं। बहुरि जैसैं वै कहीं मांस मदिरा शिकार आदिका निषेध करैं, कहीं उत्तम पुरुषांकरि तिनिका अंगीकार करना बतावैं तैसैं ए भी तिनिका निषेध वा अंगी-कार करना बतावैं हैं। ऐसैं अनेकप्रकारकरि समानता पाइए है। यद्यपि नामादिक और और हैं तथापि प्रयोजनभूत अर्थकी एकता

पाइए है। बहुरि ईश्वर खुदा आदि मूलश्रद्धानकी तौ एकता है अर उत्तरश्रद्धानविषैं घनें ही विशेष हैं। तहां उनतैं भी ए विपरीतरूप विषयकषायके पोषक हिंसादि पापके पोषक प्रत्यक्षादि प्रमाणतैं विरुद्ध निरूपण करै हैं। तातैं मुसलमानोंका मत महाविपरीतरूप जानना। या प्रकार इस क्षेत्र कालविषैं जिनिमतनिकी प्रचुर प्रवृत्ति है ताका मिथ्यापना प्रगट किया।

इहां कोऊ कहै जो ए मत मिथ्या हैं तौ बड़े राजादिक वा बड़े विद्यावान् इनि मतनिविषैं कैसैं प्रवर्तै हैं?

ताका समाधान—जीवनिकै मिथ्यावासना अनादितैं है सो इनिविषैं मिथ्यात्वहीका पोषण है। बहुरि जीवनिकै विषयकषायरूप कार्यनिकी चाहि वर्तै है सो इनि विषैं विषयकषायरूप कार्यनिहीका पोषण है। बहुरि राजादिकनि वा विद्यावानोंका ऐसे धर्मविषैं विषयकषायरूप प्रयोजनसिद्धि हो है। बहुरि जीव तौ लोकनिंद्यपनांकौं भी उलंघि पाप भी जानि जिन कार्यनिकौं किया चाहै तिनि कार्यनिकौं करतैं धर्म बतावैं तौ ऐसे धर्मविषैं कौन न लागै। तातैं इनि धर्मनिकी विशेष प्रवृत्ति है। बहुरि कदाचित् तू कहैगा,—इनि धर्मनिविषैं विरागता दया इत्यादि भी तौ कहै हैं, सो जैसैं झोल दिये बिना खोटा द्रव्य चालै नाहीं, तैसैं सांच मिलाए बिना झूठ चालै नाहीं; परंतु सर्वके हित प्रयोजन विषैं विषयकषायका ही पोषण किया है। जैसैं गीताविषैं उपदेश देय करि (युद्ध) करावनेका प्रयोजन प्रगट किया। वेदान्तविषैं शुद्ध निरूपणकरि स्वच्छन्द होनेका प्रयोजन दिखाया। ऐसैं ही अन्य

जानने। बहुरि यहु काल तौ निकृष्ट है सो इसविषैं तौ निकृष्ट धर्मही-की प्रवृत्ति विशेष होय है देखो.इस कालविषैं मुसलमान बहुत प्रधान हो गए। हिंदू घटि गए। हिंदूनिविषै और वधि गए, जैनी घटि गए। सो यहु कालका दोष है ऐसैं इहां अबार मिथ्याधर्मकी प्रवृत्ति बहुत पाईए है। अब पंडितपनाके बलतैं कल्पितयुक्तकरि नाना मत स्थापित भए हैं तिनिविषैं जे तत्त्वादिक मानिए है तिनिका निरूपण कीजिए है:—

[सांख्यमतविचार]

तहां सांख्यमतविषैं पच्चीस तत्त्व माने हैं[1] सो कहिए है—सत्त्व रजः तमः ए तीन गुण कहै हैं। तहां सत्त्वकरि प्रसाद हो है रजोगुणकरि चित्तकी चंचलता हो है तमोगुणकरि मूढ़ता हो है इत्यादि लक्षण कहै हैं। इनिरूप अवस्था ताका नाम प्रकृति है। बहुरि तिसतैं बुद्धि निपजै है याहीका नाम महत्तत्त्व है। बहुरि तिसतैं अहंकार निपजै है। बहुरि तिसतैं सोलहमात्रा हो हैं। तहां पांच तौ ज्ञानइंद्रिय हो हैं—स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र। बहुरि एक मन हो है। बहुरि पांच कर्मइन्द्रिय हो हैं—वचन, चरन, हस्त, लिंग, पायु। बहुरि पांच तन्मात्रा हो हैं—रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द। बहुरि रूपतैं अग्नि, रसतैं जल, गंधतैं पृथ्वी, स्पर्शतैं पवन, शब्दतैं आकाश, ऐसैं भया कहै हैं। ऐसैं चौईस तत्त्व तौ प्रकृतिस्वरूप हैं।

---

१ प्रकृतेर्महांस्ततो ऽहङ्कारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात्पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि ॥—सांख्यका० २२

इनितैं भिन्न निर्गुण कर्त्ता भोक्ता एक पुरुष है। ऐसैं पच्चीस तत्त्व किये हैं। सो ए कल्पित हैं। जातैं राजसादिक गुण आश्रयबिना कैसैं होंय। इनका आश्रय तौ चेतनद्रव्य ही संभवै है। बहुरि इनितैं बुद्धि भई कहै सो बुद्धि नाम तौ ज्ञानका है। सो ज्ञानगुणका धारी पदार्थविषैं ए होते देखिए है। इनितैं ज्ञान भया कैसैं मानिए। कोई कहै,– बुद्धि जुदी है ज्ञान जुदा है तौ मन तौ आगैं षोडशमात्राविषैं कह्या अर ज्ञान जुदा कहोगे तौ बुद्धि किसका नाम ठहरैगा। बहुरि तिनतैं अहंकार भया कह्या, सो परवस्तु विषैं मैं करौं हौं' ऐसा माननेका नाम अहंकार है। साक्षीभूत जाननें करि तो अहंकार होता नाहीं। ज्ञानकरि उपज्या कैसें कहिए है। बहुरि अहंकारकरि षोडश मात्रा कहीं। तिनविषै पांच ज्ञानइन्द्रिय कहीं। सो शरीरविषैं नेत्रादि आकाररूप द्रव्येंद्रिय हैं सो तो पृथ्वी आदिवत् देखिए है। अर वर्णादिकके जाननेंरूप भावइन्द्रिय हैं सो ज्ञानरूप है। अहंकारका कहा प्रयोजन है। अहंकार बुद्धिरहित कोऊ काहूकौं देखै है। तहां अहंकारकरि निपजना कैसैं संभवै बहुरि मन कह्या, सो इंद्रियवत् ही मन है। जातैं द्रव्यमन शरीररूप है, भावमन ज्ञानरूप है। बहुरि पांच कर्मइंद्रिय कहै, सो ए तौ शरीर के अंग हैं। मूर्तीक हैं। अहंकार अमूर्तीक तैं इनिका उपजना कैसैं मानिए। बहुरि कर्मइन्द्रिय पांच ही तौ नाहीं। शरीरके सर्व अंग कार्यकारी हैं। बहुरि वर्णन तौ सर्व जीवाश्रित है, मनुष्याश्रित ही तौ नाहीं, तातैं सूंडि पूंछ इत्यादि अंग भी कर्मइंद्रिय हैं। पांचहीकी संख्या काहेकौं कहिए है। बहुरि स्पर्शादिक पांच तन्मात्रा कहीं, सो रूपादि किछू जुदे वस्तु नाहीं, ए तौ परमाणूनिसौं तन्मय

गुण हैं। ए जुदे कैसैं निपजै कहिये। वहुरि अहंकार तो अमूर्त्तीक जीव का परिणाम है। तातैं ए मूर्त्तीकगुण कैसैं निपजे मानिए। वहुरि इनि पांचनितैं अग्नि आदि निपजे कहैं, सो प्रत्यक्ष झूंठ है। रूपादिक अग्न्यादिककै तौ सहभूत गुणगुणी संवंध है। कहने मात्र भिन्न हैं वस्तुविषैं भेद नाहीं। किसीप्रकार कोऊ भिन्न होता भासै नाहीं, कहने मात्रकरि भेद उपजाईए है। तातैं रूपादिकरि अग्न्यादि निपजे कैसैं कहिए। वहुरि कहनेंविषैं भी गुणीविषै गुण हैं। गुणतैं गुणी निपज्या कैसैं मानिए ?

वहुरि इनितैं भिन्न एक पुरुष कहै हैं, सो वाका स्वरूप अवक्तव्य कहि प्रत्युत्तर न करै तौ कहा बूझैं, नाहीं है,कहां है, कैसैं कर्त्ता हर्त्ता है, सो वताय। जो वतावैगा ताहीमैं विचार किए अन्यथापनौं भासैगा। ऐसैं सांख्यमतकरि कल्पित तत्त्व मिथ्या जाननें।

वहुरि पुरुषकौं प्रकृतितैं भिन्न जाननेका नाम मोक्षमार्ग कहै हैं। सो प्रथम तौ प्रकृति अर पुरुष कोई है ही नाहीं। वहुरि केवल जानेंही तैं तौ सिद्धि होती नाहीं। जानिकरि रागादिक मिटाए सिद्धि होय,सो ऐसैं जाने किछू रागादिक घटैं नाहीं। प्रकृतिका कर्त्तव्य मानैं, आप अकर्त्ता तव रहै, काहेकौं आप रागादि घटावै। तातैं यहु मोक्षमार्ग नाहीं है।

वहुरि प्रकृति पुरुषका जुदा होना मोक्ष कहैं हैं। सो पच्चीस तत्त्वनिविषैं चौईस तत्त्व तौ प्रकृतिसंवंधी कहे, एक पुरुष भिन्न कह्या। सो ए तौ जुदे हैं ही अर जीव कोई पदार्थ पच्चीस [illegible] कह्या ही नाहीं। अर पुरुषहीकौं प्रकृतिसंयोग भए जीव-

संज्ञा हो है, तौ पुरुष न्यारे न्यारे प्रकृतिसहित हैं पीछैं साधनकरि कोई पुरुष प्रकृति रहित हो हैं, ऐसा सिद्ध भया—पुरुष एक न ठहर्‍या।

बहुरि प्रकृति पुरुषकी भूलि है कि, कोई व्यंतरीवत् जुदी ही है सो जीवकौं आनि लागै है। जो याकी भूलि है, तौ प्रकृतितैं इंद्रियादिक वा स्पर्शादिक तत्त्व उपजे कैसैं मानिए। अर जुदी है, तौ वह भी एक वस्तु है सर्व कर्त्तव्य वाका ठहर्‍या। पुरुषका किछू कर्त्तव्य ही रह्या नाहीं, काहेकौं उपदेश दीजिए है। ऐसैं यहु मोक्षमार्गपना मानना मिथ्या है। बहुरि तहां प्रत्यक्ष अनुमान आगम ए तीन प्रमाण कहै हैं, सो तिनिका सत्य असत्यका निर्णय जैनके न्याय ग्रंथनितैं जानना।

बहुरि इस सांख्यमतविषैं कोई ईश्वरकौं न मानै हैं। कोई एक पुरुषकौं ईश्वर मानै हैं। कोई शिवकौं कोई नारायणकौं देव मानै हैं। अपनी इच्छा अनुसारि कल्पना करै हैं, किछू निश्चय है नाहीं। बहुरि इस मतविषैं कोई जटा धारै हैं, कोई चोटी राखै हैं, कोई मुंडित हो हैं, कोई काथे वस्त्र पहरैं हैं, इत्यादि अनेकप्रकार भेष धारि तत्त्वज्ञानका आश्रयकरि महंत कहावै हैं। ऐसैं सांख्यमतका निरूपण किया।

[[illegible]-मत [illegible]]

बहुरि शिवमतविषैं दोय भेद हैं—नैयायिक, वैशेषिक। तहां नैयायिकमतविषैं सोलह तत्त्व कहै हैं। प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टांत, सिद्धांत, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितंडा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान। तहां प्रमाण च्यारि प्रकार कहै हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमा। बहुरि आत्मा, देह, अर्थ, बुद्धि

इत्यादि प्रमेय कहै हैं। बहुरि 'यहु कहा है' ताका नाम संशय है। जाकै अर्थि प्रवृत्ति होय, सो प्रयोजन है। जाकौं वादी प्रतिवादी मानैं सो दृष्टांत है। दृष्टांतकरि जाकौं ठहराईए सो सिद्धान्त है बहुरि अनुमानके प्रतिज्ञा आदि पंच अंग ते अवयव हैं। संशय दूरि भए किसी विचारतैं ठीक होय, सो तर्क है। पाछैं प्रतीतिरूप जानना सो निर्णय है। आचार्य शिष्यकै पक्ष प्रतिपक्षकरि अभ्यास सो वाद है। जाननेकी इच्छारूप कथाविषैं जो छल जाति आदि दूषण होंय सो जल्प है। प्रतिपक्ष-रहित वाद सो वितंडा है सांचे हेतु नाहीं, ते असिद्ध आदि भेद लिएं हत्वाभास हैं। छललिएं वचन सो छल है। सांचे दूषण नाहीं ऐसे दूषणाभास सो जाति है। जाकरि परिवादीका निग्रह होय सो निग्रहस्थान है। या प्रकार संशयादि तत्त्व कहे, सो ए तो कोई वस्तुस्वरूप तौ तत्त्व हैं नाहीं। ज्ञानके निर्णय करनेकौं वा वादकरि पांडित्य प्रकट करनेकौं कारणभूत विचाररूप तत्त्व कहे, सो इनितैं परमार्थ कार्य कैसैं होइ? काम क्रोधादि भावकौं मेटि निराकुल होना सो कार्य है। सो तौ इहां प्रयोजन किछू दिखाया ही नाहीं। पंडिताईकी नाना युक्ति बनाई सो यहु भी एक चातुर्य्य है, तातैं ये तत्त्वभूत नाहीं। बहुरि कहोगे इनिकौं जानैं विना प्रयोजनभूत तत्त्वनिका निर्णय न करि सकै, तातैं ए तत्त्व कहे हैं। सो ऐसे परंपरा तौ व्याकरणवाले भी कहै हैं। व्याकरण पढ़ैं अर्थ निर्णय होइ, वा भोजनादिकके अधिकारी भी कहै हैं कि भोजन किएं शरीरकी स्थिरता भए तत्त्वनिर्णय करनेकौं समर्थ होंय, सो ऐसी युक्ति कार्यकारी नाहीं। बहुरि जो कहोगे, व्याकरण भोजनादिक तौ अवश्य तत्त्वज्ञानकौं कारण नाहीं,

लौकिक कार्य साधनेकौं कारण हो है। जैसैं इंद्रियादिकके जाननेकौं प्रत्यक्षादि प्रमाण कहे, वा स्थाणु पुरुषादिविषै संशयादिकका निरूपण किया। तातैं जिनिकौं जानैं अवश्य काम क्रोधादि दूरि होंय, निराकुलता निपजै, वे ही तत्त्व कार्यकारी हैं। बहुरि कहोगे, जो प्रमेय तत्त्वविषै आत्मादिकका निर्णय हो है सो कार्यकारी है। सो प्रमेय तौ सर्व ही वस्तु हैं। प्रमितिका विषय नाहीं, ऐसा कोई भी नाहीं, तातैं प्रमेय तत्त्व काहेकौं कह्या। आत्मा आदि तत्त्व कहने थे। बहुरि आत्मादिकका भी स्वरूप अन्यथा प्ररूपण किया, सो पक्षपातरहित विचार किए भासै है। जैसैं आत्माके भेद दोय करै हैं—परमात्मा जीवात्मा। तहां परमात्माकौं सर्वका कर्त्ता बतावै है। तहां ऐसा अनुमान करै है सो यह जगत् कर्त्ताकरि निपज्या है, जातैं यह कार्य है। जो कार्य है सो कर्त्ताकरि निपज्या है, जैसैं घटादिक। सो यह अनुमानाभास है। जातैं यहां अनुमानांतर संभवै है। यह जगत् सर्व कर्त्ताकरि निपज्या नाहीं। जातैं याविषैं कोई अकार्यरूप पदार्थ भी है। जो अकार्य है, सो कर्त्ताकरि निपज्या नाहीं। जैसैं सूर्यबिंबादिक। जातैं अनेक पदार्थनिका समुदायरूप जगत् तिसविषैं कोई पदार्थ कृत्रिम हैं सो मनुष्यादिककरि किए होय हैं। कोई अकृत्रिम हैं सो ताका कर्त्ता नाहीं। यह प्रत्यक्षादि प्रमाणके अगोचर है। तातैं ईश्वरकौं कर्त्ता मानना मिथ्या है। बहुरि जीवात्माकौं प्रतिशरीर भिन्न कहै हैं। सो यहु सत्य है। परंतु मुक्त भए पीछैं भी भिन्न ही मानना योग्य है। विशेष पूर्वै कह्या ही है। ऐसैं ही अन्य तत्त्वनिकौं मिथ्या प्ररूपै है। बहुरि प्रमाणादिकका भी स्वरूप अन्यथा कल्पै है, सो जैनग्रंथनितैं परीक्षा

किएं भासै है। ऐसैं नैयायिकमतविषै कहे कल्पित तत्त्व जाननें।

[वैशेषिक मत विचार]

बहुरि वैशेषिकमतविषैं छह तत्त्व कहे हैं। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय। तहां द्रव्य नवप्रकार पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, काल, दिशा आत्मा, मन। तहां पृथ्वी जल अग्नि-पवनके परमाणु भिन्न भिन्न हैं। ते परमाणु नित्य हैं। तिनिकरि कार्यरूप पृथ्वी आदि हो है सो अनित्य है। सो ऐसा कहना प्रत्यक्षादितैं विरुद्ध है। ईंधनरूप पृथ्वी आदिके परमाणु, अग्निरूप होते देखिए है। अग्निके परमाणु राखरूप पृथ्वी होती देखिए है। जलके परमाणु मुक्ताफल (मोती) रूप पृथ्वी होते देखिए है। बहुरि जो तू कहैगा, वै परमाणु जाते रहै हैं और ही परमाणु तिनिरूप हो हैं सो प्रत्यक्षकौं असत्य ठहरावै है। ऐसी कोई प्रबलयुक्ति कहै तौ ऐसैं ही मानैं, परंतु केवल कहेतैं ही तौ ऐसैं ठहरै नाहीं। तातैं सब परमाणूनिकी एक पुद्गलरूप मूर्तीक जाति है, सो पृथ्वी आदि अनेक अवस्थारूप परिणमै है। बहुरि इनि पृथ्वी आदिकका कहीं जुदा शरीर ठहरावैं है, सो मिथ्या ही है। जातैं वाका कोई प्रमाण नाहीं। अर पृथ्वी आदि तौ परमाणुपिंड हैं। इनिका शरीर अन्यत्र, ए अन्यत्र ऐसा संभवै नाहीं। तातैं यहु मिथ्या है। बहुरि जहां पदार्थ अटकै नाहीं, ऐसी जो पोलि ताकौं आकाश कहै हैं। क्षण पल आदिकौं काल कहै हैं। सो ए दोन्यौं ही अवस्तु हैं। सत्तारूप ए पदार्थ नाहीं। पदार्थनिका क्षेत्रपरिणमनादिकका पूर्वापरविचार करनेकै अर्थि इनिकी कल्पना कीजिए है। बहुरि दिशा किछू हैं ही नाहीं। आकाशविषैं

खंड कल्पनाकरि दिशा मानिए है। बहुरि आत्मा दोय प्रकार कहै हैं, सो पूर्वैं निरूपण किया ही है। बहुरि मन कोई जुदा पदार्थ नाहीं। भावमन तौ ज्ञानरूप है, सो आत्माका स्वरूप है। द्रव्यमन परमाणूनिका पिंड है, सो शरीरका अंग है ऐसैं ए द्रव्य कल्पित जाननें। बहुरि गुण चोईस कहे हैं--स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द, संख्या, विभाग, संयोग, परिमाण, पृथक्त्व, परत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, धर्म, अधर्म, प्रयत्न, संस्कार, द्वेष, स्नेह, गुरुत्व, द्रव्यत्व। सो इनिविषैं स्पर्शादिक गुण तौ परमाणूनिविषैं पाइए है। परन्तु पृथ्वीविषै गंधकी मुख्यता न भासै है। कोई जल उष्ण देखिए है। प्रत्यक्षादिकैं विरुद्ध है। बहुरि शब्दकौं आकाशका गुण कहैं, सो मिथ्या है। शब्द तौ भीति इत्यादिकैं रुकै है, तातैं मूर्तीक है। आकाश अमूर्तीक सर्वव्यापी है। भीतिविषैं आकाश रहै, शब्दगुण न प्रवेशकरि सकै, यह कैसें बनैं? बहुरि संख्यादिक हैं सो वस्तुविषैं तौ किछू है नाहीं, अन्य पदार्थ अपेक्षा अन्य पदार्थके हीनाधिक जाननेकौं अपने ज्ञानविषैं संख्यादिककी कल्पनाकरि विचार कीजिए है। बहुरि बुद्धिआदि हैं, सो आत्माका परिणमन है। तहां बुद्धि नाम ज्ञानका है सो आत्माका गुण है ही अर मनका नाम है तौ मन तौ द्रव्यनिविषैं कह्या ही था, यहां गुण काहेकौं कह्या। बहुरि सुखादिक हैं, सो आत्माविषैं कदाचित् पाइए है आत्माके लक्षणभूत तौ ए गुण हैं नाहीं, अव्याप्तपनेतैं लक्षणाभास है। बहुरि स्नेहादि पुद्गलपरमाणूविषैं पाइए है, सो स्निग्धगुरु इत्यादि तौ स्पर्शन इन्द्रियकरि जानिए, तातैं स्पर्शगुणविषैं गर्भित भए जुदे काहेकौं कहे। बहुरि द्रव्यत्वगुण जलविषैं कह्या, सो ऐसैं तौ

अग्निआदिविषैं ऊर्ध्वगमनत्व आदि पाईए है। कै तौ सर्व कहनें थे, कै समान्यविषैं गर्भित करनें थे। ऐसैं ए गुण कहे ते भी कल्पित हैं। बहुरि कर्म पांचप्रकार कहै हैं—उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुंचन, प्रसारण, गमन। सो ए तौ शरीरकी चेष्टा हैं। इनिकौं जुदा कहनेंका अर्थ कहा। बहुरि एती ही चेष्टा तौ घनी ही प्रकारकी हो है। बहुरि जुदी ही इनकौं तत्त्वसंज्ञा कही, सो कै तौ जुदा पदार्थ होय तौ ताकौं जुदा तत्त्व कहना था, कै काम क्रोधादि मेटनेकौं विशेष प्रयोजनभूत होय तौ तत्त्व कहना था, सो दोऊ ही नाहीं। अर ऐसैं ही कहि देना तौ पाषाणादिककी अनेक अवस्था हो हैं सो कह्या करौ किछू साध्य नाहीं। बहुरि सामान्य दोय प्रकार है—पर अपर। सो पर तौ सत्ता-रूप है अपर द्रव्यत्वादि है। बहुरि नित्यद्रव्यविषैं प्रवृत्ति जिनिकी होय ते विशेष हैं। बहुरि अयुतसिद्धसम्बंधका नाम समवाय है। सो सामान्यादिक तौ बहुतनिकौं एकप्रकारकरि वा एकवस्तुविषैं भेदक-ल्पना अपेक्षा संबंध माननेंकरि अपने विचारहीविषैं हो है कोई जुदे पदार्थ तौ नाहीं। बहुरि इनिके जानें कामक्रोधादि मेटनेंरूप विशेष प्रयोजनकी भी सिद्धि नाहीं, तातैं इनिकौं तत्त्व काहेकौं कहे। अर ऐसैं ही तत्त्व कहनें थे तौ प्रमेयत्वादि वस्तुके अनंतधर्म हैं वा सम्बंध आधा-रादिक कारकनिके अनेक प्रकार वस्तुविषैं संभवै हैं। कै तौ सर्व कहनें थे, कै प्रयोजन जानि कहनैं थे। तातैं ए सामान्यादिक तत्त्व भी वृथा ही कहे। ऐसैं वैशेषिकनिकरि कहे कल्पित तत्त्व जाननें। बहुरि वैशेषिक दोय ही प्रमाण मानै है—प्रत्यक्ष, अनुमान। सो इनिका

हैं। सो याके स्वरूपका अन्यथापना पूर्वोक्त प्रकार जानना। बहुरि यहां भस्मी, कोपीन, जटा, जनेऊ इत्यादि चिन्हसहित भेषहो हैं सो आचारादि भेदतैं च्यारि प्रकार है—शैव, पाशुपत, महाव्रती, कालमुख। सो ए रागादि सहित हैं तातैं सुलिंग नाहीं। ऐसैं शिव-मतका निरूपण किया।

[मीमांसकमत विचार]

अब मीमांसक मतका स्वरूप कहिए है मीमांसक दोय प्रकार हैं-ब्रह्मवादी। कर्मवादी।तहां ब्रह्मवादी तौ सर्व यहु ब्रह्म है दूसरा कोई नाहीं ऐसा वेदान्तविषैं अद्वैत ब्रह्मकौं निरूपै हैं। बहुरि आत्माविषैं लय होना सो मुक्ति कहैं हैं। सो इनिका मिथ्यापना पूर्वैं दिखाया है, सो विचारना। बहुरि कर्मवादी क्रिया आचार यज्ञादिक कार्यनिका कर्तव्य पना प्ररूपै हैं, सो इन क्रियानिविषै रागादिकका सद्भाव पाईए है, तातैं ए कार्य किछू कार्यकारी नाहीं बहुरि तहां 'भट्ट' अर 'प्रभाकर' करि करी हुई दोय पद्धति हैं। तहां भट्ट तौ छह प्रमाण मानै है-प्रत्यक्ष, अनु-मान, वेद उपमा, अर्थापत्ति, अभाव। बहुरि प्रभाकर अभाव-विना पांच ही प्रमाण मानैं है। सो इनिका सत्यासत्यपना जैन-शास्त्रनितैं जानना। बहुरि तहां षट्कर्मसहित ब्रह्मसूत्रके धारक शूद्रकाअन्नादिके त्यागी ते गृहस्थाश्रम है नाम जिनिका ऐसे भट्ट हैं। बहुरि वेदान्तविषै यज्ञो-पवीतरहित विप्रअन्नादिकके ग्राही भागवत् है नाम जिनका ऐसे च्यारी प्रकार हैं—कुटीचर, बहूदक, हंस, परमहंस। सो ए किछु त्यागकरि संतुष्ट भए हैं, परन्तु ज्ञान श्रद्धानका मिथ्यापना अर रागा-दिकका सद्भाव इनकैं पाईए है। तातैं ए भेष कार्यकारी नाहीं।

[जैमिनीयमत विचार]

बहुरि यहां ही जैमिनीयमत संभवै है, सो ऐसैं कहै है,—

सर्वज्ञदेव कोई है नाहीं। नित्य वेदवचन हैं, तिनितैं यथार्थनिर्णय हो है। तातैं पहलैं वेदपाठकरि क्रियाप्रति प्रवर्त्तना सो तौ चोदना, सोई है लक्षण जाका ऐसा धर्म, ताका साधन करना। जैसें कहै हैं "स्वःकामोऽग्निं यजेत्" स्वर्गअभिलाषी अग्निकौं पूजै, इत्यादि निरूपण करै हैं।

यहां पूछिए है,—शैव, सांख्य, नैयायिकादिक सर्व ही वेदकौं मानैं हैं तुम भी मानौं हौ। तुम्हारै वा उन सबनिकै तत्त्वादिनिरूपणविषैं परस्पर विरुद्धता पाइए है सो कहा? जो वेदहीविषैं कहीं किछू कहीं किछू निरूपण किया है, तौ वाकी प्रमाणता कैसें रही? अर जो मतवाले ही कहीं किछू कहीं किछू निरूपण करैं हैं, तौ तुम परस्पर झगरि निर्णयकरि एककौं वेदका अनुसारी अन्यकौं वेदतैं पराङ्मुख ठहरावो। सो हमकौं तौ यह भासै है, वेदहीविषैं पूर्वापरविरुद्धतालिएं निरूपण है। तिसतैं ताका अपना अपना इच्छानुसारि अर्थ ग्रहणकरि जुदे जुदे मतके अधिकारी भए हैं। सो ऐसे वेदकौं प्रमाण कैसें कीजिए है। बहुरि अग्नि पूजैं स्वर्ग होय, सो अग्नि मनुष्यतैं उत्तम कैसें मानिए? प्रत्यक्षविरुद्ध है। बहुरि वह स्वर्गदाता कैसें होय, ऐसें ही अन्य वेदवचन प्रमाण विरुद्ध हैं। बहुरि वेदविषै ब्रह्म कह्या है, ताकौं क्यों न मानै है? इत्यादि प्रकारकरि जैमिनीयमत कल्पित जानना।

[बौद्धमत विचार]

अब बौद्धमतका स्वरूप कहिए है—

बौद्धमतविषैं च्यारिआर्यसत्य[1] प्ररूपै हैं। दु:ख, आयतन, समुदय, मार्ग। तहां संसारीकै स्कंधरूप सो दु:ख है। सो पांच प्रकार[2] है—विज्ञान, वेदना, संज्ञा, संस्काकार, रूप। तहां रूपादिकका जानना सो विज्ञान है, सुख दु:खका अनुभवना सो वेदना है, सूताका जागना सो संज्ञा है, पढ़्या था सो याद करना सो संस्कार है, रूपका धारना सो रूप है[3]। सो यहां विज्ञानादिककौं दु:ख कह्या सो मिथ्या है। दु:ख तौ काम क्रोधादिक हैं। ज्ञान दु:ख नाहीं। यह तौ प्रत्यक्ष देखिए है। काहूकै ज्ञान थोरा है अर क्रोध लोभादिक बहुत हैं सो दुखी हैं। काहूकै ज्ञान बहुत है काम क्रोधादि स्तोक हैं वा नाहीं हैं सो सुखी है। तातैं विज्ञानादिक दु:ख नाहीं हैं। बहुरि आयतन बारह कहे हैं। पांच तौ इन्द्रिय अर तिनिके शब्दादिक पांच विषय, अर एक मन एक धर्मायतन। सो ये आयतन किस अर्थि कहे। क्षणिक सबकौं कहे,

---

१ दु:खमायतनं चैव ततः संमुदयो मतः।
मार्गश्चेत्यस्य च व्याख्या क्रमेण श्रूयतामतः ॥३६॥

२ दु:खं संसारिणः स्कन्धास्ते च पञ्चप्रकीर्तिताः।
विज्ञानं, वेदना संज्ञा संस्कारोरूपमेव च ॥३७॥—वि० वि०

३ रूपं पञ्चेन्द्रियाण्यर्थाः पंचाविज्ञप्तिरेव च।
तद्विज्ञानाश्रया रूपप्रसादाश्चक्षुरादयाः ॥७॥
वेदनानुभवः संज्ञा निमित्तोद्ग्रहणात्मिका।
-संस्कारस्कंधश्चतुर्भ्योन्ये संस्कारास्त इमे त्रयः ॥१५॥
विज्ञानं प्रति विज्ञप्ति……।

—अ० को (?)

ऐसा आत्मा अर आत्मीय है नाम जाका सो समुदाय है। तहां अहंरूप आत्मा अर ममरूप आत्मीय जानना, सो क्षणिक मानैं इनिका भी कहनेका किछू प्रयोजन नाहीं। बहुरि सर्व संस्कार क्षणिक हैं, ऐसी वासना सो मार्ग है। सो प्रत्यक्ष बहुतकाल-स्थायी केई वस्तु अवलोकिए है। तू कहैगा एक अवस्था न रहै है, सो यहु हम भी मानैं हैं। सूक्ष्मपर्याय क्षणस्थायी है। बहुरि तिस वस्तुहीका नाश मानैं यहु तौ होता न दीसै है हम कैसे मानैं? बहुरि बाल वृद्धादि अवस्थाविषैं एक आत्मा का ही अस्तित्व भासै है। जो एक नाहीं है तौ पूर्व उत्तर कार्यका एक कर्ता कैसैं मानैं है। जो तू कहैगा संस्कारतैं है, तौ संस्कार कौनकै है। जाकै है सो नित्य है कि क्षणिक है। नित्य है तौ सर्व क्षणिक कैसैं कहै है। क्षणिक है तौ जाका आधार ही क्षणिक तिस संस्कारकी परंपरा कैसैं कहै है। बहुरि सर्वक्षणिक भया तब आप भी क्षणिक भया। तू ऐसी वासना-कौं मार्ग कहै है सो इस मार्गका फलकौं आप तौ पावै ही नाहीं, काहेकौं इस मार्गविषैं प्रवर्तै। बहुरि तेरे मतविषैं निरर्थक [illegible] काहेकौं किए। उपदेश तौ किछू कर्तव्य करि फल पावनेकै [illegible] दीजिए है। ऐसैं यहु मार्ग मिथ्या है। बहुरि [illegible] वासनाका उच्छेद सो निरोध, ताकौं [illegible] है। [illegible] तब मोक्ष कौनकै कहै है। [illegible] सो भी [illegible] [illegible]

विचार करनेवाला तौ ज्ञान ही है। सो आपका अभावकौं ज्ञान हित कैसे मानैं। वहुरि वौद्धमतविषैं दोय प्रमाण मानै हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान। सो इनिके सत्यासत्यका निरूपण जैन शास्त्रनितैं जानना। वहुरि जो यहु दोय ही प्रमाण हैं, तौ इनिके शास्त्र अप्रमाण भए तिनिका निरूपण किस अर्थि किया। प्रत्यक्ष अनुमान तौ जीव आप ही करि लेंगे, तुम शास्त्र काहेकौं किए। वहुरि तहां सुगतकौं देव मानै हैं ताका स्वरूप नग्न वा विक्रिया रूप स्थापै है सो विडंवनारूप है। वहुरि कमंडल रक्तांवरके धारी पूर्वाह्णविषैं भोजन करैं इत्यादि लिंगरूप वौद्धमतके भिक्षुक हैं, सो क्षणिककौं भेष धरनैंका कहा प्रयोजन? परन्तु महंतताकै अर्थि कल्पित निरूपण करना अर भेष धरना हो है। ऐसैं वौद्ध हैं, ते च्यारि प्रकार हैं—वैभाषिक, सौत्रांतिक, योगाचार, मध्यम। तहां वैभाषिक तौ ज्ञानसहित पदार्थकौं मानैं हैं। सौत्रांतिक प्रत्यक्ष यहु देखिए है सोई है परैं किछू नाहीं ऐसा मानै हैं। योगाचारनिकै आचारसहित वुद्धि पाइए है। मध्यम हैं ते पदार्थका आश्रयविना ज्ञानहीकौं मानै हैं। सो अपनी अपनी कल्पना करै हैं। विचार किए किछू ठिकानाकी वात नाहीं। ऐसैं वौद्धमतका निरूपण किया।

[चार्वाकमत]

कोई सर्वज्ञदेव धर्म अधर्म मोक्ष है नाहीं। वा पुण्यपापका फल नाहीं, वा परलोक नाहीं। यह इंद्रियगोचर जितना है सो ही लोक है ऐसैं चार्वाक कहै हैं। सो तहां वाकौं पूछिए है—सर्वज्ञदेव इस काल क्षेत्रविषैं नाहीं कि सर्वदा सर्वत्र नाहीं। इस कालक्षेत्र-

विषैं तौ हम भी नाहीं मानै हैं। अर सर्वकालक्षेत्रविषैं नाहीं ऐसा सर्वज्ञविना जानना किसकै भया। जो सर्व क्षेत्रकालकी जानै सो ही सर्वज्ञ, अर न जानै है तौ निषेध कैसैं करै है। बहुरि धर्म अधर्म लोकविषैं प्रसिद्ध हैं। जो ए कल्पित होय तौ सर्वजन सुप्रसिद्ध कैसैं होय। बहुरि धर्म अधर्मरूप परणति होती देखिए है, ताकरि वर्तमानहीमें सुखी दुखी हो हैं। इनिकौं कैसैं न मानिए। अर मोक्षका होना अनुमानविषैं आवै है। क्रोधादिक दोष काहूकै हीन हैं काहूकै अधिक हैं तौ जानिए है काहूकै इनिकी नास्ति भी होती होसी। अर ज्ञानादिक गुण काहूकै हीन काहूकै अधिक भासैं हैं, सो जानिए है काहूकै संपूर्ण भी होते होसी। ऐसैं जाकै समस्तदोषकी हानि गुणनिकी प्राप्ति होय सोई मोक्ष अवस्था है। बहुरि पुण्य पापका फल भी देखिए है। कोऊ उद्यम करै, तौ भी दरिद्री रहै। कोऊकै स्वयमेव लक्ष्मी होय। कोऊ शरीरका यत्न करै, तौ भी रोगी रहै। काहूकै विना ही यत्न नीरोगता रहै। इत्यादि प्रत्यक्ष देखिए है। सो याका कारण कोई तौ होगा। जो याका कारण सोई पुण्य पाप है। बहुरि परलोक भी प्रत्यक्ष अनुमानतैं भासै है। व्यंतरा- दिक हैं ते ऐसा कहते देखिए है। मैं अमुक था सो देव भया हूं। बहुरि तू कहैगा यहु तौ पवन है सो हम तौ 'मैं हौं' इत्यादि चेतनाभाव जाकै आश्रय पाइए ताहीकौं आत्मा कहैं हैं, सो तू वाका नाम पवन कहि, परन्तु पवन तौ भीति आदिकरि अटकै है आत्मा मूंद्या हुवा [illegible] नाहीं, तातैं पवन कैसैं मानिए है? बहुरि [illegible] जितना ही लोक कहै है। सो तेरै [illegible]

दूरिवर्त्ती क्षेत्र अर थौरासा अतीत अनागत काल ऐसा क्षेत्रकालवर्त्ती भी पदार्थ नाहीं होय सकै। अर दूरि देशकी वा बहुतकालकी बातें परंपरातैं सुनिए ही है, तातैं सबका जानना तेरै नाहीं, तू इतना ही लोक कैसैं कहै है ?

बहुरि चार्वाकमतविषै कहै हैं पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश-मिलें चेतना होय आवै है। सो मरतैं पृथ्वी आदि यहां रही चेतना-वान् पदार्थ गया सो व्यंतरादि भया, प्रत्यक्ष जुदे जुदे देखिए है। बहुरि एक शरीरविषैं पृथ्वी आदि तौ भिन्न भिन्न भासै हैं चेतना होय तौ लोहू उश्वासादिककै जुदी जुदी ही चेतना होय बहुरि हस्ता-दिक काटें जैसैं वाकी साथि वर्णादि रहैं तैसैं चेतना भी रहै है बहुरि अहंकार बुद्धि तौ चेतनाकै है सो पृथ्वी आदि रूप शरीर तौ यहां ही रह्या, व्यंतरादि पर्यायविषैं पूर्वकर्म का अहंपना मानना देखिए है सो कैसैं हो है। बहुरि पूर्वपर्यायके गुह्य समाचार प्रकट करै सो यहु जानना किसकी साथि गया, जाकी साथि जानना गया सोई आत्मा है।

बहुरि चार्वाकमतविषैं खाना पीना भोग विलास करना इत्यादि स्वच्छंद वृत्तिका उपदेश है सो ऐसैं तौ जगत् स्वमेव ही प्रवर्त्तै है। तहां शास्त्रादि बनाय कहा भला होनेका उपदेश दिया। बहुरि तू कहैगा तपश्चरण शील संयमादि छुडावनेकै अर्थि उपदेश दिया तौ इनि कार्यनिविषैं तौ कपाय घटनेतैं आकुलता घटै है तातैं यहां ही सुखी होना हो है बहुरि यश आदि हो है तू इनिकौं छुड़ाय कहा भला करै है। विषयासक्त जीविनिकौं सुहावती बातें कहि अपना

या औरनिका बुरा करनेका भय नाहीं स्वछंद होय विषयसेवनेके अर्थि ऐसी झूठी युक्ति बनावै है। ऐसैं चार्वाकमतका निरूपण किया।

[अन्यमत-निरसनमें राग-द्वेषका अभाव]

इस ही प्रकार अन्य अनेक मत हैं ते झूठी कल्पित युक्ति बनाय विषय-कषायासक्त पापी जीवनिकरि प्रगट किए हैं। तिनिका श्रद्धानादिकरि जीवनिका बुरा हो है। बहुरि एक जिनमत है सो ही सत्यार्थका प्ररूपक है। सर्वज्ञ वीतरागदेवकरि भाषित है। तिसका श्रद्धानादिक करि ही जीवनिका भला हो है। सो जिनमतविषैं जीवादि तत्त्व निरूपण किए हैं। प्रत्यक्ष परोक्ष दोय प्रमाण कहे हैं। सर्वज्ञ वीतराग अर्हन्त देव हैं। बाह्य अभ्यंतर परिग्रहरहित निर्ग्रंथ गुरु हैं। सो इनिका वर्णन इस ग्रंथविषैं आगै विशेष लिखैंगे सो जानना।

यहां कोऊ कहै—तुम्हारैं राग-द्वेष है, तातैं तुम अन्यमतका निषेधकरि अपने मतकौं स्थापो हौ, ताकौं कहिए है—

यथार्थ वस्तुके प्ररूपण करनेविषैं रागद्वेष नाहीं। किछू अपना प्रयोजन विचारि अन्यथा प्ररूपण करै, तौ रागद्वेष नाम पावै।

बहुरि वह कहै है—जो रागद्वेष नाहीं है, तौ अन्यमत बुरे, जैनमत भला ऐसा कैसैं कहो हौ। साम्यभाव होय तौ सर्वकौं समान जानौ, मतपक्ष काहेकौं करो हौ।

ताकौं कहिए है—बुराकौं बुरा कहैं हैं, भलाकौं भला कहैं हैं, यामैं रागद्वेष कहा किया? बहुरि बुरा भलाकौं समान जानना तौ अज्ञानभाव है, साम्यभाव नाहीं।

बहुरि वह कहै है—जो सर्व मतनिका प्रयोजन तौ एक ही है, तातैं सर्वकौं समान जानना।

ताकौं कहिए है—प्रयोजन होय तौ नानामत काहेकौं कहिए। एक मतविषैं तौ एक प्रयोजन लिए अनेकप्रकार व्याख्यान हो है, ताकौं जुदा मत कौंन कहै है। परन्तु प्रयोजन ही भिन्न भिन्न है, सो दिखाईए है—

[अन्यमतोंसे जैनमतकी तुलना]

जैनमतविषैं एक वीतरागभाव पोषनेका प्रयोजन है, सो कथानिविषै वा लोकादिका निरूपणविषैं वा आचरणविषैं वा तत्त्वनिविषैं जहां तहां वीतरागताकीही पुष्टता करी है। बहुरि अन्य मतनिविषैं सरागभाव पोषनेंका प्रयोजन है। जातैं कल्पित रचना कषायी जीवही करैं, सो अनेक युक्ति बनाय कषायभावहीकौं पोषैं। जैसैं अद्वैत ब्रह्मवादी सर्वकौं ब्रह्म माननेंकरि, अर सांख्यमती सर्व कार्य प्रकृतिका मानि आपकौं शुद्ध अकर्त्ता माननेंकरि, अर शिवमति तत्त्व जाननेंहीतैं सिद्धि होनी माननेंकरि, मीमांसक कषायजनित आचरणकौं धर्म माननेंकरि, बौद्ध क्षणिक माननेंकरि, चार्वाक परलोकादि न माननेंकरि विषयभोगादिरूप कषायकार्यनिविषैं स्वच्छंद होना ही पोषै हैं। यद्यपि कोई ठिकानैं कोई कषाय घटावनेका भी निरूपण करैं, तौ उस छलकरि अन्य कोई कषायका पोषण करै हैं। जैसैं गृहकार्य छोड़ि परमेश्वरका भजन करना ठहराया, अर परमेश्वरका स्वरूप सरागी ठहराय उनकै आश्रय अपने विषय कषाय पोषैं, बहुरि जैनधर्मविषैं देव गुरु धर्मादिकका स्वरूप वीतराग ही निरूपणकरि केवल वीतरागताहीकौं पोषै हैं, सो यहु प्रगट है। हम कहा कहै, अन्यमति

भर्तृहरि ताहूनैं वैराग्यप्रकरणविषैं[1] ऐसा कह्या है—

एको[2] रागिषु राजते प्रियतमादेहार्द्धधारी हरो
नीरागेषु जिनो विमुक्तललनासङ्गो न यस्मात्परः ।
दुर्वारस्मरबाणपन्नगविषव्यासक्तमुग्धो जनः
शेषःकामविडंबितो हि विषयान् भोक्तुं न मोक्तुं क्षमः॥१॥

याविषैं सरागीनिविषैं महादेवकौं प्रधान कह्या अर वीतरागीनिविषैं जिनदेवकौं प्रधान कह्या है। बहुरि सरागभाव वीतरागभावनिविषैं परस्पर प्रतिपक्षीपना है, सो ए दोऊ भले नाहीं। इनिविषैं एक ही हितकारी है, सो वीतराग भाव ही हितकारी है जाके होतैं तत्काल आकुलता मिटै, स्तुतियोग्य होय। आगामी भला होना कहैं हैं। सरागभाव होतैं तत्काल आकुलता होय, निंदनीक होय, आगामी बुरा होना भासै, तातैं जामैं वीतरागभावका प्रयोजन ऐसा जिनमत सो ही इष्ट है। जिनमैं सरागभावके प्रयोजन प्रगट किए हैं ऐसे अन्यमत अनिष्ट हैं। इनिकौं समान कैसैं मानिए। बहुरि वह कहै है—

१ यह पद्य वैराग्यप्रकरणमें नहीं किन्तु शृंगारप्रकरणमें [illegible] पर मिलता है।

२ रागी पुरुषोंमें तो एक महादेव शोभित होता है, [illegible] पार्वतीको आधे शरीरमें धारण कर रक्खा है और [illegible] शोभित होते हैं, जिनके समान स्त्रियोंका साथ छोड़नेवाला दूसरा कोई नहीं है। शेष लोग तो दुर्निवार कामदेवके बाणरूप सर्पोंके विषसे मूर्छित हुए हैं, [illegible] कामकी विडम्बनासे न तो विषयोंको भली भांति भोग ही सकते हैं और न छोड़ ही सकते हैं।

यहु तौ सांच; परन्तु अन्यमतकी निंदा किएं अन्यमती दुःख पावैं, वि ोध उपजै, तातैं काहेकौं निंदा करिए। तहां कहिए है-जो हम कषायकरि निंदा करैं वा औरनिकौं दुःख उपजावैं तौ हम पापी ही हैं। अन्यमतके श्रद्धानादिककरि जीवनिकै अतत्त्वश्रद्धान दृढ़ होय, तातैं संसारविषैं जीव दुखी होय, तातैं करुणाभावकरि यथार्थ निरूपण किया है। कोई विनादोष ही दुःख पावै, विरोध उपजावै, तौ हम कहा करैं। जैसैं मदिराकी निंदाकरतैं कलाल दुःख पावै, कुशीलकी निंदा करतैं वेश्यादिक दुःख पावै, खोटा खरा पहचाननेकी परीक्षा बतावतैं ठिग दुखः पावै, तौ कहा करिए। ऐसैं जो पापीनिके भयकरि धर्मोपदेश न दीजिए, तौ जोवनिका भला कैसैं होय? ऐसा तौ कोई उपदेश नाहीं, जाकरि सर्व ही चैन पावैं। बहुरि वह विरोध उपाजावै, सो विरोध तौ परस्पर हो है। हम लरैं नाहीं, वै आप ही उपशांत होय जांयगे। हमकौं तौ हमारे परिणामौंका फल होगा।

बहुरि कोऊ कहै—प्रयोजनभूत जीवादिक तत्त्वनिका अन्यथा श्रद्धान किएं मिथ्यादर्शनादिक हो हैं, अन्यमतनिका श्रद्धान किए कैसैं मिथ्यादर्शनादिक होय?

ताका समाधान—अन्यमतनिविषैं विपरीत युक्ति बनाय जीवादिक तत्त्वनिका स्वरूप यथार्थ न भासै यहु ही उपाय किया है, सो किस अर्थि किया है। जीवादि तत्त्वनिका यथार्थ स्वरूप भासै, तौ वीतरागभाव भए ही महंतपनो भासै। बहुरि जे जीव वीतरागी नाहीं, अर अपनी महंतता चाहैं, तिनि सरागभाव होतैं महंतता मनावनेके अर्थि कल्पित युक्तिकरि अन्यथा निरूपण किया है। सोअद्वैतब्रह्मादिकका निरूप-

णकरि जीव अजीवका अर स्वच्छंदवृत्ति पोषनेंकरि आस्रव संवरादिकका अर सकषायीवत् वा अचेतनवत् मोक्षकहनैंकरि मोक्षका अयथार्थ श्रद्धानकौं पोषै है। तातैं अन्यमतनिका अन्यथापना प्रगट किया है। इनिका अन्यथापना भासै, तौ तत्त्वश्रद्धानविषैं रुचिवंत होय, उनकी युक्तिकरि भ्रम न उपजै। ऐसैं अन्यमतनिका निरूपण किया।

[अन्यमत के ग्रन्थोद्धरण से जैनधर्म की प्राचीनता और समीचीनता]

अब अन्यमतनिके शास्त्रनिहीकी साखिकरि जिनमतकी समीचीनता वा प्राचीनता प्रगट कीजिए है—

बड़ो योगवाशिष्ठ छत्तीस हजार श्लोक प्रमाण, ताका प्रथम वैराग्यप्रकरण तहां अहंकार निषेधाध्यायविषैं वशिष्ठ अर रामका संवादविषैं ऐसा कह्या है—

रामोवाच—

"नाहं रामो न मे वांछा भावेषु च न मे मनः।
शांतिमास्थातुमिच्छामि स्वात्मन्येव जिनो यथा[1] ॥१॥"

या विषैं रामजी जिन समान होनेकी इच्छा करी, तातैं रामजीतैं जिनदेवका उत्तमपना प्रगट भया अर प्राचीनपना प्रगट भया। बहुरि 'दक्षिणामूर्ति—सहस्रनाम' विषैं कह्या है—

शिवोवाच—

"जैनमार्गरतो जैनो जितक्रोधो जितामयः।"

१ अर्थात् मैं राम नहीं हूं, मेरी कुछ इच्छा नहीं है और भावों या पदार्थों में मेरा मन नहीं है। मैं तो जिनदेव के समान अपनी आत्मा में ही शांति स्थापन करना चाहता हूं।

यहां भगवतका नाम जैनमार्गविषैं रत अर जैन कह्या, सो यामैं जैनमार्गकी प्रधानता वा प्राचीनता प्रगट भई। बहुरि 'वैशंपायनसहस्र-नाम' विषै कह्या है—

"कालनेमिर्म्महा वीरः शूरः शौरिर्जिनेश्वरः।"

यहां भगवानका नाम जिनेश्वर कह्या, तातैं जिनेश्वर भगवान् हैं। बहुरि दुर्व्वासाऋषिकृत 'महिम्नस्तोत्र'विषैं ऐसा कह्या है—

तत्तद्दर्शनमुख्यशक्तिरिति च त्वं ब्रह्मकर्मेश्वरी।
कर्त्तार्हन् पुरुषो हरिश्च सविता बुद्धः शिवस्त्वं गुरुः" ॥१॥

यहां 'अरहंत तुम हो' ऐसैं भगवंतकी स्तुति करी, तातैं अरहंतकै भगवंतपनौ प्रगट भयो। बहुरि हनुमन्नाटकविषैं ऐसैं कह्या है—

"यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनः
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरतः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं वो विदधातु वांछितफलं त्रैलोक्यनाथो: प्रभुः'॥१॥"

यहां छहों मतविषै ईश्वर एक कह्या, तहां अरहंतदेवकै भी ईश्वर-पना प्रगट किया।

---

१ यह हनुमानाटकके मंगलाचरणका तीसरा श्लोक है। इसमें बताया है कि जिसको शैव लोग शिव कहकर, वेदान्ती ब्रह्म कहकर, बौद्ध बुद्धदेव कहकर, नैयायिक कर्त्ता कहकर, जैनी अर्हन् कहकर और मीमांसक कर्म कहकर उपासना करते हैं, वह त्रैलोक्यनाथ प्रभु तुम्हारे मनोरथोंको सफल करे।

यहां कोऊ कहै, जैसैं यहां सर्वमतविषैं एक ईश्वर कह्या तैसैं तुम भी मानो।

ताकौं कहिए है—तुमनें यह कह्या है, हम तौ न कह्या। तातैं तुम्हारे मतविषैं अरहंतकै ईश्वरपना सिद्ध भया। हमारे मतविषैं भी ऐसैं ही कहैं, तौ हम भी शिवादिककौं ईश्वर मानैं। जैसैं कोई व्यापारी सांचा रत्न दिखावै। कोई झूंठा रत्न दिखावै। तहां झूठा रत्नवाला तौ सर्व रत्नांका समान मोल लेनेकै अर्थि समान कहै। सांचा रत्नवाला कैसैं समान मानै? तैसैं जैनी सांचा देवादिकौं निरूपैं, अन्यमती झूंठा निरूपै, तहां अन्यमती अपनी समान महिमाकैं अर्थि सर्वकौं समान कहैं—जैनी कैसे मानैं? बहुरि 'रुद्रयामलतंत्र'विषैं भवानीसहस्रनामविषैं ऐसैं कह्या है—

"कुंडासना जगद्धात्री बुद्धमाता जिनेश्वरी।
जिनमाता जिनेन्द्रा च शारदा हंसवाहिनी ॥ १ ॥"

यहां भवानीके नाम जिनेश्वरी इत्यादि कहे, तातैं जिनका उत्तमपना प्रगट किया। बहुरि 'गणेशपुराण'विषैं ऐसैं कह्या है—

"जैनं पाशुपतं सांख्यं।"

बहुरि व्यासकृत सूत्रविषैं ऐसा कह्या है,—

"जैना एकस्मिन्नेव वस्तुनि उभयं प्ररूपयन्ति[1]।"

इत्यादि तिनिके शास्त्रनिविषैं जैन निरूपण है, तातैं जैनमतका प्राचीनपना भासै है। बहुरि भागवतका पंचमस्कंधविषैं ऋषभावतार-

१—प्रवर्तित [illegible]

का वर्णन है[1] । तहां यहु करुणामय, तृष्णादिरहित ध्यानमुद्राधारी सर्वाश्रमकरि पूजित कह्या है, ताकै अनुसारि अरहंत राजा प्रवृत्ति करी ऐसा कहैं हैं। सो जैसैं रामकृष्णादि अवतारनिकै अनुसारि अन्यमत, तैसैं ऋषभावतारकै अनुसारि जैनमत, ऐसैं तुम्हारे मतहीकरि जैन प्रमाण भया। यहां इतना विचार और किया चाहिये—कृष्णादि अवतारनिकै अनुसारि विषयकषायनिकी प्रवृत्ति हो है। ऋषभावतारकै अनुसारि वीतराग साम्यभावकी प्रवृत्ति हो है। यहां दोऊ प्रवृत्ति समान मानें, धर्म अधर्मका विशेष न रहै अर विशेष मानें भली होय सो अंगीकार करनी। बहुरि दशावतारचरित्रविषैं—"**बद्ध्वा पद्मासनं यो नयनयुगमिदं न्यस्य नासाग्रदेशे**" इत्यादि बुद्धावतारका स्वरूप अरहंत देव सारिखा लिख्या है, सो ऐसा स्वरूप पूज्य है तौ अरहंतदेव पूज्य सहज ही भया।

बहुरि काशीखंडविषैं देवादास राजानैं संबोधि राज्य छुड़ायो। तहां नारायण तौ विनयकीर्त्ति यती भया, लक्ष्मीकौं विनयश्री आर्यिका करी, गरुड़कौं श्रावक किया, ऐसा कथन है। सो जहां संबोधन करना भया, तहां जैनी भेष बनाया।। तातैं जैन हितकारी प्राचीन प्रतिभासै है। बहुरि 'प्रभासपुराण' विषै ऐसा कह्या है—

"भवस्य पश्चिमे भागे वामनेन तपः कृतम्।
तेनैव तपसाकृष्टः शिवः प्रत्यक्षतां गतः ॥१॥"

---

१ भागवत स्कंध ५ अ० ५, २९

"पद्मासनसमासीनः श्याममूर्तिर्दिगम्बरः ।
नेमिनाथः शिवेत्येवं नाम चक्रेऽस्य वामनः ॥२॥
कलिकाले महाघोरे सर्वपापप्रणाशकः ।
दर्शनात्स्पर्शनादेव कोटियज्ञफलप्रदः" ॥३॥

यहां वामनकौं पद्मासन दिगंबर नेमिनाथका दर्शन भया कह्या। वाहीका नाम शिव कह्या। बहुरि ताके दर्शनादिकतैं कोटियज्ञका फल कह्या, सो ऐसा नेमिनाथका स्वरूप तौ जैनी प्रत्यक्ष मानै हैं, सो प्रमाण ठहरया। बहुरि प्रभासपुराणविषै कह्या है—

"रैवताद्रौ जिनो नेमिर्युगादिर्विमलाचले ।
ऋषीणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम् ॥४॥"

यहां नेमिनाथकौं जिनसंज्ञा कही, ताके स्थानकौं ऋषिका आश्रम मुक्तिका कारण कह्या, अर युगादिके स्थानकौं भी ऐसा ही कह्या, तातैं उत्तम पूज्य ठहरे। बहुरि 'नगरपुराण' विषै भवावतार रहस्यविषै ऐसा कह्या है—

"अकारादिहकारान्तमूर्द्धाधोरेफसंयुतम् ।
नादबिन्दुकलाक्रान्तं चन्द्रमण्डलसन्निभम् ॥५॥
एतद्देवि परं तत्त्वं यो विजानाति तत्त्वतः ।
संसारबन्धनं छित्वा स गच्छेत्परमां गतिम् ॥६॥"

यहां "अर्हं" ऐसे पदकौं परमतत्त्व कह्या। याके जाननेतैं परमगतिकी प्राप्ति कही, सो "अर्हं" पद जैनमतउक्त है। बहुरि नगरपुराणविषै कह्या है—

"दशभिर्भोजितैर्विप्रैः यत्फलं जायते कृते ।
मुनेरर्हत्सुभक्तस्य तत्फलं जायते कलौ ॥१॥"

यहां कृतयुगविषै दश ब्राह्मणोंकौं भोजन करानेका जेता फल कह्या, तेताफल कलियुगविषै अर्हंतभक्तमुनिके भोजन कराएका कह्या। तातैं जैनी मुनि उत्तम ठहरे। बहुरि 'मनुस्मृति' विषैं ऐसा कह्या है—

"कुलादिबीजं सर्वेषां प्रथमो विमलवाहनः ॥१॥
चक्षुष्मान् यशस्वी वाभिचन्द्रोऽथ प्रसेनजित् ॥
मरुदेवी च नाभिश्च भरते कुल सत्तमाः ।
अष्टमो मरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः ॥ २ ॥
दर्शयन् वर्त्म वीराणां सुरासुरनमस्कृतः ।
नीतित्रितयकर्त्ता यो युगादौ प्रथमो जिनः ।३ ॥

यहां विमलवाहनादिक मनु कहे, सो जैनविषैं कुलकरनिके नाम कहे हैं अर यहां प्रथमजिन युगकी आदविषैं मार्गकादर्शक अर सुरासुरपूजित कह्या, सो ऐसैं ही है तो जैनमत युगकी आदिहीतैं है अर प्रमाणभूत कैसैं न कहिए। बहुरि ऋग्वेदविषैं ऐसा कह्या है—

"ॐ त्रैलोक्यप्रतिष्ठितान् चतुर्विंशतितीर्थंकरान् ऋषभाद्यान्वर्द्धमानान्तान् सिद्धान् शरणं प्रपद्ये । ॐ पवित्रं नग्नमुपविस्पृसामहे एषां नग्नं येषां जातं येषां वीरं सुवीरं इत्यादि ।

बहुरि यजुर्वेदविषैं ऐसा कह्या है:—

ॐ नमो अर्हतो ऋषभो, बहुरि ऐसाकह्या है—

ॐ ऋषभपवित्रं पुरुहूतमध्वरं यज्ञेषु नग्नं परमं माहसंस्तुतं वरं शत्रुं जयंतं पशुरिंद्रमाहुतिरिति स्वाहा । ॐ त्रातारमिंद्रं ऋषभं वदन्ति । अमृतारमिंद्रं हवे सुगतं सुपार्श्वमिंद्रं हवे शक्रमजितं तद्वर्द्धमानपुरुहूतमिंद्रमाहुरिति स्वाहा । ॐ नग्नं सुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनं उपैमि वीरं पुरुषमर्हंतमादित्यवर्णं तमसः परस्ता स्वाहा । ॐ स्वस्तिन इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमि स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु । दीर्घायुस्त्वायुबलायुर्वा शुभजातायु ॐ रक्ष रक्ष अरिष्टनेमिः स्वाहा । वामदेव शान्त्यर्थमनुविधीयते सो ऽस्माकं अरिष्टनेमिः स्वाहा[1] ।

यहां जैनतीर्थंकरनिके जे नाम हैं तिनका पूजना कह्या। बहुरि यहां यहु भास्या, जो इनके पीछैं वेद रचना भई है । ऐसैं अन्यमतनिकी साक्षीतैं जिनमतकी उत्तमता अर प्राचीनता दृढ भई । अर जिनमतकौं देखैं वै मत कल्पित ही भासैं। तातैं अपना हितका इच्छुक होय, सो पक्षपात छोडि सांचा जैन धर्मकौ अंगीकार करौ। बहुरि अन्यमतनिविषैं पूर्वापरविरोध भासै है । पहलै अवतार वेदका उद्धार किया। तहां यज्ञादिकविषैं हिंसादिक पोषे । अर बुद्ध अवतार यज्ञका निंदक होय, हिंसादिक निषेधे । वृषभावतार वीतराग संयमका मार्ग दिखाया। कृष्णावतार परस्त्रीरमणादि विषय कषायादिकनिका

१ यजुर्वेद अ० २५ म० १९ ऋग्० १ अ० ६ व० १६ ।

मार्ग दिखाया। सो अब यह संसारी कौनका कह्या करै, कौनकै अनुसारि प्रवर्त्तै, अर इन सब अवतारनिकौं एक बतावैं सो एक ही कदाचित् कैसैं कदाचित् कैसैं कहै वा प्रवर्त्तै तो याकै उनके कहनेकी वा प्रवर्त्तनेकी प्रतीति कैसैं आवै ? बहुरि कहीं क्रोधादिकषायनिका वा विषयनिका निषेध करैं, कहीं लरनेका वा विषयादिसेवनका उपदेश दें। तहां प्रारब्ध बतावै सो बिना क्रोधादि भएं आपहीतैं लरना आदि कार्य होंय, तौ यहु भी मानिए सो तौ होंय नाहीं। बहुरि लरना आदि कार्य होतैं क्रोधादि भए मानिए तौ जुदे ही क्रोधादि कौन हैं, तिनिका निषेध किया। तातैं बनै नाहीं, पूर्व्वापरविरोध है। गीताविषैं वीतरागता दिखाय लरने-का उपदेश किया, सो यहु प्रत्यक्ष विरोध भासै है। बहुरि ऋषीश्वरा-दिकनिकरि श्राप दिया बतावैं, सो ऐसा क्रोध किएं निंद्यपना कैसैं न भया ? इत्यादि जानना। बहुरि "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति" ऐसा भी कहैं, अर भारतविषै ऐसा भी कह्या है—

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम् ।
दिवं गतानि राजेन्द्र अकृत्वा कुलसन्ततिम् ॥ १ ॥

यहां कुमारब्रह्मचारीनिकौं स्वर्ग गए बताए, सो यहु परस्पर विरोध है। बहुरि ऋषीश्वर भारतविषै तौ ऐसा कह्या है—

मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कन्दभक्षणम् ।
ये कुर्वन्तिवृथास्तेषां तीर्थयात्रा जपस्तपः ॥ १ ॥
वृथा एकादशी-प्रोक्ता वृथा जागरणं हरेः ।

वृथा च पौष्करी यात्रा कृत्स्नं चान्द्रायणं वृथा ॥ २ ॥
चातुर्मास्ये तु सम्प्राप्ते रात्रिभोज्यं करोति यः ।
तस्य शुद्धिर्न विद्येत चान्द्रायणशतैरपि ॥ ३ ॥

इनविषैं मद्यमांसादिकका वा रात्रिभोजनका वा चौमासेमैं विशेषपनैं रात्रिभोजनका वा कंदफलभक्षणका निषेध किया । बहुरि बड़े पुरुषनिकै मद्यमांसादिकका सेवन करना कहैं, व्रतादिविषैं रात्रिभोजन स्थापैं वा कंदादिभक्षण स्थापैं, ऐसैं विरुद्ध निरूपैं हैं । ऐसैं ही अनेक पूर्वापर विरुद्धवचन अन्यमतके शास्त्रविषैं हैं । सो करैं कहा कहीं तौ पूर्वपरंपरा जानि विश्वास अनावनेके अर्थि यथार्थ कहा अर कहीं विषयकषाय पोषनेके अर्थि अन्यथा कहा । सो जहां पूर्वापर विरोध होय, तिनिका वचन प्रमाण कैसैं करिए । इहां जो अन्यमत-निविषैं क्षमा शील संतोषादिककौं पोषते वचन हैं, सो तौ जैनमतविषैं पाइए हैं अर विपरीत वचन हैं, सो उनका कल्पित है । जिनमत अनु-सार वचनका विश्वासतैं उनका विपरीतवचनका श्रद्धानादिक होय जाय, तातैं अन्यमतका कोऊ अंग भला देखि भी तहां श्रद्धानादिक न करना । जैसैं विषमिश्रित भोजन हितकारी नाहीं, तैसैं जानना । बहुरि जो कोई उत्तमधर्मका अंग जिनमतविषैं न पाइए, अर अन्यमत-विषैं पाइए, अथवा कोई निषिद्ध धर्मका अंग जैनमतविषैं पाइए अर अन्यत्र न पाइए, तौ अन्यमतका आदरौ, सो सर्वथा होय नाहीं । जातैं सर्वज्ञका ज्ञानतैं किछू छिपा नाही है । तातैं अन्यमतनिका श्रद्धानादिक छोड़ि जिनमतका दृढ़ श्रद्धानादिक करना । बहुरि कालदोषतैं कषायी जीवनिकरि जिनमतविषैं भी कल्पितरचना करी है, सो ही दिखाइए हैं—

[श्वेताम्बर मत विचार]

श्वेतांबरमतवाले काहूनैं सूत्र बनाए, तिनिकौं गणधरके किए कहै हैं। सो उनकौं पूछिए है—गणधरनैं आचारांगादिक बनाए हैं सो तुम्हारै अवार पाईए है सो इतने प्रमाण लिए ही किए थे। जो इतने प्रमाण लिए ही किए थे, तौ तुम्हारे शास्त्रनिविषै आचारांगादिकनिके पदनिका प्रमाण अठारह हजारआदि कह्या है, सो तिनकी विधि मिलाय द्यो। पदका प्रमाण कहा। जो विभक्तिका अंतकौं पद कहोगे, तौ कहे प्रमाणतैं बहुत पद होय जायंगे, अर जो प्रमाणपद कहोगे, तौ तिस एकपदकै साधिक इक्यावन कोड़ि श्लोक हैं। सो ए तो बहुत छोटे शास्त्र हैं, सो बनैं नाहीं। बहुरि आचारांगादिकतैं दशवैकालिकादिकका प्रमाण घाटि कह्या है। तुम्हारै वधता है सो कैसैं बनै? बहुरि कहोगे, आचारांगादिक बड़े थे, कालदोष जानि तिनहीमैंसौं केतेक सूत्र काढ़ि ए शास्त्र बनाए हैं। तौ प्रथम तौ टूटकग्रंथ प्रमाण नाहीं। बहुरि यह प्रबंध है, जो बड़ा ग्रंथ बनावै तौ वा विषै सर्व वर्णन विस्तार लिएं करै, अर छोटा ग्रंथ बनावै तौ तहां संक्षेपवर्णन करै, परंतु संबंध टूटै नाहीं। अर कोई बड़ा ग्रंथ मैं थोरासा कथन काढ़ि लीजिए, तौ तहां संबंध मिलै नाहीं—कथनका अनुक्रम टूटि जाय। सो तुम्हारे सूत्रनिविषै तौ कथादिकका भी संबंध मिलता भासै है—टूटकपना भासै नाहीं। बहुरि अन्य कवीनितैं गणधरकी तौ बुद्धि अधिक होसी, ताके किए ग्रंथनिमैं थोरे शब्दमैं बहुत अर्थ चाहिए सो तौ अन्य कवीनिकीसी भी गंभीरता नाहीं। बहुरि जो ग्रंथ बनावै, सो अपना नाम ऐसैं धरै नाहीं, 'जो

करी है, तामैं पूर्वापनविरुद्धपनौ वा प्रत्यक्षादि प्रमाणमैं विरुद्धपनौ भासै है, सो ही दिखाइए है,—

[अन्यलिंगसे मुक्तिका निषेध]

अन्य लिंगीकै वा गृहस्थकै वा स्त्रीकै वा चांडालादि शूद्रनिकै साक्षात् मुक्तिकी प्राप्ति होनो मानै हैं, सो बनै नाहीं। सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्रकी एकता मोक्षमार्ग है। सो वै सम्यग्दर्शनका स्वरूप तौ ऐसा कहै हैं,—

अरहंतो महादेवो जावज्जीवं सुसाहणो गुरुणो।
जिणपण्णत्तं तत्तं ए सम्मत्तं मए गहिएं॥ १॥

सो अन्यलिंगीकै अरहंतदेव, साधु गुरु, जिनप्रणीत तत्त्वका मानना कैसैं संभवै तब सम्यक्त्व भी न होय, तो मोक्ष कैसैं होय। जो कहोगे अंतरंगके श्रद्धान होनैतैं सम्यक्त्व तिनकै हो है, सो विपरीत लिंगधारककी प्रशंसादिक किए भी सम्यक्त्वकौं अतीचार कह्या है सो सांचा श्रद्धान भए पीछैं आप विपरीतलिंगका धारक कैसैं रहै। श्रद्धान भए पीछैं महाव्रतादि अंगीकार किए सम्यक्चारित्र होयसो अन्यलिंगविषैं कैसैं बनै? जो अन्यलिंगविषै भी सम्यक्चारित्र हो है, तौ जैनलिंग अन्यलिंग समान भया। तातैं अन्यलिंगकौं मोक्ष कहना मिथ्या है। बहुरि गृहस्थकौं मोक्ष कहैं, सो हिंसादिक सर्व सावद्यका त्याग किए सम्यक्चारित्र होय सो सर्व सावद्ययोगका त्याग किए गृहस्थपनौ कैसैं संभवै? जो कहोगे—अंतरंगका त्याग भया है, तौ यहां तौ तीनूं योगकरि त्याग करै है कायकरि त्याग कैसैं भया? बहुरि बाह्यपरिग्रहादिक राखैं भी महाव्रत हो है, सो महाव्रतनिविषैं

तौ बाह्यत्यागकरनेकी ही प्रतिज्ञा करिए है, त्याग किए विना महाव्रत न होय। महाव्रत विना छठाआदि गुणस्थान न होय सकै है, तौ तब मोक्ष कैसैं होय? तातैं गृहस्थकौं मोक्ष कहना मिथ्या वचन है।

[स्त्री मुक्तिका निषेध]

बहुरि स्त्रीकौं मोक्ष कहैं, सो जातैं सप्तमनरकगमनयोग्य पाप न होय सकै, ताकरि मोक्षका कारण शुद्धभाव कैसैं होय सकै? जातैं जाके भाव दृढ़ होय, सो ही उत्कृष्ट पाप व धर्म उपजाय सकै है। बहुरि स्त्रीकै निशंक एकांतिविषैं ध्यान धरना, सर्वपरिग्रहादिकका त्याग करना संभवै नाहीं। जो कहोगे, एकसमयविषैं पुरुषवेदी वा स्त्रीवेदी वा नपुंसकवेदीकौं सिद्धि होनी सिद्धांतविषैं कही है, तातैं स्त्रीकौं मोक्ष मानिए है। सो यहां भाववेदी हैं कि द्रव्यवेदी हैं, तौ पुरुषस्त्रीवेदी तौ लोकविषैं प्रचुर दीसैं हैं, नपुंसक तौ कोई विरला दीसै हैं। एक समयविषैं मोक्ष जानेंवाले इतने नपुंसक कैसैं संभवैं? तातैं द्रव्यवेद अपेक्षा कथन बनैं नाहीं। बहुरि जो कहोगे, नवमगुणस्थानतांई वेद कहे हैं, सो भी भाववेद अपेक्षा ही कथन है। द्रव्यवेदअपेक्षा होय तौ चौदहवां गुणस्थानपर्यंत वेदका सद्भाव कहना संभवै। तातैं स्त्रीकै मोक्षका कहना मिथ्या है।

[शूद्र मुक्तिका निषेध]

बहुरि शूद्रनिकौं मोक्ष कहैं। सो चांडालादिककौं गृहस्थ सन्मानादिककरि दानादिक कैसैं दे, लोकविरुद्ध होय। बहुरि नीचकुलवालोंके उत्तम परिणाम न होय सकैं। बहुरि नीचगोत्रकर्मका उदय तौ पंचम गुणस्थान पर्यंत ही है। ऊपरिके गुणस्थान चढ़े विना मोक्ष कैसैं

होय। जो कहोगे—संयम धारे पीछैं वाकै उच्चगोत्रका उदय कहिए, तौ संयम धारनेका वा न धारनेकी अपेक्षातैं नीच उच्चगोत्रका उदय ठहरथा। ऐसे होतैं असंयमी मनुष्य तीर्थंकर क्षत्रियादिककै भी नीचगोत्रका उदय ठहरै। जो उनकै कुल अपेक्षा उच्चगोत्रका उदय कहोगे, तौ चांडालादिककै भी कुल अपेक्षा ही नीचगोत्रका उदय कहो। ताका सद्भाव तुम्हारे सूत्रनिविषै भी पंचम गुणस्थानपर्यंत ही कह्या है। सो कल्पित कहनेमैं पूर्वापरविरुद्ध होय ही होय। तातैं शूद्रनिकै मोक्षका कहना मिथ्या है।

ऐसैं तिनहूनैं सर्वकै मोक्षकी प्राप्ति कही, सो ताका प्रयोजन यहु है जो सर्वका भला मनावना, मोक्षका लालच देना अर अपना कल्पित-मत की प्रवृत्ति करनी। परन्तु विचार किए मिथ्या भासै है।

[अछेरोंका निराकरण]

बहुरि तिनके शास्त्रनिविषै 'अछेरा' कहै हैं। सो कहैं हैं—हुण्डावसर्पिणीके निमित्ततैं भए हैं, इनकौं छेड़ने] नाहीं।' सो कालदोषतैं केई बात होय परन्तु प्रमाणविरुद्ध तौ न होय। जो प्रमाणविरुद्ध भी होय, तौ आकाशके फूल गधेके सींग इत्यादिका होना भी बनैं सो संभवै नाहीं। वातैं वै तौ अछेरा कहै हैं सो प्रमाण-विरुद्ध हैं। काहेतैं, सो कहिए है,—

वर्द्धमानजिन केतेककालि ब्राह्मणीके गर्भविषैं रहे, पीछैं क्षत्रि-याणीके गर्भविषै बधे, ऐसा कहै हैं। सो काहूका गर्भ काहूकै धरया। प्रत्यक्ष भासैं नाहीं, अनुमानादिकमैं आवै नाहीं। बहुरि तीर्थंकरकै भया कहिए, तौ गर्भकल्याणक काहूकै घरि भया, जन्मकल्याणक काहूकैं

धरि भया। केतेक दिन रत्नवृष्ट्यादिक काहूकै घर भए, केतेक दिन काहूकै घरि भए। सोलह स्वप्न किसीकौं आए, पुत्र काहू-कैभया, इत्यादि असंभव भासै। बहुरि माता तौ दोय भई अर पिता तौ एक ब्राह्मण ही रह्या। जन्मकल्याणादिविषै वाका सन्मान न किया, अन्य कल्पित पिताका सन्मान किया। सो तीर्थंकरकै दोय पिताका कहना, महाविपरीत भासै है। सर्वोत्कृष्टपदके धारककै ऐसे वचन सुनने भी योग्य नाहीं। बहुरि तीर्थंकरकै भी ऐसी अवस्था भई, तौ सर्वत्र ही अन्यस्त्रीका गर्भ अन्यस्त्रीकै धरि देना ठहरै, तौ वैष्णव जैसैं अनेक प्रकार पुत्र पुत्रीका उपजना बतावैं हैं, तैसैं यहु कार्य भया। सो ऐसे निकृष्टकालविषैं तौ ऐसें होय ही नाहीं, तहां होना कैसैं संभवै ? तातैं यहु मिथ्या है।

बहुरि मल्लितीर्थंकरकौं कन्या कहैं हैं। सो मुनि देवादिककी सभाविषैं स्त्रीका स्थिति करना उपदेश देना न संभवै, वा स्त्रीपर्याय हीन हैं सो उत्कृष्ट तीर्थंकरपदधारककै न बनै। बहुरि तीर्थंकरकै नग्न-लिंग ही कहै हैं, सो स्त्रीकै नग्नपनौ न संभवै। इत्यादि विचार किए असंभव भासै है।

बहुरि हरिक्षेत्रका भोगभूमियांकौं नरकि गया कहैं। सो बंधवर्णन-विषैं तौ भोगभूमियांकै देवगति देवायुहीका बंध कहैं, नरकि कैसैं गया। सिद्धांतविषैं तौ अनंतकालविषैं जो बात होय, सो भी कहैं। जैसैं तीसरे नरक पर्यन्त तीर्थंकर प्रकृतिका सत्व कह्या, भोगभूमियांकै नरक आयु गतिका बंध न कह्या, सो केवली भूलैं तौ नाहीं। तातैं यहु मिथ्या है। ऐसैं सर्व अछेरे असंभव जाननें। बहुरि पै कहै हैं, इनकौं

छेड़ने नाहीं। सो झूंठ कहनेवाला ऐसैं ही कहै।

बहुरि जो कहोगे—दिगंबरविषैं जैसैं तीर्थंकरकै पुत्री, चक्रवर्तिका मानभंग इत्यादि कार्य कालदोपतैं भया कहै हैं, तैसैं ए भी भए। सो वै कार्य तौ प्रमाणविरुद्ध नाहीं। अन्यकै होते थे सो महंतनिकै भए, तातैं कालदोष कह्या है। गर्भहरणादि कार्य प्रत्यक्ष अनुमानादितैं विरुद्ध, तिनकै होना कैसैं संभवै? बहुरि अन्य भी घने ही कथन प्रमाणविरुद्ध कहै हैं। जैसैं कहै हैं, सर्वार्थसिद्धिके देव मनहीतैं प्रश्न करै हैं, केवली मनहीतैं उत्तर दे हैं। सो सामान्य जीवकै मनकी बात मनःपर्ययज्ञानीविना जानि सकै नाहीं। केवलीका मनकी सर्वार्थसिद्धिके देव कैसैं जानैं? बहुरि केवलीकै भावमनका तो अभाव है, द्रव्यमन जड़ आकारमात्र है, उत्तर कौन दिया। तातैं मिथ्या है ऐसैं अनेक प्रमाणविरुद्ध कथन किए हैं, तातैं तिनके आगम कल्पित ही जानः।

[केवलीके आहार नीहारका निराकरण]

बहुरि श्वेतांबरमतवाले देवगुरुधर्मका स्वरूप अन्यथा निरूपैं हैं। तहां केवलीकै क्षुधादिक दोप कहैं। सो यहु देवका स्वरूप अन्यथा है। काहेतैं, क्षुधादिक दोप होतैं आकुलता होय, तब अनंतसुख कैसैं बनैं? बहुरि जो कहोगे, शरीरकौं क्षुधा लागै है आत्मा तद्रूप न हो है, तौ क्षुधादिकका उपाय आहारादिक काहेकौं ग्रहण किया कहो हो। क्षुधादिकरि पीड़ित होय, तब ही आहार ग्रहण करै। बहुरि कहोगे, जैसैं कर्मोदयतैं विहार हो है, तैसैं ही आहार ग्रहण हो है। सो विहार तौ विहायोगति प्रकृतिका उदयतैं हो है,

अर पीड़ाका उपाय नाहीं, अर विना इच्छा भी किसी जीवकै होता देखिए है। बहुरि आहार है, सो प्रकृतिका उदयतैं नाहीं क्षुधाकरि पीड़ित भए ही ग्रहण करै है। बहुरि आत्मा पवनादिककौं प्रेरै तब ही निगलना हो है, तातैं विहारवत् आहार नाहीं, जो कहोगे—साता-वेदनीयकै उदयतैं आहार ग्रहण हो है, सो बनै नाहीं। जो जीव क्षुधादिकरि पीड़ित होय, पीछैं आहारादिक ग्रहणतैं सुख मानैं, ताकैं आहारादिक साताके उदयतैं कहिए। आहारादिक सातावेदनीयके उदयतैं स्वयमेव होय ऐसैं तौ है नाहीं। जो ऐसैं होय तौ सातावेदनीयका मुख्यउदय देवनिकै है, ते निरन्तर आहार क्यों न करैं। बहुरि महामुनि उपवासादि करैं, तिनकैं साताका भी उदय अर निरंतर भोजन करनेवालौंकै असाताका भी उदय संभवै। तातैं जैसैं विना इच्छा विहायोगतिके उदयतैं विहार संभवै, तैसैं विना इच्छा केवल सातावेदनीयहीके उदयतैं आहारका ग्रहण संभवै नाहीं।]

बहुरि वह कहै हैं, सिद्धांतविषैं केवलीकै क्षुधादिक ग्यारह परीषह कहे हैं, तातैं तिनकै क्षुधाका सद्भाव संभवै है। बहुरि आहारादिक-विना तिनकी उपशांतता कैसैं होय, तातैं तिनकै आहारादिक मानै हैं।

ताका समाधान,—कर्मप्रकृतिनिका उदय मंद तीव्र भेद लिएं है। तहां अतिमंद होतैं, तिसका उदयजनित कार्यकी व्यक्तता भासै नाहीं। तातैं मुख्यपनैं अभाव कहिए, तारतम्यविषैं सद्भाव कहिए। जैसैं नवम गुणस्थानविषैं वेदादिकका उदय मंद है, तहां मैथुनादि क्रिया व्यक्त नाहीं, तातैं तहां ब्रह्मचर्य ही कह्या। तारतम्यविषैं मैथुनादिकका सद्भाव कहिए है। तैसैं केवलीकै असाताका उदय अतिमंद है। तातैं

एक एक कांडकविषै अनंतवैं भागि अनुभाग रहै, ऐसे बहुत अनुभाग-कांडकनि करि वा गुणसंक्रमणादिककरि सत्ताविषै असातावेदनीयका अनुभाग अत्यंत मंद भया, ताका उदयविषैं क्षुधा ऐसी व्यक्त होती नाहीं, जो शरीरकौं क्षीण करै। अर मोहके अभावतैं क्षुधादिकजनित दुःख भी नाहीं, तातैं क्षुधादिकका अभाव कहिए। तारतम्यविषैं तिनका सद्भाव कहिए है। बहुरि तैं कह्या—आहारादिक विना तिनकी उपशांतता कैसैं होय, सो आहारादिकरि उपशांत होनें योग्य क्षुधा लागै, तौ मंद उदय काहेका रह्या? देव भोगभूमियां आदिककै किंचित् मंद उदय होतैं ही बहुतकाल पीछैं किंचित् आहार ग्रहण हो है तौ इनकै तौ अतिमंद उदय भया है, तातैं इनकै आहारका अभाव संभवै है।

बहुरि वह कहै है, देव भोगभूमियौंका तौ शरीर ही ऐसा है,जाकौं भूख थोरी वा घनेंकाल पीछैं लागै,इनिका तौ शरीर कर्मभूमिका औदारिक है। तातैं इनिका शरीर आहार विना देशोनकोड़ि पूर्वपर्यंत उत्कृष्टपनैं कैसैं रहै?

ताका समाधान—देवादिकका भी शरीर वैसा है, सो कर्मकेही निमित्ततैं है। यहां केवलज्ञान भए ऐसा ही कर्म उदय भया, जाकरि शरीर ऐसा भया,जाकी भूख प्रगट होती ही नाहीं। जैसैं केवलज्ञान भए पहलें केश नखवधैं थे सो वधै (बढ़ैं) नाहीं। छाया होती थी,सो होती नाहीं शरीर विषैं निगोद थी, ताका अभाव भया। बहुत प्रकारकरि जैसैं शरीरकी अवस्था अन्यथा भई, तैसैं अहारविना भी शरीर जैसाका तैसा रहै ऐसी भी अवस्था भई। प्रत्यक्ष देखौ,औरनिकौं जरा व्यापै तब शरीर शिथिल होय जाय; इनिका आयुका अंतपर्यंत

शरीर शिथिल न होय । तातैं अन्य मनुष्यनिका अर इनिका शरीर की समानता संभवै नाहीं । बहुरि जो तू कहैगा—देवादिककै आहार ही ऐसा है, जाकरि बहुतकालकी भूख मिटै; इनिकै भूख काहेतैं मिटी अर शरीर पुष्ट कैसैं रह्या ? तौ सुनि, असाताका उदय मंद होनेतैं मिटी, अर समय समय परम औदारिकशरीर वर्गणाका ग्रहण हो है सो वह तौ कर्म आहार है सो ऐसी ऐसी वर्गणाका ग्रहण हो है जाकरि क्षुधादिक व्यापै नाहीं वा शरीर शिथिल होय नाहीं। सिद्धांतविषैं याहीकी अपेक्षा केवलीकौं आहार कह्या है । अर अन्नादिकका आहार तौ शरीरकी पुष्टताका मुख्य कारण नाहीं । प्रत्यक्ष देखौ, कोऊ थोरा आहार ग्रहै शरीर पुष्ट बहुत होय, कोऊ बहुत आहार ग्रहै शरीर क्षीण रहै। बहुरि पवनादि साधनेवाले बहुतकालतांई आहार न लें, शरीर पुष्ट रह्या करै. वा ऋद्धिधारी मुनि उपवासादि करैं, शरीर पुष्ट बन्या रहै, सो केवलीकै तौ सर्वोत्कृष्टपना है उनकै अन्नादिक विना शरीर पुष्ट बन्या रहै, तौ कहा आश्चर्य भया । बहुरि केवली कैसैं आहारकौं जांय, कैसैं जाचैं ।

बहुरि वै आहारकौं जांय, तब समवसरण खाली कैसें रहै। अथवा अन्यका ल्याय देना ठहराओगे तौ कौन ल्याय दे, उनके मनकी कौन जानैं। पूर्वैं उपवासादिककी प्रतीज्ञा करी थी, ताका कैसैं निर्वाह होय । जीव अंतराय सर्वप्रतिभासै, कैसैं आहार ग्रहैं ? इत्यादि विरुद्धता भासै है। बहुरि वह कहै है--आहार ग्रहै हैं, परन्तु काहूकौं दीसैं नाहीं । सो आहार ग्रहणकौं निंद्य जान्या, तब ताका न देखना अतिशयविषैं लिख्या । सो उनके निंद्यपना रह्या, अर और न देखै हैं, तौ कहा भया। ऐसैं अनेक प्रकार विरुद्धता उपजै है ।

बहुरि अन्य अविवेकताकी बातैं सुनो—केवलीकै नीहार कहैं हैं, रोगादिक भया कहै हैं, अर कहैं, काहूनैं तेजोलेश्या छोरी, ताकरि वर्द्धमानस्वामीकै पेटूंगाका (पेचिसका) रोग भया, ताकरि बहुत बार नीहार होने लागा। सो तीर्थंकर केवलीकै भी ऐसा कर्मका उदय रह्या, अर अतिशय न भया, तौ इंद्रादिकरि पूज्यपना कैसें सोभै। बहुरि नीहार कैसें करैं, कहां करैं, कोऊ संभवती बातैं नाहीं। बहुरि जैसें रागादिकरि युक्त छद्मस्थकै क्रिया होय, तैसें केवलीकै क्रिया ठहरावै हैं। वर्द्धमानस्वामीका उपदेशविषैं 'हे—गौतम' ऐसा वारंवार कहना ठहरावैं हैं सो उनकै तौ अपना कालविषैं सहज दिव्यध्वनि हो है, तहां सर्वकौं उपदेश हो है गौतमकौं संबोधन कैसें बनै? बहुरि, केवलीकै नमस्कारादिक क्रिया ठहरावैं हैं, सो अनुरागविना वंदना संभवै नाहीं। बहुरि गुणाधिककौं वंदना संभवै, उनसेती कोई गुणाधिक रह्या नाहीं। सो कैसें बनै? बहुरि हाटिविषैं समवसरण उतर्‍या कहैं, सो इंद्रकृत समवसरण हाटिविषैं कैसें रहै? इतनी रचना तहां कैसें समावै। बहुरि हाटिविषैं काहेकौं रहै? कहा इंद्र हाटि सारिखी रचना करनेकौं भी समर्थ नाहीं; जातैं हाटिका आश्रय लीजिए। बहुरि कहैं,-केवली उपदेशदेनेकौं गए। सो घरि जाय उपदेश देना अतिरागतैं होय, सो मुनिकै भी संभवै नाहीं। केवलीकै कैसें बनैं? ऐसें ही अनेक विपरीतिता तहां प्ररूपै हैं। केवली शुद्धकेवलज्ञानदर्शनमय रागादिरहित भए हैं, तिनकैं अघातिकर्मनिके उदयतैं संभवती-क्रिया कोई हो है, केवलीकैं मोहादिकका अभाव भया है। तातैं

उपयोगमिलें जो क्रिया होय सकै, सो संभवै नाहीं। पापप्रकृतिका अनुभाग अत्यंत मंद भया है। ऐसा मंद अनुभाग अन्य कोईकै नाहीं। तातैं अन्यजीवनिकै पापउदयतैं जो क्रिया होती देखिए है, सो केवलीकै न होय। ऐसैं केवली भगवानकै सामान्य मनुष्यकीसी क्रियाका सद्भाव कहि देवका स्वरूपकौं अन्यथा प्ररूपे हैं॥

[मुनिके वस्त्रादि उपकरणोंका प्रतिषेध]

बहुरि गुरूका स्वरूपकौ अन्यथा प्ररूपे हैं। मुनिके वस्त्रादिक चौदह उपकरण कहै हैं। [1]सो हम पूछे हैं कि, मुनिकौं निर्ग्रंथ कहैं अर मुनिपद लेतैं नवप्रकार सर्वपरिग्रहका त्यागकरि महाव्रत अंगीकार करै, सो ए वस्त्रादिक परिग्रह हैं कि नाहीं। जो हैं तौ त्यागकिए पीछैं काहेकौं राखैं, अर नाहीं हैं, तौ वस्त्रादिक गृहस्थ राखैं ताकौं भी परिग्रह मति कहौ। सुवर्णादिकहीकौं परिग्रह कहौ। बहुरि जो कहोगे, जैसैं क्षुधाके अर्थि आहार ग्रहण कीजिए है, तैसैं शीतउष्णादिकके अर्थि वस्त्रादिक ग्रहण कीजिए है। सो मुनिपद अंगीकार करतैं आहारका त्याग किया नाहीं, परिग्रहका त्याग किया है। बहुरि अन्नादिकका तौ संग्रह करना परिग्रह है, भोजन करने जाय सो परिग्रह नाहीं। अर वस्त्रादिकका संग्रह करना वा पहरना सर्व ही परिग्रह है, सो लोकविषै प्रसिद्ध है। बहुरि कहोगे, शरीरकी स्थितिके अर्थि

१—पात्र २ पात्रबन्ध ३ पात्र केसरिकर ४ पटलिकाएं ५ रजस्त्राण ६ गोच्छक ७ रजोहरण ८ मुखवस्त्रिका ९ दो सूती कपड़े १०–११, एक ऊनी कपड़ा १२ मात्रक १३ चोलपट्ट १४ देखो बृहत्क० सू० उ० ३ भा० गा० ३९६२ से ३९६५ तक।

वस्त्रादिक राखिए है—ममत्व नाहीं है, तातैं इनिकौं परिग्रह न कहिए है। सो श्रद्धानविषै तौ जब सम्यग्दृष्टी भया; तब ही समस्त परद्रव्यविषैं ममत्वका अभाव भया। तिस अपेक्षा तौ चौथा गुणस्थान ही परिग्रहरहित कहौ। अर प्रवृत्तिविषैं ममत्व नाहीं, तौ कैसैं ग्रहण करै है। तातैं वस्त्रादिक ग्रहण धारण छूटैगा, तब ही निःपरिग्रह होगा। बहुरि कहौगे—वस्त्रादिककौं कोई लेय जाय, तौ क्रोध न करै वा क्षुधादिक लागै तौ वे वेचैं नाहीं, वा वस्त्रादिकपहरि प्रमाद करै नाहीं। परिणामनिकी थिरताकरि धर्म ही साधै है, तातैं ममत्व नाहीं। सो बाह्य क्रोध मति करौ, परंतु जाका ग्रहणविषैं इष्टबुद्धि होय, ताका वियोगविषैं अनिष्टबुद्धि होय ही होय। जो अनिष्टबुद्धि न भई, तौ बहुरि ताके अर्थि याचना काहेकौं करिए है। बहुरि वेचते नाहीं, सो धात राखनेतैं अपनी हीनता जानि नाहीं वेचिए है। जैसैं धनादि राखने तैसैं ही वस्त्रादि राखनें। लोकविषैं परिग्रहके चाहक जीवनिकै दोऊनिकी इच्छा है। तातैं चौरादिकके भयादिकके कारन दोऊ समान हैं। बहुरि परिणामनिकी स्थिरताकरि धर्मसाधनहीतैं परिग्रहपना न होय, जो काहूकौं बहुत शीत लागैगा सो सोड़ि राखि परिणामनिकी थिरता करैगा, अर धर्मसाधैगा तौ वाकौं भी निःपरिग्रह कहौ। ऐसैं गृहस्थधर्म मुनिधर्मविषैं विशेष कहा रहैगा। जाकै परीषह सहनेकी शक्ति न होय, सो परिग्रह राखि धर्म साधै। ताका नाम गृहस्थधर्म, अर जाकै परिणाम निर्मल भए परीषहकरि व्याकुल न होय, सो परिग्रह न राखै अर धर्म साधै, ताका नाम मुनिधर्म, इतना ही विशेष है। बहुरि कहोगे, शीतादिकी परीषहकरि व्याकुल कैसैं न होय। सो व्याकुलता तौ

मोहके उदयके निमित्ततैं है। सो मुनिकै षष्ठादि गुणस्थाननिविषैं तीन चौकड़ीका उदय नाहीं। अर संज्वलनकै सर्वघाती स्पर्द्धकनिका उदय नाहीं। देशघाती स्पर्द्धनिका उदय है सो किछू तिनका बल नाहीं। जैसैं वेदक सम्यग्दृष्टीकै सम्यङ्मोहनीयका उदय है, सो सम्यक्त्वकौं घात न करि सकै; तैसैं देशघाती संज्वलनका उदय परिणामनिकौं व्याकुल करि सकै नाहीं। अहो मुनिनिकै अर औरनिकै परिणामनिकी समानता है नाहीं। और सबनिकै सर्वघातीका उदय है, इनिकै देशघातीका उदय, तातैं औरनिकै जैसे परिणाम होंय तैसे उनकै कदाचित् न होंय। तातैं जिनकै सर्वघातीकषायनिका उदय होय, ते गृहस्थ ही रहैं, अर जिनकै देशघातीका उदय होय ते मुनिधर्म अंगीकार करैं। ताकै शीतादिककरि परिणाम व्याकुल न होंय। तातैं वस्त्रादिक राखैं नाहीं। बहुरि कहौगे—जैन शास्त्रनिविषैं चौदह उपकरण मुनि राखैं, ऐसा कह्या है। सो तुम्हारे ही शास्त्रनिविषैं कह्या है, दिगंबर जैनशास्त्रनिविषैं तौ कहे नाहीं। तहां तौ लंगोटमात्र परिग्रह रहैं भी ग्यारहीं प्रतिमाका धारक श्रावक ही कह्या। सो अब यहां विचारौ, दोऊनिमैं कल्पित वचन कौंन है? प्रथम तौ कल्पित रचना कषायी होय सो करैं। बहुरि कषायी होय, सो ही नीचापदविषैं उच्चपनौं प्रगट करै। सो यहां दिगंबरविषैं वस्त्रादि राखैं धर्म होय ही नाहीं, ऐसा तौ न कह्या परन्तु तहां श्रावकधर्म कह्या। श्वेतांबरविषैं मुनिधर्म कह्या। सो यहां जानैं नीची क्रिया होतैं, उच्चत्व पद प्रगट किया सो ही कषायी है। इस कल्पित कहनेंकरि आपकौं वस्त्रादि राखतैं भी लोक मुनि माननें लागैं, तातैं मानकषाय पोष्या गया। अर औरनिकौं सुगमक्रियाविषै उच्चपदका होना दिखाया, तातैं घनें लोक

लगि गए। जे कल्पित मत भए हैं,ते ऐसैं ही भए हैं। तातैं कषायी होइ वस्त्रादि होतैं मुनिपना कह्या है, सो पूर्वोक्त युक्तिकरि विरुद्ध भासै है। तातैं ए कल्पितवचन हैं, ऐसा जानना।

बहुरि कहौगे—दिगंबरविषै भी शास्त्र पीछी आदि मुनिकै उपकरण कहे हैं, तैसैं हमारै चौदह उपकरण कहे हैं।

ताका समाधान—जाकरि उपकार होय ताका नाम उपकरण है। सो यहां शीतादिककी वेदना दूरि करणेतैं उपकरण ठहराईए, तौ सर्वपरिग्रह सामग्री उपकरण नाम पावै। सो धर्मविषैं इनिका कहा प्रयोजन? ए तौ पापके कारण हैं। धर्मविषैं तौ धर्मका उपकारी जे होंय तिनिका नाम उपकरण है। सो शास्त्र ज्ञानकौं कारण, पीछी दयाकौं,कमंडलु शौचकौं कारण, सो ए तौ धर्मके उपकारी भए, वस्त्रादिक कैसैं धर्मके उपकारी होय? वै तौ शरीरका सुखहीकै अर्थि धारिए है। बहुरि सुनौं जो शास्त्र राखि महंततादिखावैं, पीछीकरि बुहारी दें, कमंडलुकरि जलादिक पीवैं, वा मैलउतारैं, तौ शास्त्रादिक भी परिग्रह ही हैं। सो मुनि ऐसे कार्य करै नाहीं। तातैं धर्मके साधनकौं परिग्रह संज्ञा नाहीं। भोगके साधनकौं परिग्रह संज्ञा हो है, ऐसा जानना। बहुरि कहौगे—कमंडलुतैं तौ शरीरहीका मल दूरि करिए है, सो मुनि मल दूरि करनेकी इच्छाकरि कमंडलु नाहीं राखै हैं। शास्त्र वांचना आदि कार्य करैं, अर मललिप्त होंय, तौ तिनिका अविनय होय, लोकनिंद्य होंय, तातैं इस धर्मके अर्थि कमंडलु राखिए है। ऐसैं पीछी आदि उपकरण संभवैं, वस्त्रादिकौं उपकरण संज्ञा संभवै नाहीं। काम अरति आदि मोहका उदयतैं विकार बाह्य प्रगट होय, अर शीतादिक सहे न जाँय

तातैं विकार ढांकनेकौं, वा शीतादि मिटावनेकौं, वा वस्त्रादिक राखैं अर मानके उदयतैं अपनी महंतता भी चाहैं तातैं, कल्पितयुक्तिकरि उपकरण ठहराए हैं। बहुरि घरि घरि याचनाकरि आहार ल्यावना ठहरावै हैं। सो प्रथम तौ यह पूछिए है, याचना धर्मका अंग है कि पापका अंग है। जो धर्मका अंग है, तौ मांगनेवाले सर्व धर्मात्मा भए। अर पापका अंग है, तौ मुनिकै कैसें संभवै ?

बहुरि जो तू कहैगा, लोभकरि किछू धनादिक याचैं, तौ पाप होय: यहु तौ धर्म साधनकै अर्थि शरीरकी स्थिरता किया चाहै है। तातैं आहारादिक याचै हैं।

ताका समाधन—आहारादिककरि धर्म होता नाहीं, शरीरका सुख हो है। सो शरीरका सुखकै अर्थि अतिलोभ भए याचना करिए है। जो अति लोभ न होता, तो आप काहेकौं मांगता। वै ही देते तौ देते, न देते तौ न देते। बहुरि अतिलोभ भए इहां ही पाप भया, तब मुनि-धर्म नष्ट भया और धर्म कहा साधैगा। अब वह कहै है—मनविषै तौ आहारकी इच्छा होय अर याचै नाहीं, तौ मायाकषाय भया अर याचनेमैं हीनता आवै है, सो गर्वकरि याचै नाहीं, तब मानकषाय भया। आहार लेना था, सो मांगि लिया। यामैं अतिलोभ कहा भया, अर यातैं मुनिधर्म कैसैं नष्ट भया, सो कहौ। ताकौं कहिए है—

जैसैं काहू व्यापारीकै कमावनेकी इच्छा मंद है, सो हाटि (दूकान) ऊपरि तौ बैठे अर मनविषैं व्यापारकरनेकी इच्छा भी है: परन्तु काहू-कौं वस्तु लेनेदेनेरूप व्यापारकै अर्थ प्रार्थना नाहीं करै है। स्वयमेव कोई आवै तौ अपनी विधि मिलैं, व्यापार करै है। तौ वाकै लोभकी

मंदता है, माया वा मान नाहीं है। माया मानकषाय तौ तब होय, जब छलकरनैंकै अर्थि वा अपनी महंततार्कै अर्थि ऐसा स्वांग करै। सो भले व्यापारीकै ऐसा प्रयोजन नाहीं। तातैं वाकै माया मान न कहिए। तैसैं मुनिनकै आहारादिककी इच्छा मंद है, सो आहार लेनेकौ आवैं अर मनविषैं आहारादिककी इच्छा भी है; परंतु आहारकै अर्थि प्रार्थना नाहीं करै हैं। स्वयमेव कोई दे, तौ अपनी विधि मिले आहार ले हैं तौ उनकै लोभकी मंदता है, माया वा मान नाहीं है। माया मान तौ तब होय जब छल करनेकै अर्थि वा महंततार्कै अर्थि ऐसा स्वांग करैं। सो मुनिनकै ऐसैं प्रयोजन हैं नाहीं। तातैं इनिकै माया मान नाहीं है। जो ऐसैं ही माया मान होय, तौ जे मनहीकरि पाप करैं वचनकायकरि न करैं, तिन सबनिकै माया ठहरै। अर जे उच्चपदवीके धारक नीचवृत्ति नहीं अंगीकार करै हैं, तिन सबनिकै मान ठहरै। ऐसैं अनर्थ होय! वहुरि तैं कह्या—"आहार मांगनेमैं अतिलोभ कह्या भया, सो अतिकषाय होय, तब लोकनिंद्य कार्य अंगीकार-करिकैं भी मनोरथ पूर्ण किया चाहै, सो मांगना लोकनिंद्य है, ताकौं भी अंगीकारकरि आहारकी इच्छा पूर्ण करनेकी चाहि भई। तातैं यहां अतिलोभ भया। वहुरि तैं कह्या—"मुनिधर्म कैसैं नष्ट भया," सो मुनिधर्मविषैं ऐसी तीव्रकषाय संभवै नाहीं। वहुरि काहूका आहारदेनेंका परिणाम न था, यानैं वाका घरमैं जाय याचना करी। तहां वाकै सकुचना भया वा न दिए लोकनिंद्य-होनेका भय भया। तातैं वाकौं आहार दिया, सो वाका अंतरंग प्राण पीड़नेतैं हिंसाका सद्भाव आया। जो आप वाका घरमैं न जाते, उसहीकै देनेका

उपाय होता, तौ देता, वाकै हर्ष होता। यहु तौ दबायकरि कार्य करावना भया। बहुरि अपना कार्यकै अर्थि याचनारूप वचन है, सो पापरूप है। सो यहां असत्यवचन भी भया। बहुरि वाकै देनेकी इच्छा न थी, यानैं जाच्या, तब वानैं अपनी इच्छातैं दिया नाहीं—सकुचिकरि दिया। तातैं अदत्त-ग्रहण भी भया। बहुरि गृहस्थके घरमैं स्त्री जैसैं तैसैं तिष्ठै थी, यहु चल्या गया। तहां ब्रह्मचर्यकी बाड़िका भंग भया। बहुरि आहार ल्याय, केतेक काल राख्या। आहारादिक राखनेंकौं पात्रादिक राखे, सो परिग्रह भया। ऐसैं पांच महाव्रतनिका भंग होनेतैं मुनिधर्म नष्ट हो है तातैं याचनाकरि आहार लेना मुनिकौं युक्त नाहीं।

बहुरि वह कहै है—मुनिकै बाईस परीषहनिविषैं याचनापरीषह कही है, सो मांगेबिना तिस परीषहका सहना कैसैं होय?

ताका समाधान—याचना करनेका नाम याचनापरीषह नाहीं है। याचना न करनी, ताका नाम याचनापरिषह है। जातैं अरति करनेका नाम अरतिपरीषह नाहीं, अरति न करनेका नाम अरतिपरीषह है, तैसैं जानना। जो याचना करना, परीषह ठहरै, तौ रंकादि घनी याचना करै हैं, तिनकै घना धर्म होय। अर कहोगे, मान घटावनेतैं याकौं परीषह कहै हैं, तौ कोई कषायी कार्यके अर्थि कोई उपाय होतैं भी पापी ही होय। जैसें कोई लोभकै अर्थि अपना अपमानकौं भी न गिनैं, तौ वाकै लोभकी तीव्रता है। इस अपमान करावनेतैं भी महापाप होय है। अर आपकै इच्छा किछू नाहीं, कोई स्वयमेव अपमान करै है, तौ वाकै महाधर्म है। सो यहां तौ भोजनका लोभकै अर्थि याचना-

करि अपमान कराया, तातैं पाप ही है धर्म नाहीं। बहुरि वस्त्रादिकके भी अर्थि याचना करै है, सो वस्त्रादिक कोई धर्मका अंग नाहीं है। शरीरसुखका कारण है। तातैं पूर्वोक्तप्रकार ताका निषेध जानना। अपना धर्म-रूप उच्चपदकौं याचनाकरि नीचा करै हैं, सो यामैं धर्मकी हीनता हो है। इत्यादि अनेकप्रकारकरि मुनिधर्मविषैं याचना आदि नाहीं संभवै है। सो ऐसी असंभवती क्रियाके धारक साधु गुरु कहै हैं। तातैं गुरुका स्वरूप अन्यथा कहै हैं।

[धर्मका अन्यथा रूप]

बहुरि धर्मका स्वरूप अन्यथा कहै हैं। सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र इनकी एकता मोक्षमार्ग है, सो ही धर्म है सो इनिका स्वरूप अन्यथा प्ररूपैं हैं। सो ही कहिए है—

तत्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन है, ताकी तौ प्रधानता नाहीं। आप जैसैं अरहंत देव साधु गुरु दया धर्मकौं निरूपै हैं, तिनका श्रद्धानकौं सम्यग्दर्शन कहै हैं। सो प्रथम तौ अरहंतादिकका स्वरूप अन्यथा कहैं। बहुरि इतनें ही श्रद्धानतैं तत्त्वश्रद्धान भए विना सम्यक्त्व कैसैं होय, तातैं मिथ्या कहै हैं। बहुरि तत्त्वनिकाभी श्रद्धानकौं सम्यक्त्व कहै हैं। तौ प्रयोजनलिएं तत्त्वनिका श्रद्धान नाहीं कहै हैं। गुणस्थान मार्गणादिरूप जीवका, अणुस्कंधादिरूप अजीवका, पुण्यपापके स्थाननिका अविरतिआदि आश्रवनिका, व्रतादिरूप संवरका, तपश्चरणादिरूप निर्जराका, सिद्ध होनेके लिंगादिके भेदनिकरि मोक्षका स्वरूप जैसैं उनके शास्त्रविषैं कह्या है, तैसैं सीखि लीजिए। अर केवलीका वचन प्रमाण है, ऐसैं तत्त्वार्थश्रद्धान-

करि सम्यक्त्व भया मानै हैं। सो हम पूछैं हैं, ग्रैवेयिक जानेवाला द्रव्यलिंगी मुनिकै ऐसा श्रद्धान हो है कि नाहीं। जो हो है, तौ वाकौं मिथ्यादृष्टी काहेकौं कहौ। अर न हो है, तौ वानैं तौ जैनलिंग धर्मबुद्धि-करि धर्‍या है, ताकै देवादिकी प्रतीति कैसें नाहीं भई ? अर वाकै बहुत शास्त्राभ्यास है, सो वानै जीवादिके भेद कैसें न जाने। अर अन्यमतका लवलेश भी अभिप्रायमैं नाहीं, ताकै अरहंतवचनकी कैसें प्रतीति नाहीं भई। तातैं वाकै ऐसा श्रद्धान तौ होय, परंतु सम्यक्त्व न भया। बहुरि नारकी भोगभूमियां तिर्यंच आदिकै ऐसा श्रद्धान होनेका निमित्त नाहीं अर तिनिकै बहुतकालपर्यंत सम्यक्त्व रहै है। तातैं वाकै ऐसा श्रद्धान नाहीं हो है, तौ भी सम्यक्त्व भया। तातैं सम्यक्श्रद्धानका स्वरूप यहु, नाहीं। सांचा स्वरूप है, सो आगैं वर्णन करेंगे, सो जानना।

बहुरि जो उनके शास्त्रनिका अभ्यास करना, ताकौं सम्यग्ज्ञान कहै हैं। सो द्रव्यलिंगी मुनिकै शास्त्राभ्यास होतैं भी मिथ्याज्ञान कह्या, असंयत सम्यग्दृष्टिकै विषयादिरूप जानना ताकौं सम्यग्ज्ञान कह्या। तातैं यहु स्वरूप नाहीं, सांचा स्वरूप आगैं कहैंगे सो जानना। बहुरि उनकरि निरूपित अणुव्रत महाव्रतादिरूप श्रावक यतीका धर्म धारने-करि सम्यक्चारित्र भया मानै। सो प्रथम तौ व्रतादिकास्वरूप अन्यथा कहैं, सो किछू पूर्वैं गुरुवर्णनविषैं कह्या है। बहुरि द्रव्यलिंगीकै महा-व्रत होतैं भी सम्यक्चारित्र न हो है। अर उनका मतपै अनुसारि गृहस्थादिककै महाव्रत आदि विना अंगीकार किए भी सम्यक्चारित्र हो है, तातैं यह स्वरूप नाहीं। सांचास्वरूप अन्य है, सो आगैं कहैंगे।

यहां वै कहैं हैं—द्रव्यलिंगीकै अंतरंगविषैं पूर्वोक्त श्रद्धाना

न भए, सो वाह्य ही भए, तातैं सम्यक्त्वादि न भए।

ताका उत्तर—जो अंतरंग नाहीं अर वाह्य धारै, सो तौ कपटकरि धारै सो वाकै कपट होय, तौ ग्रैवेयिक कैसैं जाय, नरकादिविषैं जाय। बंध तौ अंतरंग परिणामनितैं हो है। सो अंतरंग जिनधर्मरूप परिणाम भए विना ग्रैवेयक जाना संभवै नाहीं। बहुरि व्रतादिरूप शुभोपयोगहीतैं देवका बंध मानैं, अर याहीकौं मोक्षमार्ग मानैं, सो बंधमार्ग मोक्षमार्गकौं एक किया, सो यहु मिथ्या है। बहुरि व्यवहारधर्मविषैं अनेक विपरीति निरूपैं हैं। निंदककौं मारनेमैं पाप नाहीं, ऐसा कहै हैं। सो अन्यमती निंदक तीर्थंकरादिकके होतैं भी भए, तिनकौं इंद्रादिक मारे नाहीं। सो पाप न होता, तौ इन्द्रादिक क्यौं न मारैं। बहुरि प्रतिमाकै आभरणादि वनावै हैं, सो प्रतिबिंब तौ वीतरागभाव बधावनेकौं कारण स्थापन किया था। आभरणादि बनाएं, अन्यमतकी मूर्तिवत् यहु भी भए। इत्यादि कहां तांई कहिए, अनेक अन्यथा निरूपण करै हैं या प्रकार श्वेतांबरमत कल्पित जानना। यहां सम्यग्दर्शनका अन्यथा निरूपणतैं मिथ्यादर्शनादिकहीकौं पुष्टता हो है। तातैं याका श्रद्धानादि न करना।

[ढूंढक मत निराकरण]

बहुरि इनि श्वेतांबरनिविषैं ही ढूंढिया प्रगट भए हैं, ते आपकौं सांचे धर्मात्मा मानै हैं, सो भ्रम है। काहेतैं सो कहिए है,—

केई तौ भेष धारि साधु कहावैं हैं, सो उनके ग्रंथनिके अनुसार भी व्रत समिति गुप्तिआदिका साधन नाहीं भासैं हैं। बहुरि मन वचन काय कृत कारित अनुमोदनाकरि सर्व सावद्ययोग त्याग करनेकी प्रतिज्ञा

करैं, पीछैं पालैं नाहीं। वालककौं वा भोलाकौं वा शूद्रादिककौं ही दीक्षा दें। सो ऐसैं त्याग करैं अर त्याग करतैं ही किछू विचार न करैं, जो कहा त्याग करौं हौं। पीछैं पालैं भी नाहीं अर ताकौं सर्व साधु मांनैं। वहुरि यह कहैं,-पीछैं धर्म्मबुद्धि होय जाय, तब तौ याका भला हो है। सो पहले ही दीक्षा देनेवालेनैं प्रतिज्ञाभंग होती जानि प्रतिज्ञाभंग कराई, वहुरि यानै प्रतिज्ञा अंगीकारकरि भंग करी, सो यह पाप कौनकौं लाग्या। पीछैं धर्मात्मा होनेका निश्चय कहा। वहुरि जो साधुका धर्म्म अंगीकारकरि यथार्थ न पाले, ताकौं साधु मानिए कै न मानिए। जो मानिए, तौ जे साधु मुनि नाम धरावै हैं, अर भ्रष्ट हैं, तिन सबनिकौं साधु मानौं। न मानिए, तौ इनकै साधुपना न रह्या। तुम जैसे आचरणतैं साधु मानौ हौ, ताका भी पालना कोऊ विरलाकैं पाइए है। सबनिकौं साधु काहेकौं मानौ हौ।

यहां कोऊ कहै—हम तौ जाकै यथार्थ आचरण देखेंगे, ताकौं साधु मानैंगे औरकौं न मानैंगे। ताकौं पूछिए है—

एकसंघविषैं वहुत भेषी हैं। तहां जाकै यथार्थ आचरण मानौ हौ। सो यह औरनिकौं साधु मानै है कि न मानै है। जो मानै है, तौ तुमतैं भी अश्रद्धानी भया, ताकौं पूज्य कैसैं मानौ हौ। अर न मानैं है, तो उनसेती साधुका व्यवहार काहेकौं वर्त्तै है। वहुरि आप तो उनकौं साधु न मानैं अर अपने संघविषैं राखि औरनि पासि साधु मनाय औरनिकौं अश्रद्धानी करै, ऐसा कपट काहेकौं करै। वहुरि तुम जाकौं साधु न मानौगे, तब अन्य जीवनिकौं भी ऐसा ही उपदेश

करौगे, इनिकौं साधु मति मानौं, ऐसैं धर्म्मपद्धतिविषैं विरुद्ध होय। अर जाकौं तुम साधु मानो हो तिसतैं भी तुम्हारा विरुद्ध भया। जातैं वह वाकौं साधु मानै है। बहुरि तुम जाकै यथार्थ आचरण मानो हो, सो विचारकरि देखौ, वह भी यथार्थ मुनिधर्म्म नाहीं पालै हैं।

कोऊ कहै—अन्य भेषधारीनितैं तौ घनें आछे हैं-तातैं हम मानैं हैं। सो अन्यमतीनिविषैं तौ नानाप्रकार भेष संभवैं, जातैं तहां रागभावका निषेध नाहीं। इस जैनमतविषैं तौ जैसा कह्या, तैसा ही भए साधु संज्ञा होय।

यहां कोऊ कहै—शील संयमादि पालै हैं, तपश्चरणादि करै हैं, सो जेता करैं तितना ही भला है।

ताका समाधान—यहु सत्य है, धर्म थोरा भी पाल्या हुवा भला है। परंतु प्रतिज्ञा तौ बड़े धर्मकी करिए अर पालिए थोरा, तौ तहां प्रतिज्ञाभंगतैं महापाप हो है। जैसैं कोऊ उपवासकी प्रतिज्ञाकरि एकबार भोजन करै तौ वाकै बहुतबार भोजनका संयम होतैं भी प्रतिज्ञाभंगतैं पापी कहिए। तैसैं मुनिधर्मकी प्रतिज्ञा करि कोई किंचित धर्म्म न पालै, तौ वाकौं शीलसंयमादि होतैं भी पापी ही कहिए। अर जैसैं एकंतकी (एकासनकी) प्रतिज्ञाकरि एकबार भोजन करै, तौ धर्मात्मा ही है। तैसैं अपना श्रावकपद धारि थोरा भी धर्म साधन करै, तौ धर्मात्मा ही है। यहां तौ ऊंचा नाम धराय नीची क्रिया करनैं पापीपना संभवै है। यथायोग्य नाम धराय धर्मक्रिया करनैं, तौ पापीपना होता नाहीं। जेता धर्म्म साधै, तितना ही भला है।

यहां कोऊ कहै—पंचमकालका अंतपर्यंत चतुर्विधि संघका सद्भाव

कह्या है। इनिकौं साधु न मानिए, तौ किसकौं मानिए?

ताका उत्तर--जैसैं इस कालविषैं हंसका सद्भाव कह्या है अर गम्यक्षेत्रविषैं हंस नाहीं दीसै हैं, तौ औरनिकौं तौ हंस माने जाते नाहीं, हंसकासा लक्षणमिलें ही हंस मानैं जांय। तैसैं इस कालविषैं साधुका सद्भाव है, अर गम्यक्षेत्रविषैं साधु न दीसै हैं. तौ औरनिकौं तौ साधु मानें जाते नाहीं। साधु लक्षणमिलैं ही साधु माने जांय। बहुरि इनिका भी प्रचार थोरे ही क्षेत्रविषैं दीसै है, तहांतैं परै क्षेत्रविषैं साधुका सद्भाव कैसैं मानैं? जो लक्षण मिलें मानैं, तौ यहां भी ऐसैं मानौं। अर विनालक्षण मिले ही मानें, तौ तहां अन्य कुलिंगी हैं तिनिहीकौं साधु मानौं। ऐसैं विपरीति होय, तातैं बनैं नाहीं। कोऊ कहै—इस पंचमकालमैं ऐसैं भी साधुपद हो है, तौ ऐसा सिद्धांतका वचन बतावौ। विना ही सिद्धांत तुम मानो हौ, तौ पापी होगा। ऐसैं अनेक युक्तिकरि इनिकैं साधुपना बनैं नाहीं है। अर साधुपना विना साधु मानि गुरु मानैं मिथ्यादर्शन हो है। जातैं भले साधुकौं ही गुरु मानैं ही, सम्यग्दर्शन हो है।

[प्रतिमाधारी श्रावक न होनेकी मान्यता]

बहुरि श्रावकका धर्मकी अन्यथा प्रवृत्ति करावै हैं। त्रसकी हिंसा स्थूल मृषादिक होतैं भी जाका किछू प्रयोजन नाहीं, ऐसा किंचित् त्याग कराय वाकौं देशव्रती भया कहैं। सो वह त्रसघातादिक जामैं होय ऐसा कार्य करैं। सो देशव्रत गुणस्थानविषैं तौ ग्यारह अविरति कहे हैं, तहां त्रसघात कैसैं संभवै? बहुरि ग्यारह प्रतिमाभेद श्रावकके हैं, तिनविषैं दशमी ग्यारमी प्रतिमाधारक श्रावक तौ कोई होता नाहीं·

अर साधु होय । पूछैं, तब कहैं—पडिमाधारी श्रावक अबार होय सकता नाहीं। सो देखो, श्रावकधर्म्म तौ कठिन अर मुनिधर्म्म सुगम ऐसा विरुद्ध भाषैं हैं। बहुरि ग्यारमी प्रतिमा धारककै थोरा परिग्रह मुनिकै बहुतपरिग्रह बतावैं, सो संभवता वचन नाहीं। बहुरि कहैं, ए प्रतिमा तौ थोरे ही काल पालि छोड़ि दीजिए है । सो ए कार्य उत्तम है, तौ धर्म्मबुद्धि ऊंची क्रियाकौं काहेकौं छोरै। अर नीचे काय , तौ काहेकौं अंगीकार करै। यहु संभवै ही नाहीं। कुदेव कुगुरुकौं नमस्कारादिक करतैं भी श्रावकपना बतावैं । कहैं, धर्म्मबुद्धिकरि तौ नाहीं वंदैं हैं, लौकिक व्यवहार है । सो सिद्धांतविषै तौ तिनिकी प्रशंसा स्तवनकौं भी सम्यक्त्वका अतिचार कहैं अर गृहस्थनिका भला मनावनेंकै अर्थि वंदना करतैं भी किछू न कहैं । बहुरि कहौगे—भय लज्जा कुतूहलादिकरि वंदै हैं, तौ इनिही कारणनिकरि कुशीलादि सेवनकरतैं भी पाप मति कहौ । अंतरंगविषैं पाप जान्या चाहिए। ऐसैं सर्व आचारनविषैं विरुद्ध होगा। देखो मिथ्यात्वसारिखे महापापकी प्रवृत्ति छुड़ावनेकी तौ मुख्यता नाहीं, अर पवनकायकी हिंसा ठहराय उघारे मुख बोलना छुड़ावनेकी मुख्यता पाईए। सो क्रमभंग उपदेश है। बहुरि धर्म्मके अंग अनेक है, तिनविषैं एक परजीवकी दया ताकौं मुख्य कहै हैं। ताका भी विवेक नाहीं । जलका छानना, अन्नका शोधना, सदोष वस्तुका भक्षण न करना, हिंसादिकरूप व्यापार न करना, इत्यादि याके अंगनिकी तौ मुख्यता नाहीं।

[मुहपत्तिका निषेध]

बहुरि पाटीका बांधना, शौचादिक थोरा करना, इत्यादि कार्यनि

की मुख्यता करै है। सो मैलमुक्त पाटीकै थूकका संबंधतैं जीव उपजैं तिनका तौ यत्न नाहीं अर पवनकी हिंसाका यत्न बतावैं। सो नासिकाकरि बहुत पवन निकसै, ताका तौ यत्न करते ही नाहीं। बहुरि जो उनका शास्त्रकै अनुसारि बोलनेहीका यत्न किया, तौ सर्वदा काहेकौ राखिए। बोलिए, तब यत्न कर लीजिए। बहुरि जो कहैं—भूलि जाइए। तौ इतनी भी याद न रहै, तौ अन्य धर्मसाधन कैसैं होगा? बहुरि शौचादिक थोरे करिए, सो संभवता शौच तौ मुनि भी करै हैं। तातैं गृहस्थकौं अपने योग्य शौच करना। स्त्रीसंगमादिकरि शौच किए बिना सामायिकादि क्रिया करनेंतैं अविनय, विक्षिप्तताआदि करि पाप उपजै। ऐसैं जिनकी मुख्यता करैं, तिनका भी ठिकाना नाहीं अर केई दयाके अंग योग्य पालै हैं। हरितकायका त्याग आदि करैं, जल थोरा नाखैं, इनका हम निषेध करते नाहीं।

[मूर्त्तिपूजा निषेधका निराकरण]

बहुरि इस अहिंसाका एकांत पकड़ि प्रतिमा चैत्यालयपूजनादि क्रियाका उत्थापन करै हैं। सो उनहीके शास्त्रनिविषैं प्रतिमाआदिका निरूपण है, ताकौं आग्रहकरि लोपै हैं। भगवतीसूत्रविषैं ऋद्धिधारी मुनिका निरूपण है तहां मेरुगिरिआदिविषैं जाय "तत्थ चेययाइं वंदई" ऐसा पाठ है। याका अर्थ यहु—तहां चैत्यनिकौं वंदै है। सो चैत्य नाम प्रतिमाका प्रसिद्ध है। बहुरि वै हठकरि कहैं हैं—चैत्य शब्दके ज्ञानादिक अनेक अर्थ निपजैं हैं, सो अन्य अर्थ है प्रतिमाका अर्थ नाहीं। याकौं पूछिए है—मेरुगिरि नंदीश्वरद्वीपविषैं जाय जाय

तहां चैत्यवंदना करी, सो उहां ज्ञानादिककी वंदना तौ सर्वत्र संभवै। जो वंदने योग्य चैत्य उहां ही संभवै, अर सर्वत्र न संभवै, ताकौं तहां वंदनाकरनेका विशेष संभवै, सो ऐसा संभवता अर्थ प्रतिमा ही है। अर चैत्यशब्दका मुख्य अर्थप्रतिमा ही है, सो प्रसिद्ध है। इस ही अर्थकरि चैत्यालय नाम संभवै है। याकौं हठकरि काहेकौं लोपिए।

बहुरि नंदीश्वर द्वीपादिकविषैं जाय, देवादिक पूजादि क्रिया करै हैं, ताका व्याख्यान उनकै जहां तहां पाईए है। बहुरि लोकविषैं जहां तहां अकृत्रिम प्रतिमाका निरूपण है। या रचना अनादि है यह भोग कुतूहलादिकके अर्थ तौ है नाहीं। अर इंद्रादिकनिके स्थाननिविषैं निःप्रयोजन रचना संभवै नाहीं। सो इंद्रादिक तिनकौं देखि कहा करै हैं। कै तौ अपने मंदरनिविषै निःप्रयोजन रचना देखि, उसतैं उदासीन होते होंगे तहां दुःख होता होगा, सो संभवै नाहीं। कै आछी रचना देखि विषय पोषते होंगे, सो अर्हंत मूर्त्तिकरि सम्यग्दृष्टी अपना विषय पोषै, यह भी संभवैं नाहीं। तातैं तहां तिनकी भक्तयादिक ही करै हैं, यहु ही संभवै है। सो उनकै सूर्याभदेवका व्याख्यान है। तहां प्रतिमाजीके पूजनेका विशेष वर्णन किया है। याकौं गोपनेकौं अर्थि कहै हैं, देवनिका ऐसा ही कर्त्तव्य है। सो सांच, परन्तु कर्तव्यका तौ फल होय ही होय। सो तहां धर्म्म हो है कि पाप हो है। जो धर्म्म हो है, तौ अन्यत्र पाप होता था यहां धर्म्म भया। याकौं औरनिकै सदृश कैसैं कहिए? यहु तौ योग्य कार्य भया। अर पाप हो है तौ तहां 'णमोत्थुणं' का पाठ पढ्या, सो पापकै ठिकानैं ऐसा पाठ काहेकौं पढ्या। बहुरि एक विचार यहां यहु आया, जो

'णमोत्थुणं'के पाठविषैं तौ अरहंतकी भक्ति है। सो प्रतिमाजीकै आगैं जाय यहु पाठ पढ़्या, तातैं प्रतिमाजीकै आगैं जो अरहंत भक्तिकी क्रिया है, सो करनी युक्त भई। बहुरि जो वै ऐसा कहैं—देवनिकै ऐसा कार्य है मनुष्यनिकै नाहीं। जातैं मनुष्यनिकै प्रतिमाआदि बनावनेविषैं हिंसा हो है। तौ उनहीके शास्त्रविषैं ऐसा कथन है, द्रौपदी राणी प्रतिमाजीका पूजनादिक जैसे सूर्याभदेव किया, तैसैं करत भई। तातैं मनुष्यनिकै भी ऐसा कार्य कर्त्तव्य है। यहां एक यहु विचार आया—चैत्यालय प्रतिमा बनावनेकी प्रवृत्ति न थी, तौ द्रौपदी कैसैं प्रतिमाका पूजन किया। बहुरि प्रवृत्ति थी, तौ बनावनेवाले धर्मात्मा थे कि पापी थे। जो धर्मात्मा थे तौ गृहस्थनिकौं ऐसा कार्य करना योग्य भया अर पापी थे, तौ तहां भोगादिकका प्रयोजन तौ था नाहीं, काहेकौं बनाया। बहुरि द्रौपदी तहां 'णमोत्थुण' का पाठ किया वा पूजनादि किया, सो कुतूहल किया कि धर्म किया। जो कुतूहल किया, तौ महापापिणी भई। धर्मविषैं कुतूहल कहा। अर धर्म किया, तौ औरनिकौं भी प्रतिमाजीकी स्तुति पूजा करनी युक्त है। बहुरि वै ऐसी मिथ्यायुक्ति बनावै हैं—जैसैं इन्द्रकी स्थापनातैं इंद्रकी कार्य सिद्धि नाहीं, तैसैं अरहंत प्रतिमा करि कार्य सिद्धि नाहीं। सो अरहंत आप काहूकौं भक्त मानि भला करते होंय, तौ ऐसैं भी मानैं। सो तौ वै भी वीतराग हैं। यहु जीव भक्तिरूप अपने भावनितैं शुभफल पावै है। जैसैं स्त्रीका आकाररूप काष्ठ पाषाणकी मूर्ति देखि, तहां विकाररूप होय अनुराग करै, तौ ताकै पाप बंध होय। तैसैं अरहंतका आकाररूप धातु पाषाणादिककी मूर्ति देखि धर्म-

बुद्धितैं तहां अनुराग करैं, तौ शुभकी प्राप्ति कैसैं न होइ। तहां वह कहै है, बिना प्रतिमा ही हम अरहंतविषैं अनुरागकरिशुभ उपजावैंगे। तौ इनिकौं कहिए है--आकार देखैं जैसा भाव होय, तैसा परोक्ष स्मरण किएं होय नाहीं। याहीतैं लोकविषैं भी स्त्रीका अनुरागी स्त्रीका चित्र बनावै हैं। तातैं प्रतिमा आलंबनकरि भक्ति विशेष होनेतैं विशेष शुभकी प्राप्ति हो है।

बहुरि कोऊ कहै-प्रतिमाकौं देखो, परंतु पूजनादिक करनेका कहा प्रयोजन है?

ताका उत्तर—जैसैं कोऊ किसी जीवका आकार बनाय, रुद्रभावनितैं घात करै, तौ वाकै उस जीवकी हिंसा किए कासा पाप निपजै वा कोऊ काहूका आकार बनाय द्वेषबुद्धितैं वाकी बुरी अवस्था करै, तौ जाका आकार बनाया, वाकी बुरी अवस्था किएं कासा फल निपजै। तैसैं अरहंतका आकार बनाय रागबुद्धितैं पूजनादि करै, तौ अरहंतके पूजनादि किएं कासा शुभ निपजै वा तैसा ही फल होय। अतिअनुराग भए प्रत्यक्ष दर्शन न होतैं आकार बनाय पूजनादि करिए है। इस धर्मानुरागतैं महापुण्य उपजै है।

बहुरि ऐसी कुतर्क करै है—जो जाकै जिस वस्तुका त्याग होय, ताकै आगैं तिस वस्तुका धरना हास्य करना है। तातैं वंदनाकरि अरहंतका पूजन युक्त नाहीं।

ताका समाधान—मुनिपद लेतैं ही सर्व परिग्रहका त्याग किया था केवलज्ञान भएं पीछै तीर्थंकरदेवकै समवसरणादि बनाए; छत्र चामरादि किए, सो हास्य करी, कि भक्ति करी। हास्य करी, तौ इंद्र

महापापी भया, सो बने नाहीं। भक्ति करी, तौ पूजनादिकविषै भी भक्ति ही करिए है। छद्मस्थकै आगैं त्याग करी वस्तुका धरना हास्य करना है। जातैं वाकै विक्षिप्तता होय आवे है। केवलीकै वा प्रतिमाकै आगैं अनुरागकरि उत्तम वस्तु धरनेका दोष नाहीं। उनकै विक्षिप्तता होती नाहीं। धर्मानुरागतैं जीवका भला होय।

बहुरि वै कहैं हैं—प्रतिमा बनावनेंविषैं, चैत्यालयादि करावनेविषैं, पूजनादि करावनेविषैं हिंसा होय अर धर्म अहिंसा है। तातैं हिंसाकरि धर्म माननेतैं महापाप हो है, तातैं हम इनि कार्यनिकौं निषेधैं हैं।

ताका उत्तर--उनहीके शास्त्रविषैं ऐसा वचन है—

सुच्चा जाणइ कल्लाणं सुच्चा जाणइ पावगं।
उभयं पि जाणए सुच्चा जं सेयं तं समायर ॥१॥

यहां कल्याण पाप उभय ए तीन, शास्त्र सुनिकरि जाणै, ऐसा कह्या। सो उभय तौ पाप अर कल्याण मिलैं होय, ऐसा कार्यका भी होना ठहर्‍या। तहां पूछिए है—केवल धर्मतैं तौ उभय घाटि है ही, अर केवल पापतैं उभय बुरा है कि भला है। जो बुरा है। तौ यामें तौ कल्याणका अंश मिलाय पापतैं बुरा कैसैं कहिए। भला है, तौ केवल पाप छोड़ ऐसा कार्य करना ठहर्‍या। बहुरि युक्तिकरि भी ऐसैं ही संभवै है। कोऊ त्यागी होय, मंदिरादिक नाहीं करावै है, वा सामायिकादिक निरवद्य कार्यनिविषैं प्रवर्तैं है। तायौं तौ छोरि प्रतिमादि करावना वा पूजनादि करना उचित नाहीं। परन्तु कोई अपने रहनेके वास्तै मन्दिर बनावै, तिनतैं तौ चैत्या-

लयादि करावनेवाला हीन नाहीं। हिंसा तौ भई, परन्तु ताकै तौ लोभ पापानुरागकी वृद्धि भई, याकै लोभ छूट्या, धर्म्मानुराग भया। बहुरि कोई व्यापारादि कार्य करै, तिसतैं पूजनादि कार्य करना हीन नाहीं। वहां तौ हिंसादि बहुत हो है, लोभादि वधै है, पापहीकी प्रवृत्ति है। यहां हिंसादिक भी किंचित् हो है, लोभादिक घटै है, धर्म्मानुराग वधै है। ऐसैं जे त्यागी न होंय, अपने धनकौं पापविषैं खरचते होंय तिनकौं चैत्यालयादि करावना। अर जे निरवद्य सामायिकादि कार्यनिविषैं उपयोगकौं नाहीं लगाय सकैं, तिनकौं पूजनादि करना निषेध नाहीं।

बहुरि तुम कहौगे, निरवद्य सामायिक कार्य ही क्यों न करै, धर्म विषैं काल गमावना तहां ऐसे कार्य काहेकौं करै ?

ताका उत्तर—जो शरीरकरि पाप छोरैं ही निरवद्यपना होय, तौ ऐसैं ही करैं सो तौ है नाहीं। परन्तु परिणामनितैं विना पाप छूटैं निरवद्यपना हो है। सो विना अवलंबन सामायिकादिविषैं जाका परिणाम लागै नाहीं, सो पूजनादिकरि तहां अपना उपयोग लगावै है। तहां नाना प्रकार आलंबनकरि उपयोग लगि जाय है। जो तहां उपयोगकौं न लगावै, तौ पापकार्यनिविषैं उपयोग भटकै तब बुरा होय। तातैं तहां प्रवृत्ति करनी युक्त है। बहुरि तुम कहो हौ—धर्म्मके अर्थ हिंसा किए तौ महा पाप हो है, अन्यत्र हिंसा किए थोरा पाप हो है, सो यह प्रथम तौ सिद्धांतका वचन नाहीं। अर युक्तितैं भी मिलै नाहीं। जातैं ऐसैं मानैं इंद्र जन्मकल्याणविषैं बहुत जलकरि अभिषेक करै है। समवसरणविषैं देव पुष्पवृष्टि चमरढालना इत्यादि कार्य करै हैं, सो

ये महापापी होंय। जो तुम कहोगे, उनका ऐसा ही व्यवहार है, तौ क्रियाका फल तौ भए विना रहता नाहीं। जो पाप है, तौ इंद्रादिक तौ सम्यग्दृष्टी हैं, ऐसा कार्य काहेकौं करैं। अर धर्म्म है, तौ काहेकौं निषेध करो हो बहुरि भला तुम हीकौं पूछे हैं-तीर्थंकर वंदनाकौं राजादिक गए, वा साधुवंदनाकौं दूरि भी जाईए है, सिद्धांत सुनने आदि कार्यनिकौं गमनादि करिए है। तहां मार्गविषैं हिंसा भई। बहुरि साधर्म्मी जिमाईए है, साधुका मरण भए ताका संस्कार करिए है, साधु होतैं उत्सव करिए है, इत्यादि प्रवृत्ति अब भी दीसै है। सो यहां भी हिंसा हो है, सो ये कार्य्य तौ धर्म्महीकै अर्थ हैं अन्य कोई प्रयोजन नाहीं। जो यहां महापाप उपजै है, तौ पूर्वे ऐसे कार्य क्यों किए तिनिका निषेध करौ। अर अब भी गृहस्थ ऐसा कार्य करै हैं, तिनिका त्याग करौ। बहुरि जो धर्म्म उपजै है, तौ धर्म्मकै अर्थि हिंसाविषैं महापाप बताय, काहेकौं भ्रमावो हो। तातैं ऐसैं मानना युक्त है। जैसैं थोरा धन ठिगाएं, बहुत धनका लाभ होय तौ वह कार्य करना. तैसैं थोरा हिंसादिक पाप भए बहुत धर्म्म निपजैं, तौ वह कार्य्य करना। जो थोरा धनका लोभकरि कार्य बिगारै, तौ मूर्ख है। तैसैं थोरी हिंसाका भयतैं बड़ा धर्म्म छोरै, तौ पापी ही होय। बहुरि कोऊ बहुत धन ठिगावै, अर स्तोक धन निपजावै वा न उपजावै, तौ वह मूर्ख ही है। तैसैं बहुत हिंसादिकरि पाप उपजावै अर भक्ति आदि धर्मविषैं थोरा प्रवर्त्तै, वा न प्रवर्त्तै, तौ वह पापी ही है। बहुरि जैसैं बिना ठिगाए ही धनका लाभ होतैं ठिगावै, तौ मूर्ख है। तैसैं निरवद्य धर्मरूप उपयोग होतैं सावद्य धर्मविषैं उपयोग लगावना युक्त नाहीं। ऐसैं अनेक परि-

णामनिकरि अवस्था देखि भला होय सो करना। एकांतपक्ष कार्यकारि नाहीं। बहुरि अहिंसा ही केवल धर्मका अंग नाहीं है। रागादिकनिका घटना धर्मका अंग मुख्य है। तातैं जैसैं परिणामनिविषैं रागादि घटैं, सो कार्य करना।

बहुरि गृहस्थनिकौं अणुव्रतादिकका साधन भए विना ही सामयिक, पडिकमणो, पोसह आदि क्रियानिका मुख्य आचरन करावै हैं। सो सामायिक तौ रागद्वेषरहित साम्यभाव भए होय, पाठमात्र पढ़ैं वा उठना बैठना किए ही तौ होइ नाहीं। बहुरि कहोगे, अन्य कार्य करता, तातैं तौ भला है। सो सत्य, परन्तु सामायिकपाठविषैं प्रतिज्ञा तौ ऐसी करै, जो मनवचनकायकरि सावद्यकौं न करूंगा, न करावौंगा, अर मनविषैं तो विकल्प हुआ ही करै। अर वचनकायविषैं भी कदाचित् अन्यथा प्रवृत्ति होय तहां प्रतिज्ञाभंग होय। सो प्रतिज्ञाभंग करनेतैं न करनी भला। जातैं प्रतिज्ञाभंगका महापाप है।

बहुरि हम पूछैं है—कोऊ प्रतिज्ञा भी न करै हैं, अर भाषापाठ पढ़े है। ताका अर्थ जानि तिसविषैं उपयोग राखै है। कोऊ प्रतिज्ञा करै, ताकौं तौ नीकै पालै नाहीं, अर प्राकृतादिकका पाठ पढ़ै, ताके अर्थका आपकौं ज्ञान नाहीं, विना अर्थ जानै तहां उपयोग रहै नाहीं, तब उपयोग अन्यत्र भटकै। ऐसैं इन दोऊनिविषैं विशेष धर्मात्मा कौन? जो पहलेकौं कहोगे, तौ ऐसा ही उपदेश क्यों न दीजिए। दूसरेकौं कहोगे, तौ प्रतिज्ञाभंगका पाप न भया वा परिणामनिके अनुसार धर्मात्मापना न ठहर्‌या। पाठादिकरनेके अनुसारि ठहर्‌या। तातैं अपना उपयोग जैसैं निर्मल होय सो कार्य करना। सधै सो प्रतिज्ञा

करनी। जाका अर्थ जानिए, सो पाठ पढ़ना। पद्धतिकरि नाम धरावनेमैं नफा नाहीं। बहुरि पडिकमणो नाम पूर्वदोष निराकरण करनेका है। सो 'मिच्छामि दुक्कडं' इतना कहैं ही तौ दुष्कृत मिथ्या न होय, कियादुःकृत मिथ्या होने योग्य परिणाम भए होय। तातैं पाठ ही कार्यकारी नाहीं। बहुरि पडिकमणाका पाठविषैं ऐसा अर्थ है, जो बारह व्रतादिकविषैं जो दुष्कृत लाग्या होय सो मिथ्या होय। सो व्रतधारैं विना ही तिनका पडिकमणा करना कैसैं संभवै? जाकै उपवास न होय, सो उपवासविषैं लाग्या दोषका निराकरणपना करैं, तौ असंभवपना होय। तातैं यह पाठ पढ़ना कौनप्रकार बनै? बहुरि पोसहविषैं भी सामायिकवत् प्रतिज्ञाकरि नाहीं पालै हैं। तातैं पूर्वोक्त ही दोष है। बहुरि पोसह नाम तौ पर्वका है। सो पर्वके दिन भी केतायक कालपर्यंत पापक्रिया करै, पीछैं पोसहधारी होय। सो जेते काल साधन करनेका तौ दोष नाहीं। परन्तु पोसहका नाम करिए, सो युक्त नाहीं। संपूर्ण पर्वविषैं निरवद्य रहै ही पोसह होय। जो थोरा भी कालतैं पोसह नाम होय, तौ सामायिककौं भी पोसह कहौ, नाहीं शास्त्रविषैं प्रमाण बतावौ। जघन्य पोसहका इतना काल है, सो बड़ा नाम धराय लोगनिकौं भ्रमावना, यहु प्रयोजन भासै है। बहुरि आखड़ी लेनेका पाठ तौ और पढ़ै, अंगीकार और करै। सो पाठविषैं तौ "मेरै त्याग है" ऐसा वचन है, तातैं जो त्याग करै सो ही पाठ पढ़ै, यह चाहिए। जो पाठ न आवै, तौ भाषाहीतैं कहै। परन्तु पद्धतिकै अर्थ यह रीति है। बहुरि प्रतिज्ञा ग्रहण करने करावनेकी तौ मुख्यता अर यथाविधि पालनेकी शिथिलता वा भावनिर्मलता [illegible]। विशेष

नाहीं। आर्त्तपरिणामनिकरि वा लोभादिककरि भी उपवासादिक-रै, तहां धर्म्म मानै। सो फल तौ परिणामनितैं हो है। इत्यादि अनेक कल्पित बातैं करै हैं, सो जैनधर्म्मविषै संभवै नाहीं। ऐसैं यहु जैनविषै श्वेतांबरमत है, सो भी देवादिकका वा तत्त्वनिका वा मोक्षमार्गादिकका अन्यथा निरूपण करै है। तातैं मिथ्यादर्शनादिकका पोषक है, सो त्याज्य है। सांचा जिनधर्म्मका स्वरूप आगैं कहैं हैं। ताकरि मोक्षमार्गविषैं प्रवर्त्तना योग्य है। तहां प्रवर्त्तैं तुम्हारा कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक शास्त्रविषैं अन्यमतनिरूपण
पांचवाँ अधिकार समाप्त भया ॥५॥

ओं नमः

छठा अधिकार

[कुदेव कुगुरु और कुधर्मका प्रतिषेध]

दोहा

मिथ्यादेवादिक भजें, हो है मिथ्याभाव।
तज तिनकों सांचे भजो, यह हितहेतु उपाव ॥१॥

अथ—अनादितैं जीवनिकै मिथ्यादर्शनादिक भाव पाईए है, तिनिकी पुष्टताकौं कारण कुदेवकुगुरुकुधर्म्मसेवन है। ताका त्याग भए मोक्षमार्गविषैं प्रवृत्ति होय। तातैं इनका निरूपण कीजिए है।

[कुदेव सेवाका प्रतिषेध]

तहां जे हितका कर्त्ता नाहीं अर तिनकौं भ्रमतैं हितका कर्त्ता जानि

सेइए सो कुदेव है। तिनका सेवन तीनप्रकार प्रयोजनलिए करिए है। कहीं तौ मोक्षका प्रयोजन है। कहीं परलोकका प्रयोजन है। कहीं इसलोकका प्रयोजन है। सो ये प्रयोजन तौ सिद्ध होय नाहीं। किछू विशेषहानि होय। तातैं तिनका सेवन मिथ्याभाव है। सोई दिखाइए है—

अन्यमतविषैं जिनके सेवनतैं मुक्ति होनी कही है, तिनकौं केई जीव मोक्षकै अर्थ सेवन करै हैं, सो मोक्ष होय नाहीं। तिनका वर्णन पूर्वं अन्यमत अधिकारविषैं कह्या ही है। बहुरि अन्यमतविषैं कहे देव, तिनकौं केई परलोकविषैं सुख होय दुःख न होय, ऐसे प्रयोजन लिए सेवै हैं। सो ऐसी सिद्धि तौ पुण्य उपजाए अर पाप न उपजाए हो है। सो आप तौ पाप उपजावै है, अर कहै ईश्वर हमारा भला करैगा। तौ तहां अन्याय ठहरया। काहूकौं पापका फल दे, काहूकौं न दे, ऐसें तौ है नाहीं। जैसा अपना परिणाम करैगा, तैसा ही फल पावैगा। काहूका बुरा भला करनेवाला ईश्वर है नाहीं। बहुरि तिन देवनिका तौ नाम करैं, अर अन्य जीवनिकी हिंसा करैं, वा भोजन नृत्यादिकरि अपनी इन्द्रियनिका विषय पोषैं, सो पाप परिणामनिका फल तौ लागे विना रहनेका नाहीं। हिंसा विषय कषायनिकौं सर्व पाप कहै हैं। अर पापका फल भी खोटा ही सर्व मानै हैं। बहुरि कुदेवनिका सेवनविषैं हिंसा विषयादिकहीका अधिकार है। तातैं कुदेवनिके सेवनतैं परलोकविषैं भला न हो है।

[लौकिक सुखके लिये कुदेव-सेवा]

बहुरि घने "जीव इस पर्यायसंबंधी शत्रुनाशादिक वा

उसतैं द्वेष करैं। परन्तु ताकौं दुख देइ सकैं नाहीं। वा ऐसे भी कहते देखिए है, जो फलाना हमकौं मानैं नाहीं, सो उसतैं किछु हमारा वश नाहीं। तातैं व्यन्तरादिक किछू करणेकौं समर्थ नाहीं। याका पुण्यपापहीतैं सुख-दुख हो है। उनके मानें पूजें उलटा रोग लागै है। किछू कार्यसिद्धि नाहीं। बहुरि ऐसा जानना—जे कल्पित देव हैं, तिनका भी कहीं अतिशय चमत्कार होना देखिए है सो व्यंतरादिककरि किया हो है। कोई पूर्व पर्यायविषैं उनका सेवक था, पीछैं मरि व्यंतरादि भया, तहां ही कोई निमित्ततैं ऐसी बुद्धि भई, तब वह लोकविषैं तिनिके सेवनेंकी प्रवृत्ति करावनेके अर्थि कोई चमत्कार दिखावै है। जगत् भोला किंचित् चमत्कार देखि तिस कार्यविषैं लग जाय है। जैसैं जिन प्रतिमादिकका भी अतिशय होना सुनिए वा देखिए है। सो जिनकृत नाहीं जैनी व्यंतरादिकृत हो है। तैसैं ही कुदेवनिका कोई चमत्कार होय, सो उनके अनुचरी व्यंतरादिकनिकरि किया हो है। ऐसा जानना बहुरि अन्यमतविषैं भक्तनिकी सहाय परमेश्वर करी वा प्रत्यक्ष दर्शन दिए इत्यादि कहैं हैं। तहां कोई तौ कल्पित बातैं कही हैं। केई उनके अनुचरी व्यंतरादिककरि किए कार्यनिकौं परमेश्वरके किए कहैं हैं। जो परमेश्वरके किए होंय तौ परमेश्वर तौ त्रिकालज्ञ है। सर्वप्रकार समर्थ है। भक्तकौं दुःख काहेकौं होनें दे। बहुरि अबहू देखिए है। म्लेच्छ आय भक्तनिकौं उपद्रव करै हैं, धर्मविध्वंस करै हैं, मूर्तिकौं विघ्न करै हैं, सो परमेश्वरकौं ऐसे कार्यका ज्ञान न होय, तौ सर्वज्ञपनौं रहै नाहीं। जानें पीछैं सहाय न करै, तौ भक्तवत्सलता गई वा सामर्थ्यहीन भया। बहुरि

इस पृथ्वीकै नीचै वा ऊपरि है सौ मनोज्ञ है। कुतूहलकै लिये चाहै सो कहै हैं। बहुरि जो इनकौं पीड़ा होती होय तौ रोवते-रोवते हंसने लगि जांय हैं। इतना है, मंत्रादिककी अचिंत्यशक्ति है सो कोई सांचा मंत्रकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध होइ तौ तो वाकै किंचित, गमनादि न होय सकै वा किंचित् दुःख उपजै वा कोई प्रबल वाकौं मनैं करै, तब रहिजाय। वा आप ही रहि जाय। इत्यादि मंत्र-की शक्ति है। परन्तु जलावना आदि न हो है। मंत्र वाला जलाया कहै। बहुरि वह प्रकट होइ जाय जातैं वैक्रियिक शरीरका जलावना आदि संभवै नाहीं। बहुरि व्यंतरनिकै अवधिज्ञान काहूकै स्तोकक्षेत्र-काल जाननेंका है, काहूकै बहुत है। तहां वाकै इच्छा होय अर आपकै बहुत ज्ञान होय तौ अप्रत्यक्षकौं पूछै ताका उत्तर दे, तथा आपकै स्तोक ज्ञान होय तौ अन्य महत्ज्ञानीकौं पूछि आयकरि जवाब दे। बहुरि आपकै स्तोक ज्ञान होय वा इच्छा न होय, तौ पूछै ताका उत्तर न दे, ऐसा जानना। बहुरि स्तोकज्ञानवाला व्यंतरादिककै उपजना केतेक काल ही पूर्व जन्मका ज्ञान होय सकै, पीछैं ताका स्मरण मात्र रहै है तातैं तहां कोई इच्छाकरि आप किछू चेष्टा करै तो करै। बहुरि पूर्व-जन्मकी बातैं कहै। कोऊ अन्य वार्ता पूछै, तौ अवधि तौ थोरा, विनाजानें कैसैं कहै। बहुरि जाका उत्तर आप न देय सकै, वा इच्छा न होय, तहां मान कुतूहलादिकतैं उत्तर न दे, वा झूठ बोलै। ऐसा जानना। बहुरि देवनिमैं ऐसी शक्ति है, जो अपने वा अन्यके शरीरकौं वा पुद्गलस्कंधकौं इच्छा होय तैसैं परिणमावैं। तातैं नाना आकारा-दिरूप आप होय वा अन्य नानाचरित्र दिखावैं। बहुरि [illegible]

बहुरि कोऊ पूछै कि व्यंतर ऐसैं कहै हैं—गया आदि विषैं पिंड-प्रदान करो, तौ हमारी गति होय, हम बहुरि न आवैं, सो कहा है।

ताका उत्तर—जीवनिकै पूर्वभवका संस्कार तौ रहै ही है। व्यंतर-निकै पूर्व-भवका स्मरणादिकतैं विशेष संस्कार है। तातैं पूर्वभवकै-विषै ऐसी ही वासना थी, गयादिकविषैं पिंडप्रदानादि किए गति हो है। तातैं ऐसैं कार्य करनेकौं कहैं हैं जो मुसलमानआदि मरि व्यंतर हो हैं, ते तौ ऐसैं कहैं नाहीं। वे तौ अपने संस्काररूप ही वचन कहैं। तातैं सर्व व्यंतरनिकी गति तैसैं ही होती होय तौ सर्व ही समान प्रार्थना करैं। सो है नाहीं, ऐसैं जानना। ऐसैं व्यंतरादिकनिका स्व-रूप जानना।

[सूर्य चन्द्रमादि गृह पूजा-प्रतिषेध]

बहुरि सूर्य चन्द्रमा ग्रहादिक ज्योतिषी हैं, तिनकौं पूजै हैं, सो भी भ्रम है। सूर्यादिककौं परमेश्वरका अंश मानि पूजै हैं। सो वाकै तौ एक प्रकाशका ही आधिक्य भासै है। सो प्रकाशवान अन्य रत्ना-दिक भी हो हैं। अन्य कोई ऐसा लक्षण नाहीं, जातैं वाकौं परमे-श्वरका अंश मानिए। बहुरि चन्द्रमादिककौं धनादिककी प्राप्तिकै अर्थि पूजै हैं। सो उसके पूजनेतैं ही धन होता होय, तौ सर्व दरिद्री इस कार्यकौं करैं। तातैं ए मिथ्याभाव हैं। बहुरि ज्योतिषके विचारतैं खोटा ग्रहादिक आएं, तिनिका पूजनादि करै हैं, ताकै अर्थि दानादिक दे हैं। सो जैसैं हिरणादिक स्वयमेव गमनादि करै हैं, पुरुषकै दाहिणैं बाएं आए सुख होनेका आगामी ज्ञानकौं कारण हो हैं, किछू सुख दुख देनेकौं समर्थ नाहीं। तैसैं ग्रहादिक स्वयमेव गमनादि करै हैं। प्राणीकै

यथासंभव योगकौं प्राप्त होतैं सुख दुख होनेका आगामी ज्ञानकौं कारण हो हैं। किछू सुख दुख देनेकौं सामर्थ नाहीं। कोई तौ उनका पूजनादि करै, ताकै भी इष्ट न होय, कोई न करै, ताकै भी इष्ट होय। तातैं तिनिका पूजनादि करना मिथ्याभाव है।

यहां कोऊ कहै—देना तौ पुण्य है, सो भला ही है।

ताका उत्तर—धर्मकै अर्थि देना पुण्य है। यहु तौ दुःखका भय-करि वा सुखका लोभकरि दे है, तातैं पाप ही है। इत्यादि अनेकप्रकार ज्योतिषी देवनिकौं पूजैं हैं, सो मिथ्या है।

बहुरि देवी दिहाड़ी आदि हैं, ते केई तौ व्यंतरी वा ज्योतिषिणी हैं, तिनका अन्यथा स्वरूप मानि पूजनादि करै हैं। कल्पित हैं, सो तिनकी कल्पनाकरि पूजनादि करै हैं। ऐसैं व्यंतरादिकके पूजनेका निषेध किया।

यहां कोऊ कहै—क्षेत्रपाल दिहाड़ी पद्मावती आदि देवी यक्ष यक्षिणी आदि जे जिनमतकौं अनुसरै हैं, तिनके पूजनादि करनेमैं तौ दोष नाहीं।

ताका उत्तर—जिनमतविषैं संयम धारैं पूज्यपनौं हो है। सो देवनिकै संयम होता ही नाहीं। बहुरि इनिकौं सम्यक्त्वी मानि पूजिए है, सो भवनत्रिकमैं सम्यक्त्वकी भी मुख्यता नाहीं। जो सम्य-क्त्वकरि ही पूजिए, तौ सर्वार्थसिद्धिके देव लौकांतिकदेव तिनकौं ही क्यों न पूजिए। बहुरि कहौगे—इनकै जिनभक्ति विशेष है। सो भक्तिकी विशेषता भी सौधर्म्म इन्द्रकै है, वा सम्यग्दृष्टी भी है। वाकौं छोरि इनकौं काहेकौं पूजिए। बहुरि जो कहौगे, जैसैं राजाकै

प्रतीहारादिक हैं, तैसैं तीर्थंकरके क्षेत्रपालादिक हैं। सो समवसरणादिविषैं इनिका अधिकार नाहीं। यह झूंठी मानि है। बहुरि जैसैं प्रतीहारादिकका मिलाया राजास्यों मिलिए, तैसैं ये तीर्थंकरकौं मिलावते नाहीं। वहां तौ जाकैं भक्ति होय सोई तीर्थंकरका दर्शनादिक करौ। किछू किसीकै आधीन नाहीं। बहुरि देखो अज्ञानता, आयुधादिक लिएं रौद्रस्वरूप जिनिका गाय गाय भक्ति करैं। सो जिनमतविषैं भी रौद्ररूप पूज्य भया, तौ यहु भी अन्यमत ही कैं समान भया। तीव्र मिथ्यात्वभावकरि जिनमतविषैं ऐसी विपरीत प्रवृत्तिका मानना हो है। ऐसैं क्षेत्रपालादिककौं भी पूजना योग्य नाहीं।

[गौ सर्पादिककी पूजाका निराकरण]

बहुरि गऊ सर्पादि तिर्यंच हैं, ते प्रत्यक्ष ही आपतैं हीन भासैं हैं। इनिका तिरस्कारादिक करि सकिए हैं। इनिकी निंद्यदशा प्रत्यक्ष देखिए है। बहुरि वृक्ष अग्नि जलादिक स्थावर हैं, ते तिर्यंचनिहूतैं अत्यंत हीनअवस्थाकौं प्राप्त देखिए हैं। बहुरि शस्त्र दवात आदि अचेतन हैं, सो सर्वशक्तिकरि हीन प्रत्यक्ष देखिए हैं। पूज्यपनेका उपचार भी संभवै नाहीं। तातैं इनिका पूजना महा मिथ्याभाव है। इनकौं पूजें प्रत्यक्ष वा अनुमानकरि भी किछू फलप्राप्ति नाहीं भासै है। तातैं इनकौं पूजना योग्य नाहीं। या प्रकार सर्व ही कुदेवनिका पूजना मानना निषेध है। देखो मिथ्यात्वकी महिमा, लोकविषै तौ आपतैं नीचेकौं नमतैं आपकौं निंद्य मानै, अर मोहित होय रोड़ादिकनिकौं पूजता भी निंद्यपनौं न मानै। बहुरि लोकविषै तौ जातैं प्रयोजन सिद्ध होता जानै, ताहीकी सेवा करै। अर मोहित होय कुदेवनिकी सेवा करै-

इष्ट अनिष्ट बुद्धि पाईए है, तौ ताका कारण पुण्य पाप है। तातैं जैसैं पुण्यबंध होय पापबंध न होय, सो करै। बहुरि जो कर्मउदयका भी निश्चय न होय, इष्ट अनिष्टके बाह्य कारण तिनके संयोग वियोगका उपाय करै। सो कुदेवके माननेतैं इष्ट अनिष्टबुद्धि दूरि होती नाहीं। केवल वृद्धिकौं प्राप्त हो है। बहुरि पुण्य बंध भी नाहीं होता, पापबंध हो है। बहुरि कुदेव काहूकौं धनादिक देते खोसते देखे नाहीं। तातैं ए बाह्य कारण भी नाहीं। इनका मानना किस अर्थ कीजिए है। जब अत्यन्त भ्रमबुद्धि होय, जीवादिक तत्त्वनिका श्रद्धान ज्ञानका अंश भी न होय, अर रागद्वेषकी अति तीव्रता होय तब जे कारण नाहीं तिनकौं भी इष्ट अनिष्टका कारण मानैं। तब कुदेवनिका मानना हो है। ऐसा भी तीव्र मिथ्यात्वादि भाव भए मोक्षमार्ग अति दुर्लभ हो है।

[कुगुरु सेवाका निषेध]

आगैं कुगुरुके श्रद्धानादिककौं निषेधिए है—

जे जीव विषयकषायादि अधर्मरूप तौ परिणमैं अर मानादिकतैं आपकौं धर्मात्मा मनावैं, धर्मात्मा योग्य नमस्कारादि क्रिया करावैं, अथवा किंचित धर्मका कोई अंग धारि बड़े धर्मात्मा कहावैं, बड़े धर्मात्मा योग्य क्रिया करावैं, ऐसैं धर्मका आश्रयकरि आपकौं बड़ा मनावैं, ते सर्व कुगुरु जानने। जातैं धर्मपद्धतिविषैं तौ विषयकषायादि छूटैं जैसा धर्मकौं धारैं तैसा ही अपना पद मानना योग्य है।

[कुल अपेक्षा गुरुपनेका निषेध]

तहां केई तौ कुलकरि आपकौं गुरु मानैं हैं। तिनिविषैं केई ब्राह्मणा-

णादिक तौ कहै हैं, हमारा कुल ही ऊंचा है, तातैं हम सर्वके गुरु हैं। सो उस कुलकी उच्चता तौ धर्म्मसाधनतैं है। जो उच्चकुलविषैं उपजि हीन आचरन करै, तौ वाकौं उच्च कैसैं मानिए। जो कुलविषैं उपजनेहीतैं उच्चपना रहै, तौ मांसभक्षणादि किए भी वाकौं उच्च ही मानौं। सो वनैं नाहीं। भारतविषैं भी अनेक प्रकार ब्राह्मण कहे हैं। तहां "जो ब्राह्मण होय चांडालकार्य करै, ताकौं चांडालब्राह्मण कहिए" ऐसा कह्या है। सो कुलहीतैं उच्चपना होय तौ ऐसी हीनसंज्ञा काहेकौं दई है।

बहुरि वैष्णवशास्त्रनिविषैं ऐसा भी कहैं—वेदव्यासादिक मछली आदिकतैं उपजे। तहां कुलका अनुक्रम कैसैं रह्या ? बहुरि मूलउत्पत्ति तौ ब्रह्मातैं कहै हैं। तातैं सर्वका एक कुल है, भिन्नकुल कैसैं रह्या ? बहुरि उच्चकुलकी स्त्रीकै नीचकुलके पुरुषतैं वा नीचकुलकी स्त्रीकै उच्चकुलके पुरुषतैं संगम होतैं संतति होती देखिए है। तहां कुलका प्रमाण कैसैं रह्या ? जो कदाचित् कहौगे,ऐसैं है, तौ उच्च नीचकुलका विभाग काहेकौं मानौ हौ। लौकिक कार्यनिविषैं तौ असत्य भी प्रवृत्ति संभवै, धर्म्मकार्य्यविषैं तौ असत्यता संभवै नाहीं। तातैं धर्म्मपद्धतिविषैं कुलअपेक्षा महंतपना नाहीं संभवै है। धर्म्मसाधनहीतैं महंतपना होय। ब्राह्मणादि कुलनिविषैं महंतता है, सो धर्म्म प्रवृत्तितैं है। सो धर्म्मकी प्रवृत्तिकौं छोड़ि हिंसादिक पापविषैं प्रवर्त्तैं महंतपना कैसैं रहै ? बहुरि केई कहैं—जो हमारे बड़े भक्त भए हैं, सिद्ध भए हैं, धर्म्मात्मा भए हैं। हम उनकी संततिविषैं हैं, तातैं हम गुरु हैं। सो उन बड़ेनिके बड़े तौ ऐसे थे नाहीं, तिनकी संततिविषैं उत्तमकार्य किए

उत्तम मानौ हौ तो उत्तमपुरुषकी संततिविषैं जो उत्तमकार्य न करै, ताकौं उत्तम काहेकौं मानो हौ। बहुरि शास्त्रनिविषैं वा लोकविषैं यहु प्रसिद्ध है। पिता शुभकार्यकरि उच्चपदकौं पावै, पुत्र अशुभ-कार्यकरि नीचपदकौं पावै। वा पिता अशुभकार्यकरि नीचपदकौं पावै, पुत्र शुभकार्यकरि उच्चपदकौं पावै। तातैं बडेनिकी अपेक्षा महंत मानना योग्य नहीं। ऐसैं कुलकरि गुरुपना मानना मिथ्याभाव जानना। बहुरि केई पट्टकरि गुरुपनौं मानैं हैं कोई पूर्वैं महंतपुरुष भया होय, ताके पाटि जे शिष्य प्रतिशिष्य होते आए, तहां तिनविषैं तिस महंतपुरुषकैसे गुण न होतैं, भी गुरुपनौं मानिए, ऐसैं ही होय तौ उस पाटविषैं कोई परस्त्रीगमनादि महापापकार्य करैगा, सो भी धर्मात्मा होगा, सुगतिकौं प्राप्त होगा, सो संभवै नाहीं। अर जो पापी है, तौ पाटका अधिकार कहां रह्या? जो गुरुपदयोग्य कार्य करै, सो ही गुरु है। बहुरि केई पहलैं तौ स्त्री आदिके त्यागी थे, पीछे भ्रष्ट होय, विवाहादि कार्यकरि गृहस्थ भए, तिनकी संतान आपकौं गुरु मानै है। सो भ्रष्ट भए पीछै, गुरुपना कैसैं रह्या? और गृहस्थवत् ए भी भए। इतना विशेष भया, जो ए भ्रष्ट होय गृहस्थ भए। इनिकौं मूल गृहस्थधर्मी गुरु कैसैं मानैं? बहुरि केई अन्य तौ सर्व पापकार्य करैं, एक स्त्री परणैं नाहीं, इस ही अंगकरि गुरुपनौं मानैं हैं। सो एक अब्रह्म ही तौ पाप नाहीं, हिंसा परिग्रहादिक भी पाप हैं, तिनिकौं करतैं धर्मात्मा गुरु कैसैं मानिए। बहुरि वह धर्मबुद्धितैं विवाहादिकका त्यागी नाहीं भया है। कोई आजीविका वा जाति आदि कार्यकै अर्थि विवाह न करै है। जो धर्मबुद्धि होती, तौ हिंसादिककौं

काहेकौं वधावता। बहुरि जाकै धर्मबुद्धि नाहीं, ताकै शीलकी दृढ़ता रहै नाहीं। अर विवाह करै नाहीं, तब परस्त्रीगमनादि महापापकौं उपजावै। ऐसी क्रिया होतैं गुरुपना मानना महाभ्रष्टबुद्धि है। बहुरि केई काहूप्रकारकरि भेषधारनेंतैं गुरुपनौं मानैं हैं। सो भेष धारैं कौन धर्म्म भया, जातैं धर्म्मात्मा गुरु मानैं। तहां केई टोपी दे हैं, केई गूदरी राखै हैं, केई चोला पहरै हैं, केई चादरि ओढ़ै हैं, केई लालवस्त्र राखै हैं, केई श्वेतवस्त्र राखै हैं, केई भगवां राखै हैं, केई टाट पहरै हैं, केई मृगछाला राखै हैं, केईराख लगावै हैं, इत्यादि अनेक स्वांग बनावै हैं, सो जो शीत उष्णादिक सहे न जाते थे, लज्जा न छूटै थी, तौ पाघ जामा इत्यादि प्रवृत्तिरूप वस्त्रादिकका त्याग काहेकौं किया? उनकौं छोरि ऐसैं स्वांग बनावनेमैं कौन धर्मका अंग भया। गृहस्थनिकौं ठिगनेके अर्थि ऐसैं भेष जाननें। जो गृहस्थसारिखा अपना स्वांग राखैं, तौ गृहस्थ कैसैं ठिगावै। अर याकौं उनकरि आजीविका वा धनादिक वा मानादिकका प्रयोजन साधना, तातैं ऐसै स्वांग बनावै हैं। जगत भोला तिस स्वांगकौं देखि ठिगावै, अर धर्म्म भया मानैं, सो यहु भ्रम है। सोई कह्या है—

जह कुवि वेस्सारत्तो मुसिज्जमाणो विमण्णए हरिसं।
तह मिच्छवेसमुसिया गयं पि ण मुणंति धम्म-णिहिं ॥१॥

[उपदेश सि० र० ५]

याका अर्थ—जैसैं कोई वेश्यासक्त पुरुष धनादिककौं मुसावता हुवा भी हर्ष मानैं है, तैसैं मिथ्याभेषकरि ठिगे गए जीव ते नष्ट होता धर्म्म धनकौं नाहीं जानैं हैं। भावार्थ—यहु मिथ्याभेष वाले जीवनिकौं

शुश्रुषा आदितैं अपना धर्म धन नष्ट हो ताका विषाद नाहीं, मिथ्या-बुद्धितैं हर्ष करै हैं। तहां केई तौ मिथ्या शास्त्रनिविषैं भेष निरूपण हैं, तिनिकौं धारै हैं। सो उन शास्त्रनिका करणहारा पापी सुगमक्रिया-कियेतैं उच्चपद प्ररूपणतैं मेरी मांनि होइ, वा अन्य जीव इस मार्गविषैं बहुत लागैं, इस अभिप्रायतैं मिथ्याउपदेश दिया। ताकी परंपराकरि विचाररहित जीव इतना तौ विचारै नाहीं, जो सुगमक्रियातैं उच्चपद होना बतावैं हैं, सो इहां किछू दगा है। भ्रमकरि तिनिका कह्या मार्गविषैं प्रवर्त्तै हैं। बहुरि केई शास्त्रनिविषैं तौ मार्ग कठिन निरूपण किया, तौ सधै नाहीं, अर अपना ऊंचा नाम धरायें विना लोक मानैं नाहीं, इस अभिप्रायतैं यति मुनि आचार्य उपाध्याय साधु भट्टारक सन्यासी योगी तपस्वी नग्न इत्यादि नाम तौ ऊंचा धरावै हैं, अर इनिका आचरनिकौं नाहीं साधि सकैं हैं तातैं इच्छानुसारि नाना भेष बनावैं हैं। बहुरि केई अपनी इच्छा अनुसारि ही तौ नवीन नाम धरावै हैं, अर इच्छाअनुसारि ही भेष बनावै हैं। ऐसैं अनेक भेष धारनेतैं गुरुपनौं मानै हैं, सो यहु मिथ्या है।

यहां कोऊ पूछै—कि भेष तौ बहुत प्रकारके दीसैं, तिन विषै सांचे झूठे भेषकी पहचानि कैसैं होय ?

ताका समाधान—जिन भेषनिविषैं विषयकषायका किछू लगाव नाहीं, ते भेष सांचे हैं। सो सांचे भेष तीन प्रकार हैं, अवशेष सर्व भेष मिथ्या हैं। सो ही षट्पाहुडविषैं कुन्दकुन्दाचार्यकरि कह्या है—

एगं जिणस्स रूवं विदियं उक्किट्ठ सावयाणं तु।
अवरड्डियाण तइयं चउत्थं पुण लिंग दंसणं णत्थि

—[द० प्रा० १८]

याका अर्थ—एक तौ जिनका स्वरूप निर्ग्रंथ दिगंबर मुनिलिंग, अर दूसरा उत्कृष्ट श्रावकनिका रूप दसईं ग्यारहीं प्रतिमाका धारक श्रावकका लिंग, अर तीसरा आर्यिकानिका रूप यहु स्त्रीनिका लिंग, ऐसैं ए तीन लिंग तौ श्रद्धानपूर्वक हैं। बहुरि चौथा लिंग सम्यग्दर्शन-स्वरूप नाहीं है। भावार्थ—यहु इन तीनलिंग विना अन्यलिंगकौं मानैं, सो श्रद्धानी नाहीं, मिथ्यादृष्टी है। बहुरि इन भेषीनिविषैं केई भेषी अपनैं भेषकी प्रतीति करावनेंके अर्थि किंचित् धर्म्मका अंगकौं भी पालैं है। जैसैं खोटा रुपैया चलावनेंवाला तिसविषैं किछू रूपाका भी अंश राखै है, तैसैं धर्म्मका कोऊ अंग दिखाय अपना उच्चपद मनावै है।

इहां कोऊ कहै कि जो धर्म्म साधन किया, ताका तौ फल होगा

ताका उत्तर—जैसैं उपवासका नाम धराय कणमात्र भी भक्षण करै, तौ पापी है। अर एकंतका (एकासनका) नाम धराय किंचित् ऊन भोजन करै, तौ भी धर्म्मात्मा है। तैसैं उच्चपदवीका नाम धराय तामैं किंचित् भी अन्यथा प्रवर्त्तै, तौ महापापी है। अर नीचीपदवीका नाम धराय, किछू भी धर्म्म साधन करै, तौ धर्म्मात्मा है। तातैं धर्म्मसाधन जेता बनैं, तेताही कीजिए। किछू दोष नाहीं। परन्तु ऊंचा धर्म्मात्मा नाम धराय नीची क्रिया किए महापाप ही होहै। सोई षट्पाहुड़विषैं कुंदकुंदाचार्यकरि कह्या है—

जह जायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गहदि अत्थेसु ।
जइ लेइ अप्प-बहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोयं ॥१॥

—[सूत्र प्रा० १८]

याका अर्थ—मुनिपद है, सो यथाजातरूप सदृश है। जैसा जन्म होतें था, तैसा नग्न है। सो वह मुनि अर्थ जे धन वस्त्रादिक वस्तु तिनविषैं तिलतुषमात्र भी ग्रहण न करै। बहुरि कदाचित् अल्प वा बहुत वस्तु ग्रहै, तौ तिसतैं निगोद जाय। सो इहां देखो, गृहस्थपनेमें बहुत परिग्रह राखि किछू प्रमाण करै, तौ स्वर्गमोक्षका अधिकारी हो है अर मुनिपनेमें किंचित् परिग्रह अंगीकार किए भी निगोद जानेवाला हो है। तातैं ऊंचा नाम धराय नीची प्रवृत्ति युक्त नाहीं। देखो, हुंडावसर्पिणी कालविषैं यहु कलिकाल प्रवर्तै है। ताका दोषकरि जिनमतविषैं भी मुनिका स्वरूप तौ ऐसा जहां बाह्य अभ्यंतर परिग्रहका लगाव नाहीं, केवल अपने आत्माकौं आपो अनुभवते शुभाशुभभावनितैं उदासीन रहै हैं। अर अब विषय कषायासक्त जीव मुनिपद धारैं, तहां सर्वसावद्यका त्यागी होय पंचमहाव्रतादि अंगीकार करैं। बहुरि श्वेत रक्तादि वस्त्रनिकौं ग्रहैं, वा भोजनादिविषैं लोलुपी होय, वा अपनी पद्धति बधावनेकौं उद्यमी होय, वा केई धनादिक भी राखैं, वा हिंसादिक करैं, नाना आरंभ करैं। सो स्तोकपरिग्रह ग्रहणेका फल निगोद कह्या है, तौ ऐसे पापनिका फल तौ अनंतसंसार होय ही होय। बहुरि लोकनिकी अज्ञानता देखो, कोई एक छोटी भी प्रतिज्ञा भंग करै, ताकौं तौ पापी कहैं, अर ऐसी बड़ी प्रतिज्ञा भंग करते देखैं, बहुरि तिनकौं गुरु मानैं, मुनिवत् तिनका

सन्मानादि करैं । सो शास्त्रविषैं कृतकारित अनुमोदनाका फल कह्या है। तातैं इनकौं भी वैसा ही फल लागै है। मुनिपद लेनेका तौ क्रम यह है—पहलैं तत्त्वज्ञान होय, पीछैं उदासीन परिणाम होय, परिषहादि सहनेकी शक्ति होय, तब वह स्वयमेव मुनि भया चाहै। तब श्रीगुरु मुनिधर्म्म अंगीकार करावैं। यहु कौन विपरीत जे तत्त्वज्ञान-रहित विषयकषायासक्त जीव तिनकौं मायाकरि वा लोभ दिखाय मुनिपद देना, पीछैं अन्यथा प्रवृत्ति करावनी, सो यहु बड़ा अन्याय है। ऐसैं कुगुरुका वा तिनके सेवनका निषेध किया। अब इस कथनके दृढ़करनेकौं शास्त्रनिकी साखि दीजिए है। तहां उपदेशसिद्धान्त-रत्न मालाविषैं ऐसा कह्या है—

गुरुणो भट्टा जाया सद्दे थुणिऊण लिंति दाणाइं ।
दोण्णवि अमुणियसारा दूसमिसमयम्मि वुड्ढंति ॥३१॥

कालदोषतैं गुरु जे हैं, ते भाट भए। भाटवत् शब्दकरि दातारकी स्तुतिकरिकैं दानादि ग्रहै हैं। सो इस दुखमा कालविषैं दोऊ ही दातार वा पात्र संसारविषैं डूबैं हैं। बहुरि तहां कह्या है—

सप्पे दिट्ठे णासइ लोओ णहि कोवि किंपि अक्खेइ ।
जो चयइ कुगुरु सप्पं हा मूढ़ा भणइ तं दुट्ठं ॥३६॥

याका अर्थ—सर्पकौं देखि कोऊ भागै, ताकौं तौ लोक किछू भी कहैं नाहीं। हाय हाय देखो, जो कुगुरुसर्पकौं छोरै है, ताहि मूढ़ दुष्ट कहैं, बुरा बोलैं।

सप्पो इक्कं मरणं कुगुरु अणंताइ देइ मरणाइं ।
तो वर सप्पं गहियं मा कुगुरुसेवणं भद्द ॥३७॥

अहो सर्पकरि तौ एक ही वार मरण होय अर कुगुरु अनंतमरण दे है—अनंतवार जन्म मरण करावै है। तातैं हे भद्र, सांपका ग्रहण तौ भला अर कुगुरुका सेवन भला नाहीं। और भी गाथा तहां इस श्रद्धान दृढ़ करनेकौं कारण बहुत कही हैं सो तिस ग्रन्थतैं जानि लेनी। बहुरि संघपट्टविषैं ऐसा कह्या है—

क्षुत्क्षामः किल कोपि रंकशिशुकः प्रव्रज्य चैत्ये क्वचित्
कृत्वा किंचनपक्षमक्षतकलिः प्राप्तस्तदाचार्यकम् ।
चित्रं चैत्यगृहे गृहीयति निजे गच्छे कुटुम्बीयति
स्वं शक्रीयति बालिशीयति बुधान् विश्वं वराकीयति ॥

याका अर्थ—देखो, क्षुधाकरि कृश कोई रंकका बालक सो कहीं चैत्यालयादिविषैं दीक्षा धारि कोई पक्षकरि पापरहित न होता संता आचार्य पदकौं प्राप्त भया। बहुरि वह चैत्यालयविषैं अपने गृहवत् प्रवर्त्ते है, निजगच्छविषैं कुटुम्बवत् प्रवर्त्ते है, आपकौं इन्द्रवत् महान् मानै है, ज्ञानीनिकौं बालकवत् अज्ञानी मानै है, सर्व गृहस्थनिकौं रंकवत् मानै है सो यहु बड़ा आश्चर्य भया है। बहुरि 'यैर्जातो न च वर्द्धितो न च क्रीतो' इत्यादि काव्य है। ताका अर्थ ऐसा है—जिनकरि जन्म न भया पल्या नाहीं, मोल लिया नाहीं, देणदार भया नाहीं, इत्यादि कोई प्रकार सम्बन्ध नाहीं, अर गृहस्थनिकौं [illegible]

जोरावरी दानादिक ले, सो हाय हाय यहु जगत् राजाकरि रहित है। कोई न्याय पूछनेवाला नाहीं।

यहां कोऊ कहै, ए तौ श्वेतांबरविरचित उपदेश है तिनकी साक्षी काहेकौं दई ?

ताका उत्तर—जैसैं नीचापुरुष जाका निषेध करै, ताका उत्तम-पुरुषकै तौ सहज ही निषेध भया। तैसैं जिनकै वस्त्रादि उपकरण कहे, वे हू जाकरि निषेध करैं, तौ दिगंम्बरधर्म्मविषैं तौ ऐसी विपरीतिका सहज ही निषेध भया। बहुरि दिगंबरग्रंथनिविषैं भी इस श्रद्धानके पोषक वचन हैं। तहां श्रीकुंदकुंदाचार्यकृत षट्पाहुड़विषैं (दर्शन-पाहुडमें) ऐसा कह्या है—

दंसणमूलो धम्मो उवइट्ठं जिणवरेहिं सिस्साणं।
तं सोऊण सकण्णे दंसणहीणो ण वंदिव्वो ॥२॥

याका अर्थ—जिनवरकरि सम्यग्दर्शन है मूल जाका ऐसा धर्म्म उपदेश्या है। ताकौं सुनकरि हे कर्णसहित हो, यहु मानौं—सम्यक्त्व-रहित जीव वंदनेयोग्य नाहीं। जे आप कुगुरु ते कुगुरुका श्रद्धानसहित सम्यक्ती कैसें होंय ? विना सम्यक्त अन्य धर्म्म भी न होय। धर्म्म विना वंदनेयोग्य कैसें होंय। बहुरि कहै हैं—

जे दंसणेसु भट्ठा णाणे भट्ठा चरित्तभट्ठाय।
एदे भट्ठविभट्ठा सेसंपि जणं विणासंति ॥८॥

जे दर्शनविषैं भ्रष्ट हैं, ज्ञानविषैं भ्रष्ट हैं, चारित्रभ्रष्ट हैं, ते जीव भ्रष्टतैं भ्रष्ट हैं और भी जीव जो उनका उपदेश मानैं हैं, तिन जीवनिका नाश करैं हैं बुरा करैं। बहुरि कहै हैं—

जे दंसणेसु भट्टा पाए पाडंति दंसणधराणं ।
ते हुंति लुल्लमूया बोही पुण दुल्लहा तेसिं ॥१२॥

जे आप तौ सम्यक्तैं भ्रष्ट हैं, अर सम्यक्तधारकनिकौं अपने पगों पड़ाया चाहै हैं, ते लूले गूंगे हो हैं भाव यहु—स्थावर हो हैं। बहुरि तिनकै बोधकी प्राप्ति महादुर्लभ हो है।

जेवि पडंति च तेसिं जाणंता लज्जगारवभएण ।
तेसिं पि णत्थि बोही पावं अणुमोयमाणाणं ॥१३॥

—[द० पा०]

जो जानता हूवा भी लज्जा गारव भयकरि तिनकै पगां पड़ै हैं, तिनकै भी बोधी जो सम्यक्त सो नाहीं है। कैसे हैं ए जीव, पापकी अनुमोदना करते हैं। पापीनिका सन्मानादि किए तिस पापकी अनु-मोदनाका फल लागै है। (बहुरि सूत्र पाहुड में) कहै है—

जस्स परिग्गहगहणं अप्पं बहुयं च हवइ लिंगस्स ।
सो गरहिउ जिणवयणे परिगहरहिओ णिरायारो ॥१९॥

—[सू० पा०]

जिस लिंगकै थोरा वा बहुत परिग्रहका अंगीकार होय सो जिन-वचनविषैं निंदायोग्य है। परिग्रहरहित ही अनगार हो है। बहुरि (भावपाहुडमें) कहै है—

धम्मम्मि णिप्पवासो दोसावासो य उच्छुफुल्लसमो ।
णिप्फलणिग्गुणयारो णडसवणो णग्गरूवेण ॥६९॥

—[भाव पा०]

याका अर्थ—जो धर्म्मविषैं निरुद्यमी है, दोषनिका घर है, इक्षुफूल समान निष्फल है, गुणका आचरणकरि रहित है, सो नग्नरूपकरि नट श्रमण है। भांडवत् भेपधारी है। सो नग्न भए भांडका दृष्टांत संभवै है। परिग्रह राखैं, तौ यह भी दृष्टांत वनैं नाहीं।

जे पावमोहियमई लिंगं धत्तूण जिणवरिंदाणं।
पावं कुणंति पावा ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥७८॥

—[मो० पा०]

याका अर्थ—पापकरि मोहित भई है बुद्धि जिनकी ऐसे जे जीव जिनवरिनिका लिंग धारि पाप करै हैं, ते पापमूर्ति मोक्षमार्गविषैं भ्रष्ट जानने। बहुरि ऐसा कह्या है—

जे पंचचेलसत्ता गंथग्गाहीय जायणासीला।
आधाकम्मम्मिरया ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥७८॥

—[मो० पा०]

याका अर्थ—जे पंचप्रकार वस्त्रविषैं आशक्त हैं, परिग्रहके ग्रहणहारे हैं, याचनासहित हैं, अधःकर्म्म आदि दोषनिविषैं रत हैं, ते मोक्ष-मार्गविषैं भ्रष्ट जाननें। और भी गाथासूत्र तहां तिस श्रद्धानके दृढ़ करनेंकों कारण कहे हैं ते तहांतैं जाननें। बहुरि कुंदकुंदाचार्यकृत लिंगपाहुड़ है, ताविषैं मुनिलिंगधारि जो हिंसा आरंभ यंत्रमंत्रादि करै हैं, ताका निषेध बहुत किया है। बहुरि गुणभद्राचार्यकृत आत्मानुशासनविषैं ऐसा कह्या है—

इतस्ततश्च त्रस्यन्तो विभावर्यां यथा मृगाः ।

वनाद्वसन्त्युपग्रामं कलौ कष्टं तपस्विनः ॥१९७॥

याका अर्थ—कलिकालविषैं तपस्वी मृगवत् इधर उधरतैं भयवान होय वनतैं नगरके समीप वसैं हैं, यहु महाखेदकारी कार्य भया है। यहां नगर-समीप ही रहना निषेध्या, तौ नगरविषैं रहना तौ निषिद्ध भया ही।

वरं गार्हस्थ्यमेवाद्य तपसो भाविजन्मनः ।

सुस्त्रीकटाक्षलुण्टाकलुप्तवैराग्यसम्पदः ॥२००॥

याका अर्थ—अबार होनहार है अनंतसंसार जातैं ऐसे तपतैं गृहस्थपना ही भला है। कैसा है यह तप प्रभात ही स्त्रीनिके कटाक्षरूपी लुटेरेनिकरि लूटी है वैराग्य संपदा जाकी ऐसा है। बहुरि योगीन्द्रदेवकृत परमात्माप्रकाशविषैं ऐसा कह्या है—

दोहा—

चिल्ला चिल्ली पुत्थयहिं, तूसइ मूढ णिभंतु ।

एयहिं लज्जइ णाणियउ, बंधहं हेउ मुणंतु ॥२१५॥

चेला चेली पुस्तकनिकरि मूढ संतुष्ट हो है। भ्रांतिरहित ऐसें हो है। बहुरि ज्ञानी बंधका कारण इनकौं जानता संता इनिकरि लज्जायमान हो है।

केणवि अप्पउ वंचियउ, सिरु लुंचिवि छारेण ।

सयलु वि संग ण परिहरिय, जिणवरलिंगधरेण ॥२१६॥

किसी जीवकरि अपना आत्मा ठिग्या। सो कौन, [illegible]

जिनवरका लिंग धार्या अर राखकरि माथाका लौंचकरि समस्तपरिग्रह छांड्या नाहीं।

जे जिणलिंग धरेवि मुणि इट्ठपरिग्गह लिंति।

छद्दिकरेविणु ते वि जिय, सो पुण छद्दि गिलंति ॥२१७॥

याका अर्थ—हे जीव! जे मुनि जिनलिंग धारि इष्टपरिग्रहकौं ग्रहैं हैं, ते छर्दि करि तिस ही छर्दिकूं बहुरि भखैं—हैं। भाव यहु—निंदनीय है। इत्यादि तहां कहे हैं। ऐसैं शास्त्रनिविषैं कुगुरुका वा तिनके आचारनका वा तिनकी सुश्रूषाका निषेध किया है, सो जानना। बहुरि जहां मुनिकै धात्रीदूतआदि छ्यालीस दोष आहारादिविषैं कहे हैं, तहां गृहस्थनिके बालकनिकौं प्रसन्न करना, समाचार कहना, मंत्र औषधि ज्योतिषादि कार्य बतावना इत्यादि, बहुरि किया कराया अनुमोद्या भोजन लैंना इत्यादि क्रियाका निषेध किया है। सो अब कालदोषतैं इनही दोषनिकौं लगाय आहारादि ग्रहै हैं। बहुरि पार्श्वस्थ कुशीलादि भ्रष्टाचारी मुनिनिका निषेध किया है, तिनहीका लक्षणनिकौं धरै हैं। इतना विशेष—वै द्रव्यां तौ नग्न रहै हैं, ए नानापरिग्रह राखै हैं। बहुरि तहां मुनिनिकै भ्रमरी आदि आहार लैंनेकी विधि कही है। ए आसक्त होय दातारके प्राण पीड़ि आहारादि ग्रहै हैं। बहुरि गृहस्थधर्म्मविषैं भी उचित नाहीं वा अन्याय लोकनिंद्य पापरूप कार्य तिनिकौं करते प्रत्यक्ष देखिए है। बहुरि जिनबिम्ब शास्त्रादिक सर्वोत्कृष्ट पूज्य तिनका तौ अविनय करै हैं। बहुरि आप तिनतैं भी महंतता राखि ऊंचा बैठना आदि प्रवृत्तिकौं धारै हैं। इत्यादि अनेक विपरीतिता प्रत्यक्ष भासै अर आपकौं मुनि मानैं,

मूलगुणादिकके धारक कहावैं। ऐसैं ही अपनी महिमा करावैं। बहुरि गृहस्थ भोले इनकरि प्रशंसादिककरि ठिगे हुए धर्म्मका विचार करैं नाहीं। इनकी भक्तिविषैं तत्पर हो हैं। सो बड़े पापकौं बड़ा धर्म्म मानना, इस मिथ्यात्वका फल कैसैं अनंतसंसार न होय। एक जिन-वचनकौं अन्यथा मानैं महापापी होना, शास्त्रविषैं कह्या है। यहां तौ जिनवचनकी किछू बात राखी ही नाहीं। इस समान और पाप कौन है?

अब यहां कुयुक्तिकरि जे तिनि कुगुरनिका स्थापन करै हैं, तिनका निराकरण कीजिए है। तहां यह कहै है—गुरुबिना तौ निगुरा होय, अर वैसे गुरु अबार दीसैं नाहीं। तातैं इनहीकौं गुरु मानना।

ताका उत्तर—निगुरा तौ वाका नाम है, जो गुरु मानै ही नाहीं। बहुरि जो गुरुकौं तौ मानै अर इस क्षेत्रविषैं गुरुका लक्षण न देखि काहूकौं गुरु न मानैं, तौ इस श्रद्धानतैं तौ निगुरा होता नाहीं। जैसैं नास्तिक्य तौ वाका नाम है, जो परमेश्वरकौं मानै ही नाहीं। बहुरि जो परमेश्वरकौं तौ मानै अर इस क्षेत्रविषैं परमेश्वरका लक्षण न देखि काहूकौं परमेश्वर न मानैं, तौ नास्तिक्य तौ होता नाहीं। तैसैं ही यहु जानना।

बहुरि यह कहै है, जैनशास्त्रनिविषैं अबार केवलीका तौ अभाव कह्या है, मुनिका तौ अभाव कह्या नाहीं।

ताका उत्तर—ऐसा तौ कह्या नाहीं, इनि देशनिविषैं सद्भाव रहैगा। भरतक्षेत्रविषैं कहै हैं, सो भरतक्षेत्र तौ बहुत बड़ा है। कहीं सद्भाव होगा, तातैं अभाव न कह्या है। जो तुम रहौ हौ तिस ही क्षेत्रविषैं सद्भाव मानोगे, तौ जहां ऐसे भी गुरु न पावोगे, तहां जावोगे तब

किसकौं गुरु मानौगे। जैसैं हंसनिका सद्भाव अबार कह्या है अर हंस दीसते नाहीं, तौ और पक्षीनिकौं तौ हंसपना मान्या जाता नाहीं। तैसैं मुनिनिका सद्भाव अबार कह्या है। अर मुनि दीसते नाहीं, तौ औरनिकौं तौ मुनि मान्या जाय नाहीं।

बहुरि वह कहै है, एक अक्षरका दाताकौं गुरु मानैं हैं। जे शास्त्र सिखावैं वा सुनावैं, तिनिकौं गुरु कैसैं न मानिए?

ताका उत्तर—गुरु नाम बड़ेका है। सो जिस प्रकारकी महंतता जाकै संभवै, तिस प्रकार ताकौं गुरुसंज्ञा संभवै। जैसैं कुलअपेक्षा मातापिताकौं गुरुसंज्ञा है, तैसैं ही विद्या पढ़ावनेवालेकौं विद्याअपेक्षा गुरुसंज्ञा है। यहां तौ धर्म्मका अधिकार है। तातैं जाकैं धर्म्मअपेक्षा महंतता संभवै, सो ही गुरु जानना। सो धर्म्म नाम चारित्रका है। 'चारित्तं खलु धम्मो'[1] ऐसा शास्त्रविषैं कह्या है। तातैं चारित्रका धारकहीकौं गुरुसंज्ञा है। बहुरि जैसैं भूतादिकका भी नाम देव है, तथापि यहां देवका श्रद्धानविषैं अरहंतदेवहीका ग्रहण है तैसैं औरनिका भी नाम गुरु है, तथापि इहां श्रद्धानविषैं निर्ग्रंथहीका ग्रहण है। सो जिनधर्म्मविषैं अरहंत देव निर्ग्रंथ गुरु ऐसा प्रसिद्धवचन है।

यहां प्रश्न—जो निर्ग्रंथविना और गुरु न मानिए, सो कारण कहा?

ताका उत्तर-निर्ग्रंथविना अन्य जीव सर्वप्रकारकरि महंतता नाहीं धरै हैं जैसैं लोभी शास्त्रव्याख्यान करै,तहां वह वाकौं शास्त्र सुनावनेतैं महंत भया। वह वाकौं धनवस्त्रादि देनेतैं महंत भया। यद्यपि बाह्य शास्त्र सुनावनेवाला महंत रहै, तथापि अन्तरंग लोभी होय, सो दाता-

1 प्रवचनसार 1-7

कौं उच्च मानैं। अर दातार लोभीकौं नीचा मानैं, तातैं वाकै सर्वथा महंतता न भई।

यहां कोऊ कहै, निर्ग्रंथ भी तौ आहार ले हैं।

ताका उत्तर—लोभी होय दातारकी सुश्रूषाकरि दीनतातैं आहार न ले है। तातैं महंतता घटै नाहीं। जो लोभी होय सो ही हीनता पावै है। ऐसैं ही अन्य जीव जाननें। तातैं निर्ग्रंथ ही सर्व प्रकार महंततायुक्त हैं। बहुरि निर्ग्रंथविना अन्य जीव सर्व प्रकार गुणवान् नाहीं। तातैं गुणनिकी अपेक्षा महंतता अर दोषनिकी अपेक्षा हीनता भासै, तब निःशंक स्तुति करी जाय नाहीं। बहुरि निर्ग्रन्थविना अन्य जीव जैसा धर्म्म साधन करैं, तैसा वा तिसतैं अधिक गृहस्थ भी धर्म्म साधन करि सकैं। तहां गुरुसंज्ञा किसकौं होय? तातैं बाह्य अभ्यंतर परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ मुनि हैं, सोई गुरु जानना।

यहां कोउ कहै, ऐसे गुरु तौ अबार यहां नाहीं, तातैं जैसैं अरहंतकी स्थापना प्रतिमा है, तैसैं गुरुनिकी स्थापना ए भेषधारी हैं—

ताका उत्तर—जैसैं राजाकी स्थापना चित्रामादिककरि करै, तौ राजाका प्रतिपक्षी नाहीं अर कोई सामान्य मनुष्य आपकौं राजा मनावै, तौ तिसका प्रतिपक्षी होइ। तैसैं अरहंतादिककी पाषाणादिविषैं स्थापना बनावै, तौ तिनिका प्रतिपक्षी नाहीं अर कोई सामान्य मनुष्य आपकौं मुनि मनावै, तौ वह मुनिनिका प्रतिपक्षी भया। ऐसैं भी स्थापना होती होय, तौ अरहंत भी आपकौं मनावो। बहुरि उनकी स्थापना होय, तौ बाह्य तौ ऐसैं ही भया चाहिए। वै निर्ग्रंथ ए बहुपरिग्रहके धारी, यह कैसे बनै?

बहुरि कोई कहै—अब श्रावक भी तौ जैसे सम्भवै, तैसैं नाहीं। तातैं जैसे श्रावक तैसे मुनि।

ताका उत्तर—श्रावकसंज्ञा तौ शास्त्रविषैं गृहस्थ जैनीकौं है। श्रेणिक भी असंयमी था, ताकौं उत्तरपुराणविषै श्रावकोत्तम कह्या। बहारसभाविषै श्रावक कहे, तहां सर्व व्रतधारी न थे। जो सर्वव्रतधारी होते, तौ असंयत मनुष्यनिकी जुदी संख्या कहते, सो कही नाहीं। तातैं गृहस्थ जैनीं श्रावक नाम पावै हैं। अरमुनिसंज्ञा तौ निर्ग्रन्थ विना कहीं कही नाहीं। बहुरि श्रावककै तौ आठ मूलगुण कहे हैं। सो मद्य मांस मधु पंचउदंबरादि फलनिका भक्षण श्रावकनिकै है नाहीं, तातैं काहू प्रकारकरि श्रावकपना तौ संभवै भी है। अर मुनिकै अट्ठाईस मूलगुण हैं, सो भेषीनिकै दीसते ही नाहीं। तातैं मुनिपनौ काहूप्रकारकरि संभवै नाहीं। बहुरि गृहस्थअवस्थाविषैं तौ पूर्वैं जंबूकुमारादिक बहुत हिंसादिककार्य किए सुनिए है। मुनि होयकरि तौ काहूनै हिंसादिक कार्य किए नाहीं, परिग्रह राखे नाहीं, तातैं ऐसी युक्ति कारिजकारी नाहीं। बहुरि देखो, आदिनाथजीके साथ च्यारि हजार राजा दीक्षा लेय बहुरि भ्रष्ट भए, तब देव उनकौं कहते भए, जिनलिंगी होय अन्यथा प्रवर्त्तोगे तौ हम दंड देंगे। जिनलिंग छोरि तुम्हारी इच्छा होय, सो तुम जानों। तातैं जिनलिंगी कहाय अन्यथा प्रवर्तै, ते तौ दंड योग्य हैं। वंदनादियोग्य कैसैं होय? अब बहुत कहा कहिए, जे जिनमतविषैं कुभेष धारै हैं, ते महापाप उपजावैं हैं। अन्य जीव उनकी सुश्रूषा आदि करै हैं; ते भी पापी हो हैं। पद्मपुराणविषैं यह कथा है—जो श्रेष्ठी धर्म्मात्मा चारण मुनिनिकौं भ्रमतैं

भ्रष्ट जानि आहार न दिया, तौ प्रत्यक्ष भ्रष्ट तिनकौं दानादिक देना कैसे संभवै ?

यहां कोऊ कहै, हमारै अंतरंगविषैं श्रद्धान तौ सत्य है, परन्तु बाह्य लज्जादिकरि शिष्टाचार करै हैं, सो फल तौ अंतरंगका होगा ?

ताका उत्तर—षट्पाहुडविषैं लज्जादिकरि वंदनादिकका निषेध दिखाया था, सो पूर्वैं ही कह्या था। बहुरि कोऊ जोरावरी मस्तक नमाय हाथ जुड़ावै, तब तौ यह संभवै, जो हमारा अंतरंग न था। अर आपही मानादिकतैं नमस्कारादि करै, तहां अंतरंग कैसैं न कहिए। जैसैं कोई अंतरंगविषैं तौ मांसकौं बुरा जानै अर राजादिकका भला मनावनेकौं मांस भक्षण करै, तौ वाकौं व्रती कैसैं मानिए ? तैसैं अंतरंगविषैं तौ कुगुरुसेवनकौं बुरा जानै अर तिनका वा लोकनिका भला मनावनेकौं सेवन करै, तौ श्रद्धानी कैसैं कहिए। तातैं बाह्यत्याग किए ही अंतरंग त्याग संभवै है। तातैं जे श्रद्धानी जीव हैं, तिनकौं काहू प्रकारकरि भी कुगुरुनिकी सुश्रूषादि करनी योग्य नाहीं। या प्रकार कुगुरुसेवनका निषेध किया।

यहां कोऊ कहै—काहू तत्त्वश्रद्धानीकैं कुगुरुसेवनतैं मिथ्यात्व कैसैं भया ?

ताका उत्तर—जैसैं शीलवती स्त्री परपुरुषसहित भर्तारवत् रमण क्रिया सर्वथा करै नाहीं, तैसैं तत्त्वश्रद्धानी पुरुष कुगुरुसहित सुगुरुवत् नमस्कारादि क्रिया सर्वथा करै नाहीं। काहेतैं, यह तौ जीवादिक तत्त्वनिका श्रद्धानी भया है। तहां रागादिक तौ निषिद्ध श्रद्धै है, वीतरागभावकौं श्रेष्ठ मानै है, तातैं जिनविषैं वीतरागता पाइए, तिनहीं गुरुकौं उत्तम

जानि नमस्कारादि करै हैं जिनकै रागादिक पाइए, तिनकौं निषिद्ध जानि नमस्कारादि कदाचित् करै नाहीं।

कोऊ कहै—जैसैं राजादिककौं करै, तैसैं इनकौं भी करै है।

ताका उत्तर—राजादिक धर्म्मपद्धतिविषैं नाहीं। गुरूका सेवन धर्म्म पद्धतिविषैं है। सो राजादिकका सेवन तौ लाभादिकतैं हो है। तहां चारित्रमोहहीका उदय संभवै है। अर गुरुनिकी जायगा कुगुरुनिकौं सेए। तत्त्वश्रद्धानके कारण गुरू थे, तिनतैं प्रतिकूली भया। सो लज्जादिकतैं जानैं कारणविषैं विपरीतिता निपजाई, ताकै कार्यभूत तत्त्वश्रद्धानविषैं दृढ़ता कैसैं संभवै? तातैं तहां दर्शनमोहका उदय संभवै है ऐसैं कुगुरुनिका निरूपण किया।

अब कुधर्म्मका निरूपण कीजिए है—

जहां हिंसादिकपाय उपजैं वा विषयकषायनिकी वृद्धि होय, तहां धर्म मानिए, सो कुधर्म जानना। तहां यज्ञादिकक्रियानिविषैं महा हिंसादिक उपजावैं, बड़े जीवनिका घात करैं, अर तहां इंद्रियनिके विषय पोषैं। तिन जीवनिविषैं दुष्टबुद्धिकरि रौद्रध्यानी होय तीव्रलोभतैं औरनिका बुराकरि अपना कोई प्रयोजन साध्या चाहै, ऐसा कार्य करि तहां धर्ममानैं, सो कुधर्म है बहुरि तीर्थनिविषैं वा अन्यत्र स्नानादिकार्य करैं, तहां बड़े छोटे घनें जीवनिकी हिंसा होय, शरीरकौं चैन उपजै, तातैं विषयपोषण होय, तातैं कामादिक वधैं, कुतूहलादिककरि तहां कषायभाव बधावैं. बहुरि तहां धर्म मानै सो कुधर्म है। बहुरि संक्रांति, ग्रहण, व्यतीपातादिकविषैं दान दे, वा खोटा ग्रहादिककै अर्थि दान दे, बहुरि पात्र जानि लोभीपुरुषनिकौं दान दे, बहुरि

दानविषैं सुवर्ण हस्ती घोड़ा तिलआदि वस्तुनिकौं दे, संक्रांतिआदि पर्व धर्मरूप नाहीं। ज्योतिषी संचारादिककरि संक्रांतिआदि हो है। बहुरि दुष्टग्रहादिकके अर्थि दिया, तहां भय लोभादिकका आधिक्य भया। तातै तहां दान देनेमें धर्म नाहीं। बहुरि लोभी पुरुष देने-योग्य पात्र नाहीं। जातैं लोभी नाना असत्ययुक्ति करि ठिगै है। किछू भला करते नाहीं। भला तौ तब होय, जब याका दानका सहायकरि वह धर्म साधै। सो यह तौ उलटा पापरूप प्रवर्तै। पापका सहाईका भला कैसैं होय? सो ही रयणसार शास्त्रविषैं कह्या है—

सप्पुरिसाणं दाणं कप्पतरूणां फलाण सोहं वा।
लोहीणं दाणं जइ विमाणसोहा सवस्स जाणेह ॥२६॥

याका अर्थ—सत्पुरुषनिकौं दान देना कल्पवृक्षनिके फलनिकी शोभा समान है। शोभा भी है अर सुखदायक भी है। बहुरि लोभी पुरुषनिकौं दान देना जो होय, सो शव जो मड़ा ताका विमान जो चकडोल ताकी शोभासमान जानहु। शोभा तौ होय, परंतु धनीकौं परमदुःखदायक हो है। तातैं लोभीपुरुषनिकौं दान देनेमें धर्म नाहीं। बहुरि द्रव्य तौ ऐसा दीजिए, जाकरि वाकै धर्म बधै। सुवर्ण हस्ती आदि दीजिए, तिनकरि हिंसादिक उपजै वा मान लोभादिक बधै, तातैं महापाप होय। ऐसी वस्तुनिका देनेवालाकैं पुण्य कैसैं होय। बहुरि विषयासक्त जीव रतिदानादिकविषैं पुण्य ठहरावै हैं। सो प्रत्यक्ष कुशीलादि पाप जहां होय, तहां पुण्य कैसैं होय। अर युक्ति मिलावनेकौं कहैं, जो वह स्त्री संतोष पावै है। सो स्त्री तौ विषयसेवन किए

सुख पावै ही पावै, शीलका उपदेश काहेकौं दिया । रतिसमयविना भी वाका मनोरथ अनुसार न प्रवर्तै दुख पावै । सो ऐसी असत्य युक्ति बनाय विषयपोषनेका उपदेश देहैं । ऐसैं ही दयादान वा पात्रदान विना अन्य दान देय धर्म मानना सर्व कुधर्म है ।

[मिथ्या व्रतादिकोंका निषेध]

बहुरि व्रतादिककरिकैं तहां हिंसादिक वा विषयादिक बधावै है । सो व्रतादिक तौ तिनकौं घटावनेकै अर्थि कीजिए है । बहुरि जहां अन्नका तौ त्याग करै अर कंदमूलादिकनिका भक्षण करै, तहां हिंसा विशेष भई—स्वादादिकविषय विशेष भए । बहुरि दिवसविषैं तौ भोजन करैं नाहीं, अर रात्रिविषैं करैं । सो प्रत्यक्ष दिवसभोजनतैं रात्रिभोजनविषैं हिंसा विशेष भासै, प्रमाद विशेष होय । बहुरि व्रतादिकरि नाना शृंगार बनावैं, कुतूहल करैं, जुवाआदि रूप प्रवर्तैं, इत्यादि पापक्रिया करै, बहुरि व्रतादिकका फल लौकिक इष्टकी प्राप्ति अनिष्टका नाशकौं चाहै, तहां कषायनिकी तीव्रता विशेष भई । ऐसैं व्रतादिकरि धर्म मानै हैं, सो कुधर्म है ।

बहुरि भक्त्यादिकार्यनिविषैं हिंसादिक पाप बधावैं, वा नृत्यगानादिक वा इष्ट भोजनादिक वा अन्य सामग्रीनिकरि विषयनिकौं पोषै, कुतूहल प्रमादादिरूप प्रवर्त्तैं । तहां पाप तौ बहुत उपजावैं, अर धर्मका किछू साधन नाहीं । तहां धर्म मानैं, सो सर्व कुधर्म है ।

बहुरि केई शरीरकौं तौ क्लेश उपजावैं, अर तहां हिंसादिक निपजावैं, वा कषायादिरूप प्रवर्त्तैं । जैसैं पंचाग्नि तापैं, सो अग्निकरि बड़े छोटे जीव जलैं, हिंसादिक बधै, यामैं धर्म कहा भया । बहुरि

ओंधेमुख झूलैं, ऊर्ध्वबाहु राखैं, इत्यादि साधनकरैं तहां क्लेश ही होय। किछू ए धर्मके अंग नाहीं। बहुरि पवनसाधन करैं, तहां नेती धोती इत्यादि कार्यनिविषैं जलादिककरि हिंसादिक उपजै, चमत्कार कोई उपजै, तातैं मानादिक बधैं, किछू तहां धर्मसाधन नाहीं। इत्यादि क्लेश करैं, विषयकषाय घटावनेका कोई साधन करैं नाहीं। अंतरंगविषैं क्रोध मान माया लोभका अभिप्राय है, वृथा क्लेशकरि धर्म मानै हैं, सो कुधर्म है।

[अपघात कुधर्म है]

बहुरि केई इस लोकविषैं दुख सह्या न जाय, वा परलोकविषैं इष्टकी इच्छा वा अपनी पूजा बधावनेके अर्थि वा कोई क्रोधादिककरि अपघात करैं। जैसैं पतिवियोगतैं अग्निविषैं जलकरि सती कहावै है, वा हिमालय गलै है, कासीवरोत ले है, जीवित मारी ले है, इत्यादि कार्यकरि धर्म मानै है। सो अपघातका तौ बड़ा पाप है। शरीरादिकतैं अनुराग घट्या था, तौ तपश्चरणादि किया होता। मरि जानेमैं कौन धर्मका अंग भया। तातैं अपघात करना कुधर्म है। ऐसे ही अन्य भी घने कुधर्मके अंग हैं। कहां तांई कहिए, जहां विषय कषाय बधै, अर धर्म मानिए, सो सर्व कुधर्म जानने।

देखो, कालका दोष, जैनधर्मविषैं भी कुधर्मकी प्रवृत्ति भई। जैनमतविषैं जे धर्मपर्व कहे हैं, तहां तौ विषयकषाय छोरि संयमरूप प्रवर्तना योग्य है। ताकौं तौ आदरैं नाहीं, अर व्रतादिकका नाम धराय तहां नाना शृंगार बनावैं, वा गरिष्ठ भोजनादि करैं, वा कुतूहलादि करैं, वा कषाय-बधावनेके कार्य करैं, जूवा इत्यादि महापापरूप प्रवर्तैं।

बहुरि पूजनादि कार्यनिविषैं उपदेश तो यहु था—'सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ दोषाय नालं"[1] पापका अंश बहुत पुण्यसमूहविषैं दोपके अर्थ नाहीं। इस छलकरि पूजाप्रभावनादि कार्यनिविषैं रात्रिविषैं दीपकादिकरि वा अनंतकायादिकका संग्रह करि वा अयत्नाचार प्रवृत्तिकरि हिंसादिकरूप पाप तौ बहुत उपजावैं, अर स्तुति भक्ति-आदि शुभपरिणामनिविषैं प्रवर्त्तैं नाहीं, वा थोरे प्रवर्त्तैं, सो टोटा घना नफा किछू नाहीं। ऐसा कार्यकरनेमैं तौ बुरा ही दीखना होय।

बहुरि जिनमंदिर तौ धर्मका ठिकाना है। तहां नाना कुकथा करनी, सोवना इत्यादिक प्रमादरूप प्रवर्त्तैं, वा तहां बाग वाड़ी इत्यादि बनाय विषयकषाय पोषैं, बहुरि लोभी पुरुषनिकौं गुरु मानि दानादिक दें, वा तिनकी असत्य-स्तुतिकरि महंतपनौं मानैं, इत्यादि प्रकारकरि विषयकषायनिकौं तौ बधावैं, अर धर्म मानैं, सो जिनधर्म तौ वीतराग-भावरूप है। तिसविषैं ऐसी प्रवृत्ति कालदोषतैं ही देखिए है। या प्रकार कुधर्मसेवनका निषेध किया।

[कुधर्म सेवनसे मिथ्यात्वभाव]

अब इसविषैं मिथ्यात्वभाव कैसैं भया, सो कहिए है—

तत्त्वश्रद्धानविषैं प्रयोजनभूत एक यह है रागादिक छोड़ना। इस ही भावका नाम धर्म है। जो रागादिक भावनिकौं बधाय धर्म मानैं, तहां तत्त्वश्रद्धान कैसैं रह्या? बहुरि जिन आज्ञातैं प्रतिकूली

1 पूरा पद्य इस प्रकार है—

"पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जनस्य, सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ।
दोषायनालं कणिका विषस्य न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ"

बृहत्स्वयंभूस्तोत्र ॥५८॥

भया। बहुरि रागादिभाव तौ पाप हैं। तिनकौं धर्म्म मान्या, सो यहु झूंठश्रद्धान भया। तातैं कुधर्म्म सेवनविषैं मिथ्यात्वभाव है। ऐसैं कुदेव कुगुरु कुशास्त्रसेवनविषैं मिथ्यात्वभावकी पुष्टता होती जानि, याका निरूपण किया। सोई ही षट्पाहुडविषैं कहा है—

कुच्छियदेवं धम्मं कुच्छियलिंगं च वंदए जो दु।
लज्जाभयगारवदो मिच्छादिट्ठी हवे सो दु ॥ १ ॥
[मोक्ष पा० ९२]

याका अर्थ—जो लज्जातैं वा भयतैं वा बड़ाईतैं भी कुत्सित देवकौं वा कुत्सित् धर्म्मकौं वा कुत्सित् लिंगकौं वंदै है, सो मिथ्यादृष्टी हो है, तातैं जो मिथ्यात्वका त्याग किया चाहै, सो पहलैं कुगुरु कुधर्मादिका त्यागी होय। सम्यक्त्वके पचीस मलनिके त्यागविषैं भी अमूढदृष्टि वा षडायतनविषैं भी इनिहीका त्याग कराया है। तातैं इनका अवश्य त्याग करना। बहुरि कुदेवादिकके सेवनतैं जो मिथ्यात्वभाव हो है, सो यहु हिंसादिकपापनितैं बड़ा महापाप है। याके फलतैं निगोद नरकादिपर्याय पाइए है। तहां अनंतकालपर्यंत महासंकट पाइए है। सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति महादुर्लभ होय जाय है। सो ही षट्पाहुडविषैं (भाव पाहुडमें) कहा है—

कुच्छियधम्मम्मि-रओ, कुच्छियपासंडिभत्तिसंजुत्तो।
कुच्छियतवं कुणंतो कुच्छिय गइभायणो होइ ॥ १४० ॥
[भाव पा० १४०]

याका अर्थ—जो कुत्सितधर्मविषै रत है, कुत्सित पाखंडीनिकी भक्तिकरि संयुक्त है, कुत्सित तपको करता है, सो जीव कुत्सित

खोटी गति ताकौं भोगनहारा हो है। सो हे भव्य हो, किंचिन्मात्र-लोभतैं वा भयतैं कुदेवादिकका सेवनकरि जातैं अनंतकालपर्यंत महादुःख सहना होय ऐसा मिथ्यात्वभाव करना योग्य नाहीं। जिनधर्मविषैं यह तो आम्नाय है। पहलैं बड़ा पाप छुड़ाय पीछैं छोटापाप छुड़ाया। सो इस मिथ्यात्वकौं सप्तव्यसनादिकतैं भी बड़ापाप जानि पहलैं छुड़ाया है। तातैं जे पापके फलतैं डरैं हैं, अपने आत्माको दुखसमुद्रमैं न डुबाया चाहैं हैं, ते जीव इस मिथ्यात्वकौं अवश्य छोड़ो। निंदा प्रशंसादिकके विचारतैं शिथिल होना योग्य नाहीं। जातैं नीतिविषैं भी ऐसा कह्या है—

[निंदादि भयसे मिथ्यात्व-सेवाका प्रतिषेध]

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वास्तु मरणं तु युगान्तरे वा
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ १ ॥

[नीति शतक ८४]

जे निंदै हैं ते निंदो, अर स्तवै हैं तो स्तवो, बहुरि लक्ष्मी आवो वा जावो, बहुरि अब ही मरण होहु वा युगांतरविषैं होहु, परंतु नीतिविषैं निपुणपुरुष न्यायमार्गतैं पैंड़हू चलैं नाहीं। ऐसा न्याय विचारि निंदाप्रशंसादिकका भयतैं लोभादिकतैं अन्यायरूप मिथ्यात्वप्रवृत्ति करनी युक्त नाहीं। अहो, देव गुरु धर्म तो सर्वोत्कृष्ट पदार्थ हैं। इनकै आधारि धर्म है। इनविषैं शिथिलता

रागैं अन्यधर्म कैसें होइ तातैं बहुत कहनेकरि कहा. सर्वथाप्रकार कुदेव कुगुरु कुधर्मका त्यागी होना योग्य है। कुदेवादिकका त्याग न किए मिथ्यात्वभाव बहुत पुष्ट हो है। अर अवार इहां इनकी प्रवृत्ति विशेष पाईए है। तातैं इनिका निषेधरूप निरूपण किया है। ताकौं जानि मिथ्यात्वभाव छोड़ि अपना कल्याण करो।

इति मोक्षमार्गप्रकाशकनाम शास्त्रविषैं कुदेवकुगुरुकुधर्म-निषेधवर्णनरूप छठा अधिकार समाप्त भया ॥६॥

[जैनमिथ्यादृष्टिका विवेचन]

सातवां अधिकार

दोहा।

इस भवतरुको मूल इक, जानहु मिथ्याभाव।
ताकौं करि निर्मूल अब, करिए मोक्ष उपाव ॥१॥

अर्थ—जे जीव जैनी हैं, जिन आज्ञाकौं मानैं हैं, अर तिनकै भी मिथ्यात्व रहै है ताका वर्णन कीजिए है—जातैं इस मिथ्यात्व बैरीका अंश भी बुरा है, तातैं सूक्ष्म मिथ्यात्व भी त्यागने योग्य है। तहां जिन आगमविषैं निश्चय व्यवहाररूप वर्णन है। तिनविषैं यथार्थका नाम निश्चय है। उपचारका नाम व्यवहार है। सो इनका स्वरूपकौं न जानतै अन्यथा प्रवर्तैं है, सोई कहिए है—

[केवल निश्चयाभासी [illegible]]

कोई जीव निश्चयकौं न जानैं [illegible]

आपकौं मोक्षमार्गी मानैं हैं। अपने आत्माकौं सिद्धसमान अनुभवै हैं। सो आप प्रत्यक्षसंसारी हैं। भ्रमकरि आपकौं सिद्ध मानैं सोई मिथ्यादृष्टी है। शास्त्रनिविषैं जो सिद्धसमान आत्माकौं कह्या है, सो द्रव्यदृष्टिकरि कह्या है, पर्याय अपेक्षा समान नाहीं हैं। जैसैं राजा अर रंक मनुष्यपनेकी अपेक्षा समान हैं, राजापना रंकपनाकी अपेक्षा तो समान नाहीं। तैसैं सिद्ध अर संसारी जीवत्त्वपनेकी अपेक्षा समान हैं, सिद्धपना संसारीपनाकी अपेक्षा तौ समान नाहीं। यहु जैसैं सिद्ध शुद्ध हैं, तैसैं ही आपाकौं शुद्ध मानैं। सो शुद्ध अशुद्ध अवस्था पर्याय है। इस पर्यायअपेक्षा समानता मानिए, सो यहु मिथ्यादृष्टि है। बहुरि आपकै केवलज्ञानादिकका सद्भाव मानै, सो आपकै तौ क्षयोपशमरूप मतिश्रुतादि ज्ञानका सद्भाव है। क्षायिकभाव तौ कर्म्मका क्षय भए होइ है। यह भ्रमतैं कर्म्मका क्षय भए बिना ही क्षायिकभाव मानैं। सो यहु मिथ्यादृष्टी है। शास्त्रविषैं सर्वजीवनिका केवलज्ञानस्वभाव कह्या है, सो शक्तिअपेक्षा कह्या है। सर्वजीवनिविषैं केवलज्ञानादिरूप होनेकी शक्ति है। वर्तमान व्यक्तता तौ व्यक्त भए ही कहिए।

[केवलज्ञान निषेध]

कोऊ ऐसा मानै है, आत्माके प्रदेशनिविषैं तौ केवलज्ञान ही है, ऊपरि आवरणतैं प्रगट न हो है। सो यहु भ्रम है। जो केवलज्ञान होइ तौ वज्रपटलादि आडे होतैं भी वस्तुकौं जानैं। कर्मकौ आडे आए कैसैं अटकै। तातैं कर्मके निमित्ततैं केवलज्ञानका अभाव ही है। जो याका सर्वदा सद्भाव रहै है, तौ याकौं पारिणामिकभाव

कहते, सो यहु तौ क्षायिकभाव है। जो सर्वभेद जामैं गर्भित ऐसा चैतन्यभाव सो पारिणामिक भाव है। याकी अनेक अवस्था मतिज्ञानादिरूप वा केवलज्ञानादिरूप हैं, सो ए पारिणामिकभाव नाहीं। तातैं केवलज्ञानका सर्वदा सद्भाव न मानना। बहुरि जो शास्त्रनिविषैं सूर्यका दृष्टान्त दिया है, ताका इतना ही भाव लेना, जैसैं मेघपटल होतैं सूर्यप्रकाश प्रगट न हो है, तैसैं कर्मउदय होतैं केवलज्ञान न हो है बहुरि ऐसा भाव न लेना, जैसें सूर्यविषैं प्रकाश रहै है, तैसैं आत्माविषैं केवलज्ञान रहै है। जातैं दृष्टांत सर्वप्रकार मिलै नाहीं। जैसैं पुद्गलविषैं वर्णगुण है, ताकी हरित पीतादि अवस्था हैं। सो वर्तमानविषैं कोई अवस्था होतैं अन्य अवस्थाका अभाव ही है। तैसैं आत्माविषैं चैतन्यगुण है, ताकी मतिज्ञानादिरूप अवस्था है। सो वर्तमान कोई अवस्था होतैं अन्य अवस्थाका अभाव है।

बहुरि कोऊ कहै, कि आवरण नाम तौ वस्तुके आच्छादनेका है, केवलज्ञानका सद्भाव नाहीं है, तौ केवलज्ञानावरण काहेकौं कहौ हौ?

ताका उत्तर—यहां शक्ति है, ताकौं व्यक्त न होने दे, इस अपेक्षा आवरण कह्या है। जैसैं देशचारित्रका अभाव होतैं शक्ति घातनेकी अपेक्षा अप्रत्याख्यानावरण कषाय कह्या, तैसैं जानना। बहुरि ऐसैं जानौ—वस्तुविषैं जो परनिमित्ततैं भाव होय, ताका नाम औपाधिक-भाव है। अर परनिमित्तबिना जो भाव होय, सो ताका नाम स्वभाव-भाव है। सो जैसैं जलकै अग्निका निमित्त होतैं उष्णपनौ भयो, तहां शीतलपनाका अभाव है। परन्तु अग्निका निमित्त मिटैं शीतलता ही होय जाय तातैं सदाकाल जलका स्वभाव [illegible]

सदा पाइए है बहुरि व्यक्त भए स्वभाव व्यक्त भया कहिए। कदाचित व्यक्तरूप हो है। तैसें आत्माके कर्मका निमित्त होतैं अन्यरूप भयो, तहां केवलज्ञानका अभाव ही हैं। परन्तु कर्मका निमित्त मिटें सर्वदा केवलज्ञान होय जाय। तातैं सदाकाल आत्माका स्वभाव केवलज्ञान कहिए है। जातैं ऐसी शक्ति सदा पाईए है। व्यक्त भए स्वभाव व्यक्त भया कहिए। बहुरि जैसें शीतलस्वभावकरि उष्ण जलकौं शीतल मानि पानादि करै, तौ दाझना ही होय। तैसें केवल ज्ञानस्वभावकरि अशुद्धआत्माकौं केवलज्ञानी मानि अनुभवै, तौ दुखी ही होय। ऐसें जे केवलज्ञानादिकरूप आत्माकौं अनुभवैं हैं, ते मिथ्यादृष्टी हैं।

बहुरि रागादिक भाव आपकै प्रत्यक्ष होतैं भ्रमकरि आत्माकौं रागादिरहित मानैं, सो पूछिए है—ए रागादिक तौ होते देखिए है, ए किस द्रव्यके अस्तित्वविषैं है। जो शरीर वा कर्मरूपपुद्गलके अस्तित्वविषैं होय तो ए भाव अचेतन वा मूर्त्तीक कहो। सो तौ ए रागादिक प्रत्यक्ष चेतनता लिए अमूर्त्तीकभाव भासै हैं। तातैं ए भाव आत्माहीके हैं। सोई समयसारके कलशविषैं कह्या है—

> कार्यत्वादकृतं न कर्म्म न च तज्जीवप्रकृत्योर्द्वयो-
> रज्ञायाः प्रकृतेः स्वकार्यफलभुग्भावानुषङ्गात्कृतिः।
> नैकस्याः प्रकृतेरचित्त्वलसनाज्जीवस्य कर्त्ता ततो
> जीवस्यैव च कर्म्म तच्चिदनुगं ज्ञाता न यत्पुद्गलः ॥१॥
>
> [सर्ववि० ११]

याका अर्थ यहु—रागादिरूप भावकर्म है, सो काहूकरि

किया नाहीं है। जातैं यह कार्यभूत है। बहुरि जीव अर कर्म्मप्रकृति इनि दोऊनिका भी कर्तव्य नाहीं। जातैं ऐसैं होय तौ अचेतनकर्म्म-प्रकृतिकैं भी तिस भावकर्म्मका फल सुख दुख ताका भोगना होइ, सो असंभव है। बहुरि एकली कर्म्मप्रकृतिका भी यहु कर्त्तव्य नाहीं। जातैं वाकै अचेतनपनो प्रगट है। तातैं इस रागादिकका जीव ही कर्ता है। अर सो रागादिक जीवहीका कर्म्म है। जातैं भावकर्म्म तौ चेतनाका अनुसारी है, चेतना बिना न होइ। अर पुद्गल ज्ञाता है नाहीं। ऐसैं रागादिकभाव जीवकै अस्तित्वविषैं हैं। जो रागादिक भावनिका निमित्त कर्म्महीकौ मानि आपकौं रागादिकका अकर्ता मानै है, सो कर्ता तौ आप अर आपकौं निरुद्यमी होय प्रमादी रहना, तातैं कर्म्महीका दोष ठहरावै है। सो यहु दुखदायक भ्रम है। सोई समयसारका कलशाविषैं कहा है—

रागजन्मनि निमित्ततां परद्रव्यमेव कलयन्ति ये तु ते।
उत्तरन्ति न हि मोहवाहिनीं शुद्धबोधविधुरान्धबुद्धयः॥

[[illegible]]

जे जीव रागादिककी उत्पत्तिविषैं परद्रव्यहीकौ [illegible] हैं, ते जीव भी शुद्धज्ञानकरि रहित हैं अंधबुद्धि जिनकी [illegible] मोहनदीकौं नाहीं उतरै हैं। बहुरि समयसारका [illegible] विषैं जो, आत्माकौं अकर्त्ता मानै है, [illegible] है— [illegible] जगावै सुवावै है, परघात [illegible] कर्म ही कर्ता है, तिस [illegible]

आत्माकौं शुद्ध मानि स्वच्छन्द हो है, तैसैं ही यहु भया। बहुरि इस श्रद्धानतैं यहु दोष भया, जो रागादिक अपने न जानैं, आपकौं अकर्त्ता मान्या, तब रागादिक होनेका भय रह्या नाहीं, वा रागादिक मेटनेका उपाय करना रह्या नाहीं, तब स्वच्छंद होय खोटे कर्म बांधि अनंत-संसारविषैं रुलै है।

यहां प्रश्न—जो समयसारविषैं ही ऐसा कह्या है—

वर्णाद्या वा रागमोहादयो वा
भिन्ना भावाः सर्व्वे एवास्य पुंसः* ।

याका अर्थ—वर्णादिक वा रागादिकभाव हैं, ते सर्व ही इस आत्माके भिन्न हैं। बहुरि तहां ही रागादिककौं पुद्‌गलमय कहे हैं। बहुरि अन्य शास्त्रनिविषैं भी रागादिकतैं भिन्न आत्माकौं कह्या है, सो यहु कैसैं है ?

ताका उत्तर—रागादिकभाव परद्रव्यके निमित्ततैं औपाधिकभाव हो हैं। अर यहु जीव तिनिकौं स्वभाव जानैं हैं। जाकौं स्वभाव जानैं, ताकौं बुरा कैसैं मानै, वा ताके नाशका उद्यम काहेकौं करै। सो यहु श्रद्धान भी विपरीत है। ताके छुड़ावनेकौं स्वभावकी अपेक्षा रागादिककौं भिन्न कहे हैं। अर निमित्तकी मुख्यताकरि पुद्‌गलमय कहे हैं। जैसैं वैद्य रोग मेट्या चाहै है। जो शीतका आधिक्य देखै, तौ उष्ण औषधि बतावै अर आतापका आधिक्य देखै, तौ शीतल औषधि बतावै। तैसैं श्री-

---

* वर्णाद्या राग मोहादयो वा भिन्ना भावाः सर्वे एवास्य पुंसः।
तेनैवान्तस्तत्त्वतः पश्यतोऽमी नो दृष्टाः स्युर्दृष्टमेकं परं स्यात् ॥५॥
—जीवाजीवा० ॥५॥

गुरु रागादिक छुड़ाया चाहैं हैं। जो रागादिक परका मानि स्वच्छन्द होय, निरुद्यमी होय ताकौं उपादानकारणकी मुख्यताकरि रागादिक आत्माका है ऐसा श्रद्धान कराया। बहुरि जो रागादिक आपका स्वभाव मानि तिनिका नाशका उद्यम नाहीं करै है, ताकौं निमित्तकारणकी मुख्यताकरि रागादिक परभाव हैं, ऐसा श्रद्धान कराया है। दोऊ विपरीत श्रद्धानतैं रहित भए सत्यश्रद्धान होय, तब ऐसा मानै-ए रागादिक भाव आत्माका स्वभाव तौ नाहीं हैं कर्मके निमित्ततैं आत्माके अस्तित्वविषैं विभावपर्याय निपजै हैं। निमित्त मिटै इनका नाश होतैं स्वभाव भाव रहि जाय है। तातैं इनिके नाशका उद्यम करना।

यहां प्रश्न—जो कर्मका निमित्ततैं ए हो हैं, तौ कर्मका उदय रहै तावत् विभाव दूरि कैसैं होय ? तातैं याका उद्यम करना तौ निरर्थक है।

ताका उत्तर—एक कार्य होनेविषैं अनेक कारण चाहिए हैं। तिनविषैं जे कारण बुद्धिपूर्वक होंय, तिनकौं तौ उद्यम करि मिलावै अर अबुद्धिपूर्वक कारण स्वयमेव मिलैं-तब कार्यसिद्धि होय। जैसें पुत्र होनेका कारण बुद्धिपूर्वक तौ विवाहादिक करना है, अर अबुद्धिपूर्वक भवितव्य है। तहां पुत्रका अर्थी विवाहादिकका तौ उद्यम करै, अर भवितव्य स्वयमेव होय, तब पुत्र होय। तैसें विभाव दूरि करनेके कारण बुद्धि पूर्वक तौ तत्त्वविचारादिक हैं अर अबुद्धिपूर्वक मोहकर्मका उपशमादिक हैं। सो ताका अर्थी तत्त्वविचारादिकका तौ उद्यम करै, अर मोहकर्मका उपशमादिक स्वयमेव होय, तब रागादिक दूरि होय।

यहां ऐसा कहै हैं कि—जैसैं विवाहादिक भी भवितव्य आधीन हैं, तैसें तत्त्वविचारादिक भी कर्मका क्षयोपशमादिकके आधीन हैं, तातैं उद्यम करना निरर्थक है।

ताका उत्तर—ज्ञानावरणका तौ क्षयोपशम तत्त्वविचारादि करने-योग्य तेरै भया है। याहीतैं उपयोगकौं यहां लगावनेका उद्यम करा-इए हैं। असंज्ञी जीवनिकैं क्षयोपशम नाहीं है, तौ उनकौं काहेकौं उपदेश दीजिए है।

बहुरि वह कहै है—होनहार होय, तौ तहां उपयोग लागे, बिना होनहार कैसे लागै ?

ताका उत्तर—जो ऐसा श्रद्धान है, तौ सर्वत्र कोई ही कार्यका उद्यम मति करै। तू खान पान व्यापारादिकका तौ उद्यम करै, अर यहां होनहार बतावै। सो जानिए है, तेरा अनुराग यहां नाहीं। माना-दिककरि ऐसी झूंठी बातैं बनावै है। या प्रकार जे रागादिक होतैं तिनि-करि रहित आत्माकौं मानैं हैं, ते मिथ्यादृष्टी जानने।

बहुरि कर्म नोकर्मका संबंध होतैं आत्माकौं निर्बंध मानैं, सो प्रत्यक्ष इनिका बंधन देखिए है। ज्ञानावरणादिकतैं ज्ञानादिकका घात देखिए है। शरीरकरि ताकै अनुसारि अवस्था होती देखिए है। बंधन कैसैं नाहीं। जो बंधन न होय, तौ मोक्षमार्गी इनके नाशका उद्यम काहे-कौं करैं।

यहां कोऊ कहै—शास्त्रनिविषैं आत्माकौं कर्म नोकर्मतैं भिन्न अबद्धस्पृष्ट कैसैं कह्या है ?

ताका उत्तर—संबंध अनेक प्रकार हैं। तहां तादात्म्यसंबंधअपेक्षा

भए मोक्षमार्ग कह्या है। सो याकै सम्यग्दर्शन ज्ञानविषैं सप्ततत्त्वनिका श्रद्धान वा जानना भया चाहिए। सो तिनका विचार नाहीं। अर चारित्रविषैं रागादिक दूरि किया चाहिए, ताका उद्यम नाहीं। एक अपने आत्माकौं शुद्ध अनुभवना इसहीको मोक्षमार्ग जानि संतुष्ट भया है। ताका अभ्यास करनेकौं अंतरंगविषैं ऐसा चिंतवन किया करै है—मैं सिद्धसमान हौं, केवलज्ञानादि सहित हौं, द्रव्यकर्म नोकर्म रहित हौं, परमानदमय हौं, जन्ममरणादि दुःख मेरै नाहीं, इत्यादि चिंतवन करै है। सो यहां पूछिए है—यहु चिंतवन जो द्रव्यदृष्टिकरि करो हो, तौ द्रव्य तौ शुद्ध अशुद्ध सर्वपर्यायनिका समुदाय है। तुम शुद्ध ही अनुभव काहेकौं करौ हो। अर पर्यायदृष्टिकरि करो हो, तौ तुम्हारै तौ वर्त्तमान अशुद्धपर्याय है। तुम आपाकौं शुद्ध कैसैं मानो हो? बहुरि जो शक्तिअपेक्षा शुद्ध मानो हो, तौ मैं ऐसा होने योग्य हौं ऐसा मानौं। ऐसे काहेकौं मानौं हो। तातैं आपकौं शुद्धरूप चिंतवन करना भ्रम है। काहेतैं—तुम आपकौं सिद्धसमान मान्या, तौ यहु संसार अवस्था कौनके है। अर तुम्हारै केवलज्ञानादिक हैं, तौ ये मतिज्ञानादिक कौनके हैं। अर द्रव्यकर्म नोकर्मरहित हौं, तौ ज्ञानादिककी व्यक्तता क्यों नहीं? परमानंदमय हो, तौ अब कर्त्तव्य कहा रह्या? जन्ममरणादि दुःख ही नाहीं, तौ दुखी कैसैं होत हो? तातैं अन्य अवस्थाविषैं अन्यअवस्था मानना भ्रम है।

यहां कोऊ कहै—शास्त्रविषैं शुद्धचिंतवन करनेका उपदेश कैसैं दिया है।

ताका उत्तर—एक तौ द्रव्यअपेक्षा शुद्धपना है, एक पर्याय-

नाम पावै। बहुरि मोक्षमार्गविषैं तौ रागादिक मेटनेका श्रद्धान ज्ञान आचरण करना है। सो तौ विचार ही नाहीं। आपका शुद्ध अनुभवनतैं ही आपकौं सम्यग्दृष्टी मानि अन्य सर्व साधननिका निषेध करै है।

[शास्त्राभ्यासकी निरर्थकताका प्रतिषेध]

शास्त्राभ्यासकरना निरर्थक बतावै है, द्रव्यादिकका वा गुणस्थान मार्गणा त्रिलोकादिका विचारकौं विकल्प ठहरावै है, तपश्चरण करना वृथा क्लेश करना मानै है, व्रतादिकका धारना बंधनमैं परना ठहरावै है, पूजनादि कार्यनिकौं शुभास्रव जानि हेय प्ररूपै है, इत्यादि सर्व साधनिकौं उठाय प्रमादी होय परिणमै है। सो शास्त्राभ्यास निरर्थक होय, तौ मुनिनकै भी तौ ध्यान अध्ययन दोय ही कार्य मुख्य हैं। ध्यानविषैं उपयोग न लागै, तब अध्ययनहीविषैं उपयोगकूं लगावै है, अन्य ठिकाना बीचमैं उपयोग लगावने योग्य है नाहीं। बहुरि शास्त्रकरि तत्त्वनिका विशेष जाननेतैं सम्यग्दर्शन ज्ञान निर्मल होय है। बहुरि तहां यावत उपयोग रहै, तावत् कषाय मंद रहै। बहुरि आगामी वीतरागभावनिकी वृद्धि होय। ऐसैं कार्यकौं निरर्थक कैसैं मानिए ?

बहुरि वह कहै—जो जिनशास्त्रनिविषैं अध्यात्मउपदेश है, तिनिका अभ्यास करना, अन्य शास्त्रनिका अभ्यासकरि किछू सिद्धि नाहीं।

ताकौं कहिए है–जो तेरै सांची दृष्टि भई है, तौ सर्वही जैनशास्त्रकार्यकारी हैं। तहां भी मुख्यपनैं अध्यात्मशास्त्रनिविषैं तौ आत्मस्वरूपका

मुख्य कथन है सो सम्यग्दृष्टी भए आत्मस्वरूपका तौ निर्णय होय चुकै. तब तौ ज्ञानकी निर्मलताकै अर्थि वा उपयोगकौं मंदकषायरूप राखनेकै अर्थि अन्य शास्त्रनिका अभ्यास मुख्य चाहिए। अर आत्मस्वरूपका निर्णय भया है, ताका स्पष्ट राखनेकै अर्थि अध्यात्मशास्त्रनिका भी अभ्यास चाहिए। परन्तु अन्य शास्त्रनिविषै अरुचि तौ न चाहिए। जाकै अन्यशास्त्रनिकै अरुचि है, ताकै अध्यात्मकी रुचि सांची नाहीं। जैसैं जाकै विषयासक्तपना होय, सो विषयासक्त पुरुषनिकी कथा भी रुचितैं सुनै, वा विषयके विशेषकौं भी जानै, वा विषयके आचरनविषै जो साधन होय, ताकौं भी हितरूप जानै, वा विषयका स्वरूपकौं भी पहिचानै, तैसैं जाकै आतमरुचि भई होय, सो आत्मरुचिके धारक तीर्थंकरादिक तिनका पुराण भी जानै, बहुरि आत्माके विशेष जाननेकौं गुणस्थानादिककौं भी जानैं, बहुरि आत्मआचरणविषै जे व्रतादिक साधन हैं, तिनकौं भी हितरूप मानैं. बहुरि आत्माके स्वरूपकौं भी पहिचानै। तातैं च्यारयौं ही अनुयोग कार्यकारी हैं। बहुरि तिनिका नीका ज्ञान होनेकै अर्थि शब्दन्यायशास्त्रादिककौं भी जानना चाहिए। सो अपनी शक्तिके अनुसारि इनिका थोरा वा बहुत अभ्यास करना योग्य है।

बहुरि वह कहै है, 'पद्मनंदिपचीसीविषै ऐसा कह्या है—जो आत्मस्वरूपतैं निकसि बाह्य शास्त्रनिविषै बुद्धि विचरै है, सो वह बुद्धि व्यभिचारिणी है।

ताका उत्तर—यहु सत्य कह्या है। बुद्धि तौ आत्माकी है, ताकौं छोरि परद्रव्य शास्त्रनिविषै अनुरागिनी भई, ताकौं व्यभिचारिणी ही

कहिए। परन्तु जैसैं स्त्री शीलवती रहै, तौ योग्य ही है। अर न रह्या जाय, तौ उत्तमपुरुषकौं छोरि चांडालादिकका सेवन किएं तौ अत्यन्त निंदनीक होइ। तैसैं बुद्धि आत्मस्वरूपविषैं प्रवर्त्तै, तौ योग्य ही है। अर न रह्या जाय, तौ प्रशस्त शास्त्रादि परद्रव्यकौं छोरि अप्रशस्त विषयादिविषैं लगै तौ महानिंदनीक ही होइ। सो मुनिनिकै भी स्वरूपविषैं बहुत काल बुद्धि रहै नाहीं, तौ तेरी कैसैं रह्या करै? तातैं शास्त्राभ्यासविषैं बुद्धि लगवाना युक्त है। बहुरि जो द्रव्यादिकका वा गुणस्थानादिकका विचारकौं विकल्प ठहरावै है, सो विकल्प तौ है, परन्तु निर्विकल्प उपयोग न रहै, तब इनि विकल्पनिकौं न करै तौ अन्य विकल्प होइ, ते बहुत रागादिगर्भित हो हैं। बहुरि निर्विकल्प दशा सदा रहै नाहीं। जातैं छद्मस्थका उपयोग एकरूप उत्कृष्ट रहै, तौ अंतर्मुहूर्त्त रहै। बहुरि तू कहैगा—मैं आत्मस्वरूपहीका चिंतवन अनेक प्रकार किया करूंगा, सो सामान्य चिंतनविषैं तौ अनेकप्रकार बनैं नाहीं। अर विशेष करैगा, तब द्रव्य गुण पर्याय गुणस्थान मार्गणा शुद्ध अशुद्ध अवस्था इत्यादि विचार होयगा। बहुरि सुनि, केवल आत्मज्ञानहीतैं तौ मोक्षमार्ग होइ नाहीं। सप्ततत्वनिका श्रद्धान ज्ञान भए, वा रागादिक दूरि किए मोक्षमार्ग होगा। सो सप्ततत्त्वनिका विशेष जाननैकौं जीव अजीवके विशेष वा कर्मके आस्रव बंधादिकका विशेष अवश्य जानना योग्य है, जातैं सम्यग्दर्शन ज्ञानकी प्राप्ति होय। बहुरि तहां पीछैं रागादिक दूरि करने सो जे रागादिक बधावनेके कारण तिनकौं छोरि जे रागादिक घटावनेके कारण होंय तहां उपयोगकौं लगावना सो द्रव्यादिकका गुणस्थानादिकका

विचार रागादिक घटावनेकौं कारण है। इनविषैं कोई रागादिकका निमित्त नाहीं, तातैं सम्यग्दृष्टी भए पीछैं भी इहां ही उपयोग लगावना।

बहुरि वह कहै है—रागादि मिटावनेकौं कारण होय तिनविषैं तौ उपयोग लगावना, परन्तु त्रिलोकवर्त्ती जीवनिकी गति आदि विचार करना, वा कर्म्मका बंध उदयसत्तादिकका घणा विशेष जानना, वा त्रिलोकका आकार प्रमाणादिक जानना इत्यादि विचार [illegible] कार्यकारी है।

ताका उत्तर—इनिकौं भी विचारतैं रागादिक बधते नाहीं। [illegible] ए ज्ञेय याकै इष्ट अनिष्टरूप हैं नाहीं। तातैं वर्तमान रागादिककौं कारण नाहीं। बहुरि इनकौं विशेष जानैं तत्त्वज्ञान निर्मल होय, तातैं आगामी रागादिक घटावनेकौं ही कारण है। तातैं कार्यकारी है।

बहुरि वह कहै है—स्वर्ग नरकादिककौं जानैं तहां रागद्वेष हो है।

ताका समाधान—ज्ञानीकै तौ ऐसी बुद्धि होइ नाहीं, [illegible] होय। तहां पाप छोरि पुण्यकार्यनिविषैं लागै तहां किछू [illegible] ही है।

बहुरि वह कहै है—शास्त्रविषैं ऐसा उपदेश है, प्रयोजनभूत [illegible] ही जानना कार्यकारी है। तातैं बहुत विकल्प [illegible]

ताका उत्तर—जे जीव [illegible] जानैं, अथवा जिनकी बहुत जाननेकी शक्ति [illegible] किया है। बहुरि जिनकै बहुत जाननेकी शक्ति [illegible] नाहीं जो बहुत जानैं बुरा होगा। [illegible] प्रयोजनभूत जानना निर्मल होगा। [illegible] शास्त्र [illegible]—

सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भवेत् ।

याका अर्थ यहु—सामान्य शास्त्रतैं विशेष बलवान् है। विशेष-हीतैं नीकै निर्णय हो है। तातैं विशेष जानना योग्य है। बहुरि वह तपश्चरणकौं वृथा क्लेश ठहरावै है। सो मोक्षमार्ग भए तौ संसारी जीवनितैं उलटी परणति चाहिए। संसारीनिकै इष्ट अनिष्ट सामग्रीतैं रागद्वेष हो है याकै रागद्वेष न चाहिए। तहां राग छोड़नेकै अर्थि इष्ट सामग्री भोजनादिकका त्यागी हो है। अर द्वेष छोड़नेकै अर्थि अनिष्ट अनशनादिककौं अंगीकार करै है। स्वाधीनपनैं ऐसा साधन होय तौ पराधीन इष्ट अनिष्ट सामग्री मिलैं भी राग द्वेष न होय। सो चाहिए तो ऐसैं, अर तेरै अनशनादिकतैं द्वेष भया। तातै ताकौं क्लेश ठहराया जब यहु क्लेश भया, तब भोजन करना सुख स्वयमेव ठहर्‌या। तहां राग आया, तौ ऐसी परिणति तौ संसारीनिकै पाइए ही है। तैं मोक्षमार्गी होय, कहा किया।

बहुरि जो तू कहैगा, केई सम्यग्दृष्टी भी तपश्चरण नाहीं करै हैं।

ताका उत्तर—यहु कारणविशेषतैं तप न होय सकै है। परन्तु श्रद्धानविषैं तौ तपकौं भला जानैं है। ताके साधनका उद्यम राखै है। तेरै तौ श्रद्धान यहु है तप करना क्लेश है। बहुरि तपका तेरै उद्यम नाहीं। तातैं तेरै सम्यग्दृष्टि कैसैं होय?

बहुरि वह कहै है—शास्त्रविषैं ऐसा कह्या है, तप आदिका क्लेश करै है, सौ करौ ज्ञानबिना सिद्धि नाहीं।

ताका उत्तर—यहु जे जीव तत्त्वज्ञानतैं तौ पराङ्मुख हैं तप

प्रतिज्ञा अवश्य करनी युक्त है। बहुरि कार्य करनेका बंधन भए बिना परिणाम कैसें रुकैंगे। प्रयोजन पड़े तद्रूप परिणाम होंय ही होंय वा बिना प्रयोजन पड़ें भी ताकी आशा रहै। तातैं प्रतिज्ञा करनी युक्त है।

बहुरि वह कहै है—न जानिए कैसा उदय आवै, पीछैं प्रतिज्ञाभंग होय, तौ महापाप लागै। तातैं प्रारब्ध अनुसारि कार्य बनैं, सो बनौ, प्रतिज्ञाका विकल्प न करना।

ताका समाधान—प्रतिज्ञा ग्रहण करतैं जाका निर्वाह होता न जानैं, तिस प्रतिज्ञाकौं तौ करै नाहीं। प्रतिज्ञा लेतैं ही यहु अभिप्राय रहै, प्रयोजन पड़े छोड़ि द्योंगा, तौ वह प्रतिज्ञा कौंन कार्यकारी भई। अर प्रतिज्ञा ग्रहण करतैं तौ यहु परिणाम है, मरणांत भए भी न छांड़ौंगा तौ ऐसी प्रतिज्ञाकरनी युक्त ही है। विना प्रतिज्ञा किएं अविरत संबंधी बंध मिटै नाहीं। बहुरि आगामी उदयकाभयकरि प्रतिज्ञा न लीजिए सो उदयकौं विचारैं सर्व ही कर्त्तव्यका नाश होय। जैसैं आपकौं पचाता जानैं, तितना भोजन करै। कदाचित् काहूकै भोजनतैं अजीर्ण भया होय, तौ तिस भयतैं भोजन करना छांड़ै तौ मरण ही होय। तैसैं आपकै निर्वाह होता जानैं, तितनी प्रतिज्ञा करै। कदाचित् काहूकै प्रतिज्ञातैं भ्रष्टपना भया होय, तौ तिस भयतैं प्रतिज्ञा करनी छांड़ै तौ असंयम ही होय। तातैं बनैं सो प्रतिज्ञा लेनी युक्त है। बहुरि प्रारब्ध अनुसारि तौ कार्य बनैं ही है, तू उद्यमी होय भोजनादि काहेकौं करै है। जो तहां उद्यम करै है, तौ त्याग करनेका भी उद्यम करना युक्त ही है। जब प्रतिमावत् तेरी दशा होय जायगी, तब हम प्रारब्ध ही मानैंगे—तेरा कर्त्तव्य न मानैंगे। तातैं काहेकौं स्वच्छंद होनेकी युक्ति

तौ थोरा वा बहुत बुरा ही है। परन्तु बहुत रोगकी अपेक्षा थोरा रोगकों भला भी कहिए। तातैं शुद्धोपयोग नाहीं होय, तब अशुभतैं छूटि शुभविषैं प्रवर्त्तनायुक्त है। शुभकौं छोरि अशुभविषैं प्रवर्त्तना युक्त नाहीं।

बहुरि वह कहै है—जो कामादिक वा क्षुधादिक मिटावनेकौं अशुभरूप प्रवृत्ति तौ भए विना रहती नाहीं, अर शुभप्रवृत्ति चाहि-करि करनीपरै है। ज्ञानीकै चाहि चाहिए नाहीं। तातैं शुभका उद्यम नाहीं करना।

ताका उत्तर—शुभप्रवृत्तिविषैं उपयोग लागनेकरि वा ताके निमि-त्ततैं विरागता वधनेंकरि कामादिक हीन हो हैं। अर क्षुधादिकविषैं भी संकलेश थोरा हो है। तातैं शुभोपयोगका अभ्यास करना। उद्यम किए भी जो कामादिक वा क्षुधादिक पीड रहै हैं तौ ताकै अर्थि जैसैं थोरा पाप लागै, सो करना। बहुरि शुभोपयोगकौं छोड़ि निश्शंक पापरूप प्रवर्त्तना तौ युक्त नाहीं। बहुरि तू कहै है—ज्ञानीकै चाहि नाहीं अर शुभोपयोग चाहि किएं हो है सो जैसैं पुरुष किंचिन्मात्र भी अपना धन दिया चाहै नाहीं, परन्तु जहां बहुत द्रव्य जाता जानैं, तहां चाहिकरि स्तोक द्रव्य देनैंका उपाय करै है। तैसैं ज्ञानी किंचिन्मात्र भी कषायरूप कार्य किया चाहै नाहीं। परन्तु जहां बहुत कषायरूप अशुभकार्य होता जानैं तहां चाहिकरि स्तोक कषायरूप शुभकार्य कर-नेंका उद्यम करै है। ऐसैं यहु बात सिद्ध भई—जहां शुद्धोपयोग होता जानैं, तहां तौ शुभकार्यका निषेध ही है अर जहां अशुभोपयोग होता जानैं, तहां शुभकौं उपायकरि अंगीकार करना युक्त है। या प्रकार

सम्यग्दृष्टिः स्वयमयमहं जातु बन्धो न मे स्या—
दित्युत्तानोत्पुलकवदना रागिणोप्याचरन्तु ।
आलम्बन्तां समितिपरतां ते यतोद्यापि पापा
आत्मानात्मावगमविरहात्सन्ति सम्यक्त्व शून्याः*॥५॥

याका अर्थ—स्वयमेव यहु मैं सम्यग्दृष्टी हौं, मेरै कदाचित् बंध नाहीं, ऐसैं ऊंचा फुलाया है मुख जिननैं ऐसैं रागी वैराग्य-शक्ति रहित भी आचरण करै हैं, तौ करौ, बहुरि पंचसमितिकी सावधानीकौं अवलंबैं हैं, तौ अवलंबौ, जातैं वै ज्ञानशक्ति विना अजहूं पापी ही हैं। ए दोऊ आत्मा अनात्माका ज्ञानरहितपनातैं सम्यक्त्व-रहित ही हैं।

बहुरि पूछिए है—परकौं पर जान्या,तौ परद्रव्यविषैं रागादि करनेका कहा प्रयोजन रहा ? तहां वह कहै है—मोहके उदयतैं रागादि हो हैं। पूर्वैं भरतादिक ज्ञानी भए, तिनकै भी विषय कषायरूप कार्य भया सुनिए है।

ताका उत्तर—ज्ञानीकै भी मोहके उदयतैं रागादिक हो हैं यहु सत्य, परन्तु बुद्धिपूर्वक रागादिक होते नाहीं। सो विशेष वर्णन आगैं करैंगे। बहुरि जाकै रागादि होनेका किछू विषाद नाहीं, तिनके नाशका उपाय नाहीं, ताकैं रागादिक बुरे हैं ऐसा श्रद्धान भी नाहीं संभवै है। ऐसैं श्रद्धानविना सम्यग्दृष्टी कैसैं होय ? जीवाजीवादि तत्त्वनिके श्रद्धान करनेका प्रयोजनतौ इतना ही श्रद्धान है। 'बहुरि

* समयसार कलशा में 'शून्याः' के स्थान पर रिक्ताः पाठ है।

नाहीं, ते जीव अर्थ काम धर्म्म मोक्षरूप पुरुषार्थतैं रहित होतसंते आलसी निरुद्यमी हो हैं। तिनकी निंदा पंचास्तिकायकी व्याख्याविषै कीनी है। तिनकौं दृष्टान्त दिया है—जैसैं बहुत खीर खांड़ खाय पुरुष आलसी हो है, वा जैसैं वृक्ष निरुद्यमी हैं, तैसैं ते जीव आलसी निरुद्यमी भए हैं।

अब इनकौं पूछिए है—तुम बाह्य तौ शुभ अशुभ कार्यनिकौं घटाया, परन्तु उपयोग तौ आलंबनबिना रहता नाहीं, सो तुम्हारा उपयोग कहां रहै है, सो कहो। जो वह कहै—आत्माका चिंतवन करै है, तौ शास्त्रादिकरि अनेक प्रकारका आत्माका विचारकौं तौ तुम विकल्प ठहराया अर कोई विशेषण आत्माका जाननेमैं बहुत काल लागै नाहीं, बारंबार एकरूप चिंतवनविषैं छद्मस्थका उपयोग लगता नाहीं। गणधरादिकका भी उपयोग ऐसैं न रहि सकै, तातैं वे भी शास्त्रादि कार्यनिविषैं प्रवर्त्तैं हैं। तेरा उपयोग गणधरादिकतैं भी कैसैं शुद्ध भया मानिए। तातैं तेरा कहना प्रमाण नाहीं। जैसैं कोऊ व्यापारादिविषैं निरुद्यमी होय ठाला जैसैं तैसैं काल गुमावै, तैसैं तू धर्म्मविषैं निरुद्यमी होइ प्रमादी यूं ही काल गमावै है। कबहूं किछू चिंतवनसा करै, कबहूं बातैं बनावै, कबहूं भोजनादि करै, अपना उपयोग निर्मल करनेकौं शास्त्राभ्यास तपश्चरण भक्तिआदि कार्यनिविषैं प्रवर्त्तता नाहीं। सूनासा होय प्रमादी होनेका नाम शुद्धोपयोग ठहराय, तहां क्लेश थोरा होनेतैं जैसैं कोई आलसी होय परचा रहनेमैं सुख मानै, तैसैं आनन्द मानै है। अथवा जैसैं सुपनेविषैं आपकौं राजा मानि सुखी होय, तैसैं आपकौं भ्रमतैं सिद्ध समान शुद्ध मानि आप ही

जातैं शुद्ध स्वद्रव्यका चितवन करौ, वा अन्य चितवन करौ। जो वीतरागता लिए भाव होय, तौ तहां संवर निर्जरा ही है। अर जहां रागादिरूप भाव, होय, तहां आस्रव बंध ही है। जो परद्रव्यके जाननेहीतैं आस्रव बंध होय तौ केवली तौ समस्त परद्रव्यकौं जानै हैं, तिनकै भी आस्रव बंध होय बहुरि वह कहै है—जो छद्मस्थकै परद्रव्य चितवन होतैं आस्रव बंध हो है। सो भी नाहीं, जातैं शुक्लध्यानविषैं भी मुनिनिकै छहों द्रव्यनिका द्रव्यगुणपर्यायनिका चितवन होना निरूपण किया है वा अवधिमनःपर्ययादिविषैं परद्रव्यके जाननेहीकी विशेषता हो है। बहुरि चौथा गुणस्थानविषैं कोई अपने स्वरूपका चितवन करै है, ताकै भी आस्रव बंध अधिक है, वा गुणश्रेणी निर्जरा नाहीं है। पंचम षष्ठम गुणस्थानविषैं आहार विहारादि क्रिया होतैं परद्रव्य चितवनतैं भी आस्रव बंध थोरा हो है वा गुणश्रेणी निर्जरा हुवा करै है। तातैं स्वद्रव्य परद्रव्यका चितवनतैं निर्जरा बंध नाहीं। रागादिकके घटे निर्जरा है, रागादिक भए बंध है। ताकौं रागादिकके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान नाहीं, तातैं अन्यथा मानै है।

[निर्वि-कल्प-दशा विचार]

तहां वह पूछै है कि ऐसैं है तौ निर्विकल्प अनुभव दशाविषैं नयप्रमाण निक्षेपादिकका वा दर्शन ज्ञानादिकका भी विकल्प-करनेका निषेध किया है, सो कैसैं है ?

ताका उत्तर—जे जीव इनही विकल्पनिविषैं लगि रहे हैं, अभेदरूप एक आपाकौं अनुभवैं नाहीं हैं, तिनकौं ऐसा उपदेश दिया है, जो ए सर्व विकल्प वस्तुका निश्चयकरनेकौं कारन हैं। वस्तुका निश्चय

छूटैं परका जानना मिटि जाय है। केवल आपहीकौं आप जान्या करै है।

सो यहां तौ यहु कह्या है—पूर्वं आपा परकौं एक जानैं था, पीछैं जुदा जाननेकौं—भेदविज्ञानकौं—तावत् भावना ही योग्य है, यावत् ज्ञान पररूपकौं भिन्न जानि अपनें ज्ञानस्वरूपहीविषैं निश्चिन्त होय। पीछैं भेदविज्ञान करनेंका प्रयोजन रह्या नाहीं। स्वयमेव परकौं पररूप आपकौं आपरूप जान्या करै है। ऐसा नाहीं, जो परद्रव्यका जानना ही मिटि जाय है। तातैं परद्रव्यका जानना वा स्वद्रव्यका विशेष जानने का नाम विकल्प नाहीं है। तौ कैसे है? सो कहिए है—राग द्वेपके वशतैं किसी ज्ञेयके जाननेविषै उपयोग लगावना। किसी ज्ञेयके जाननेतैं छुडावना ऐसैं वारवार उपयोगका भ्रमावना, ताका नाम विकल्प है। बहुरि जहां वीतरागरूप होय जाकौं जानैं है, ताका यथार्थ जानै है। अन्य अन्य ज्ञेयके जाननेंके अर्थि उपयोगकौं नाहीं भ्रमावै है। तहां निर्विकलपदशा जाननी।

यहां कोऊ कहै—छद्मस्थका उपयोग तौ नाना ज्ञेयविषैं भ्रमै ही भ्रमै। तहां निर्विकल्पता कैसैं संभवै है?

ताका उत्तर—जेतै काल एक जाननेंरूप रहै, तावत् निर्विकल्प नाम पावै। सिद्धान्तविषैं ध्यानका लक्षण ऐसा ही किया है "एकाग्रचिन्ता-निरोधो ध्यानम्।"[1] [तत्त्वा० सू० ९-२७]

---

[1] 'उत्तम संहननस्यैकाग्रचिन्ता निरोधो ध्यानमान्तमुहूर्तात्' ऐसा पूरा सूत्र है।

ताका समाधान—जैसैं विकाररहित स्त्री कुशीलके कारण परघरनिका त्याग करै, तैसैं वीतरागपरणति राग द्वेषके कारण परद्रव्यनिका त्याग करै है, बहुरि जे व्यभिचारके कारण नाहीं, ऐसे परघर जानेंका त्याग है नाहीं। तैसैं जे राग द्वेषकौं कारण नाहीं, ऐसे परद्रव्य जाननेका त्याग है नाहीं।

बहुरि वह कहै है—जैसैं जो स्त्री प्रयोजन जानि पितादिककै घरि जाय तौ जावो,विना प्रयोजन जिस तिसकै घर जाना तौ योग्य नाहीं। तैसैं परणतिकौं प्रयोजन जानि सप्ततत्त्वनिका विचार करना। विना प्रयोजन गुणस्थानादिकका विचार करना योग्य नाहीं।

ताका समाधान—जैसैं स्त्री प्रयोजन जानि पितादिक वा मित्रादिककै भी घर जाय, तैसैं परणति तत्त्वनिका विशेष जाननेंकौं कारणगुणस्थानादिक कर्म्मादिककौं भी जानैं। बहुरि यहां ऐसा जानना-जैसें शीलवती स्त्री उद्यमकरि तौ विटपुरुषनिकै स्थान न जाय, जो परवश तहां जाना बनि जाय, तहां कुशील न सेवै, तौ स्त्री शीलवती ही है। तैसैं वीतराग परणति उपायकरि तौ रागादिकके कारण परद्रव्यनिविषैं न लागै। जो स्वयमेव तिनका जानना होय जाय तहां रागादि न करै तौ परणति शुद्ध ही है, तातैं स्त्री आदिकी परीषह मुनिनकै होय, तिनिकौं जानैं ही नाहीं, अपने स्वरूपहीका जानना रहै है, ऐसा मानना मिथ्या है। उनकौं जानैं तौ है, परन्तु रागादिक नाहीं करै है। या प्रकार परद्रव्यकौं जानैं भी वीतरागभाव हो, है ऐसा श्रद्धान करना।

बहुरि वह कहै—ऐसैं है तौ शास्त्रविषैं ऐसैं कैसैं कह्या है, जो

होय है, तातैं पापप्रवृत्ति अपेक्षा तौ याका निषेध है नाहीं। परंतु इहां जो जीव व्यवहार प्रवृत्तिहीकरि सन्तुष्ट होंय, सांचा मोक्षमार्गविषैं उद्यमी न होय है, ताकौं मोक्षमार्गविषैं सन्मुख करनेकौं तिस शुभरूप मिथ्याप्रवृत्तिका भी निषेधरूप निरूपण कीजिए है। जो यहु कथन कीजिए है, ताकौं सुनि जो शुभप्रवृत्ति छोड़ि अशुभविषैं प्रवृत्ति करोगे, तौ तुम्हारा बुरा होगा, और जो यथार्थ श्रद्धानकरि मोक्षमार्गविषैं प्रवर्तोगे, तौ तुम्हारा भला होगा। जैसैं कोऊ रोगी निर्गुण औषधिका निषेध सुनि औषधि साधन छोड़ि कुपथ्य करैगा, तौ वह मरैगा, वैद्यका कछू दोष है नाहीं। तैसैं ही कोउ संसारी पुण्यरूप धर्मका निषेध सुनि धर्मसाधन छोड़ि विषय कषायरूप प्रवर्त्तैगा, तौ वह ही नरकादिविषैं दुख पावैगा। उपदेश दाताका तौ दोष नाहीं। उपदेश देनेवालेका तौ अभिप्राय असत्य श्रद्धानादि छुड़ाय मोक्षमार्ग-विषैं लगावनेका जानना। सो ऐसा अभिप्रायतैं इहां निरूपण कीजिए है।

[कुल अपेक्षा धर्म विचार]

इहां कोई जीव तौ कुलक्रमकरि ही जैनी हैं, जैनधर्मका स्वरूप जानते नाहीं। परन्तु कुलविषैं जैसी प्रवृत्ति चली आई, तैसैं प्रवर्तै हैं। सो जैसैं अन्यमती अपने कुलधर्मविषैं प्रवर्त्तै हैं, तैसैं ही यहु प्रवर्त्तै है। जो कुलक्रमहीतैं धर्म होय, तौ मुसलमान आदि सर्व ही धर्मात्मा होंय। जैनधर्मका विशेष कहा रह्या ? सोई कह्या है—

लोयम्मि रायणीई णायं ण कुलकम्मि कइयावि।
किं पुण तिल्लोयपहुणो जिणंदधम्माहिगारम्मि ॥ १ ॥

[उप. सि. र. गा. ७]

करि अंगीकार करना। जो सांचा भी धर्मको कुलाचार जानि प्रवर्तै है, तौ वाकौं धर्मात्मा न कहिए। जातैं सर्व कुलके उस आचरणको छोड़ैं, तौ आप भी छोड़ि दे। बहुरि जो वह आचरण करै है, सो कुलका भयकरि करै है। किछू धर्मबुद्धितैं नाहीं करै है, तातैं वह धर्मात्मा नाहीं। तातैं विवाहादि कुलसंबंधी कार्यनिविषैं तौ कुलक्रमका विचार करना और धर्मसंबंधी कार्यविषैं कुलका विचार न करना। जैसैं धर्ममार्ग सांचा है, तैसैं प्रवर्तना योग्य है।

[परीक्षा रहित आज्ञानुसारी जैनत्वका प्रतिषेध]

बहुरि केई आज्ञा अनुसारि जैनी हो हैं। जैसैं शास्त्रविषैं आज्ञा है, तैसैं मानैं हैं। परन्तु आज्ञाकी परीक्षा करते नाहीं। सो आज्ञा ही मानना धर्म होय, तौ सर्व मतवाले अपने २ शास्त्रकी आज्ञा मानि धर्मात्मा होय। तातैं परीक्षाकरि जिनवचननिकौं सत्यपनो पहिचानि जिनआज्ञा माननी योग्य है। विना परीक्षा किए सत्य असत्यका निर्णय कैसैं होय? अर विना निर्णय किए जैसैं अन्यमती अपने २ शास्त्रनिकी आज्ञा मानैं हैं, तैसैं यानैं जैनशास्त्रनिकी आज्ञा मानी। यहु तो पक्षकरि आज्ञा मानना है।

कोऊ कहै—शास्त्रविषैं दश प्रकार सम्यक्त्वविषैं आज्ञासम्यक्त्व कह्या है, वा आज्ञाविचयधर्मध्यानका भेद कह्या है, वा निःशंकित अंगविषैं जिनवचनविषैं संशय करना निषेध्या है, सो कैसैं है?

ताका समाधान—शास्त्रनिविषैं कथन केई तौ ऐसे हैं, जिनकी प्रत्यक्ष अनुमानादिकरि परीक्षा करि सकिए है। बहुरि केई कथन ऐसे हैं, जो प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर नाहीं। तातैं आज्ञाहीकरि प्रमाण होय है। तहां

नाना शास्त्रनिविषैं जो कथन समान होय, तिनकी तौ परीक्षा करनेका प्रयोजन ही नाहीं। बहुरि जो कथन परस्परविरुद्ध होइ, तिनिविषैं जो कथन प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर होय, तिनकी तौ परीक्षा करनी। तहां जिन शास्त्रके कथनकी प्रमाणता ठहरै, तिनि शास्त्रविषैं जो प्रत्यक्ष अनुमानगोचर नाहीं, ऐसे कथन किए होय, तिनकी भी प्रमाणता करनी। बहुरि जिनि शास्त्रनिके कथनकी प्रमाणता न ठहरै, तिनके सर्व हू कथनकी अप्रमाणता माननी।

इहां कोऊ कहै—परीक्षा किए कोई कथन कोई शास्त्रविषैं प्रमाण भासै, कोई कथन कोई शास्त्रविषैं अप्रमाण भासै तौ कहा करिए?

ताका समाधान—जो आप्तके भासे शास्त्र है, तिनिविषैं कोई ही कथन प्रमाण-विरुद्ध न होय। जातैं कै तौ जानपना ही न होय, कै राग द्वेष होय, तौ असत्य कहैं। सो आप्त ऐसा होय नाहीं, तातैं परीक्षा नीकी नाहीं करी है, तातैं भ्रम है।

बहुरि वह कहै है—छद्मस्थकै अन्यथा परीक्षा होय जाय, तौ कहा करै?

ताका समाधान—सांची झूंठी दोऊ वस्तुनिकौं मीड़े अर प्रमाद छोड़ि परीक्षा किए तौ सांची ही परीक्षा होय। जहां पक्षपातकरि नीके परीक्षा न करै, तहां ही अन्यथा परीक्षा हो है।

बहुरि वह कहै है, जो शास्त्रनिविषैं परस्पर विरुद्ध कथन तौ घनें कौन-कौनकी परीक्षा करिए।

ताका समाधान—मोक्षमार्गविषैं देव गुरु धर्म वा जीवादि तत्त्व वा बंधमोक्षमार्ग प्रयोजनभूत हैं, सो इनिकी परीक्षा करि लैनी। जिन

शास्त्रनिविषैं ए सांचे कहे, तिनकी सर्व आज्ञा माननी। जिनविषै ए अन्यथा प्ररूपे, तिनकी आज्ञा न माननी। जैसे लोकविषें जो पुरूष प्रयोजनभूत कार्यनिविषै झूठ न बोले, सो प्रयोजनरहितकार्यनिविषैं कैसें झूठ बोलैगा। तैसें जिस शास्त्रविषैं प्रयोजनभूत देवादिकका स्वरूप अन्यथा न कह्या, तिसविषैं प्रयोजनरहित द्वीप समुद्रादिकका कथन अन्यथा कैसें होय? जातैं देवादिकका कथन अन्यथा किए वक्ताके विषय कषाय पोषे जांय हैं।

इहां प्रश्न—देवादिकका कथन तौ अन्यथा विषयकषायतैं किया तिन ही शास्त्रनिविषैं अन्य कथन अन्यथा काहेकौं किया?

ताका समाधान—जो एक ही कथन अन्यथा कहै, वाका अन्यथापना शीघ्र ही प्रगट होय जाय। जुदी पद्धति ठहरै नाहीं। तातैं घने कथन अन्यथा करनेतैं जुदी पद्धति ठहरै। तहां तुच्छबुद्धिभ्रममें पड़ि-जाय—यहु भी मत है। तातैं प्रयोजनभूतका अन्यथापनाका भेलनेके अर्थि अप्रयोजनभूत भी अन्यथा कथन घनें किए। बहुरि प्रतीति अनावनेके अर्थि कोई २ सांचा भी कथन किया। परन्तु स्याना होय सो भ्रम में परै नाहीं। प्रयोजनभूत कथनकी परीक्षाकरि जहां सांच भासै, तिस मतकी सर्व आज्ञा मानै, सो परीक्षा किए जैनमत ही सांचा भासै है। जातैं याका वक्ता सर्वज्ञ वीतराग है, सो झूंठ काहेकौं कहै ऐसैं जिन आज्ञा मानैं, सो सांचा श्रद्धान होय, ताका नाम आज्ञासम्यक्त्व है। बहुरि तहां एकाग्र चिन्तवन होय, ताहीका नाम आज्ञाविचय धर्मध्यान है। जो ऐसैं न मानिए अर विना परीक्षा किए ही आज्ञा मानैं सम्यक्त्व वा धर्मध्यान होय जाय, तौ जो द्रव्यलिंगी आज्ञा मानि

मुनि भया, आज्ञाअनुसारि साधनकरि ग्रैवेयिक पर्यन्त प्राप्त होय, वाकै मिथ्यादृष्टिपना कैसैं रह्या? तातैं किछू परीक्षाकरि आज्ञा माने ही सम्यक्त्व वा धर्मध्यान होय है। लोकविषैं भी कोई प्रकार परीक्षा भए ही पुरुषकी प्रतीति कीजिए है। बहुरि तैं कह्या—जिनवचनविषैं संशय करनेतैं सम्यक्त्वका शंका नामा दोष हो है, सो 'न जानैं यह कैसैं है, ऐसा मानि निर्णय न कीजिए, तहां शंका नाम दोष हो है। बहुरि जो निर्णय करनैको विचार करतैं ही सम्यक्त्वको दोष लागैं, तौ अष्टसहस्रीविषैं आज्ञाप्रधानतैं परीक्षाप्रधानको उत्तम काहेकौं कह्या? पृच्छना आदि स्वाध्यायके अंग कैसैं कहे। प्रमाण नयतैं पदार्थ-निका निर्णय करनेका उपदेश काहेकौं दिया। तातैं परीक्षाकरि आज्ञा माननी योग्य है। बहुरि केई पापी पुरुषां अपना कल्पित कथन किया है अर तिनकौं जिनवचन ठहराया है, तिनकौं जैनमतका शास्त्र जानि प्रमाण न करना। तहां भी प्रमाणादिकतैं परीक्षाकरि वा परस्पर शास्त्रनतैं विधि मिलाय वा ऐसैं संभवैं है कि नाहीं, ऐसा विचारकरि विरुद्ध अर्थकों मिथ्या ही जानना। जैसे ठिग आप पत्र लिखि तामैं लिखनवालेका नाम किसी साहूकारका धर्‍या, तिस नामके भ्रमतैं धनको ठिगावे, तौ दरिद्री ही होय। तैसैं पापी आप ग्रंथादि बनाय, तहां कर्त्ताका नाम जिन गणधर आचार्यनिका धर्‍या, तिस नामके भ्रमतैं झूंठा श्रद्धान करै, तौ मिथ्यादृष्टी ही होय।

बहुरि वह कहै है-गोम्मटसार[1] विषैं ऐसा कह्या है-सम्यग्दृष्टि

---

१ 'सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥२७॥

जीव अज्ञानगुरुके निमित्ततैं झूंठ भी श्रद्धान करै, तौ आज्ञा माननेतैं सम्यग्दृष्टि ही होय है। सो यहु कथन कैसैं किया है?

ताका उत्तर—जे प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर नाहीं, सूक्ष्मपनैंतैं जिनका निर्णय न होय सकै, तिनिकी अपेक्षा यहु कथन है। मूलभूत देव गुरु धर्मादि वा तत्त्वादिकका अन्यथा श्रद्धान भए, तौ सर्वथा सम्यक्त्व रहै नाहीं, यहु निश्चय करना। तातैं विना परीक्षा किए केवल आज्ञाहीकरि जैनी हैं, ते भी मिथ्यादृष्टि जानने। बहुरि केई परीक्षा करि भी जैनी हैं, परन्तु मूल परीक्षा नाहीं करै हैं। दया शील तप संयमादि क्रियानिकरि वा पूजा प्रभावनादि कार्यनिकरि वा अतिशय चमत्कारादिकरि वा जिनधर्मतैं इष्ट प्राप्ति होनेकरि जिनमतकौं उत्तम जानि प्रीतवंत होय जैनी होय हैं। सो अन्यमतविषैं भी तौ ए कार्य पाइए हैं, तातैं इनि लक्षणनिविषैं अतिव्याप्ति पाईए है।

कोऊ कहै—जैसैं जिनधर्मविषैं ए कार्य हैं, तैसैं अन्यमतविषैं नाहीं पाइए है। तातैं अतिव्याप्ति नाहीं।

ताका समाधान—यहु तौ सत्य है, ऐसैं ही है। परंतु जैसैं तू दयादिक मानैं है, तैसैं तौ वै भी निरूपै हैं। परजीवनिकी रक्षाकौं दया तू कहै, सोई वे कहै हैं ऐसैं ही अन्य जानने।

बहुरि वह कहै है—उनकै ठीक नाहीं। कबहूं दया प्ररूपैं, कबहूं हिंसा प्ररूपैं।

ताका उत्तर—तहां दयादिकका अंशमात्र तौ आया। तातैं अतिव्याप्तिपना इनि लक्षणनिकै पाइए है। इनिकरि सांची परीक्षा होय नाहीं। तौ कैसैं होय। जिनधर्मविषैं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र मोक्षमार्ग

कह्या है। तहां सांचे देवादिकका वा जीवादिकका श्रद्धान किए सम्यक्त्व होय, वा तिनिकौं जानें सम्यग्ज्ञान होय, वा सांचा रागादिक मिटें सम्यक्चारित्र होय, सो इनिका स्वरूप जैसें जिनमतविषैं निरूपण किया है, तैसें कहीं निरूपण किया नाहीं। वा जैनीविना अन्यमती ऐसा कार्य करि सकते नाहीं। तातैं यहु जिनमतका सांचा लक्षण है। इस लक्षणकौं पहचानि जे परीक्षा करैं, तेई श्रद्धानी हैं। इस विना अन्य प्रकारकरि परीक्षा करै हैं, ते मिथ्यादृष्टी ही रहै हैं।

बहुरि केई संगतिकरि जैनधर्म धारै हैं। कोई महान्पुरुषको जिनधर्मविषैं प्रवर्त्तता देखि आप भी प्रवर्त्तै हैं। केई देखा देखी जिनधर्मकी शुद्ध वा अशुद्ध क्रियानिविषैं प्रवर्त्तै हैं। इत्यादि अनेकप्रकारके जीव आप विचारकरि जिनधर्मका रहस्य नाहीं पहिचानैं हैं अर जैनी नाम धरावै हैं, ते सर्व मिथ्यादृष्टी ही जाननें। इतना तो है, जिनमतविषैं पापकी प्रवृत्तिविशेष नहीं होय सकै है अर पुण्यके निमित्त घने हैं। अर सांचा मोक्षमार्गके भी कारण तहां बनि रहे हैं। तातैं जे कुलादिकरि भी जैनी हैं, ते भी औरनितैं तौ भले ही हैं।

[आजीवकादि प्रयोजनार्थधर्मसाधनका प्रतिषेध]

बहुरि जे जीव कपटकरि आजीवकाके अर्थि वा बड़ाईके अर्थि वा किछू विषयकषायसंबंधी प्रयोजनविचारि जैनी हो हैं, ते तौ पापी ही हैं अति तीव्रकषाय भए ऐसी बुद्धि आवै है। उनका सुलझना भी कठिन है। जैनधर्म तौ संसारका नाशिके अर्थि सेइए है। ताकरि जो संसारीक प्रयोजन साध्या चाहै, सो बड़ा अन्याय करै है। तातैं ते तौ मिथ्यादृष्टि हैं ही।

इहां कोऊ कहै—हिंसादिकरि जिन कार्यनिकौं करिए, ते कार्य धर्मसाधनकरि सिद्ध कीजिए,तौ बुरा कहा भया। दोऊ प्रयोजन सधे।

ताकौं कहिए है—पापकार्य अर धर्मकार्यका एक साधन किए पाप ही होय। जैसें कोऊ धर्मका साधन चैत्यालय बनाय, तिसहीकौं स्त्रीसेवनादि पापनिका भी साधन करै, तौ पापी ही होय। हिंसादिककरि भोगादिकके अर्थि जुदा मन्दिर बनावै, तौ बनावौ। परन्तु चैत्यालयविषैं भोगादि करना युक्त नाहीं। तैसें धर्मका साधन पूजा शास्त्रादि कार्य हैं,तिनिहीकौं आजीविका आदि पापका भी साधन करै, तौ करौ परंतु पूजादि कार्यनिविषै तौ आजीविका आदिका प्रयोजन विचारना युक्त नाहीं।

इहां प्रश्न—जो ऐसें है तौ मुनि भी धर्मसाधि परघर भोजन करैं हैं वा साधर्मी साधर्मीका उपकार करैं करावैं है, सो कैसें बनै ?

ताका उत्तर—जो आप तौ किछू आजीविका आदिका प्रयोजन विचारि धर्म नाहीं साधै हैं,आपकौं धर्मात्मा जानि केई स्वयमेव भोजन उपकारादि करै है, तौ किछू दोष है नाहीं बहुरि जो आप ही भोजनादिकका प्रयोजन विचारि धर्मसाधै है, तो पापी है ही जे विरागी होय, मुनिपनो अंगीकार करै हैं, तिनिकै भोजनादिकका प्रयोजन नाहीं कोई दे तौ लें, नाहीं तौ समता राखैं। संक्लेशरूप होय नाहीं। बहुरि आप हितकै अर्थि धर्म साधै है। उपकार करवानेका अभिप्राय नाहीं है। आपकै जाका त्याग नाहीं, ऐसा उपकार करावै। कोई साधर्मी स्वयमेव उपकार करै तौ करौ अर न करै तौ आपकै किछू संक्लेश होना नाहीं। सो ऐसें तौ योग्य है। अर आप ही आजीविका आदिका

प्रयोजन विचारि बाह्य धर्मका साधन करै, जहां भोजनादिक उपकार कोई न करै, तहां संक्लेशकरै, याचना करै, उपाय करै, वा धर्मसाधनविषैं शिथिल होय जाय, सो पापी ही जानना। ऐसैं संसारीक प्रयोजन लिएं जे धर्म साधै हैं, ते पापी भी हैं अर मिथ्यादृष्टी हैं ही। याप्रकार जिनमतवाले भी मिथ्यादृष्टि जाननें। अब इनकै धर्मका साधन कैसैं पाइए है, सो विशेष दिखाइए है—

तहां केई जीव कुलप्रवृत्तिकरि वा देख्यां देखी लोभादिकका अभिप्रायकरि धर्म साधै हैं, तिनिकै तौ धर्मदृष्टि नाहीं। जो भक्ति करै हैं तौ चित्त तौ कहीं है, दृष्टि फिरचा करै है। अर मुखतैं पाठादि करै है वा नमस्कारादि करै है। परंतु यहु ठीक नाहीं—मैं कौन हौं, किसकी स्तुति करौं हौं, किस प्रयोजनके अर्थि स्तुति करौं हौं, पाठविषैं कहा अर्थ है, सो किछू ठीक नाहीं। बहुरि कदाचित् कुदेवादिक की भी सेवा करने लगि जाय। तहां सुदेव गुरुशास्त्र वा कुदेवकुगुरुशास्त्रादि विषैं विशेष पहिचानै नाहीं। बहुरि जो दान दे है, तौ पात्र अपात्रका विचाररहित, जैसैं अपनी प्रशंसा होय, तैसैं दान दे है। बहुरि तप करै है, तौ भूखा रहनेकरि महंतपनौ होय सो कार्य करै है। परिणामनिकी पहिचानि नाहीं। बहुरि व्रतादिक धारै है, तहां बाह्यक्रिया ऊपरि दृष्टि है, सो भी कोई सांची क्रिया करै है, कोई झूंठी करै है। अर अंतरंग रागादिक भाव पाइए है, तिनिका विचार ही नाहीं। वा बाह्य भी रागादि पोषनेका साधन करै है। बहुरि पूजा प्रभावना आदि कार्य करै है। तहां जैसे लोकविषैं बड़ाई होय वा विषय कषाय पोषे जांय, तैसैं कार्य करै है। बहुरि बहुत हिंसादिक निपजावै है। सो ए

कार्य तौ अपना वा अन्य जीवनिका परिणाम सुधारनेके अर्थि कहे हैं। बहुरि तहां किंचित् हिंसादिक भी निपजै है, तौ थोरा अपराध होय गुण बहुत होय, सो कार्य करना कह्या है। सो परिणामनिकी पहचानि नाहीं। अर यहां अपराध केता लागै है, गुण केता हो है, सो नफा टोटाका ज्ञान नाहीं, वा विधि अविधिका ज्ञान नाहीं। बहुरि शास्त्राभ्यास करै है। तहां पद्धतिरूप प्रवर्तै है। जो वांचै है,तौ औरनिकौं सुनाय दे हैं। जो पढ़ै है,तौ आप पढ़ि जाय है। सुनै है,तौ कहै हैसो सुनि ले हैं। जो शास्त्राभ्यासका प्रयोजन है,ताकौं आप अंतरग विषैं नाहीं अवधारै हैं। इत्यादि धर्मकार्यनिका धर्मकौं नाहीं पहिचानै। केईकै तौ कुलविषैं जैसैं बड़े प्रवर्तै, तैसैं हमकौं भी करना, अथवा और करै हैं, तैसैं हमकौं भी करना, वा ऐसैं किए हमारा लोभादिककी सिद्धि होगी, इत्यादि विचार लिएं अभूतार्थ धर्मकौं साधै हैं। बहुरि केई जीव ऐसे हैं, जिनकै किछू तौ कुलादिरूप बुद्धि है, किछू धर्मबुद्धि भी है, तातैं पूर्वोक्तप्रकार भी धर्मका साधन करै हैं अर किछू आगैं कहिए है, तिस प्रकार करि अपने परिणामनिकौं भी सुधारै हैं। मिश्रपनो पाइए है। बहुरि केई धर्मबुद्धिकरि धर्म्म साधै हैं, परंतु निश्चयधर्म्मकौं न जानैं हैं। तातैं अभूतार्थ रूप धर्मकौं साधै हैं। तहां व्यवहार सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकौं मोक्षमार्ग जानि तिनिका साधन करै हैं। तहां शास्त्रविषैं देव गुरु धर्मकी प्रतीति लिए सम्यक्त्व होना कह्या है। ऐसी आज्ञा मानि अरहंत देव निर्ग्रंथगुरु जैनशास्त्र विना औरनिकौं नमस्कारादि करनेका त्याग किया है। परंतु तिनिका गुण अवगुणकी परीक्षा नाहीं करै हैं। अथवा परीक्षा भी करै हैं तो तत्त्वज्ञान पूर्वक

सांची परीक्षा नाहीं करै है बाह्यलक्षणनिकरि परीक्षा करै हैं। ऐसैं प्रतीतिकरि सुदेव गुरु शास्त्रनिकी भक्तिविषै प्रवर्त्तै हैं।

[अरहंतभक्तिका अन्यथा रूप]

तहां अरहंत देव हैं, सो इंद्रादिकरि पूज्य हैं, अनेक अतिशय-सहित हैं, क्षुधादि दोषरहित हैं, शरीरकी सुंदरताकौं धरैं है, स्त्रीसंग-मादि रहित हैं, दिव्यध्वनिकरि उपदेश दे हैं, केवलज्ञानकरि लोकालोक जानै है, काम क्रोधादिक नष्ट किए हैं, इत्यादि विशेषण कहै है। तहां इनिविषैं केई विशेषण पुद्गलके आश्रय, केई जीवके आश्रय हैं। तिन-कौं भिन्न भिन्न नाहीं पहिचानैं है। जैसैं असमानजातीय मनुष्यादि पर्यायनिविषैं जीव पुद्गलकै विशेषणकौं भिन्न न जानि मिथ्यादृष्टि धरै है, तैसैं यह असमान जातीय अरहंतपर्यायविषैं जीव पद्गलके विशेषणनिकौं भिन्न न जानि मिथ्यादृष्टि धरैं है। बहुरि जे बाह्य विशेषण हैं, तिनकौं तौ जानि तिनकरि अरहंतदेवकौं महंतपनो विशेष मानै है। अर जे जीवके विशेषण हैं, तिनकौं यथावत् न जानि तिनकरि अरहंतदेवको महंतपनो आज्ञा अनुसार मानैं है। अथवा अन्यथा मानै है। जातैं यथावत् जीवका विशेषण जानैं मिथ्यादृष्टी रहै नाहीं। बहुरि तिनि अरहंतनिकौं स्वर्गमोक्षका दाता दीनदयाल अधमउधारक पतितपावन मानैं है सो अन्यमती कर्तृत्वबुद्धितैं ईश्वर-कौं जैसैं मानैं हैं, तैसैं यहु अरहंतकौं मानैं है ऐसा नाहीं जानैं है-फलतौ अपने परिणामनिका लागै है, अरहंतनिकौं निमित्त मानैं हैं, तातैं उपचारकरि वै विशेषण संभवै हैं। अपने परिणाम शुद्ध भए विना अरहंत हू स्वर्गमोक्षादिका दाता नाहीं। बहुरि अरहंतादिकके नामादि-

करतैं श्वानादिक स्वर्ग पाया। तहां नामादिकका ही अतिशय मानैं हैं। बिना परिणाम नाम लेनेवालौंकै भी स्वर्गकी प्राप्ति न होय, तौ सुननेवालेकै कैसैं होय। श्वानादिककैं नाम सुननेके निमित्ततैं मंदकषायरूप भाव भए हैं। तिनका फल स्वर्ग भया है। उपचारकरि नामहीकी मुख्यता करी है। बहुरि अरहंतादिकके नाम पूजनादिकतैं अनिष्ट सामग्रीका नाश इष्ट सामग्रीकी प्राप्ति मानि रोगादि मेटनेके अर्थि वा धनादिकी प्राप्तिके अर्थि नाम ले है वा पूजनादि करै हैं। सो इष्ट अनिष्टके तौ कारण पूर्वकर्मका उदय है। अरहंत तौ कर्त्ता है नाहीं। अरहंतादिककी भक्तिरूप शुभोपयोग परिणामनितैं पूर्व पापका संक्रमणादिक होय जाय है। तातैं उपचारकरि अनिष्टका नाशकौं इष्टकी प्राप्तिकौं कारण अरहंतादिककी भक्ति कहिए है। अर जे जीव पहलैं ही संसारी प्रयोजन लिए भक्ति करै, ताकै तौ पापहीका अभिप्राय भया। कांक्षा विचिकित्सारूप भाव भए तिनिकरि पूर्वपापका संक्रमणादि कैसैं होय? बहुरि तिनका कार्यसिद्ध न भया।

बहुरि केई जीव भक्तिकौं मुक्तिका कारण जानि तहां अति अनुरागी होय प्रवर्त्तैं श्रद्धान भया। सो भक्ति तौ रागरूप है। रागतैं बंध है। तातैं मोक्षका कारण नाहीं। जब रागका उदय आवै, तब भक्ति न करै, तौ पापानुराग होय। तातैं अशुभ राग छोड़नेकौं ज्ञानी भक्ति विषै प्रवर्त्तै हैं। वा मोक्षमार्गकौं बाह्य निमित्तमात्र भी जानैं हैं। परन्तु यहां ही उपादेयपना मानि संतुष्ट न हो हैं। शुद्धोपयोगका उद्यमी रहै हैं। सो ही पंचास्तिकायव्याख्याविषै कह्या[1] है:—

[1] अयं हि स्थूललक्ष्यतया केवलभक्तिप्रधानस्याज्ञानिनो भवति। उपरितन-

इयं भक्तिः केवलभक्तिप्रधानस्याज्ञानिनो भवति । तीव्ररागज्वरविनोदार्थमस्थानरागनिषेधार्थं क्वचित् ज्ञानिनोपि भवति ॥

याका अर्थ—यहु भक्ति केवलभक्ति ही है प्रधान जाकै ऐसा अज्ञानीजीवकै हो है । बहुरि तीव्र रागज्वर मेटनेके अर्थि वा कुठिकानैं रागनिषेधनेके अर्थि कदाचित् ज्ञानीकै भी हो है ।

तहां वह पूछै है ऐसैं है, तौ ज्ञानीतैं अज्ञानीकै भक्तिकी विशेषता होती होगी ।

ताका उत्तर—यथार्थपनेंकी अपेक्षा तौ ज्ञानीकै सांची भक्ति है- अज्ञानीकै नाहीं है । अर रागभावकी अपेक्षा अज्ञानीकै श्रद्धानविषैं भी मुक्तिकारण जाननेतैं अति अनुराग है । ज्ञानीकै श्रद्धनविषैं शुभबंधकारण जाननेंतैं तैसा अनुराग नाहीं है । बाह्य कदाचित् ज्ञानीकै अनुराग घना हो है, कदाचित् अज्ञानीकै हो है, ऐसा जानना । ऐसैं देवभक्तिका स्वरूप दिखाया ।

[गुरुभक्तिका अन्यथा रूप]

अब गुरुभक्तिका स्वरूप कैसैं हो है, सो कहिए है :—

कोई जीव आज्ञानुसारी हैं । ते तौ ए जैनके साधु हैं, हमारे गुरु हैं, तातैं इनिकी भक्ति करनी, ऐसैं विचारि भक्ति करैं हैं । बहुरि कोई जीव परीक्षा भी करैं हैं । तहां ए मुनि दया पालैं है, शील पालैं है, धनादि नाहीं राखै हैं, उपवासादि तप करैं हैं, क्षुधादि परीषह सहैं हैं, किसीसौं क्रोधादि नाहीं करै हैं, उपदेश देय औरनिकौं धर्मविषैं

भूमिकायामलब्धास्पदस्यास्थानरागनिषेधार्थं तीव्ररागज्वरविनोदार्थं वा कदाचिज्ज्ञानिनोऽपि भवतीति० ॥गा० १३६॥

लगावै हैं, इत्यादि गुण विचारि तिनविषै भक्तिभाव करै हैं। सो ऐसे गुण तौ परमहंसादिक अन्यमती हैं, तिनविषैं वा जैनी मिथ्यादृष्टीनिविषैं भी पाईए है। तातैं इनिविषै अतिव्याप्तपनो है। इनिकरि सांची परीक्षा होय नाहीं। बहुरि जिन गुणोंकौं विचारै है, तिनविषैं केई जीवाश्रित हैं, केई पुद्गलाश्रित हैं, तिनका विशेष न जानना, असमानजातीय मुनिपर्यायविषैं एकत्व बुद्धितैं मिथ्यादृष्टि ही रहै है। बहुरि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी एकतारूप मोक्षमार्ग सोई मुनिनका सांचा लक्षण है। ताकौं पहिचानैं नाहीं। जातैं यहु पहिचानि भए मिथ्यादृष्टी रहता नाहीं। ऐसे मुनिनका सांचा स्वरूप न ही जानैं, तौ सांची भक्ति कैसें होय? पुण्यबंधकौं कारणभूत शुभक्रियारूप गुणनिकौं पहचानि तिनकी सेवातैं अपना भला होना जानि तिनविषैं अनुरागी होय भक्ति करै है ऐसैं गुरुभक्तिका स्वरूप कह्या।

[शास्त्रभक्तिका अन्यथा रूप]

अब शास्त्रभक्तिका स्वरूप कहिए हैः—

केई जीव तौ यहु केवली भगवानकी वानी है, तातैं केवलीके पूज्य होनेतैं यहु भी पूज्य है, ऐसा जानि भक्ति करैं हैं। बहुरि केई ऐसैं परीक्षा करैं हैं--इन शास्त्रनिविषैं विरागता दया क्षमा शील संतोषादिकका निरूपण है, तातैं ए उत्कृष्ट हैं, ऐसा जानि भक्ति करैं हैं। सो ऐसा कथन तौ अन्य शास्त्र वेदान्तिक तिनविषैं भी पाईए है। बहुरि इन शास्त्रनिविषैं त्रिलोकादिकका गंभीर निरूपण है। तातैं उत्कृष्टता जानि भक्ति करै हैं। सो इहां अनुमानादिकका तौ प्रवेश नाहीं। सत्य-असत्यका निर्णयकरि महिमा कैसैं जानिए। तातैं ऐसैं

सांची परीक्षा होय नाहीं। इहां अनेकांतरूप सांचा जीवादितत्त्वनिका निरूपण है। अर सांचा रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग दिखाया है। ताकरि जैनशास्त्रनिकी उत्कृष्टता है। ताकौं नाहीं पहिचानै हैं। जातैं यहु पहचानि भए मिथ्यादृष्टि रहै नाहीं। ऐसैं शास्त्रभक्तिका स्वरूप कह्या।

या प्रकार याकैं देव गुरु शास्त्रकी प्रतीति भई, तातैं व्यवहारसम्यक्त्व भया मानै हैं। परन्तु उनका सांचा स्वरूप भास्या नाहीं। तातैं प्रतीति भी सांची भई नाहीं। सांची प्रतीतिविना सम्यक्तकी प्राप्ति नाहीं। तातैं मिथ्यादृष्टी ही है। बहुरि शास्त्रविषैं **'तत्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्'** [तत्त्वा०सू०१-२] ऐसा वचन कह्या है। तातैं जैसैं शास्त्रनिविषैं जीवादि तत्त्व लिखे हैं,तैसैं आप सीखिले है। तहां उपयोग लगावै है। औरनिकौं उपदेशै है, परन्तु तिन तत्त्वनिका भाव भासता नाहीं। अर इहां तिस वस्तुके भावहीका नाम तत्त्व कह्या। सो भाव भासैं विना तत्त्वार्थश्रद्धान कैसैं होय? भावभासना कहा? सो कहिए है :—

जैसैं कोऊ पुरुष चतुर होनेकै अर्थि शास्त्रकरि स्वर ग्राम मूर्छना रागनिका रूप ताल तानके भेद तिनिकौं सीखै है। परंतु स्वरादिकका स्वरूप नाहीं पहिचानै हैं। स्वरूपपहिचानि भए विना अन्य स्वरादिककौं अन्य स्वरादिकरूप मानैं है वा सत्य भी मानैं है, तौ निर्णयकरि नाहीं मानैं है। तातैं वाकै चतुरपनों होय नाहीं। तैसैं कोऊ जीव सम्यक्ती होनेंकै अर्थि शास्त्रकरि जीवादिक तत्त्वनिका स्वरूपकौं सीखै है। परंतु तिनका स्वरूपकौं नाहीं पहिचानैं है। स्वरूप पहिचानैं विना अन्य तत्त्वनिकौं अन्य तत्त्वरूप मानि ले है। वा सत्य

भी मानैं है, तौ निर्णयकरि नाहीं मानैं है। तातैं वाकै सम्यक्त्व होय नाहीं। वहुरि जैसे कोई शास्त्रादिपढ़्या है, वा न पढ़्या है, जो स्वरादिकका स्वरूपकौं पहिचानैं है, तौ वह चतुर ही है। तैसैं शास्त्र पढ़्या है,वा न पढ़्या है जो जीवादिकका स्वरूप पहिचानैं है,तौ वह सम्यग्दृष्टी ही है जैसैं हिरण स्वर रागादिकका नाम न जानैं हैं,अर ताका स्वरूपकौं पहिचानैं है तैसैं तुच्छवुद्धि जीवादिकका नाम न जानैं है, अर तिनका स्वरूपकौं पहिचानैं है। यहु मैं हौं, यह पर है, ए भाव बुरे हैं, ए भले हैं, ऐसैं स्वरूप पहिचानैं ताका नाम भावभासना है। शिवभूति[1] मुनि जीवादिकका नाम न जानैं था, अर "तुषमाषभिन्न" ऐसा घोषनैं लगा, सो यहु सिद्धान्तका शब्द था नाहीं परंतु आपा परका भावरूप ध्यान किया, तातैं केवली भया। अर ग्यारह अंगके पाठी जीवादितत्त्वनिका विशेषभेद जानैं, परंतु भासै नाहीं, तातैं मिथ्यादृष्टी ही रहै हैं। अब याकै तत्त्वश्रद्धान किसप्रकार हो है, सो कहिए है —

जिनशास्त्रनिविषैं कहे जीवके त्रस स्थावरादिरूप वा गुणस्थान-मार्गणादिरूप भेदनिकौं जानैं है, अर अजीवके पुद्गलादि भेदनिकौं वा तिनके वर्णादि विशेषनिकौं जानैं है। परंतु अध्यात्मशास्त्रनिविषैं भेदविज्ञानकौं कारणभूत वा वीतरागदशा होनेकौं कारणभूत जैसैं निरूपण किया है, तैसैं न जानैं हैं। वहुरि किसी प्रसंगतैं तैसैं भी जानना होय, तौ शास्त्र अनुसारि जानि तौ ले है। परंतु आपकौं आप

१ तुसमासं घोसंतो भावविसुद्धो महाणुभावो य।
णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुडो जाओ ॥—भावपा० ५३॥

जानि परका अंश भी न मिलावना अर आपका अंश भी परविषैं न मिलावना, ऐसा सांचा श्रद्धान नाहीं करै है। जैसैं अन्य मिथ्यादृष्टी निर्धारविना पर्यायबुद्धिकरि जानपनाविषैं वा वर्णादिविषैं अहंबुद्धि धारै हैं, तैसैं यहु भी आत्माश्रित ज्ञानादिविषैं वा शरीराश्रित उपदेश उपवासादि क्रियानिविषैं आपो मानैं है बहुरि शास्त्रके अनुसार कबहूँ सांची बात भी बनावै, परन्तु अंतरंग निर्धाररूप श्रद्धान नाहीं। तातैं जैसैं मतवाला माताकौं माता भी कहै, तौ स्याना नाहीं । तैसैं याकौं सम्यक्ती न कहिए। बहुरि जैसैं कोई औरहीकी बातैं करता होय, तैसैं आत्माका कथन करै;परंतु यहु आत्मा मैं हौं,ऐसा भाव नाहीं भासै बहुरि जैसैं कोई औरकूं औरतैं भिन्न बतावता होय, तैसैं आत्मा शरीरकी भिन्नता प्ररूपै। परन्तु मैं इस शरीरादिकतैं भिन्न हौं, ऐसा भाव भासै नाहीं। बहुरि पर्यायविषैं जीव पुद्गलकै परस्पर निमित्ततैं अनेक क्रिया हो है, तिनकौं दोय द्रव्यका मिलापकरि निपजी जानैं। यहु जीवकी क्रिया है, ताका पुद्गल निमित्त है, यहु पुद्गलकी क्रिया है, ताका जीव निमित्त है, ऐसा भिन्न-भिन्न भाव भासै नाहीं। इत्यादि भाव भासे विना जीव अजीवका सांचा श्रद्धानी न कहिए। तातैं जीव अजीव जाननेका तौ यह ही प्रयोजनथा,सो भया नाहीं। बहुरि आस्रवतत्त्वविषैं जे हिंसादि-रूप पापास्रव हैं, तिनकौं हेय जानैं हैं। अहिंसादिरूप पुण्यास्रव हैं, तिनकौं उपादेय मानैं है। सो ए तौ दोऊ ही कर्मबंधके कारण इनविषैं-उपादेयपनौं, माननौं,सोई मिथ्यादृष्टि है। सोही समयसारका बंधाधि-कारविषै कह्या है*—

---

* समयसार गा० २५४ से २५६,

सर्व जीवनिकै जीवन मरण सुख दुःख अपने कर्मके निमित्ततैं हो हैं। जहां अन्य जीव अन्य जीवकै इन कार्यनिका कर्त्ता होय, सोई मिथ्याध्यवसाय बंधका कारण है[1]। तहां अन्य जीवनिकौं जिवावनेका वा सुखी करनेका अध्यवसाय होय, सो तौ पुण्यबंधका कारण है, अर मारनेका अध्यवसाय होय, सो पापबंधका कारण है। ऐसैं अहिंसावत् सत्यादिक तौ पुण्यबंधकौं कारण हैं, अर हिंसावत् असत्यादिक पापबंधकौं कारण हैं। ए सर्व मिथ्याध्यवसाय हैं, ते त्याज्य हैं। तातैं हिंसादिवत् अहिंसादिककौं भी बंधका कारण जानि हेय ही मानना। हिंसाविषैं मारनेकी बुद्धि होय, सो वाका आयु पूरा हुवा विना मरै नाहीं। अपनी द्वेषपरणतिकरि आप ही पाप बांधै है। अहिंसाविषैं रक्षाकरनेकी बुद्धि होय, सो वाका आयु अवशेषविना जीवै नाहीं, अपनी प्रशस्त रागपरणतिकरि आप ही पुण्य बांधै है। ऐसैं ए दोऊ हेय हैं। जहां वीतराग होय दृष्टा ज्ञाता प्रवर्त्तै, तहां निर्बंध है। सो उपादेय है। सो ऐसी दशा न होइ, तावत् प्रशस्त रागरूप

१—सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय,
कर्मोदयान्मरण-जीवित-दुःखसौख्यम्।
अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य
कुर्यात्पुमान मरण जीवित दुःख सौख्यम्॥ ६॥
अज्ञानमेतदधिगम्य परात्परस्य,
पश्यन्ति ये मरण-जीवित-दुःख-सौख्यम्।
कर्माण्यहंकृतिरसेन चिकीर्षवस्ते,
मिथ्यादृशो नियतमात्महनो भवन्ति॥ ७॥

—समयसार कलश। बंधाधिकार

प्रवर्त्तौ। परंतु श्रद्धान तौ ऐसा राखौ—यहु भी बंधका कारण है—हेय है। श्रद्धानविषैं याकौं मोक्षमार्ग जानैं मिथ्यादृष्टी ही है।

बहुरि मिथ्यात्व अविरत कषाय योग ए आस्रवके भेद हैं, तिनकौं बाह्यरूप तौ मानैं, अंतरंग इन भावनिकी जातिकौं पहिचानैं नाहीं। अन्य देवादिकसेवनेरूप गृहीतमिथ्यात्वकौं मिथ्यात्व जानैं, अर अनादि अगृहीतमिथ्यात्व है, ताकौं न पहिचानैं। बहुरि बाह्य त्रस-स्थावरकी हिंसा वा इंद्रिय मनके विषयनिविषैं प्रवृत्ति ताकौं अवि-रत जानैं। हिंसाविषैं प्रमादपरणति मूल है, अर विषयसेवनविषैं अभिलाष मूल है, ताकौं न अवलोकै। बहुरि बाह्य क्रोधादि करना, ताकौं कषाय जानैं, अभिप्रायविषैं रागद्वेष वसै ताकौं न पहि-चानैं। बहुरि बाह्य चेष्टा होय, ताकौं योग जानैं, शक्तिभूत योगनिकौं न जानैं। ऐसैं आस्रवनिका स्वरूप अन्यथा जानै, बहुरि राग द्वेष मोहरूप जे आस्रवभाव हैं, तिनका तौ नाश करनेकी चिंता नाहीं। अर बाह्यक्रिया वा बाह्य निमित्त मेटनेका उपाय राखै, सो तिनके मैटैं आश्रव मिटता नाहीं। द्रव्यलिंगीमुनि अन्य देवादिककी सेवा न करै हैं, हिंसा वा विषयनिविषैं न प्रवर्त्तैं हैं, क्रोधादि न करै है, मन वचन कायकौं रोकैं है, तौ भी वाकें मिथ्यात्वादि च्यारौं आस्रव पाइए है। बहुरि कपटकरि भी ए कार्य न करै है। कपटकरि करैं, तौ ग्रै[illegible] पर्यंत कैसैं पहुंचैं। तातैं जो अंतरंग अभिप्रायविषैं [illegible] रागादिभाव हैं, सोही आस्रव हैं। ताकौं न [illegible] आस्रवतत्त्वका भी सत्य श्रद्धान नाहीं। [illegible] अशुभभावनिकरि नरकादिरूप पापका [illegible]

जानै अर शुभभावनिकरि देवादि रूप पुण्यका बंध होय, ताकौं भला जानैं। सो सर्व ही जीवनिकै दुखसामग्रीविषैं द्वेष, सुखसामग्रीविषैं राग पाईए है,सो ही याकै राग द्वेष करनेका श्रद्धान भया। जैसा इस पर्यायसंबंधी सुखदुखसामग्रीविषैं राग द्वेष करना, तैसा ही आगामी पर्यायसंबंधी सुखदुखसामग्रीविषैं राग द्वेष करना। बहुरि शुभअशुभावनिकरि पुण्यपापका विशेष तो अघाति कर्मनिविषैं हो है। सो अघातिकर्म आत्मगुणके घातक नाहीं। बहुरि शुभ अशुभ भावनिविषैं घातिकर्मनिका तो निरंतरबंध होय ते सर्व पापरूप ही हैं। अर तेई आत्मगुणके घातक हैं, तातैं अशुद्ध भावनिकरि कर्मबंध होय, तिसविषैं भला बुरा जानना सोई मिथ्याश्रद्धान है। सो ऐसैं श्रद्धानतैं बंधका भी याकै सत्यश्रद्धान नाहीं। बहुरि संवरतत्त्वविषैं अहिंसादिरूप शुभास्रव भाव तिनकौं संवर जानैं है। सो एक कारणतैं पुण्यबंध भी मानैं अर संवर भी मानैं, सो बनैं नाहीं।

यहां प्रश्न—जो मुनिनिकैं एकै काल एकभाव हो है। तहां उनकै बंध भी हो है अर संवर निर्जरा भी हो है, सो कैसैं है?

ताका समाधान—यह भाव मिश्ररूप है। किछू वीतराग भया है किछू सराग रह्या है। जे अंश वीतराग भए तिनकरि संवर है अर जे अंश सराग रहे, तिनकरि बंध है। सो एकभावतैं तौ दोय कार्य बनैं, परंतु एक प्रशस्तरागहीतैं पुण्यास्रव भी मानना अर संवरनिर्जरा भी मानना सो भ्रम है। मिश्रभावविषैं भी यहु सरागता है, यहु विरागता है, ऐसी पहचानि सम्यग्दृष्टीहीकैं होय। तातैं अवशेष सरागताकौं हेय श्रद्दै है। मिथ्यादृष्टीकै ऐसी पहचानि नाहीं तातैं सरागभाव

विषैं संवरका भ्रमकरि प्रशस्त रागरूप कार्यनिकौं उपादेय श्रद्हे है। बहुरि सिद्धांतविषैं गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय चारित्र इनकरि संवर हो है, ऐसा कह्या[1] है। सो इनकौं भी यथार्थ न श्रद्हे है। कैसैं, सो कहिए है:—

बाह्य मन वचन कायकी चेष्टा मेटैं, पापचिंतवन न करै, मौन धरै, गमनादि न करै, सो गुप्ति मानैं है सो यहां तौ मनविषैं भक्तिआदिरूप प्रशस्तरागादि नानाविकल्प हो है, वचन कायकी चेष्टा आप रोकि राखी है, तहां शुभप्रवृत्ति है, अर प्रवृत्तिविषैं गुप्तितो बनैं नाहीं। तातैं वीतरागभाव भए जहां मन वचन कायकी चेष्टा न होय, सो ही सांची गुप्ति गुप्ति है। बहुरि परजीवनिकी रक्षाकै अर्थ यत्नाचारप्रवृत्ति ताकौं समिति मानैं हैं। सो हिंसाके परिणामनितैं तौ पाप हो हैं, अर रक्षाके परिणामनितैं संवर कहोगे, तौ पुण्यबंधका कारण कौन ठहरैगा। बहुरि एषणासमितिविषैं दोष टालै है। तहां रक्षाका प्रयोजन है नाहीं। तातैं रक्षाहीकै अर्थ समिति नाहीं है। तौ समिति कैसैं हो है—मुनिनकै किंचित् राग भए गमनादि क्रिया हो हैं। तहां तिन क्रियानिविषैं अति आसक्तताके अभावतैं प्रमादरूप प्रवृत्ति न हो है। बहुरि और जीवनिकौं दुखी करि अपना गमनादि प्रयोजन न साधै हैं। तातैं स्वयमेव ही दया पलै है। ऐसैं सांची समिति हैं। बहुरि बंधादिकके भयतैं वा स्वर्गमोक्षकी चाहितैं क्रोधादि न करै हैं, सो यहां क्रोधादिकरनेका

---

१ स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षा परीषहजयचारित्रैः।

—तत्वा० सू० ९-२-४२

अभिप्राय तौ गया नाहीं। जैसैं कोई राजादिकका भयतैं वा महंतपना-का लोभतैं परस्त्री न सेवै है, तौ वाकौं त्यागी न कहिए। तैसैं ही यहु क्रोधादिका त्यागी नाहीं। तौ कैसैं त्यागी होय। पदार्थ अनिष्ट इष्ट भासैं क्रोधादि हो हैं। जब तत्त्वज्ञानके अभ्यासतैं कोई इष्ट अनिष्ट न भासैं, तब स्वयमेव ही क्रोधादिक न उपजैं, तब सांचा धर्म हो है। बहुरि अनित्यादि चिंतवनतैं शरीरादिककौं बुरा जानि हितकारी न जानि तिनतैं उदास होना ताका नाम अनुप्रेक्षा कहै हैं। सो यहु तौ जैसैं कोऊ मित्र था, तब उसतैं राग था, पीछैं वाका अवगुण देखि उदासीन भया, तैसैं शरीरादिकतैं राग था पीछैं अनित्यत्वादि अवगुण अव-लोकि उदासीन भया। सो ऐसी उदासीनता तौ द्वेषरूप है। जहां जैसा अपना वा शरीरादिकका स्वभाव है, तैसा पहचानि भ्रमकौं मेटि भला जानि राग न करना, बुरा जानि द्वेष न करना, ऐसी सांची उदासीनताके अर्थि यथार्थ अनित्यत्वादिकका चिंतवन सोई सांची अनुप्रेक्षा है।

बहुरि क्षुधादिक भए तिनके नाशका उपाय न करना, ताकौं परीषह सहना कहै हैं। सो उपाय तौ न किया, अर अंतरंग क्षुधादि अनिष्ट सामग्री मिले दुखी भया, रति आदिका कारण मिले सुखी भया, तौ सो दुख-सुखरूप परिणाम हैं, सोई आर्त्तध्यान रौद्र-ध्यान है। ऐसे भावनितैं संवर कैसैं होय? तातैं दुखका कारण मिले दुखी न होय, सुखका कारण मिले सुखी न होय, ज्ञेयरूपकरि तिनि-का जाननहारा ही रहै, सोई सांची परीषहका सहना है।

बहुरि हिंसादि सावद्ययोगका त्यागकौं चारित्र मानैं हैं। तहां

महाव्रतादिरूप शुभयोगकौं उपादेयपनैंकरि ग्रहण मानैं हैं। सो तत्त्वार्थसूत्रविषैं अस्रव पदार्थका निरूपण करतैं महाव्रत अणुव्रत भी आस्रवरूप कहे हैं। ए उपादेय कैसैं होय? अर आस्रव तौ बंधका साधक है, चारित्र मोक्षका साधक है तातैं महाव्रतादिरूप आस्रवभावनिकौं चारित्रपनौं संभवै नाहीं। सकल कषायरहित जो उदासीनभाव ताहीका नाम चारित्र है। जो चारित्रमोहके देशघाती स्पर्द्धकनिके उदयतैं महामंद प्रशस्त राग हो है, सो चारित्रका मल है। याकौं छूटता न जानि याका त्याग न करै है, सावद्ययोग ही का त्याग करै है। परन्तु जैसैं कोई पुरुष कंदमूलादि बहुत दोषीक हरितकायका त्याग करै है, अर केई हरितकायनिकौं भखै है। परन्तु ताकौं धर्म न मानै है। तैसैं मुनि हिंसादि तीव्रकषायरूप भावनिका त्याग करैं हैं, अर केई मंदकषायरूप महाव्रतादिकौं पालैं हैं, परन्तु ताकौं मोक्षमार्ग न मान हैं।

यहां प्रश्न—जो ऐसैं है, तौ चारित्रके तेरह भेदनिविषैं महाव्रतादि कैसैं कहे हैं?

ताका समाधान— यहु व्यवहारचारित्र कह्या है। व्यवहार नाम उपचारका है। सो महाव्रतादि भए ही वीतरागचारित्र हो है। ऐसा संबंध जानि महाव्रतादिविषैं चारित्रका उपचार किया है। निश्चयकरि निःकषाय भाव है, सोई सांचा चारित्र है। या प्रकार संवरके कारणनिकौं अन्यथा जानता संवरका सांचा श्रद्धानी न हो है।

बहुरि यहु अनशनादि तपतैं निर्जरा मानैं है। सो केवल बाह्यतप ही तौ किएं निर्जरा होय नाहीं। बाह्यतप तौ शुद्धोपयोग बधावनेके अर्थि कीजिए है। शुद्धोपयोग निर्जराका कारण है। तातैं उपचारकरि

तपकौं भी निर्जराका कारण कह्या है। जो बाह्य दुख सहना ही निर्जराका कारण होय, तौ तिर्यंचादि भी भूख तृषादि सहैं हैं।

तब वह कहै हैं वे तौ पराधीन सहैं है, स्वाधीनपनैं धर्मबुद्धितैं उपवासादिरूप तप करै, ताकैं निर्जरा हो है?

ताका समाधान—धर्मबुद्धितैं बाह्य उपवासादिक तौ किए, बहुरि तहां उपयोग अशुभ शुभ शुद्धरूप जैसैं परिणमै तैसैं परिणमो। घनें उपवासादि किए घनी निर्जरा होय, थोरे किए थोरी निर्जरा होय। जो ऐसैं नियम ठहरै, तौ उपवासादिक ही मुख्य निर्जराका कारण ठहरै। सो तौ बनैं नाहीं। परिणाम दुष्ट भए उपवासादिकतैं निर्जरा होनी कैसैं संभवै? बहुरि जो कहिए—जैसा अशुभ शुभ शुद्धरूप उपयोग परिणमै, ताकै अनुसार बंध निर्जरा है। तौ उपवासादि तप मुख्य निर्जराका कारण कैसैं रह्या? अशुभ शुभ परिणाम बंधके कारण ठहरै, शुद्ध परिणाम निर्जराके कारण ठहरै।

यहां प्रश्न—जो तत्त्वार्थसूत्रविषैं "तपसा निर्ज्जरा च" [९-३] ऐसा कैसैं कह्या है?

ताका समाधान—शास्त्रविषैं "इच्छानिरोधस्तपः" ऐसा कह्या है। इच्छाका रोकना ताका नाम तप है। सो शुभ अशुभ इच्छा मिटै उपयोग शुद्ध होय, तहां निर्जरा हो है। तातैं तपकरि निर्जरा कही है।

यहां कोऊ कहै, आहारादिरूप अशुभकी तौ इच्छा दूरि भए ही तप होय। परंतु उपवासादिक वा प्रायश्चित्तादि शुभ कार्य हैं, तिनकी इच्छा तौ रहै?

ताका समाधान—ज्ञानी जननिकै उपवासादि की इच्छा नाहीं

है, एक शुद्धोपयोग की इच्छा है। उपवासादि किए शुद्धोपयोग बधै है, तातैं उपवासादि करै हैं। बहुरि जो उपवासादिकतैं शरीरकी वा परिणामनिकी शिथिलताकरि शुद्धोपयोग शिथिल होता जानैं, तहां आहारादिक ग्रहै हैं। जो उपवासादिकहीतैं सिद्धि होय, तौ अजितनाथादिक तेईस तीर्थंकर दीक्षा लेय दोय उपवास ही कैसैं धरते? उनकी तौ शक्ति भी बहुत थी। परंतु जैसैं परिणाम भए तैसैं बाह्य साधनकरि एक वीतराग शुद्धोपयोगका अभ्यास किया।

यहां प्रश्न—जो ऐसैं हैं, तौ अनशनादिककौ तपसंज्ञा कैसैं भई?

ताका समाधान—इनिकौं बाह्यतप कहै हैं। सो बाह्यका अर्थ यहु, जो बाह्य औरनिकौं दीसै यहु तपस्वी है। बहुरि आप तौ फल जैसा अंतरंग परिणाम होगा तैसा ही पावैगा। जातैं परिणामशून्य शरीरकी क्रिया फलदाता नाहीं।

बहुरि यहां प्रश्न—जो शास्त्रविषैं तौ अकामनिर्जरा कही है। तहां बिना चाहि भूख तृषादि सहे निर्जरा हो है। तौ उपवासादिकरि कष्ट सहैं कैसैं निर्जरा न होय?

ताका समाधान—अकामनिर्जराविषैं भी बाह्य निमित्त तौ बिना चाहि भूख तृषाका सहना भया है। अर तहां मंदकषायरूप भाव होय, तौ पापकी निर्जरा होय, देवादि पुण्यका बंध होय। अर जो तीव्रकषाय भए भी कष्ट सहे पुण्यबंध होय, तौ सबै तिर्यंचादिक देव ही होंय। सो बनैं नाहीं। तैसैं ही चाहिकरि उपवासादि किए तहां भूख तृषादि कष्ट सहिए है। सो यहु बाह्य निमित्त है। यहां जैसा परिणाम होय, तैसा फल पावै है। जैसैं अन्नकौं प्राण कह्या। बहुरि ऐसैं

बाह्यसाधन भए अंतरंगतपकी वृद्धि हो है। तातैं उपचारकरि इनकौं तप कहे हैं। जो बाह्य तप तौ करै अर अंतरंग तप न होय, तौ उपचारतैं भी वाकौं तपसंज्ञा नाहीं। सोई कह्या है—

कषायविषयाहारो त्यागो यत्र विधीयते।
उपवासः स विज्ञेयः शेषं लंघनकं विदुः॥

जहां कषाय विषय आहारका त्याग कीजिए, सो उपवास जानना। अवशेषकौं लंघन श्रीगुरु कहैं हैं।

यहां कहैगा, जो ऐसैं है, तौ हम उपवासादि न करैंगे?

ताकौं कहिए है—उपदेश तौ ऊंचा चढ़नेकौं दीजिए है। तू उलटा नीचा पड़ैगा, तौ हम कहा करैंगे। जो तू मानादिकतैं उपवासादि करै है, तौ करि, वा मति करै; किछू सिद्धि नाहीं। अर जो धर्मबुद्धितैं आहारादिकका अनुराग छोड़ै है,तौ जेता राग छूट्या, तेता ही छूट्या। परंतु इसहीकौं तप जानि इसतैं निर्जरा मानि संतुष्ट मति होहु। बहुरि अंतरंग तपनिविषैं प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, त्याग, ध्यानरूप जो क्रिया ताविषै बाह्य प्रवर्त्तन सो तौ बाह्य तपवत् ही जानना। जैसैं अनशनादि बाह्य क्रिया हैं, तैसैं ए भी बाह्य क्रिया हैं। तातैं प्रायश्चित्तादि बाह्य साधन अंतरंग तप नाहीं है। ऐसा बाह्य प्रवर्त्तन होतैं, जो अंतरंग परिणामनिकी शुद्धता होय, ताका नाम अंतरंग तप जानना। तहां भी इतना विशेष है बहुत शुद्धता भए शुद्धोपयोगरूप परिणति होइ, तहां तौ निर्जरा ही है, बंध नाहीं हो है। अर स्तोक शुद्धता भए शुभोपयोगका भी अंश रहै, तौ जेती शुद्धता भई

ताकरि तौ निर्जरा है। अर जेता शुभ भाव है ताकरि बंध है। ऐसा मिश्रभाव युगपत् हो है, तहां बंध वा निर्जरा दोऊ हो हैं।

यहां कोऊ कहै, शुभ भावनितैं पापकी निर्जरा हो है, पुण्यका बंध हो है, शुद्ध भावनितैं दोऊनिकी निर्जरा हो है, ऐसा क्यों न कहो ?

ताका उत्तर—मोक्षमार्गविषैं स्थितिका तौ घटना सर्व ही प्रकृतीनिका होय। तहां पुण्यपापका विशेष है ही नाहीं। अर अनुभागका घटना पुण्यप्रकृतीनिका शुद्धोपयोगतैं भी होता नाहीं। ऊपरि ऊपरि पुण्यप्रकृतीनिकै अनुभागका तीव्र बंध उदय हो है,अर पापप्रकृतिके परमाणु पलटि शुभप्रकृतिरूप होंय ऐसा संक्रमण शुभ शुद्ध दोऊ भाव होतैं होय। तातैं पूर्वोक्त नियम संभवै नाहीं। विशुद्धताहीकै अनुसारि नियम संभवै है। देखो, चतुर्थगुणस्थानवाला शास्त्राभ्यास आत्मचिंतवनादि कार्य करै, तहां भी निर्जरा नाहीं, बंध भी घना होय। अर पंचमगुणस्थानवाला विषय-सेवनादि कार्य करै तहां भी वाकै गुणश्रेणि निर्जरा हुआ करै बंध भी थोरा होय। बहुरि पंचमगुणस्थानवाला उपवासादि वा प्रायश्चित्तादि तप करै, तिस कालविषैं भी वाकै निर्जरा थोरी, अर छठागुणस्थानवाला आहार विहारादि क्रिया करै, तिस कालविषैं भी वाकै निर्जरा घनी। उसतैं भी बंध थोरा होय तातैं बाह्य प्रवृत्तिकै अनुसारि निर्जरा नाहीं है। अंतरंग कषायशक्ति घटैं विशुद्धता भए निर्जरा हो है। सो इसका प्रकट स्वरूप आगैं निरूपण करैंगे, तहां जानना। ऐसैं अनशनादि क्रियाकौं तपसंज्ञा उपचारतैं जाननी। याहीतैं इनकौं व्यवहार तप कह्या है। व्यवहार उपचारका एक अर्थ है। बहुरि ऐसा साधनतैं जो वीतरागभावरूप

विशुद्धता होय,सो सांचा तप निर्जराका कारण जानना। यहां दृष्टांत—जैसें धनकौं वा अन्नकौं प्राण कह्या। सो धनतैं अन्न ल्याय भक्षण किए प्राण पोषे जांय, तातैं धन अन्नकौं प्राण कह्या। कोई इंद्रियादिक प्राणनिकौं न जानैं, अर इनहीकौं प्राण जानि संग्रह करै, तौ मरण ही पावै। तैसें अनशनादिकौं वा प्रायश्चित्तादिकौं तप कह्या, सो अनशनादि साधनतैं प्रायश्चित्तादिरूप प्रवर्त्तैं वीतरागभावरूप सत्य तप पोष्या जाय। तातैं उपचारकरि अनशनादिकौं वा प्रायश्चित्तादिकौं तप कह्या। कोई वीतरागभावरूप तपकौं न जानैं अर इनिहीकौं तप जानि संग्रह करै, तौ संसारहीमैं भ्रमै। बहुत कहा, इतना समझि लैंना—निश्चय धर्मतौ वीतरागभाव है। अन्य नाना विशेष बाह्यसाधन अपेक्षा उपचारतैं किए हैं,तिनकौं व्यवहारमात्र धर्मसंज्ञा जाननी। इस रहस्यकौं न जानैं, तातैं वाकै निर्जराका भी सांचा श्रद्धान नाहीं है।

बहुरि सिद्ध होना ताकौं मोक्ष मानैं है। बहुरि जन्म जरा मरण रोग क्लेशादि दुख दूरि भए अनंतज्ञान करि लोकालोकका जानना भया, त्रिलोकपूज्यपना भया, इत्यादि रूपकरि ताकी महिमा जानैं है। सो सर्व जीवनिकै दुख दूर करनेकी वा ज्ञेय जाननेंकी वा पूज्य होनेकी चाहि है। इनिहीकै अर्थ मोक्षकी चाहि कीनी, तौ याकै और जीवनिका श्रद्धानतैं कहा विशेषता भई। बहुरि याकै ऐसा भी अभिप्राय है—स्वर्गविषैं सुख है, तिनितैं अनंतगुणों मोक्षविषैं सुख है। सो इन गुणकारविषैं स्वर्ग मोक्ष सुखकी एक जाति जानैं है। तहां स्वर्गविषैं तौ विषयादि सामग्रीजनित सुख हो है, ताकी जाति याकौं भासै है अर मोक्षविषैं विषयादि सामग्री है नाहीं, सो वहांका सुखकी

जाति याकौं भासै तौ नाहीं, परन्तु स्वर्गतैं भी मोक्षकौं उत्तम महापुरुष कहै हैं, तातैं यहु भी उत्तम हो मानैं है। जैसैं कोऊ गानका स्वरूप न पहिचानै, परन्तु सर्व सभाके सराहैं, तातैं आप भी सराहै है। तैसैं यहु मोक्षकौं उत्तम मानैं है।

यहां वह कहै है—शास्त्रविषैं भी तौ इन्द्रादिकतैं अनंतगुणा सुख सिद्धनिकै प्ररूपै हैं ?

ताका उत्तर—जैसैं तीर्थंकरके शरीरकी प्रभाकौं सूर्यप्रभातैं कोट्यां गुणी कही। तहां तिनकी एक जाति नाहीं। परन्तु लोकविषै सूर्यप्रभाकी महिमा है, तातैं भी वहुत महिमा जनावनेकौं उपमालंकार कीजिए है। तैसैं सिद्धसुखकौं इंद्रादिसुखतैं अनंतगुणा कह्या। तहां तिनकी एक जाति नाहीं। परंतु लोकविषैं इंद्रादिसुखकी महिमा है, तातैं भी वहुत महिमा जनावनेंकौं उपमालंकार कीजिए है।

वहुरि प्रश्न—जो सिद्धसुख अर इंद्रादिसुखकी एक जाति वह जानै है, ऐसा निश्चय तुम कैसैं किया ?

ताका समाधान—जिस धर्मसाधनका फल स्वर्ग मानैं है, तिस धर्मसाधनहीका फल मोक्ष मानै है। कोई जीव इंद्रादिपद पावै, कोई मोक्ष पावै, तहां तिन दोऊनिकै एक जाति धर्मका फल भया मानैं। ऐसा तौ मानैं, जो जाकै साधन थोरा हो है, सो इंद्रादिपद पावै है, जाकै संपूर्ण साधन होय, सो मोक्ष पावै है। परंतु तहां धर्मकी जाति एक जानै है। सो जो कारणकी एक जाति जानैं, ताकौं कार्यकी भी एक जातिका श्रद्धान अवश्य होय। जातैं कारणविशेष भए ही कार्य विशेष हो है। तातैं हम यहु निश्चय किया, वाकै अभिप्राय

विषैं इंद्रादिसुख अर सिद्धसुखकी एक जातिका श्रद्धान है। बहुरि कर्मनिमित्ततैं आत्माकै औपाधिक भाव थे, तिनका अभाव होतैं शुद्धस्वभावरूप केवल आत्मा आप भया। जैसैं परमाणु स्कंधतैं बिछुरें शुद्ध हो हैं, तैसैं यहु कर्मादिकतैं भिन्न होए शुद्ध हो है। विशेप इतना-वह दोऊ अवस्थाविषैं दुखी सुखी नाहीं, आत्मा अशुद्ध अवस्थाविषैं दुखी था, अब ताके अभाव होनेतैं निराकुललक्षण अनंतसुखकी प्राप्ति भई। बहुरि इंद्रादिकनिकै जो सुख है, सो कषायभावनिकरि आकुलतारूप है। सो वह परमार्थतैं दुखी ही है। तातैं वाकी याकी एकजाति नाहीं। बहुरि स्वर्गसुखका कारण प्रशस्तराग है, मोक्षसुखका कारण वीतरागभाव है, तातैं कारणविषैं भी विशेष है। सो ऐसा भाव याकौं भासै नाहीं। तातैं मोक्षका भी याकै सांचा श्रद्धान नाहीं है। या प्रकार याकै सांचा तत्त्वश्रद्धान नाहीं है। इसही वासतैं समयसारविषै[1] कहा है--"अभव्यकै तत्त्वश्रद्धान भए भी मिथ्यादर्शन ही रहै है।" वा प्रवचनसारविषै[2] कहा है--"आत्मज्ञानशून्य तत्त्वार्थश्रद्धान कार्यकारी नाहीं।"

बहुरि यहु व्यवहारदृष्टिकरि सम्यग्दर्शनके आठ अंग कहे हैं, तिनिकौं पालै है। पचीस दोष कहे हैं, तिनिकौं टालै है। संवेगादिक गुण कहे हैं, तिनिकौं धारै है। परंतु जैसैं बीज बोए बिना खेतका सब साधन किए भी अन्न होता नाहीं, तैसैं सांचा तत्त्वश्रद्धान भए बिना

१. सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो य फासेदि।
धम्मं भोगणिमित्तं ण दु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥ २७५ ॥

२. अतः आत्मज्ञानशून्यमागमज्ञान-तत्त्वार्थश्रद्धान-संयतत्वयौगपद्यमप्यकिंचित्करमेव ॥ ३-३६ ॥

सम्यक्त होता नाहीं। सो पंचास्तिकायव्याख्याविषैं जहां अंतविषै व्यवहाराभासवालेका वर्णन किया है,तहां ऐसा ही कथन किया है। या प्रकार याकै सम्यग्दर्शनके अर्थि साधन करतैं भी सम्यग्दर्शन न हो है।

[सम्यग्ज्ञानका अन्यथा स्वरूप]

अव यहु सम्यग्ज्ञानकै अर्थि शास्त्रविषैं शास्त्राभ्यास किए सम्यग्ज्ञान होना कह्या है, तातैं जो शास्त्राभ्यासविषैं तत्पर रहैं हैं, तहां सीखना सिखावना, यादि करना, वांचना, पढ़ना आदि क्रियाविषै तौ उपयोगकौं रमावै है। परंतु वाकै प्रयोजन ऊपरि दृष्टि नाहीं है। इस उपदेशविषै मुझकौं कार्यकारी कहा, सो अभिप्राय नाहीं। आप शास्त्राभ्यासकरि औरनिकौं संबोधन देनेका अभिप्राय राखै है। घने जीव उपदेश मानैं तहां संतुष्ट हो है। सो ज्ञानाभ्यास तौ आपकै अर्थि कीजिए है और प्रसंग पाय परका भी भला होय तौ परका भी भला करै। वहुरि कोई उपदेश न सुनै, तौ मति सुनौ, आप काहेकौं विषाद कीजिए। शास्त्रार्थका भाव जानि आपका भला करना। वहुरि शास्त्राभ्यासविषैं भी केई तौ व्याकरण न्याय काव्य आदि शास्त्रनिकौं वहुत अभ्यासैं हैं। सो ए तौ लोकविषैं पंडितता प्रगट करनेके कारण हैं। इनविषैं आत्महितनिरूपण तौ हैं नाहीं। इनिका तौ प्रयोजन इतना ही हैं। अपनी बुद्धि वहुत होय, तौ थोरा वहुत इनका अभ्यासकरि पीछैं आत्महितके साधक शास्त्र तिनिका अभ्यास करना। जो बुद्धि थोरी होय, तौ आत्महितके साधक सुगम शास्त्र तिनहीका अभ्यास करै। ऐसा न करना, जो व्याकरणादिकका ही अभ्यास करतैं करतैं आयु पूरा होय जाय, अर तत्वज्ञानकी प्राप्ति न वनैं।

यहां कोऊ कहै--ऐसैं है तो व्याकरणादिकका अभ्यास न करना। ताकौं कहिए है--

तिनका अभ्यासविना महान् ग्रंथनिका अर्थ खुलै नाही। तातैं तिनका भी अभ्यास करना योग्य है।

बहुरि यहां प्रश्न--महान् ग्रंथ ऐसे क्यौं किए, जिनका अर्थ व्याकरणादि विना न खुलै। भाषाकरि सुगमरूप हितोपदेश क्यौं न लिख्या। उनकै किछू प्रयोजन तौ था नाहीं?

ताका समाधान-भाषाविषैं भी प्राकृत संस्कृतादिकके ही शब्द हैं। परंतु अपभ्रंश लिए हैं। बहुरि देश देशनिविषैं भाषा अन्य अन्य प्रकार है सो महंत पुरुष शास्त्रनिविषैं अपभ्रंश शब्द कैसैं लिखैं। बालक तोतला बोलै, तौ बड़े तौ न बोलैं। बहुरि एकदेशकी भाषारूप शास्त्र दूसरे देशविषैं जाय, तौ तहां ताका अर्थ कैसैं भासै। तातैं प्राकृत संस्कृतादि शुद्ध शब्दरूप ग्रंथ जोड़े। बहुरि व्याकरण विना शब्दका अर्थ यथावत् न भासै। न्यायविना लक्षण परीक्षा आदि यथावत् न होय सकै। इत्यादि वचनद्वारि वस्तुका स्वरूप निर्णय व्याकरणादि विना नीकै न होता जानि तिनकी आम्नाय अनुसार, कथन किया। भाषाविषैं भी तिनकी थोरी बहुत आम्नाय आएं ही उपदेश होय सकै है। तिनकी बहुत आम्नायतैं नीकै निर्णय होय सकै है।

बहुरि जो कहौगे—ऐसैं है, तौ अब भाषारूप ग्रंथ काहेकौं बनाईए है?

ताका समाधान—कालदोषतैं जीवनिकी मंद बुद्धि जानि केई जीवनिकै जेता ज्ञान होगा, तेता ही होगा ऐसा अभिप्राय विचारि

भाषाग्रंथ कीजिए है। सो जे जीव व्याकरणादिकका अभ्यास न करि सकैं, तिनकौं ऐसे ग्रंथनिकरि ही अभ्यास करना। बहुरि जे जीव शब्दनिकी नाना युक्ति लिए अर्थ करनेकौं ही व्याकरण अवगाहै हैं, वादादिकरि महंत होनेकौं न्याय अवगाहै हैं, चतुरपना प्रगट करनेके अर्थि काव्य अवगाहै हैं. इत्यादि लौकिक प्रयोजन लिए इनिका अभ्यास करैं हैं, ते धर्मात्मा नाहीं। बनैं जेता थोरा बहुत अभ्यास इनका करि आत्महितकै अर्थि तत्त्वादिकका निर्णय करै हैं, सोई धर्मात्मा पंडित जानना।

बहुरि केई जीव पुण्य पापादिक फलके निरूपक पुराणादि शास्त्र, वा पुण्य पापक्रियाके निरूपक आचारादि शास्त्र, वा गुणस्थान मार्गणा कर्मप्रकृति त्रिलोकादिकके निरूपक करणानुयोगके शास्त्र तिनका अभ्यास करै हैं। सो जो इनिका प्रयोजन आप न विचारै, तब तौ सूवाकासा ही पढ़ना भया। बहुरि जो इनिका प्रयोजन विचारै है, तहां पापकौं बुरा जानना, पुण्यकौ भला जानना, गुणस्थानादिकका स्वरूप जानि लेना. इनिका अभ्यास करैंगे, तितना हमारा भला है; इत्यादि प्रयोजन विचारया, सो इसतैं इतना तौ होसी—नरकादिक न होसी, स्वर्गादिक होसी; परन्तु मोक्षमार्गकी तौ प्राप्ति होय नाहीं। पहलैं सांचा तत्त्वज्ञान होय, तहां पीछैं पुण्यपापका फलकौं संसार जानैं, शुद्धोपयोगतैं मोक्ष मानैं, गुणस्थानादिरूप जीवका व्यवहार निरूपण जानैं, इत्यादि जैसाका तैसा श्रद्धान करता संता इनिका अभ्यास करै, तौ सम्यग्ज्ञान होय। सो तत्त्वज्ञानकौं कारण अध्यात्मरूप द्रव्यानुयोगके शास्त्र हैं। बहुरि केई जीव तिन

करैं, कोई धर्मपर्वविषैं बारंबार भोजनादि करै। सो धर्मबुद्धि होय, तौ यथायोग्य सर्व धर्मपर्वनिविषैं यथायोग्य संयमादि धरै। बहुरि कबहू तौ कोई धर्मकार्यविषैं बहुत धन खरचै, कबहू कोई धर्मकार्य आनि प्राप्त भया होय, तौ भी तहां थोरा भी धन न खरचै। सो धर्मबुद्धि होय, तौ यथाशक्ति यथायोग्य सर्व ही धर्मकार्यनिविषैं धन खरच्या करै। ऐसैं ही अन्य जानना। बहुरि जिनकै सांचा धर्मसाधन नाहीं, ते कोई क्रिया तौ बहुत बड़ी अंगीकार करैं अर कोई हीनक्रिया किया करैं। जैसैं धनादिकका तौ त्याग किया, अर चोखा भोजन चोखा वस्त्र इत्यादि विषयनिविषैं विशेष प्रवर्त्तैं। बहुरि कोई जामा पहरना, स्त्रीसेवन करना, इत्यादि कार्यनिका तौ त्यागकरि धर्मात्मापना प्रकट करैं। अर पीछैं खोटे व्यपारादि कार्य करैं तहां लोकनिंद्य पापक्रियाविषैं प्रवर्त्तैं ऐसैं ही कोई क्रिया अति ऊंची, कोई क्रिया अति नीची करैं। तहां लोकनिंद्य होय, धर्मकी हास्य करावैं। देखो अमुक धर्मात्मा ऐसे कार्य करै हैं। जैसैं कोई पुरुष एक वस्त्र तौ अति उत्तम पहरै, एक वस्त्र अति हीन पहरै, तौ हास्य ही होय। तैसैं यहु हास्य पावै है। सांचा धर्मकी तौ यहु आम्नाय है, जेता अपना रागादि दूरि भया होय, ताकै अनुसार जिस पदविषैं जो धर्मक्रिया संभवै, सो सर्व अंगीकार करै। जो थोरा रागादि मिट्या होय, तौ नीचा ही पदविषैं प्रवर्त्तैं। परंतु ऊंचा पद धराय, नीची क्रिया न करै।

यहां प्रश्न—जो स्त्रीसेवनादिकका त्याग ऊपरिकी प्रतिमाविषैं कह्या है, सो नीचली अवस्थावाला तिनका त्याग करै कि न करै। ताका

पाड़े तैसैं यहु कार्य भया। चाहिए तौ ऐसैं, जैसैं व्यापारीका प्रयोजन नफा है, सर्व विचारकरि जैसैं नफा घना हौय तैसैं करै। तैसैं ज्ञानीका प्रयोजन वीतरागभाव है। सर्व विचारिकरि जैसैं वीतरागभाव घना होय, तैसैं करैं। जातैं मूलधर्म वीतरागभाव है। याही प्रकार अविवेकी जीव अन्यथा धर्म अंगीकार करै हैं, तिनकै तौ सम्यक्चारित्रका आभास भी न होय। बहुरि केई जीव अणुव्रत महाव्रतादिरूप यथार्थ आचरण करै हैं। बहुरि आचरणकै अनुसारि ही परिणाम हैं। कोई माया लोभादिकका अभिप्राय नाहीं है। इनिकौं धर्म जानि मोक्षके अर्थि इनिका साधन करै हैं। कोई स्वर्गादिक भोगनिकी भी इच्छा न राखैं है, परंतु तत्त्वज्ञान पहलैं न भया, तातैं आप तौ जानैं मोक्षका साधन करौं हौं, अर मोक्षका साधन जो है ताकौं जानैं भी नाहीं। केवल स्वर्गादिकहीका साधन करैं। सो मिश्रीकौं अमृत जानि भखै हैं, अमृतका गुण तौ न होय। आपकी प्रतीतिकै अनुसारि फल होता नाहीं। फल जैसा साधन करै, तैसा ही लागै है। शास्त्रविषैं ऐसा कह्या है—चारित्रविषैं 'सम्यक्' पद है, सो अज्ञानपूर्वक आचरणकी निवृत्तिकै अर्थि है। तातैं पहलैं तत्त्वज्ञान होय, तहां पीछैं चारित्र होय, सो सम्यक्चारित्र नाम पावै है। जैसैं कोई खेतीवाला बीज तौ बोवै नाहीं अर अन्य साधन करै, तौ अन्नप्राप्ति कैसैं होय। घास फूस ही होय। तैसैं अज्ञानी तत्त्वज्ञानका तौ अभ्यास करै नाहीं, अर अन्य साधन करै, तौ मोक्षप्राप्ति कैसैं होय, देवपदादिक ही होय। तहां केई जीव तौ ऐसे हैं, तत्त्वादिकका नीकैं नाम भी न जानैं, केवल व्रतादिकविषैं ही प्रवर्त्तै है। केई जीव ऐसे

है, इसप्रकार सम्यग्दर्शन ज्ञानका अयथार्थ साधनकरि व्रतादिविषैं वर्ते हैं। सो यद्यपि व्रतादिक यथार्थ आचरैं, तथापि यथार्थ श्रद्धान ज्ञान बिना सर्व आचरण मिथ्याचारित्र ही है। सोई समयसारका कलशाविषैं कहा है—

क्लिश्यन्तां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभिः
क्लिश्यन्तां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरम्।
साक्षान्मोक्ष इदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं
ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमन्ते न हि ॥१॥

—निर्जराधिकार ॥१०॥

यहां कोऊ जानैगा, बाह्य तौ अणुव्रत महाव्रतादि साधैं हैं, अंतरंग परिणाम नाहीं वा स्वर्गादिककी वांछाकरि साधै है, सो ऐसैं साधैं तौ पापबंध होय। द्रव्यलिंगी मुनि ऊपरिम ग्रैवेयकपर्यंत जाय है। परावर्त्तनिविषैं इकतीस सागर पर्यंत देवायुकी प्राप्ति अनंत वार होनी लिखी है सो ऐसे ऊंचेपद तौ तब ही पावै, जब अंतरंग परिणामपूर्वक महाव्रत पालै, महामंदकषायी होय, इस लोक परलोकके भोगादिककी चाहि न होय, केवल धर्मबुद्धितैं मोक्षाभिलाषी हुवा साधन साधै। तातैं द्रव्यलिंगीकै स्थूल तौ अन्यथापनौं है नाहीं, सूक्ष्म अन्यथापनों है सो सम्यग्दृष्टीकौं भासै है। अब इनकै धर्मसाधन कैसैं है, अर तामैं अन्यथापनों कैसैं है ?, सो कहिए हैं—

प्रथम तौ संसारविषैं नरकादिकका दुख जानि स्वर्गादिविषैं भी जन्म मरणादिका दुख जानि संसारतैं उदास होय, मोक्षकौं चाहै है। सो इनि दुःखनिकौं तौ दुख सब ही जानैं हैं, इन्द्र अहमिन्द्रादिक विषयानुराग तैं इन्द्रियजनित सुख भोगवैं हैं ताकौं भी दुख जानि निराकुल सुखअवस्थाकौं पहचानि मोक्ष चाहै हैं, सोई सम्यग्दृष्टि जानना। बहुरि विषयसुखादिकका फल नरकादिक है, शरीर अशुचि विनाशीक है-पोषनेंयोग्य नाहीं—कुटुंबादिक स्वार्थके सगे हैं, इत्यादि परद्रव्यनिका दोष विचारि तिनिका तौ त्याग करै है। व्रतादिकका फल स्वर्गमोक्ष है, तपश्चरणादि पवित्र अविनाशी फलके दाता हैं, तिनकरि शरीर सोखनें योग्य है, देव गुरु शास्त्रादि हितकारी हैं, इत्यादि परद्रव्यनिका गुण विचारि तिनहीका अंगीकार करैं है। इत्यादि प्रकारकरि कोई परद्रव्यकौं बुरा जानि अनिष्ट श्रद्है है। कोई परद्रव्यकौं

याश्रित पुण्यकार्यनिविषैं कर्त्तापना अपना माननैं लागा, ऐसें पर्यायाश्रित कार्यनिविषैं अहंबुद्धि माननैंकी समानता भई। जैसैं मैं जीव मारौं हौं, मैं परिग्रहधारी हौं, इत्यादिरूप मानि थी, तैसैंही मैं जीवनिकी रक्षा करौं हौं, मैं नग्न परिग्रहरहित हौं, ऐसी मानि भई। सो पर्यायाश्रित कार्यविषैं अहंबुद्धि है, सो ही मिथ्यादृष्टि है। सोई समयसारविषैं कह्या है—

ये तु कर्त्तारमात्मानं पश्यन्ति तमसावृताः ॥
सामान्यजनवत्तेषां न मोक्षोपि मुमुक्षुतां ॥१॥

[सर्व वि० श्लो० ७]

याका अर्थ—जे जीव मिथ्या अंधकारव्याप्त होत संतैं आपकौं पर्यायाश्रित क्रियाका कर्त्ता मानैं हैं, ते जीव मोक्षाभिलाषी हैं, तौऊ तिनकै जैसें अन्यमती सामान्य मनुष्यनिकै मोक्ष न होय, तैसैं मोक्ष न हो है। जातैं कर्त्तापनाका श्रद्धानकी समानता है। बहुरि ऐसैं आप कर्त्ता होय श्रावकधर्म वा मुनिधर्मकी क्रियाविषैं मन वचन कायकी प्रवृत्ति निरंतर राखै है। जैसैं उन क्रियानिविषैं भंग न होय, तैसैं प्रवर्त्तै है। सो ऐसे भाव तौ सराग हैं। चारित्र है, सो वीतरागभावरूप है। तातैं ऐसे साधनकौं मोक्षमार्ग मानना मिथ्याबुद्धि है।

यहां प्रश्न—जो सराग वीतराग भेदकरि दोयप्रकार चारित्र कह्या है, सो कैसैं है ?

ताका उत्तर—जैसैं तंदुल दोय प्रकार हैं—एक तुषसहित हैं एक तुषरहित हैं, तहां ऐसा जानना—तुष है सो तंदुलका स्वरूप नाहीं। तंदुलविषैं दोष है। अर कोई स्याना तुषसहित तंदुलकासंग्रह करै था,

कारण यहु है—याकै तत्त्वनिका श्रद्धान ज्ञान सांचा भया नाहीं। पूर्वैं वर्णन किया, तैसैं तत्त्वनिका श्रद्धान ज्ञान भया है। तिस ही अभिप्रायतैं सर्व साधन करै है। सो इन साधननिका अभिप्रायकी परंपराकौं विचारैं कषायनिका अभिप्राय आवै है। सो कैसैं ? सो सुनहु—यहु पापको कारण रागादिककौं तौ हेय जानि छोरैं है, परंतु पुण्यका कारण प्रशस्तरागकौं उपादेय मानैं है। ताके बधनेंका उपाय करै है। सो प्रशस्तराग भी तौ कषाय है। कषायकौं उपादेय मान्या, तब कषाय करनेका ही श्रद्धान रह्या। अप्रशस्त परद्रव्यनिस्यौं द्वेषकरि प्रशस्त परद्रव्यनिविषैं राग करनेका अभिप्राय भया। किछू परद्रव्यनिविषैं साम्यभावरूप अभिप्राय न भया।

यहां प्रश्न—जो सम्यग्दृष्टी भी तौ प्रशस्तरागका उपाय राखै है।

ताका उत्तर यहु—जैसैं काहूकै बहुत दंड होता था, सो वह थोरा दंड देनेका उपाय राखै है। अर थोरा दंड दिए हर्ष भी मानैं है। परंतु श्रद्धानविषैं दंड देना, अनिष्ट ही मानैं है। तैसैं सम्यग्दृष्टीकै पापरूप बहुत कषाय होता था, सो यहु पुण्यरूप थोरा कषायकरनेका उपाय राखै है। अर थोरा कषाय भए हर्ष भी मानै है। परंतु श्रद्धानविषैं कषायकौं हेय ही मानै है। बहुरि जैसैं कोऊ कुमाईका कारण जानि व्यापारादिकका उपाय राखै है। उपाय बनिआए हर्ष मानै है। तैसैं द्रव्यलिंगी मोक्षका कारण जानि प्रशस्तरागका उपाय राखै है। उपाय बनिआए हर्ष मानैं है। ऐसैं प्रशस्तरागका उपायविषैं वा हर्षविषैं समानता होतैं भी सम्यग्दृष्टीकै तौ दंडसमान मिथ्यादृष्टिकैं

सेवनका त्याग करै है, परंतु यावत् विषयसेवन रुचै, तावत् रागका अभाव न कहिए। बहुरि जैसैं अमृतका आस्वादी देवकौं अन्य भोजन स्वयमेव न रुचै, तैसैं स्वरसका आस्वादकरि विषयसेवनकी रुचि याकै न हो है। या प्रकार फलादिककी अपेक्षा परीषहसहनादिकौं सुखका कारण जानैं है। अर विषयसेवनादिकौं दुखका कारण जानै है। बहुरि तत्कालविषैं परीषह सहनादिकतैं दुख होना मानैं है। विषय-सेवनादिकतैं सुख मानैं है। बहुरि जिनतैं सुख दुख होना मानिए, तिनविषैं इष्ट अनिष्ट बुद्धितैं रागद्वेष रूप अभिप्राय का अभाव होय नाहीं, बहुरि जहां रागद्वेष है, तहां चारित्र होय नाहीं। तातैं यहु द्रव्यलिंगी विषयसेवन छोरि तपश्चरणादि करै है, तथापि असं-यमी ही है। सिद्धांतविषैं असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टीतैं भी याकौं हीन कह्या है। जातैं उनकै चौथा पांचवाँ गुणस्थान है, याकै पहला ही गुणस्थान है।

यहाँ कोऊ कहै कि—असंयत देशसयत सम्यग्दृष्टीकै कषायनिकी प्रवृत्ति विशेष है, अर द्रव्यलिंगी मुनिकै थोरी है, याहीतै असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टी तौ सोलहवां स्वर्गपर्यंत ही जाय अर द्रव्यलिंगी उपरिम ग्रैवेयकपर्यंत जाय। तातैं भावलिंगी मुनितैं तौ द्रव्यलिंगीकौं हीन कहौ, असंयत देशसयत सम्यग्दृष्टीतैं याकौं हीन कैसैं कहिए?

ताका समाधान—असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टिकै कषायनिकी प्रवृत्ति तौ है, परन्तु श्रद्धानविषै किसी ही कषायके करनैका अभिप्राय नाहीं। बहुरि द्रव्यलिंगीकै शुभकषाय करनैंका अभिप्राय पाइए है। श्रद्धानविषै तिनकौं भले जानैं हैं। तातैं श्रद्धानअपेक्षा असंयत सम्य-ग्दृष्टीतैं भी याकै अधिक कषाय है। बहुरि द्रव्यलिंगीकै योगनिकी

प्रकृति अत्यन्त घनी हो है। अर अघातिकर्मनिविषैं पुण्य पापबंधका विशेष शुभ अशुभ योगनिकै अनुसार है। तातैं उपरिम ग्रैवेयकपर्यंत पहुंचै है, सो किछू कार्यकारी नाहीं। जातैं अघातिया कर्म आत्मगुणके घातक नाहीं। इनिकै उदयतैं ऊंचे नीचे पद पाए तौ कहा भया। ए तौ बाह्य संयोगमात्र संसारदशाके स्वांग हैं। आप तौ आत्मा है, तातैं आत्मगुणके घातक ए कर्म हैं तिनका हीनपना कार्यकारी है। सो घातिया कर्मनिका बंध बाह्य प्रवृत्तिकै अनुसार नाहीं। अंतरंग कषाय-शक्तिकै अनुसार है। याहीतैं द्रव्यलिंगीतैं असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टिकै घातिकर्मनिका बंध थोरा है द्रव्यलिंगीकै तौ सर्वघातिकर्मनिका बंध बहुत स्थिति अनुभाग लिए होय। अर असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टिकै मिथ्यात्व अनंतानुबंधी आदि कर्मका तौ बंध है ही नाहीं। अवशेषनिका बंध हो है, सो स्तोक स्थिति अनुभाग लिए हो है। बहुरि द्रव्यलिंगीकै कदाचित् गुणश्रेणीनिर्जरा न होय सम्यग्दृष्टिकै कदाचित् हो है। देशसकल संयम भए निरंतर हो है। याहीतैं यहु मोक्षमार्गी भया है। तातैं द्रव्यलिंगी मुनि असंयत देशसंयत सम्यग्दृष्टीतैं हीन शास्त्रविषैं कह्या है। सो समयसार शास्त्रविषैं द्रव्यलिंगी मुनिका हीनपना गाथा वा टीका कलशानिविषैं प्रगट किया है। बहुरि पंचास्ति-कायकी टीकाविषैं जहां केवल व्यवहारावलंबीका कथन किया है, तहां व्यवहार पंचाचार होतैं भी ताका हीनपना ही प्रगट किया है। बहुरि प्रवचनसारविषैं संसारतत्त्व द्रव्यलिंगीकौं कह्या। बहुरि परमा-त्मप्रकाशादि अन्य शास्त्रनिविषैं भी इस व्याख्यानकौं स्पष्ट किया है। बहुरि द्रव्यलिंगीकै जो जप तप शील संयमादि क्रिया पाइए है,

तिनकौं भी अकार्यकारी इन शास्त्रनिविषैं जहां दिखाये हैं, सो तहां देखि लेना। यहां ग्रंथ वधनेके भयतैं नाहीं लिखिए है। ऐसैं केवल व्यवहाराभासके अवलंबी मिथ्यादृष्टी तिनका निरूपण किया।

[निश्चय व्यवहारावलम्बी जैनाभास]

अब निश्चय व्यवहार दोऊ नयनिके आभासकौं अवलंबै हैं, ऐसे मिथ्यादृष्टी तिनिका निरूपण कीजिए है—

जे जीव ऐसा मानैं हैं—जिनमतविषैं निश्चय व्यवहार दोय नय कहे हैं, तातैं हमकौं तिनि दोऊनिका अंगीकार करना। ऐसैं विचारि जैसैं केवल निश्चयाभासके अवलंबीनिका कथन किया था, तैसैं तौ निश्चयका अंगीकार करै हैं अर जैसैं केवल व्यवहारभासके अवलंबीनिका कथन किया था,तैसैं तौ व्यवहारका अंगीकार करै हैं। यद्यपि ऐसैं अंगीकार करने विषैं दोऊ नयनिविषैं परस्पर विरोध है, तथापि करैं कहा, सांचा तो दोऊ नयनिका स्वरूप भास्या नाहीं, अर जिनमतविषैं दोय नय कहे, तिनिविषैं काहूकौं छोड़ी भी जाती नाहीं। तातैं भ्रम लिए दोऊनिका साधन साधै हैं, ते भी जीव मिथ्यादृष्टी जानने।

अब इनिकी प्रवृत्तिका विशेष दिखाईए है—अंतरंगविषैं आप तौ निर्द्धार करि यथावत् निश्चय व्यवहार मोक्षमार्गकौं पहिचान्या नाहीं; जिनआज्ञा मानि निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्ग दोय प्रकार मानैं है। सो मोक्षमार्ग दोय नाहीं। मोक्षमार्गका निरूपण दोय प्रकार है। जहां सांचा मोक्षमार्गकौं मोक्षमार्ग निरूपण सो निश्चय मोक्षमार्ग है। अर जहां जो मोक्षमार्ग तौ है नाहीं, परंतु मोक्षमार्गका निमित्त है, वा सह-

पिए सो निश्चय, अर घृतसंयोगका उपचारकरि वाकौं ही घृतका घड़ा कहिए, सो व्यवहार। ऐसैं ही अन्यत्र जानना। तातैं तू किसी को निश्चय मानैं, किसीकौं व्यवहार मानैं, सो भ्रम है। बहुरि तेरे माननैं विषै भी निश्चय व्यवहारकै परस्पर विरोध आया। जो तू आपकौं सिद्ध मान शुद्ध मानैं है, तौ व्रतादिक काहेकौं करै है। जो व्रतादिकका साधनकरि सिद्ध भया चाहै है,तो वर्त्तमानविषैं शुद्ध आत्माका अनुभवन मिथ्या भया। ऐसैं दोऊ नयनिकै परस्पर विरोध है। तातैं दोऊ नयनिका उपादेयपना बनैं नाहीं।

यहां प्रश्न—जो समयसारादिविषैं शुद्ध आत्माका अनुभवकौं निश्चय कह्या है। व्रत तप संयमादिककौं व्यवहार कह्या है, तैसैं ही हम मानैं हैं।

ताका समाधान—शुद्ध आत्माका अनुभव सांचा मोक्षमार्ग है। तातैं वाकौं निश्चय कह्या। यहां स्वभावतैं अभिन्न परभावतैं भिन्न ऐसा शुद्ध शब्दका अर्थ जानना। संसारीकौं सिद्ध मानना ऐसा भ्रमरूप अर्थ शुद्ध शब्दका न जानना। बहुरि व्रत तप आदि मोक्षमार्ग है नाहीं, निमित्तादिककी अपेक्षा उपचारतैं इनकौ मोक्षमार्ग कहिए है, तातैं इनकौं व्यवहार कह्या। ऐसैं भूतार्थ अभूतार्थ मोक्षमार्गपनाकरि इनकौं निश्चय व्यवहार कहे हैं। सो ऐसैं ही मानना। बहुरि ए दोऊ ही सांचे मोक्षमार्ग हैं। इन दोऊनिकौं उपादेय मानना, सो तौ मिथ्याबुद्धि ही है। तहां वह कहै है—श्रद्धान तौ निश्चयका राखैं हैं, अर प्रवृत्ति व्यवहाररूप राखैं हैं, ऐसैं हम दोऊनिकौं अंगीकार करैं हैं। सो भी बनैं नाहीं। जातैं निश्चयका निश्चयरूप व्यवहारका

यहां व्यवहारका तौ त्याग कराया, तातैं निश्चयकौं अंगीकारकरि निजमहिमारूप प्रवर्त्तना युक्त है। बहुरि षट्पाहुड़विषैं कह्या है—

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जागदे सकज्जम्मि।
जो जागदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणे कज्जे[1] ॥ १ ॥

याका अर्थ—जो व्यवहारविषैं सूता है, सो जोगी अपने कार्यविषैं जागैं है। बहुरि जो व्यवहारविषैं जागै है, सो अपने कार्यविषैं सूता है। तातैं व्यवहारनयका श्रद्धान छोड़ि निश्चयनयका श्रद्धान करना योग्य है। व्यवहारनय स्वद्रव्य परद्रव्यकौं वा तिनके भावनिकौं वा कारण कार्यादिककौं काहूकौं काहूविषैं मिलाय निरूपण करै है। सो ऐसे ही श्रद्धानतैं मिथ्यात्व है। तातैं याका त्याग करना। बहुरि निश्चयनय तिनहीकौं यथावत् निरूपै है, काहूकौं काहूविषैं न मिलावै है। ऐसे ही श्रद्धानतैं सम्यकत हो है। तातैं याका श्रद्धान करना। यहां प्रश्न—जो ऐसैं है,तौ जिनमार्गविषै दोऊ नयनिका ग्रहण करना कह्या है, सो कैसैं ?

ताका समाधान—जिनमार्गविषैं कहीं तौ निश्चयनयकी मुख्यता लिए व्याख्यान है ताकौं तौ 'सत्यार्थ ऐसैं ही है' ऐसा जानना। बहुरि कहीं व्यवहारनयकी मुख्यता लिएं व्याख्यान है,ताकौं 'ऐसैं है नाहीं निमित्तादि अपेक्षा उपचार किया है'ऐसा जानना। इस प्रकार जाननेंका नाम ही दोऊ नयनिका ग्रहण है। बहुरि दोऊ नयनिके व्याख्यानकौं समान सत्यार्थ जानि ऐसैं भी है ऐसैं भी है, ऐसा भ्रमरूप प्रवर्त्तनेंकरि तौ दोऊ नयनिका ग्रहण करना कह्या है नाहीं।

---

१ या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥—गीता २–६६

उपजाय ज्ञान दर्शनादि गुणपर्यायरूप जीवके विशेष किए,तब जानने-वाला जीव है, देखनेवाला जीव है, इत्यादि प्रकार लिए वाकै जीवकी पहिचानि भई। बहुरि निश्चयकरि वीतरागभाव मोक्षमार्ग है। ताकौं जे न पहिचानैं, तिनिकौ ऐसैं ही कह्या करिए, तौ वै समझैं नाहीं। तब उनकौं व्यवहारनयकरि तत्त्वश्रद्धानज्ञानपूर्वक परद्रव्यका निमित्त मेटनेंकी सापेक्षकरि व्रत शील संयमादिकरूप वीतरागभावके विशेष दिखाए, तब वाकै वीतरागभावकी पहचानि भई। याही प्रकार अन्यत्र भी व्यवहारविना निश्चयका उपदेशका न होना जानना। बहुरि यहां व्यवहारकरि नर नारकादि पर्यायहीकौं जीव कह्या, सो पर्यायहीकौं जीव न मानि लैना। पर्याय तौ जीव पुद्गलका संयोगरूप है। तहां निश्चयकरि जीवद्रव्य जुदा है, ताहीकौ जीव मानना। जीवका संयोगतैं शरीरादिककौं भी उपचारकरि जीव कह्या, सो कहनें मात्र ही है। परमार्थतैं शरीरादिक जीव होते नाहीं। ऐसा ही श्रद्धान करना। बहुरि अभेद आत्माविषैं ज्ञानदर्शनादि भेद किए, सो तिनकौं भेदरूप ही न मानि लैनें। भेद तौ समझावनेके अर्थ हैं। निश्चयकरि आत्मा अभेद ही है। तिसहीकौं जीववस्तु मानना। संज्ञा संख्यादिकरि भेद कहे, सो कहनें मात्र ही हैं। परमार्थतैं जुदे जुदे हैं नाहीं। ऐसा ही श्रद्धान करना। बहुरि परद्रव्यका निमित्त मेटनेकी अपेक्षा व्रत शील संयमादिककौं मोक्ष-मार्ग कह्या। सो इनहीकौं मोक्षमार्ग न मानि लेना। जातैं परद्रव्यका ग्रहण त्याग आत्माकै होय, तौ आत्मा परद्रव्यका कर्त्ता हर्त्ता होय। सो कोई द्रव्य कोई द्रव्यकै आधीन है नाहीं। तातैं आत्मा अपने भाव

रागादिक हैं, तिनकौं छोड़ि वीतरागी हो है। सो निश्चयकरि वीतराग भाव ही मोक्षमार्ग है। वीतराग भावनिकै अर व्रतादिकनिकै कदाचित् कार्यकारणपनो हैं। तातैं व्रतादिककौं मोक्षमार्ग कहे, सो कहने मात्र ही हैं। परमार्थतैं बाह्य क्रिया मोक्षमार्ग नाहीं, ऐसा ही श्रद्धान करना। ऐसैं ही अन्यत्र भी व्यवहारनयका अंगीकार करना जानि लेना।

यहां प्रश्न—जो व्यवहारनय परकौं उपदेशविषैं ही कार्यकारी है कि अपना भी प्रयोजन साधै है ?

ताका समाधान—आप भी यावत् निश्चयनयकरि प्ररूपित वस्तुकौं न पहिचानैं, तावत् व्यवहारमार्गकरि वस्तुका निश्चय करै। तातैं नीचली दशाविषैं आपकौं भी व्यवहारनय कार्यकारी है। परंतु व्यवहारकौं उपचार मात्र मानि वाकै द्वारि वस्तुका श्रद्धान ठीक करै, तौ कार्यकारी होय। बहुरि जो निश्चयवत् व्यवहार भी सत्यभूत मानि वस्तु ऐसैं ही है, ऐसा श्रद्धान करै, तौ उलटा अकार्यकारी होय जाय। सो ही पुरुषार्थसिद्ध्युपायविषैं कह्या है—

अबुधस्य बोधनार्थं मुनीश्वरा देशयन्त्यभूतार्थम्।
व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति ॥ ६ ॥
माणवक एव सिंहो यथा भवत्यनवगीतसिंहस्य।
व्यवहार एव हि तथा निश्चयतां यात्यनिश्चयज्ञस्य ॥७॥

इनका अर्थ—मुनिराज अज्ञानीके समझावनेकौं असत्यार्थ जो व्यवहारनय ताकौं उपदेशै है। जो केवल व्यवहारहीकौं जानैं है, ताकौं उपदेश ही देना योग्य नाहीं है। बहुरि जैसैं जो सांचा सिंहकौं न

जानैं, ताकै बिलाव ही सिंह है, तैसैं जो निश्चयकौं न जानै, ताकै व्यवहार ही निश्चयपणाकौं प्राप्त हो है।

तहां कोई निर्विचार पुरुष ऐसैं कहै—तुम व्यवहारकौं असत्यार्थ हेय कहो हौ, तौ हम व्रत शील संयमादिका व्यवहार कार्य काहेकौं करैं--सर्व छोड़ि देवैंगे। ताकौं कहिए है—किछू व्रत शील संयमादिकका नाम व्यवहार नाहीं है। इनकौं मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है, सो छोड़ि दे। बहुरि ऐसा श्रद्धानकरि जो इनकौं तौ बाह्य सहकारी जानि उपचारतैं मोक्षमार्ग कह्या है। ए तौ परद्रव्याश्रित हैं। बहुरि सांचा मोक्षमार्ग वीतरागभाव है, सो स्वद्रव्याश्रित है। ऐसैं व्यवहारकौं असत्यार्थ हेय जानना। व्रतादिककौं छोड़नेतैं तौ व्यवहार-का हेयपना होता है नाहीं। बहुरि हम पूछैं हैं—व्रतादिककौं छोड़ि कहा करैगा? जो हिंसादिरूप प्रवर्त्तैगा, तौ तहां तौ मोक्षमार्गका उपचार भी संभवै नाहीं। तहां प्रवर्त्तनेतैं कहा भला होयगा, नरकादिक पावैगा। तातैं ऐसैं करना, तौ निर्विचारपना है। बहुरि व्रतादिकरूप परिणति मेटि केवल वीतराग उदासीन भावरूप होना बनैं, तौ भलैं ही है। सो नीचली दशाविषैं होय सकै नाहीं। तातैं व्रतादिसाधन छोड़ि स्वच्छंद होना योग्य नाहीं। या प्रकार श्रद्धानविषैं निश्चयकौं, प्रवृत्तिविषैं व्यवहारकौं, उपादेय मानना, सो भी मिथ्याभाव ही है।

बहुरि यहु जीव दोऊ नयनिका अंगीकार करनेके अर्थि कदाचित् आपकौं शुद्ध सिद्धसमान रागादिरहित केवलज्ञानादिसहित आत्मा अनुभवै है, ध्यानमुद्रा धारि ऐसे विचारविषैं लागै है। सो ऐसा आप नाहीं, परंतु भ्रमकरि मैं ऐसा ही हौं, ऐसा मानि संतुष्ट हो है। कदाचित्

वचनद्वारि निरूपण ऐसा ही करै है। सो निश्चय तौ यथावत् वस्तुकौं प्ररूपै, प्रत्यक्ष जैसा आप नाहीं तैसा आपकौ मानना, सो निश्चय नाम कैसैं पावै। जैसा केवल निश्चयाभासवाला जीवकै पूर्वैं अयथार्थपना कह्या था, तैसैं ही याकै जानना। अथवा यह ऐसैं मानैं है, जो इस नयकरि आत्मा ऐसा है, इस नयकरि ऐसा है, सो आत्मा तौ जैसा है तैसा है ही, तिसविषैं नयकरि निरूपण करनेका जो अभिप्राय है, ताकौं न पहिचानैं है। जैसैं आत्मा निश्चयकरि तौ सिद्धसमान केवलज्ञानादिसहित द्रव्यकर्म—नोकर्म—भावकर्मरहित है, व्यवहार-नयकरि संसारी मतिज्ञानादिसहित वा द्रव्यकर्म—नोकर्म—भावकर्म-सहित है, ऐसा मानैं है। सो एक आत्माके ऐसे दोय स्वरूप तौ होंय नाहीं। जिस भावहीका सहितपना तिस भावहीका रहितपना एक-वस्तुविषैं कैसैं संभवै ? तातैं ऐसा मानना भ्रम है। तौ कैसैं हैं—जैसैं राजा रंक मनुष्यपनेकी अपेक्षा समान हैं, तैसैं सिद्ध संसारी जीवत्व-पनेकी अपेक्षा समान कहे हैं। केवलज्ञानादि अपेक्षा समानता मानिए, सो है नाहीं। संसारीकै निश्चयकरि मतिज्ञानादिक ही हैं। सिद्धकैं केवलज्ञान है। इतना विशेष है—संसारीकै मतिज्ञानादिक कर्मका निमित्ततैं है, तातैं स्वभावअपेक्षा संसारीकै केवलज्ञानकी शक्ति कहिए तौ दोष नाहीं। जैसैं रंकमनुष्यकै राजा होने की शक्ति पाईए, तैसैं यहु शक्ति जाननीं। बहुरि द्रव्यकर्म नोकर्म पुद्गलकरि निपजे हैं, तातैं निश्चयकरि संसारीकै भी इनका भिन्नपना है। परंतु सिद्धवत् इनका कारण—कार्यसंबंध भी न मानैं, तौ भ्रम ही है। बहुरि भावकर्म आत्माका भाव है, सो निश्चयकरि आत्माहीका है। कर्मके निमित्त-

तैं हो है, तातैं व्यवहारकरि कर्मका कहिए है। बहुरि सिद्धवत् संसारीकै भी रागादिक न मानना, कर्महीका मानना यहु भी भ्रम ही है। याही प्रकारकरि नयकरि एक ही वस्तुकौं एक भावअपेक्षा वैसा भी मानना, वैसा भी मानना, सो तौ मिथ्याबुद्धि है। बहुरि जुदे भावनिकी अपेक्षा नयनिकी प्ररूपणा है, ऐसैं मानि यथासंभव वस्तुकौं मानना सो सांचा श्रद्धान है। तातैं मिथ्यादृष्टी अनेकांतरूप वस्तुकौं मानैं, परंतु यथार्थ भावकौं पहिचानि मानि सकै नाहीं, ऐसा जानना।

बहुरि इस जीवकै व्रत शील संयमादिकका अंगीकार पाईए है, सो व्यवहारकरि 'ए भी मोक्षके कारण हैं, ऐसा मानि तिनकौं उपादेय मानैं हैं। सो जैसैं केवल व्यवहारावलम्बी जीवकै पूर्वै अयथार्थपना कह्या था, तैसैं ही याकै भी अयथार्थपना जानना। बहुरि यह ऐसैं भी मानैं है—जो यथायोग्य व्रतादि क्रिया तौ करनी योग्य है, परंतु इनविषैं ममत्त्व न करना। सो जाका आप कर्त्ता होय, तिसविषैं ममत्व कैसैं न करिए। अर आप कर्त्ता न है,तौ मुझकौं करनो योग्य है, ऐसा भाव कैसैं किया अर जो कर्त्ता है,तौ वह अपना कर्म भया, तब कर्त्ताकर्मसंबंध स्वयमेव ही भया। सो ऐसी मानिआ तौ भ्रम है। तौ कैसैं है—बाह्य व्रतादिक हैं, सौ तौ शरीरादि परद्रव्यके आश्रय हैं। परद्रव्यका आप कर्त्ता है नाहीं। तातैं तिसविषैं कर्तृत्वबुद्धि भी न करनी। अर तहां ममत्व भो न करना। बहुरि व्रतादिकविषैं ग्रहण त्यागरूप अपना शुभोपयोग होय, सो अपने आश्रय है। ताका आप कर्त्ता है, तातैं तिसविषैं कर्तृत्वबुद्धि भी माननी। अर तहां ममत्व भी करना। बहुरि

इस शुभोपयोगकौं वंधका ही कारण जानना,मोक्षका कारण न जानना। जातैं बंध अर मोक्षकै तौ प्रतिपक्षीपना है। तातैं एक ही भाव पुण्यबंधकौं भी कारण होय, अर मोक्षकौं भी कारण होय, ऐसा मानना भ्रम है। तातैं व्रत अव्रत दोऊ विकल्परहित जहां परद्रव्यके ग्रहण त्यागका किछू प्रयोजन नाहीं, ऐसा उदासीन वीतराग शुद्धोपयोग सोई मोक्षमार्ग है। बहुरि नीचली दशाविषैं केई जीवनिकै शुभोपयोग अर शुद्धोपयोगका युक्तपना पाइए है। तातैं उपचारकरि व्रतादिक शुभोपयोगकौं मोक्षमार्ग कह्या है। वस्तुविचारतैं शुभोपयोग मोक्षका घातक ही है। जातैं वंधकौ कारण सोई मोक्षका घातक है ऐसा श्रद्धान करना। बहुरि शुद्धोपयोगहीकौं उपादेय मानि ताका उपाय करना। शुभोपयोग अशुभोपयोगकौं हेय जानि तिनके त्यागका उपाय करना। जहां शुद्धोपयोग न होय सकै. तहां अशुभोपयोगकौं छोड़ि शुभहीविषैं प्रवर्त्तना। जातैं शुभोपयोगतैं अशुभोपयोगविषैं अशुद्धताकी अधिकता है। बहुरि शुद्धोपयोग होय,तब तौ परद्रव्यका साक्षीभूत ही रहै है। तहां तौ किछू परद्रव्यका प्रयोजन ही नाहीं। बहुरि शुभोपयोग होय, तहां वाह्य व्रतादिककी प्रवृत्ति होय, अर अशुभोपयोग होय, तहां वाह्य अव्रतादिककी प्रवृत्ति होय। जातैं अशुद्धोपयोगकै अर परद्रव्यकी प्रवृत्तिकै निमित्त नैमित्तिक संबंध पाइए है। बहुरि पहलै अशुभोपयोग छूटि शुभोपयोग होइ, पीछैं शुभोपयोग छूटि शुद्धोपयोग होइ। ऐसी क्रमपरिपाटी है। बहुरि कोई ऐसैं मानैं कि शुभोपयोग है,सो शुद्धोपयोगकौं कारण है। सो जैसैं अशुभोपयोग छूटि शुद्धोपयोग हो है, तैसैं शुभोपयोग छूटि शुद्धोपयोग हो है। ऐसैं ही कार्य कारणपना होय, तौ शुभोपयोगका कारण अशुभोपयोग ठहरै।

अथवा द्रव्यलिंगीकै शुभोपयोग तौ उत्कृष्ट हो है, शुद्धोपयोग होता ही नाहीं। तातैं परमार्थतैं इनकै कारणकार्यपना है नाहीं। जैसैं रोगीकै बहुत रोग था, पीछैं स्तोक रोग भया, तौ वह स्तोक रोग तौ निरोग होनेंका कारण है नाहीं। इतना है स्तोक रोग रहैं निरोग होनेका उपाय करै, तौ होइ जाय। बहुरि जो स्तोक रोगहीकौं भला जानि ताका राखनेका यत्न करै, तौ निरोग कैसैं होय। तैसैं कषायीकै तीव्रकषायरूप अशुभोपयोग था, पीछैं मंदकषायरूप शुभोपयोग भया, तौ वह शुभोपयोग तौ निःकषाय शुद्धोपयोग होनेकौं कारण है नाहीं। इतना है—शुभोपयोग भए शुद्धोपयोगका यत्न करै, तौ होय जाय। बहुरि जो शुभोपयोगहीकौं भला जानि ताका साधन किया करै, तौ शुद्धोपयोग कैसैं होय। तातैं मिथ्यादृष्टीका शुभोपयोग तौ शुद्धोपयोग-कौं कारण है नाहीं। सम्यग्दृष्टीकै शुभोपयोग भए निकट शुद्धोपयोग प्राप्ति होय, ऐसा मुख्यपनाकरि कहीं शुभोपयोगकौं शुद्धोपयोगका कारण भी कहिए है ऐसा जानना। बहुरि यह जीव आपकौं निश्चय व्यव-हाररूप मोक्षमार्गका साधक मानैं है। तहां पूर्वोक्त प्रकार आत्माकौं शुद्ध मान्या, सो तौ सम्यग्दर्शन भया। तैसैं ही जान्या सो सम्य-ग्ज्ञान भया। तैसैं ही विचारविषैं प्रवर्त्या सो सम्यक्चारित्र भया। ऐसैं तौ आपकै निश्चय रत्नत्रय भया मानैं। सो मैं प्रत्यक्ष अशुद्ध सो शुद्ध कैसैं मानौं, जानौं, विचारौं हौं, इत्यादि विवेकरहित भ्रमतैं संतुष्ट हो है। बहुरि अरहंतादि विना अन्य देवादिककौं न मानैं है, वा जैनशास्त्र अनुसार जीवादिकै भेद सीख लिए हैं, तिनहीकौं मानैं है औरकौं न मानैं, सो तौ सम्यग्दर्शन

भया। बहुरि जैनशास्त्रनिका अभ्यासविषैं बहुत प्रवर्त्तै है, सो सम्यग्ज्ञान भया। बहुरि व्रतादिरूप क्रियानिविषैं प्रवर्त्तै है, सो सम्यक्चारित्र भया। ऐसैं आपकै व्यवहार रत्नत्रय भया मानैं। सो व्यवहार तौ उपचारका नाम है। सो उपचार भी तौ तब बनैं, जब सत्यभूत निश्चय रत्नत्रयका कारणादिक होय। जैसैं निश्चय रत्नत्रय सधै, तैसैं इनकौं साधै, तौ व्यवहारपनो भी संभवै। सो याकै तौ सत्यभूत निश्चय रत्नत्रयकी पहचानि ही भई नाहीं। यहु ऐसैं कैसैं साधि सकै। आज्ञाअनुसारी हुवा देख्यांदेखी साधन करै है। तातैं याकैं निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग न भया। आगैं निश्चय व्यवहार मोक्षमार्गका निरूपण करैंगे, ताका साधन भए ही मोक्षमार्ग होगा। ऐसैं यहु जीव निश्चयाभासकौं मानैं जानैं है। परंतु व्यवहार साधनकौं भी भला जानैं है, तातैं स्वच्छन्द होय अशुभरूप न प्रवर्त्तै है। व्रतादिक शुभोपयोगरूप प्रवर्त्तै है, तातैं अंतिम ग्रैवेयक पर्यंत पदकौं पावै है। बहुरि जो निश्चयाभासकी प्रबलतातैं अशुभरूप प्रवृत्ति होय जाय, तौ कुगतिविषैं भी गमन होय, परिणामनिकै अनुसारि फल पावै है। परंतु संसारका ही भोक्ता रहै है। सांचा मोक्षमार्ग पाए बिना सिद्धपदकौं न पावै है। ऐसैं निश्चयाभास व्यवहाराभास दोऊनिके अवलम्बी मिथ्यादृष्टी तिनिका निरूपण किया।

[सम्यक्त्वके सन्मुख मिथ्यादृष्टि]

अब सम्यक्त्वकौं सन्मुख जे मिथ्यादृष्टी तिनका निरूपण कीजिए है—

देशतैं अन्यथा सांच भासै, वा संदेह रहै निर्द्धार न होय, तौ वहुरि विशेष ज्ञानी होय तिनकौं पूछै। वहुरि वह उत्तर दे, वाकौं विचारै ऐसैं ही यावत् निर्द्धार न होय, तावत् प्रश्न उत्तर करै। अथवा समान बुद्धिके धारक होय, तिनकौं आपकै जैसा विचार भया होय तैसा कहै। प्रश्न उत्तरकरि परस्पर चर्चा करैं। वहुरि जो प्रश्नोत्तरविषैं निरूपण भया होय, ताकौं एकांतविषैं विचारै। याही प्रकार अपनें अन्तरंगविषैं जैसैं उपदेश दिया था, तैसैं ही निर्णय होय भाव न भासै, तावत् ऐसैं ही उद्यम किया करै। वहुरि अन्यमतीनिकरि कल्पित तत्त्वनिका उपदेश दिया है, ताकरि जैन उपदेश अन्यथा भासै, संदेह होय, तौ भी पूर्वोक्त प्रकारकरि उद्यम किए जैसैं जिनदेवका उपदेश है, तैसैं ही सांच है मुझकौं भी ऐसैं ही भासै है, ऐसा निर्णय होय। जातैं जिनदेव अन्यथावादी हैं नाहीं?

यहां कोऊ कहै—जिनदेव अन्यथावादी नाहीं हैं, तौ जैसैं उनका उपदेश है, तैसैं श्रद्धान करि लीजिए, परीक्षा काहेकौं कीजिए?

ताका समाधान—परीक्षा किए विना यहु तौ मानना होय, जो जिनदेव ऐसैं कह्या है, सो सत्य है। परन्तु उनका भाव आपकौं भासै नाहीं। वहुरि भाव भासैं विना निर्मल श्रद्धान न होय। जाकी काहूका वचनहीकरि प्रतीति करिए, ताकी अन्यका वचनकरि अन्यथा भी प्रतीति होय जाय, तौ शक्तिअपेक्षा वचनकरि कीन्हीं प्रतीति अप्रतीतिवत् है। वहुरि जाका भाव भास्या होय, ताकौं अनेक प्रकारकरि भी अन्यथा न मानैं। तातैं भाव भासैं प्रतीति होय सोई सांची प्रतीति है। वहुरि जो कहोगे, पुरुषप्रमाणतैं वचनप्रमाण कीजिए है, तौ पुरुष-

की भी प्रमाणता स्वयमेव न होय। वाके कैई वचननिकी परीक्षा पहलैं करि लीजिए, तब पुरुषकी प्रमाणता होय।

यहां प्रश्न—उपदेश तौ अनेक प्रकार, किस-किसकी परीक्षा करिए?

ताका समाधान—उपदेशविषैं केई उपादेय केई हेय केई ज्ञेय तत्त्व निरूपिए है। तहां उपादेय हेय तत्त्वनिकी तौ परीक्षा करि लैंना। जातैं इन विषैं अन्यथापनों भए अपना बुरा हो है। उपादेयकौं हेय मानि लै, तौ बुरा होय, हेयकौं उपादेय मानि लै, तौ बुरा होय।

बहुरि जो कहौगा, आप परीक्षा न करी, अर जिनवचनहीतैं उपादेयकौं उपादेय जानैं, हेयकौं हेय जानैं, तौ कैसैं बुरा होय?

ताका समाधान—अर्थका भाव भासें विना वचनका अभिप्राय न पहिचानैं। यहु तौ मानि ले,जो मैं जिनवचन अनुसारि मानौं हौं। परन्तु भाव भासे विना अन्यथापनो होय जाय। लोकविषैं भी किंकरकौं किसी कार्यकौं भेजिए सो वह उस कार्यका भाव जानैं, तौ कार्यकौं सुधारै, जो भाव न भासैं, तौ कहीं चूकि ही जाय। तातैं भाव भासनेके अर्थि हेय उपादेय तत्त्वनिकी परीक्षा अवश्य करनी।

बहुरि वह कहै है,—जो परीक्षा अन्यथा होय जाय, तौ कहा करिए?

ताका समाधान—जिनवचन अर अपनी परीक्षा इनकी समानता होय, तब तौ जानिए सत्य परीक्षा भई। यावत् ऐसैं न होय तावत् जैसैं कोई लेखा करै है,ताकी विधि न मिलै तावत् अपनी चूककौं ढूंढै।

तैसैं यह अपनी परीक्षाविषैं विचार किया करै। बहुरि जो ज्ञेयतत्त्व हैं, तिनकी परीक्षा होय सकै, तो परीक्षा करै। नाहीं, यह अनुमान करैं, जो हेय उपादेय तत्त्व ही अन्यथा न कहै, तौ ज्ञेयतत्त्व अन्यथा किसै अर्थ कहै। जैसैं कोऊ प्रयोजनरूप कार्यनिविषैं झूठ न बोलै, सो अप्रयोजनविषैं झूठ काहेकौं बोलै। तातैं ज्ञेयतत्त्वनिका परीक्षाकरि भी वा आज्ञाकरि स्वरूप जानिए। तिनका यथार्थ स्वरूप न भासै, तौ भी दोष नाहीं। याहीतैं जैनशास्त्रनिविषै तत्त्वादिकका निरूपण किया, तहां तौ हेतु युक्ति आदिकरि जैसैं याकै अनुमानादि-करि प्रतीति आवै, तैसैं कथन किया। बहुरि त्रिलोक, गुणस्थान, मार्गणा, पुराणादिकका कथन आज्ञा अनुसारि किया। तातैं हेयोपादेय तत्त्वनिकी परीक्षा करनी योग्य है। तहां जीवादिक द्रव्य वा तत्त्व तिनकौं पहिचानना। बहुरि त्यागनें योग्य मिथ्यात्व रागादिक, अर ग्रहणें योग्य सम्यग्दर्शनादिक तिनका स्वरूप पहिचानना। बहुरि निमित्त नैमित्तादिक जैसैं है, तैसैं पहिचानना। इत्यादि मोक्षमार्गविषैं जिनके जानैं प्रवृत्ति होय, तिनकौं अवश्य जाननैं। सो इनकी तौ परीक्षा करनी। सामान्यपनै हेतु युक्तिकरि इनकौं जाननैं, वा प्रमाण नयनि-करि जाननैं, वा निर्देश स्वाम्यत्वादिकरि, वा सत् संख्यादि करि इनका विशेष जानना। जैसी बुद्धि होय जैसा निमित्त बनैं, तैसैं इनिकौं सामान्य विशेषरूप पहचाननैं। बहुरि इस जाननैंका उपकारी गुण-स्थान मार्गणादिक वा पुराणादिक, वा व्रतादिक क्रियादिकका भी जानना योग्य है। यहां परीक्षा होय सकै, तिनकी परीक्षा करनी, न होय सकै ताका आज्ञा अनुसारि जानपना करना। ऐसैं इस

जाननेकै अर्थ कबहूँ आपही विचार करै है, कबहूँ शास्त्र वांचै है, कबहूँ सुनैं है, कबहूँ अभ्यास करै है, कबहूँ प्रश्नोत्तर करै है। इत्यादि रूप प्रवर्त्तै है। अपना कार्य करनेका जाकै हर्ष बहुत है, तातैं अंतरंग प्रीतितैं ताका साधन करै। या प्रकार साधन करतैं यावत् सांचा तत्त्व-श्रद्धान न होय, 'यहु ऐसैं ही है' ऐसी प्रतीति लिए जीवादि तत्त्वनिका स्वरूप आपकौं न भासै, जैसैं पर्यायविषैं अहंबुद्धि है. तैसैं केवल आत्मविषै अहंबुद्धि न आवै, हित अहितरूप अपने भाव न पहिचानैं, तावत् सम्यक्तके सन्मुख मिथ्यादृष्टी है। यह जीव थोरे ही कालमैं सम्यक्त कौं प्राप्त होगा। इस ही भवमैं वा अन्य पर्यायविषैं सम्यक्तकौं पावैगा। इस भवमैं अभ्यासकरि परलोकविषैं तिर्यंचादिगतिविषैं भी जाय—तौ तहां संस्कारके बलतैं देव गुरु शास्त्रका निमित्तविना भी सम्यक्त होय जाय। जातैं ऐसे अभ्यासके बलतैं मिथ्यात्वकर्मका अनुभाग हीन हो है। जहां वाका उदय न होय, तहां ही सम्यक्त होय जाय। मूल-कारण यहु ही है। देवादिकका तौ बाह्य निमित्त हैं, सो मुख्यताकरि तौ इनके निमित्तहीतैं सम्यक्त हो है। तारतम्यतैं पूर्व अभ्यास संस्कारतैं वर्त्तमान इनका निमित्त न होय, तौ भी सम्यक्त होय सकै है। सिद्धांतविषै ऐसा सूत्र कह्या है—

"तन्निसर्गादधिगमाद्वा" [तत्वा० सू० १,३.]

याका अर्थ यहु—सो सम्यग्दर्शन निसर्ग वा अधिगमतैं हो है। तहां देवादिक बाह्य निमित्त विना होय, सो निसर्गतैं भया कहिए। देवादिकका निमित्ततैं होय, सो अधिगमतैं भया कहिए। देखो तत्त्व-विचारकी महिमा, तत्त्वविचाररहित देवादिककी प्रतीति करै, बहुत

शास्त्र अभ्यासै, व्रतादिक पालै तपश्चरणादि करै, ताकै तौ सम्यक्त होनेका अधिकार नाहीं। अर तत्त्वविचारवाला इन विना भी सम्यक्तका अधिकारी हो है। बहुरि कोई जीवकै तत्त्वविचारकै होनें पहलैं किसी कारण पाय देवादिककी प्रतीति होय, वा व्रत तपका अंगीकार होय, पीछैं तत्त्वविचार करै। परंतु सम्यक्तका अधिकारी तत्त्वविचार भए ही हो है। बहुरि काहूकै तत्त्वविचार भए पीछैं तत्त्वप्रतीति न होनेतैं सम्यक्त तौ न भया; अर व्यवहार धर्मकी प्रतीति रुचि होय गई, तातैं देवादिककी प्रतीति करै है, वा व्रत तपकौं अंगीकार करै है, काहूकै देवादिककी प्रतीति अर सम्यक्त युगपत् होय, अर व्रत तप सम्यक्तकी साथि भी होय, अर पहलैं पीछैं भी होय, देवादिककी प्रतीतिका तौ नियम है। इस विना सम्यक्त न होय। व्रतादिकका नियम है नाहीं। घनें जीव तौ पहलैं सम्यक्त होय पीछैं ही व्रतादिककौं धारैं है। काहूकै युगपत् भी होय जाय है। ऐसैं यहु तत्त्वविचारवाला जीव सम्यक्तका अधिकारी है। परंतु याकैं सम्यक्त होय ही होय, ऐसा नियम नाहीं। जातैं शास्त्रविषैं सम्यक्त होनेतैं पहलैं पंच लब्धिका होना कह्या है—

[पंच लब्धियोंका स्वरूप]

क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य, करण। तहां जिसकौं होते संतैं तत्त्वविचार होय सकै, ऐसा ज्ञानावरणादि कर्मनिका क्षयोपशम होय। उदयकालकौं प्राप्त सर्वघाती स्पर्द्धकनिके निषेकनिका उदयका अभाव सो क्षय, अर अनागतकालविषैं उदय आवने योग्य तिनहीं का सत्तारूप रहना सो उपशम; ऐसी देशघाती स्पर्द्धकनिका

उदय सहित कर्मनिकी अवस्था ताका नाम क्षयोपशम है। ताकी प्राप्ति सो क्षयोपशमलब्धि है। बहुरि मोहका मंद उदय आवनेतैं मंदकषाय रूप भाव होंय, तहां तत्त्वविचार होय सकै, सो विशुद्धलब्धि है। बहुरि जिनदेवका उपदेश्या तत्त्वका धारण होय, विचार होय सो देशनालब्धि है। जहां नरकादिविषैं उपदेशका निमित्त न होय, तहां पूर्वसंस्कारतैं होय। बहुरि कर्मनिकी पूर्व सत्ता घटकरि अंतःकोटाकोटी सागर प्रमाण रहि जाय, अर नवीन बंध अंतःकोटाकोटी प्रमाण ताकै संख्यातवैं भागमात्र होय, सो भी तिस लब्धिकालतैं लगाय क्रमतैं घटता होय, केतीक पापप्रकृतिनिका बंध क्रमतैं मिटता जाय, इत्यादि योग्य अवस्था-का होना, सो प्रायोग्यलब्धि है। सो ए च्यारौं लब्धि भव्य वा अभव्य-कै होय हैं। इन च्यार लब्धि भए पीछैं सम्यक्त होय तौ होय, न होय तौ नाहीं भी होय। ऐसैं लब्धिसारविषैं कह्या है।[1] तातैं तिस तत्त्वविचारवालाकै सम्यक्त्व होनैंका नियम नाहीं। जैसैं काहूकौं हितकी शिक्षा दई, ताकौं वह जानि विचार करै, यह सीख दई सो कैसैं है? पीछैं विचारतां वाकै ऐसैं ही है, ऐसी प्रतीति होय जाय। अथवा अन्यथा विचार होय, वा अन्य विचारविषैं लागि, तिस सीखका निर्द्धार न करै, तौ प्रतीति नाहीं भी होय। तैसैं श्रीगुरां तत्त्वोप-देश दिया, ताकौं जानि विचारि करै, यहु उपदेश दिया, सो कैसैं है। पीछैं विचार करनेतैं वाकै 'ऐसैं ही है' ऐसी प्रतीति होय जाय। अथवा अन्यथा विचार होय, वा अन्य विचारविषैं लागि तिस उप-देशका निर्द्धार न करै, तो प्रतीति नाहीं होय। ऐसा नियम है। याका उद्यम तौ तत्त्वविचार करनें मात्र ही है। बहुरि पांचई करणलब्धि

[1] लब्धि० ३.

भए सम्यक्त होय ही होय, ऐसा नियम है। सो जाकैं पूर्वें कही थीं च्यारि लब्धि ते तौ भई होंय, अर अंतर्मुहूर्त्त पीछैं जाकै सम्यक्त होना होय, तिसही जीवकै करणलब्धि हो है। सो इस करणलब्धि-वालाकै बुद्धिपूर्वक तौ इतना ही उद्यम हो है-जिस तत्त्वविचारविषैं उपयोगकौं तद्रूप होय लगावै, ताकरि समय समय परिणाम निर्मल होते जाय हैं। जैसैं काहूकै सीखका विचार ऐसा निर्मल होनैं लग्या, जाकरि याकै शीघ्र ही ताकी प्रतीति होय जासी। तैसैं तत्त्वउपदेश ऐसा निर्मल होनें लग्या, जाकरि याकै शीघ्र ही ताका श्रद्धान होसी। बहुरि इन परि-णामनिका तारतम्य केवलज्ञानकरि देख्या, ताकरि निरूपण करणानु-योगविषैं किया है। सो इस करणलब्धिके तीन भेद हैं—अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण। इनका विशेष व्याख्यान तौ लब्धिसार शास्त्रविषैं किया है, तिसतैं जानना। यहां संक्षेपसौं कहिए है—

त्रिकालवर्त्ती सर्व करणलब्धिवाले जीव तिनके परिणामनिकी अपेक्षा ए तीन नाम हैं। तहां करण नाम तौ परिणामका है। बहुरि जहां पहले पिछले समयनिके परिणाम समान होंय, सो अधःकरण है।[1] जैसैं कोई जीवका परिणाम तिस करणके पहिले समय स्तोक विशुद्धता लिएं भए, पीछैं समय समय अनंतगुणी विशुद्धताकरि वधते भए। बहुरि वाकै जैसैं द्वितीय तृतीयादि समयनिविषैं परिणाम होंय, तैसैं केई अन्य जीवनिकै प्रथम समयविषैं ही होंय। ताकै तिसतैं समय समय अनंती विशुद्धताकरि वधते होंय। ऐसैं अधः प्रवृत्तकरण जानना। बहुरि जिसविषैं पहले पिछले समयनिके परिणाम समान न होंय, अपूर्व ही होंय, (सो अपूर्वकरण है।) जैसैं तिस करणके परिणाम

१ लब्धि० ३५.

जैसे पहलै समय होंय तैसैं कोई ही जीवकै द्वितीयादि समयनिविषैं न होंय वधते ही होंय। बहुरि इहां अधःकरणवत् जिन जीवनिकै करणका पहला समय ही होय, तिन अनेक जीवनिकै परस्पर परिणाम समान भी होंय, अर अधिक हीन विशुद्धता लिए भी होंय। परंतु यहां इतना विशेष भया, जो इसकी उत्कृष्टतातैं भी द्वितीयादि समयवालेका जघन्य परिणाम भी अनंतगुणी विशुद्धता लिएं ही होय। ऐसैं ही जिनकौं करण मांडे द्वितीयादि समय भया होय, तिनकै तिस समयवालौंकै तौ परस्पर परिणाम समान वा असमान होंय। परंतु ऊपरले समयवालौंकै तिस समय समान सर्वथा न होंय अपूर्व ही होंय, ऐसैं अपूर्वकरण[1] जानना। बहुरि जिसविषैं समान समयवर्त्ती जीवनिकै परिणाम समान ही होंय, निवृत्ति कहिए परस्पर भेद ताकरि रहित होंय। जैसैं तिस करणका पहला समयविषैं सर्व जीवनिका परिणाम परस्पर समान ही होय, ऐसैंही द्वितीयादि समयनिविषैं समानता परस्पर जाननीं। बहुरि प्रथमादि समयवालोंतैं द्वितीयादि समयवालोंकै अनंतगुणी विशुद्धता लिएं होंय, ऐसैं अनिवृत्तिकरण[2] जानना। ऐसैं ए तीन करण जाननें।

१——समए समए भिण्णा भावा तम्हा अपुव्वकरणा हु।
जम्हा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहिं णत्थि सरिसत्तं।
तम्हा विदियं करणं अपुव्वकरणेत्ति णिद्दिट्ठं ॥ लब्धि० ५१ ॥ करणं परिणामो अपुव्वाणि च ताणि करणाणि च अपुव्वकरणाणि, असमाणपरिणामा त्ति जं उत्तं होदि। धवला, १-९-८-४

२——एगसमए वट्टंताणं जीवाणं परिणामेहि ण विज्जदे णियट्टी णिव्वित्ती जत्थ ते अणियट्टीपरिणामा। धवला १ ९-८-४। एक्कम्हि कालसमये संठाणादीहिं जह णिवट्टंति। ण णिवट्टंति तहा विय परिणामेहिं मिहो जेहिं ॥ गो. जी. ५६

तहां पहलैं अंतर्मुहूर्त्त कालपर्यंत अधःकरण होय। तहां च्यारि आवश्यक हो हैं। समय समय अनंतगुणी विशुद्धता होय, बहुरि एक अंतर्मुहूर्त्तकरि नवीन बंधकी स्थिति घटती होय, सो स्थितिबंधापसरण होय, बहुरि समय समय प्रशस्त प्रकृतिनिका अनंतगुणा अनुभाग बधै, बहुरि समय समय अप्रशस्त प्रकृतिनिका अनुभागबंध अनंतवैं भाग होय, ऐसैं च्यारि आवश्यक होंय। तहां पीछैं अपूर्वकरण होय। ताका काल अधःकरणके कालकै संख्यातवैं भाग है। ताविषैं ए आवश्यक और होंय। एक एक अंतर्मुहूर्त्तकरि सत्ताभूत पूर्वकर्मकी स्थिति थी, ताकौं घटावै सो स्थितिकांडकघात होय। बहुरि तिसतैं स्तोक एक एक अन्तर्मुहूर्त्त करि पूर्वकर्मका अनुभागकौं घटावै, सो अनुभाग कांडक घात होय,। बहुरि गुणश्रेणिका कालविषैं क्रमतैं असंख्यातगुणा प्रमाण लिएं कर्म निर्जरनें योग्य करिए, सो गुणश्रेणीनिर्ज्जरा होय। बहुरि गुणसंक्रमण यहां नाहीं हो है। अन्यत्र अपूर्वकरण हो है, तहां हो है। ऐसैं अपूर्वकरण भए पीछैं अनिवृत्तिकरण होय। ताका काल अपूर्वकरणकै भी संख्यातवैं भाग है। तिसविषैं पूर्वोक्त आवश्यक सहित केता काल गए पीछैं अन्तरकरण[1] करै है। अनि-

---

[1] किमंतरकरणं णाम ? विवक्खियकम्माणं हेट्ठिमोवरिमट्ठिदीओ मोत्तूण मज्झे अंतोमुहुत्तमेत्ताणं ट्ठिदीणं परिणामविसेसेण णिसेगाणमभावीकरणमंतर—करणमिदि भण्णदे। —जयध० अ० प० ९५३

अर्थ—अन्तरकरणका क्या स्वरूप है ? उत्तर—"विवक्षितकर्मोंकी अधस्तन और उपरिम स्थितियोंको छोड़कर मध्यवर्ती अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितियोंके निषेकोंका परिणाम विशेषके द्वारा अभाव करनेको अन्तरकरण कहते हैं।

वृत्तिकरणके काल पीछैं उदय आवनें योग्य ऐसै मिथ्यात्त्वकर्मके मुहूर्त्तमात्र निषेक तिनिका अभाव करै है, तिन परिणामनिकौं अन्य स्थितिरूप परिणामावै है। वहुरि अन्तरकरणकरि पीछैं उपशमकरण करै है। अन्तरकरणकरि अभावरूप किए निषेकनिके ऊपरि जो मिथ्यात्वके निषेक तिनकौं उदय आवनेंकौं अयोग्य करै है। इत्यादिक क्रियाकरि अनिवृत्तिकरणका अंतसमयकै अनंतर जिन निषेकनिका अभाव किया था,तिनका उदयकाल आया तव निषेकनि विना उदय कौनका आवै। तातैं मिथ्यात्त्वका उदय न होनेतैं प्रथमोपशम सम्यक्तकी प्राप्ति हो है। अनादि मिथ्यादृष्टीकै सम्यक्तमोहनीय, मिश्रमोहनीयकी सत्ता नाहीं है। तातैं एक मिथ्यात्त्वकर्महीकौं उपशमाय उपशमसम्यग्दृष्टी होय है। वहुरि कोई जीव सम्यक्त पाय पीछैं भ्रष्ट हो है, ताकी भी दशा अनादिमिथ्यादृष्टीकी सी ही होय जाय है।

यहां प्रश्न—जो परीक्षाकरि तत्त्वश्रद्धान किया था, ताका अभाव कैसैं होय?

ताका समाधान—जैसैं किसी पुरुषकौं शिक्षा दई, ताकी परीक्षाकरि वाकै ऐसैं ही है, ऐसी प्रतीति भी आई थी, पीछैं अन्यथा कोई प्रकारकरि विचार भया, तातैं उस शिक्षाविषैं संदेह भया। ऐसैं है कि ऐसैं है, अथवा 'न जानों कैसैं है', अथवा तिस शिक्षाकौं झूठ जानि तिसतैं विपरीत भई, तव वाकै प्रतीति न भई तव वाकै तिस शिक्षाकी प्रतीतिका अभाव होय,अथवा पूर्वैं तो अन्यथा प्रतीति थी ही,वीचिमैं शिक्षाका विचारतैं यथार्थ प्रतीति भई थी, वहुरि तिस शिक्षाका विचार किए वहुत काल होय गया, तव ताकौं भूलि जैसैं पूर्वैं अन्यथा प्रतीति

थी, तैसैं ही स्वयमेव होय गई। तब तिस शिक्षाकी प्रतीतिका अभाव होय जाय। अथवा यथार्थ प्रतीति पहलैं तो कीन्हीं, पीछैं न तौ किछू अन्यथा विचार किया, न बहुत काल भया। परंतु तैसा ही कर्म उदयतैं होनहारकै अनुसारि स्वयमेव ही तिस प्रतीतिका अभाव होय, अन्यथापना भया। ऐसैं अनेक प्रकार तिस शिक्षाकी यथार्थ प्रतीतिका अभाव हो है। तैसैं जीवकै जिनदेवका तत्त्वादिरूप उपदेश भया, ताकी परीक्षाकरि वाकै 'ऐसैं ही हैं' ऐसा श्रद्धान भया, पीछै पूर्वैं जैसैं कहे तैसैं अनेक प्रकार तिस पदार्थश्रद्धानका अभाव हो है। सो यहु कथन स्थूलपनैं दिखाया है। तारतम्यकरि केवलज्ञानविषैं भासै है—इस समय श्रद्धान है, कि इस समय नाहीं है। जातैं यहां मूल कारण मिथ्यात्वकर्म है। ताका उदय होय, तब तौ अन्य विचारादिक कारण मिलौ, वा मति मिलौ, स्वयमेव सम्यक्श्रद्धानका अभाव हो है। बहुरि ताका उदय न होय, तब अन्य कारण मिलो वा मति मिलो, स्वयमेव सम्यक् श्रद्धान होय जाय है। सो ऐसी अतरंग समयसंबंधी सूक्ष्मदशाका जानना, छद्मस्थकै होता नाहीं। तातैं अपनी मिथ्या सम्यकश्रद्धानरूप अवस्थाका तारतम्य याकौं निश्चय होय सकै नाहीं। केवलज्ञानविषैं भासै है। तिस अपेक्षा गुणस्थाननिकी पलटनि शास्त्रविषैं कही है। या प्रकार जो सम्यक्ततैं भ्रष्ट होय, सो सादिमिथ्यादृष्टी कहिए। ताकै भी बहुरि सम्यक्तकी प्राप्तिविषैं पूर्वोक्त पांच लब्धि हों हैं। विशेष इतना यहां कोई जीवकै दर्शनमोहकी तीन प्रकृतिकी सत्ता हो है सो तिनकौं उपशमाय प्रथमोपशमसम्यक्ती हो है। अथवा काहूकै सम्यक्तमोहनीयका उदय आवै है, दोय प्रकृतिनि-

का उदय न हो है, सो क्षयोपशमसम्यक्ती हो है। याकै गुणश्रेणी आदि क्रिया न हो है। वा अनिवृत्तिकरण न हो है। बहुरि काहूकै मिश्रमोहनीयका उदय आवै है, दोय प्रकृतिनिका उदय न हो है। सो मिश्रगुणस्थानकौं प्राप्त हो है। याकै करण न हो है। ऐसैं सादिमिथ्यादृष्टीकै मिथ्यात्व छूटैं दशा हो है। क्षायिकसम्यक्तकौं वेदकसम्यग्दृष्टी ही पावै है तातैं ताका कथन यहां न किया है। ऐसैं सादि मिथ्यादृष्टीका जघन्य तौ मध्य अन्तर्मुहूर्त्तमात्र, उत्कृष्ट किंचिदून अर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तन मात्र काल जानना। देखो, परिणामनिकी विचित्रता कोई जीव तौ ग्यारवैं गुणस्थान यथाख्यातचारित्र पाय बहुरि मिथ्यादृष्टी होय किंचित् ऊन अर्द्धपुद्गल परिवर्त्तन कालपर्यंत संसारमैं रुलै, अर कोई नित्यनिगोदमैंसौं निकसि मनुष्य होय, मिथ्यात्व छूटैं पीछैं अंतर्मुहूर्त्तमैं केवलज्ञान पावै। ऐसैं जानि अपने परिणाम बिगरनेका भय राखना। अर तिनके सुधारनेका उपाय करना।

बहुरि इस सादिमिथ्यादृष्टीकै थोरे काल मिथ्यात्वका उदय रहै, तौ बाह्य जैनीपना नाहीं नष्ट हो है। वा तत्त्वनिका अश्रद्धान व्यक्त न हो है। वा बिना विचार किएं ही, वा स्तोक विचारहीतैं बहुरि सम्यक्तकी प्राप्ति होय जाय है। बहुरि बहुत काल मिथ्यात्वका उदय रहै, तौ जैसी अनादि मिथ्यादृष्टीकी दशा तैसी याकी दशा हो है। गृहीत मिथ्यात्वकौं भी ग्रहै हैं। निगोदादिविषैं भी रुलै हैं। याका किछू प्रमाण नाहीं।

बहुरि कोई जीव सम्यक्ततैं भ्रष्ट होय सासादन हो हैं। सो तहां जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली प्रमाण काल रहै है, सो याका

परिणामकी दशा वचनकरि कहनेमैं आवती नाहीं। सूक्ष्मकालमात्र कोई जातिके केवलज्ञानगम्य परिणाम हो हैं। तहां अनंतानुबंधीका तौ उदय हो है, मिथ्यात्वका उदय न हो है। सो आगम प्रमाणतैं याका स्वरूप जानना।

बहुरि कोई जीव सम्यक्ततैं भ्रष्ट होय, मिश्रगुणस्थानकौं प्राप्त हो है। तहां मिश्रमोहनीयका उदय हो है। याका काल मध्य अन्तर्मुहूर्त्त-मात्र है। सो याका भी काल थोरा है, सो याकै भी परिणाम केवल-ज्ञानगम्य हैं। यहां इतना भासै है—जैसैं काहूकौं सीख दई तिसकौं वह किछू सत्य किछू असत्य एकै काल मानैं। तैसैं तत्त्वनिका श्रद्धान अश्रद्धान एकै काल होय, सो मिश्रदशा है। केई कहै हैं—हमकौं तौ जिनदेव वा अन्य देव सर्व ही वंदने योग्य हैं। इत्यादि मिश्र श्रद्धान-कौं मिश्रगुणस्थान कहै हैं, सो नाहीं। यहु तौ प्रत्यक्ष मिथ्यात्वदशा है। व्यवहाररूप देवादिकका श्रद्धान भए भी मिथ्यात्व रहै है, तौ याकै तो देव कुदेवका किछू ठीक ही नाहीं। याकै तौ यहु विनयमि-थ्यात्व प्रगट है ऐसैं जानना। ऐसैं सम्यक्तके सन्मुख मिथ्यादृष्टीनिका कथन किया। प्रसंग पाय अन्य भी कथन किया है। या प्रकार जैन-मतवाले मिथ्यादृष्टीनिका स्वरूप निरूपण किया। यहां नाना प्रकार मिथ्यादृष्टीनिका कथन किया है, ताका प्रयोजन यह जानना, जो इन प्रकारनिकौं पहिचानि आपविषैं ऐसा दोष होय, तौ ताकौं दूरिकरि सम्यक्श्रद्धानी होना। औरनिहीकै ऐसे दोष देखि कषायी न होना। जातैं अपना भला बुरा तौ अपने परिणामनितैं हो है। औरनिकौं रुचिवान् देखिए, तो कछु उपदेश देय वाका भी भला कीजिये। तातैं

अपने परिणाम सुधारनेका उपाय करना योग्य है। सर्व प्रकारके मिथ्यात्वभाव छोड़ि सम्यग्दृष्टी होना योग्य है। जातैं संसारका मूल मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व समान अन्य पाप नाहीं है। एक मिथ्यात्व अर ताकै साथ अनंतानुबंधीका अभाव भए इकतालीस प्रकृतिनिका तौ बंध ही मिट जाय। स्थिति अन्तःकोटाकोटी सागरकी रह जाय। अनुभाग थोरा ही रह जाय। शीघ्र ही मोक्षपदकौं पावै। बहुरि मिथ्यात्वका सद्भाव रहैं अन्य अनेक उपाय किएं भी मोक्ष मार्ग न होय। तातैं जिस तिस उपायकरि सर्व प्रकार मिथ्यात्वका नाश करना योग्य है।

इति मोक्षमार्गप्रकाशकनाम शास्त्रविषैं जैनमतवाले
मिथ्या दृष्टीनिका निरूपण जामैं भया ऐसा
सातवाँअधिकार संपूर्ण भया ॥ ७ ॥

आठवां अधिकार

[उपदेशका स्वरूप]

अथ मिथ्यादृष्टी जीवानिकौं मोक्षमार्गका उपदेश देय तिनका उपकार करना यहु ही उत्तम उपकार है। तीर्थंकर गणधरादिक भी ऐसा ही उपकार करैं हैं। तातैं इस शास्त्रविषैं भी उनहीका उपदेशकै अनुसारि उपदेश दीजिए है। तहां उपदेशका स्वरूप जाननेकै अर्थि किछू व्याख्यान कीजिए है। जातैं उपदेशकौं यथावत् न पहिचानैं, तौ अन्यथा मानि विपरीत प्रवर्त्तैं, तातैं उपदेशका स्वरूप कहिए है--

जिनमतविषैं उपदेश च्यार अनुयोगका दिया है। सो प्रथमानुयोग करणानुयोग चरणानुयोग द्रव्यानुयोग ए च्यार अनुयोग हैं। तहां

तीर्थंकर, चक्रवर्त्ती आदि महान् पुरुषनिके चरित्र जिसविषैं निरूपण किए होंय, सो **प्रथमानुयोग** है[1]। बहुरि गुणस्थान मार्गणादिकरूप जीवका, वा कर्मनिका, वा त्रिलोकादिका जाविषैं निरूपण होय, सो **करणानुयोग** है[2]। बहुरि गृहस्थ मुनिके धर्म आचरण करनेंका जाविषैं निरूपण होय, सो **चरणानुयोग** है[3]। बहुरि षट् द्रव्य सप्त तत्त्वादिकका वा स्वपरभेद विज्ञानादिकका जाविषैं निरूपण होय, सो **द्रव्यानुयोग** है[4]। अब इनका प्रयोजन कहिये है—

[प्रथमानुयोगका प्रयोजन]

प्रथमानुयोगविषैं तो संसारकी विचित्रता, पुण्य पापका फल, महंतपुरुषनिकी प्रवृत्ति इत्यादि निरूपणकरि जीवनिकौं धर्मविषैं लगाए हैं। जे जीव तुच्छबुद्धि होंय, ते भी तिसकरि धर्मसन्मुख हो हैं। जातैं वै जीव सूक्ष्मनिरूपणकौं पहिचानैं नाहीं। लौकिक वार्तानिकौं जानैं। तहां तिनका उपयोग लागै। बहुरि प्रथमानुयोगविषैं लौकिक प्रवृत्तिरूप निरूपण होय, ताकौं ते नीकैं समझि जांय। बहुरि लोकविषैं तौ राजादिककी कथानिविषैं पापका वा पुण्यका पोषण है, तहां महंत पुरुष राजादिक तिनकी कथा सुनै हैं। परंतु प्रयोजन जहां तहां पापकौं छांड़ि धर्मविषैं लगवानेका प्रगट करै हैं। तातैं ते जीव कथानिके लालचकरि तौ तिसकौं बांचैं सुनैं, पीछैं पापकौं बुरा धर्मकौं भला जानि धर्मविषैं रुचिवंत हो हैं। ऐसैं तुच्छ बुद्धीनिके समझावनेकौं यहु अनुयोगतैं है 'प्रथम' कहिए 'अव्युत्पन्न मिथ्यादृष्टी' तिनके अर्थि जो अनु-

१—रत्नक० २, २। २—रत्नक० २, ३। ३—रत्नक० २, ४। ४—रत्नक० २, ५।

योग सो प्रथमानुयोग है। ऐसा अर्थ गोमट्टसारकी टीकाविषैं[1] किया है। बहुरि जिन जीवनिकै तत्त्वज्ञान भया होय, पीछैं इस प्रथमानुयोगकौं वांचैं सुनैं, तौ तिनकौं यहु तिसका उदाहरणरूप भासै है। जैसैं जीव अनादिनिधन है, शरीरादिक संयोगी पदार्थ हैं, ऐसैं यहु जानैं था। बहुरि पुराणनिविषैं जीवनिके भवांतर निरूपण किए, ते तिस जाननेके उदाहरण भए। बहुरि शुभ अशुभ शुद्धोपयोगकौं जानैं था, वा तिनके फलकौं जानैं था। बहुरि पुराणनिविषैं तिन उपयोगनिकी प्रवृत्ति अर तिनका फल जीवनिकै भया, सो निरूपण किया। सो ही तिस जाननेंका उदाहरण भया। ऐसैं ही अन्य जानना। यहां उदाहरणका अर्थ यहु जो जैसैं जानैं था, तैसैं ही तहां कोई जीवकै अवस्था भई, तातैं तिस जाननेकी साखि भई। बहुरि जैसैं कोई सुभट है, सो सुभटनिकी प्रशंसा अर कायरनिकी निंदा जाविषैं होय, ऐसी कोई पुराणपुरुषनिकी कथा सुननेंकरि सुभटपनविषैं अति उत्साहवान् हो है, तैसैं धर्मात्मा है, सो धर्मात्मानिकी प्रशंसा अर पापीनिकी निंदा जाविषैं होंय, ऐसे कोई पुराणपुरुषनिकी कथा सुननेकरि धर्मविषैं अति उत्साहवान् हो है। ऐसैं यहु प्रथमानुयोगका प्रयोजन जानना।

[करणानुयोगका प्रयोजन]

बहुरि करणानुयोगविषैं जीवनिकी वा कर्मनिकी विशेषता वा त्रिलोकादिककी रचना निरूपणकरि जीवनिकौं धर्मविषैं लगाए हैं। जे जीव धर्मविषैं उपयोग लगाया चाहैं, ते जीवनिका गुणस्थान मार्गणा

१—प्रथमं मिथ्यादृष्टिमव्रतिकमव्युत्पन्नं वा प्रतिपाद्यमाश्रित्य प्रवृत्तोऽनुयोगोऽधिकारः प्रथमानुयोगः, जी. प्र. टी. गा ३६१—२

आदि विशेष अर कर्मनिका कारण अवस्था फल कौन कौनकैं कैसैं कैसैं पाइए, इत्यादि विशेष अर त्रिलोकविषैं नरक स्वर्गादिकके ठिकानें पहिचानि पापतैं विमुख होय धर्मविषैं लागै हैं। बहुरि ऐसे विचार-विषैं उपयोग रमि जाय, तब पापप्रवृत्ति छूटि स्वयमेव तत्काल धर्म उपजै है। तिस अभ्यासकरि तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति शीघ्र हो है। बहुरि ऐसा सूक्ष्म,यथार्थ कथन जिनमतविषैं ही है, अन्यत्र नाहीं, ऐसैं महिमा जानि जिनमतका श्रद्धानी हो है। बहुरि जे जीव तत्त्वज्ञानी होय इस करणानुयोगकौं अभ्यासै हैं, तिनकौं यहु तिसका विशेषरूप भासै है। जो जीवादिक तत्त्व आप जानैं हैं, तिनहीके विशेष करणानुयोगविषैं किए हैं। तहां केई विशेषण तौ यथावत् निश्चयरूप हैं, केई उपचार लिएं व्यवहाररूप हैं। केई द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकका स्वरूप प्रमाणादिरूप हैं, केई निमित्त आश्रयादि अपेक्षा लिएं हैं। इत्यादि अनेक प्रकारके विशेषण निरूपण किए हैं, तिनकौं जैसाका तैसा मानता, तिस करणानुयोगकौं अभ्यासै है। इस अभ्यासतैं तत्त्वज्ञान निर्मल हो है। जैसैं कोऊ यहु तौ जानैं था, यहु रत्न है। परंतु उस रत्नके विशेष घनें जानें निर्मल रत्नका पारखी होय, तैसैं तत्त्वनिकौं जानैं था, ए जीवादिक हैं, परंतु तिन तत्त्वंनिके घनें विशेष जानैं, तौ निर्मल तत्त्वज्ञान होय। तत्त्वज्ञान निर्मल भए आप ही विशेष धर्मात्मा हो है। बहुरि अन्य ठिकानें उपयोगकौं लगाईए, तौ रागादिककी वृद्धि होय, छद्मस्थका एकाग्र निरंतर उपयोग रहै नाहीं। तातैं ज्ञानी इस करणानुयोगका अभ्यासविषैं उपयोगकौं लगावैं है। तिसकरि केवल-ज्ञानकरि देखे पदार्थनिका जानपना याकै हो है। प्रत्यक्ष अप्रत्यक्षहीका

भेद है। भासनेंविषैं विरुद्ध है नाहीं। ऐसैं यहु करणानुयोगका प्रयोजन जानना। 'करण' कहिए गणित कार्यकौं कारण 'सूत्र' तिनका जाविषैं 'अनुयोग' अधिकार होय, सो करणानुयोग है। इसविषैं गणित-वर्णनकी मुख्यता है, ऐसा जानना।

[चरणानुयोगका प्रयोजन]

अब चरणानुयोगका प्रयोजन कहिए है। चरणानुयोगविषैं नाना प्रकार धर्मके साधन निरूपणकरि जीवनिकौं धर्मविषैं लगाइए है। जे जीव हित अहितकौं जानैं नाहीं, हिंसादिक पाप कार्यनिविषैं तत्पर होय रहे हैं, तिनकौं जैसैं वे पापकार्यकौं छोड़ि धर्मकार्यनिविषैं लागैं, तैसैं उपदेश दिया। ताकौं जानि धर्म आचरण करनेकौं सन्मुख भए, ते जीव गृहस्थधर्मका विधान सुनि आपतैं जैसा धर्म सधै, तैसा धर्मसाधनविषैं लागै हैं। ऐसैं साधनतैं कषाय मंद हो है। ताके फलतैं इतना तौ हो है, जो कुगतिविषैं दुख न पावैं, अर सुगतिविषैं सुख पावैं। बहुरि ऐसे साधनतैं जिनमतका निमित्त बन्या रहै। तहां तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होनी होय, तौ होय जावै। बहुरि जीवतत्त्वके ज्ञानी होयकरि चरणानुयोगकौं अभ्यासै हैं, तिनकौं ए सर्व आचरण अपनें वीतरागभावके अनुसारी भासै हैं। एकदेश वा सर्वदेश वीतरागता भए ऐसी श्रावकदशा ऐसी मुनिदशा हो है। जातैं इनकै निमित्त नैमित्तिकपनौं पाइए है। ऐसैं जानि श्रावक मुनिधर्मके विशेष पहचानि जैसा अपना वीतरागभाव भया होय, तैसा अपने योग्य धर्मकौं साधै है। तहां जेता अंशां वीतरागता हो है, ताकौं कार्यकारी जानैं है, जेता अंशां राग रहै है, ताकौं हेय जानैं है। संपूर्ण वीतरागताकौं परमधर्म मानैं है। ऐसैं चरणानुयोगका प्रयोजन है।

[द्रव्यानुयोगका प्रयोजन]

अब द्रव्यानुयोगका प्रयोजन कहिये है। द्रव्यानुयोगविषैं द्रव्यनिका वा तत्त्वनिका वा निरूपणकरि जीवनिकौं धर्मविषैं लगाईए है। जे जीवादिक द्रव्यनिकौं वा तत्त्वनिकौं पहिचानैं नाहीं, आपा परकौं भिन्न जानैं नाहीं, तिनकौं हेतु दृष्टांत युक्तिकरि वा प्रमाण-नयादिककरि तिनका स्वरूप ऐसैं दिखाया, जैसैं याकै प्रतीति होय जाय। ताके अभ्यासतैं अनादि अज्ञानता दूरि होय, अन्यमत कल्पित तत्त्वादिक झूठ भासैं, तब जिनमतकी प्रतीति होय। अर उनके भावकों पहचाननेका अभ्यासराखैं,तौ शीघ्र ही तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होय जाय। बहुरि जिनकै तत्त्वज्ञान भया होय, ते जीव द्रव्यानुयोगकौं अभ्यासैं। तिनकौं अपने श्रद्धानके अनुसारि सो सर्व कथन प्रतिभासै है। जैसैं काहूनैं किसी विद्याकौं सीख लई। परन्तु जो ताका अभ्यास किया करै तौ वह यादि रहै, न करै तौ भूलि जाय। तैसैं याकै तत्त्वज्ञान भया; परन्तु जो ताका प्रतिपादक द्रव्यानुयोगका अभ्यास किया करै, तौ वह तत्त्वज्ञान रहै, न करै तौ भूलि जाय। अथवा संक्षेपपनैं तत्त्वज्ञान भया था, सो नाना युक्ति हेतु दृष्टांतादिककरि स्पष्ट होय जाय, तौ तिसविषैं शिथिलता न होय सकै। बहुरि इस अभ्यासतैं रागादि घटनेतैं शीघ्र मोक्ष सधै। ऐसैं द्रव्यानुयोगका प्रयोजन जानना।

[अनुयोगनिका व्याख्यान]

अब इन अनुयोगनिविषैं किस प्रकार व्याख्यान है, सो कहिए—

प्रथमानुयोगविषैं जे मूलकथा हैं, ते तौ जैसी हैं तैसी ही निरूपिये हैं। अर तिनविषैं प्रसंग पाय व्याख्यान हो है, सो कोई तौ

जैसाका तैसा हो है,कोई ग्रंथकर्त्ताका विचारकै अनुसारि हो है, परन्तु प्रयोजन अन्यथा न हो है।

ताका उदाहरण—जैसैं तीर्थंकर देवनिके कल्याणकनिविषैं इन्द्र आया, यहु कथा तौ सत्य है। बहुरि इन्द्र स्तुति करी, ताका व्याख्यान किया, सो इन्द्र तौ और ही प्रकार स्तुति कीनी थी, अर यहां ग्रन्थ-कर्त्ता और ही प्रकार स्तुति कीनी लिखी। परन्तु स्तुतिरूप प्रयोजन अन्यथा न भया। बहुरि परस्पर किनिहूकै वचनालाप भया। तहां उनके और प्रकार अक्षर निकसे थे, यहां ग्रन्थकर्त्ता अन्य प्रकार कहे। परन्तु प्रयोजन एक ही दिखावै है। बहुरि नगर वन संग्रामादिकका नामादिक तौ यथावत् ही लिखैं, अर वर्णन हीनाधिक भी प्रयोजनकौं पोषता निरूपैं हैं। इत्यादि ऐसैं ही जानना बहुरि प्रसंगरूप कथा भी ग्रन्थकर्त्ता अपना विचार अनुसारि कहै। जैसैं धर्मपरीक्षाविषैं मूर्ख-निकी कथा लिखी, सो ए ही कथा मनोवेग कही थी ऐसा नियम नाहीं। परन्तु मूर्खपनाकौं पोषती कोई वार्त्ता कही, ऐसा अभिप्राय पोषै है ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

यहां कोऊ कहै—अयथार्थ कहना तौ जैन शास्त्रनिविषैं संभवै नाहीं ?

ताका उत्तर—अन्यथा तौ वाका नाम है, जो प्रयोजन औरका और प्रकट करै। जैसैं काहूकौं कह्या—तू ऐसैं कहियो. वानैं वे ही अक्षर तौ न कहे, परन्तु तिसही प्रयोजन लिएं कह्या। ताकौं मिथ्या-वादी न कहिए। तैसैं जानना—जो जैसाका तैसा लिखनेंकी संप्रदाय होय, तौ काहूनें बहुत प्रकार वैराग्य चिंतवन किया था, ताका वर्णन

सब लिखें ग्रन्थ वधि जाय, किछू न लिखैं, तौ भाव भासै नाहीं। तातैं वैराग्यकै ठिकानैं थोरा वहुत अपना विचारकै अनुसार वैराग्य पोषता ही कथन करै, सराग पोषता न करै। तहां प्रयोजन अन्यथा न भया, तातैं याकौं अयथार्थ न कहिए ऐसैं ही अन्यत्र जानना। वहुरि प्रथमानुयोगविषैं जाकी मुख्यता होय, ताकौं ही पोषै हैं। जैसैं काहूनैं उपवास किया, ताका तौ फल स्तोक था वहुरि वाकै अन्यधर्म परिणतिकी विशेषता भई, तातैं विशेष उच्चपदकी प्राप्ति भई। तहां तिसकौं उपवासहीका फल निरूपण करैं ऐसैं ही अन्यत्र जानने। वहुरि जैसैं काहूनैं शीलादिकी प्रतिज्ञा दृढ़ राखी, वा नमस्कार मंत्र स्मरण किया, वा अन्यधर्म साधन किया, ताकैं कष्ट दूरि भए, अतिशय प्रगट भये तहां तिनहीका तैसा फल न भया अर अन्य कोई कर्म उदयतैं वैसे कार्य भए तौ भी तिन-कौं तिन शीलादिकका ही फल निरूपण करै ऐसैं ही कोई पापकार्य किया, ताकौं तिसहीका तौ तैसा फल न भया अर अन्य कर्म-उदयतैं नीचगतिकौं प्राप्त भया, वा कष्टादिक भए, ताकौं तिस ही पापका फल निरूपण करै। इत्यादि ऐसैं ही जानना।

यहां कोऊ कहै—ऐसा झूठा फल दिखावना तौ योग्य नाहीं ऐसे कथनकौं प्रमाण कैसैं कीजिए ?

ताका समाधान—जे अज्ञानी जीव वहुत फल दिखाए विना धर्मविषै न लागैं, वा पापतैं न डरैं, तिनका भला करनेंकै अर्थि ऐसैं वर्णन करिए है। वहुरि झूठ तौ तव होय, जब धर्मका फलकौं पापका फल वतावैं, पापका फलकौं धर्मका फल वतावैं। सो तौ है नाहीं। जैसैं

दश पुरुष मिलि कोई कार्य करैं, तहां उपचारकरि एक पुरुष भी किया कहिए, तौ दोष नाहीं। अथवा जाके पितादिकनैं कोई कार्य किया होय, ताकौं एक जाति अपेक्षा उपचारकरि पुत्रादिक किया कहिए, तौ दोष नाहीं। तैसैं बहुत शुभ वा अशुभकार्यनिका फल भया, ताकौं उपचारकरि एक शुभ वा अशुभकार्यका फल कहिए, तौ दोष नाहीं। अथवा और शुभ वा अशुभकार्यका फल जो भया होय, ताकौं एक-जाति अपेक्षा उपचारकरि कोई और ही शुभ वा अशुभकार्यका फल कहिए, तौ दोष नाहीं। उपदेशविषैं कहीं व्यवहार वर्णन है, कहीं निश्चय वर्णन है। यहां उपचाररूप व्यवहार वर्णन किया है, ऐसैं याकौं प्रमाण कीजिए है। याकौं तारतम्य न मांनि लैंना। तारतम्य करणानुयोगविषैं निरूपण किया है, सो जानना। बहुरि प्रथमानुयोग-विषैं उपचाररूप कोई धर्मका अंग भए संपूर्ण धर्म भया कहिए हैं। जैसैं जिन जीवनिकै शंका कांक्षादिक न भए, तिनकै सम्यक्त भया कहिए। सो एक कोई कार्यविषैं शंका कांक्षा न किए ही तौ सम्यक्त न होय, सम्यक्त तौ तत्त्वश्रद्धान भए हो है। परन्तु निश्चय सम्यक्तका तौ व्यवहारविषैं उपचार किया, बहुरि व्यवहार सम्यक्तके कोई एक अङ्गविषैं संपूर्ण व्यवहार सम्यक्तका उपचार किया, ऐसैं उपचारकरि सम्यक्त भया कहिए है। बहुरि कोई जैनशास्त्रका एक अङ्ग जानैं सम्य-ग्ज्ञान भया कहिए है, सो संशयादिरहित तत्त्वज्ञान भए सम्यग्ज्ञान होय, परन्तु पूर्ववत् उपचारकरि कहिए। बहुरि कोई भला आचरण भए सम्यक्चारित्र भया कहिए है। तहां जानैं जैनधर्म अंगीकार किया होय, वा कोई छोटी मोटी प्रतिज्ञा गृही होय, ताकौं श्रावक कहिये,

सो श्रावक तौ पंचमगुणस्थानवर्त्ती भए हो हैं। परन्तु पूर्ववत् उपचारकरि याकौं श्रावक कह्या है। उत्तरपुराणविषैं श्रेणिककौं श्रावकोत्तम कह्या, सो वह तौ असंयत था। परन्तु जैनी था, तातैं कह्या ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि जो सम्यक्तरहित मुनिलिंग धारै, वा कोई द्रव्यां भी अतीचार लगावता होय, ताकौं मुनि कहिए। सो मुनि तौ षष्ठादि गुणस्थानवर्त्ती भए हो है। परन्तु पूर्ववत् उपचारकरि मुनि कह्या है। समवसरणसभाविषैं मुनिनिकी संख्या कही, तहां सर्व ही भावलिंगी मुनि न थे, परन्तु मुनिलिंग धारनेंतैं सबनिकौं मुनि कहे, ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि प्रथमानुयोगविषैं कोई धर्मबुद्धितैं अनुचित कार्य करै, ताकी भी प्रशंसा करिए है। जैसैं **विष्णुकुमार** मुनिनिका उपसर्ग दूरि किया, सो धर्मानुरागतैं किया, परन्तु मुनिपद छोड़ि यहु कार्य करना योग्य न था। जातैं ऐसा कार्य तौ गृहस्थधर्मविषैं संभवै अर गृहस्थधर्मतैं मुनिधर्म ऊंचा है। सो ऊंचा धर्मकौं छोड़ि नीचा धर्म अंगीकार किया सो अयोग्य है। परंतु वात्सल्य अंगकीप्रधानताकरि विष्णुकुमारजीकी प्रशंसा कही इस छलकरि औरनिकौं ऊंचा धर्म छोड़ि नीचा धर्म अंगीकार करना योग्य नाहीं। बहुरि जैसें **गुवालिया** मुनिकौं अग्निकरि तपाया, सो करुणातैं यहु कार्य किया। परंतु आया उपसर्गकौं तौ दूरि करै, सहजअवस्थाविषैं जो शीतादिककी परीषह हो है तिसकौं दूरि कीएं रति माननेका कारण होय, तामें उनकौं रति करनी नाहीं, तब उलटा उपसर्ग होय। याहीतैं विवेकी उनकै शीतादिकका उपचार करते नाहीं। गुवालिया अविवेकी था, करुणाकरि यहु कार्य किया, तातैं याकी प्रशंसा करी। इस छलकरि औरनिकौं धर्मपद्धतिविषैं जो विरुद्ध होय

सो कार्य करना योग्य नाहीं। बहुरि जैसैं वज्रकरण राजा सिंहोदर राजाकौं नम्या नाहीं, मुद्रिकाविषैं प्रतिमा राखी, सो बड़े बड़े सम्यग्दृष्टी राजादिककौं नमैं, याका दोष नाहीं, अर मुद्रिकाविषैं प्रतिमा राखनेमैं अविनय होय यथावत् विधितैं ऐसी प्रतिमा न होय, तातैं इस कार्यविषैं दोष है। परंतु वाकै ऐसा ज्ञान न था, धर्मानुरागतैं मैं औरकौं नमों नाहीं, ऐसी बुद्धि भई, तातैं वाकी प्रशंसा करी। इस छलकरि औरनिकौं ऐसे कार्य करनैं युक्त नाहीं। बहुरि केई पुरुषोंने पुत्रादिककी प्राप्तिकै अर्थ वा रोग कष्टादि दूरि करनेके अर्थ चैत्यालय पूजनादि कार्य किए, स्तोत्रादि किए, नमस्कार मंत्र स्मरण किया। सो ऐसैं किएं तौ निकांक्षित गुणका अभाव होय, निदानबंधनामा आर्त्तध्यान होय। पापहीका प्रयोजन अंतरंगविषैं है, तातैं पापहीका बंध होइ। परंतु मोहित होयकरि भी बहुत पापबंधका कारण कुदेवादिकका तौ पूजनादि न किया, इतना वाका गुण ग्रहणकरि वाकी प्रशंसा करिए है। इस छलकरि औरनिकौं लौकिक कार्यनिके अर्थि धर्मसाधन करना युक्त नाहीं। ऐसैं ही अन्यत्र जानने ऐसैं ही प्रथमानुयोगविषैं अन्य कथन भी होय, ताकौं यथासंभव जानि भ्रमरूप न होना।

अब करणानुयोगविषैं किस प्रकार व्याख्यान है, सो कहिए है— जैसैं केवलज्ञानकरि जान्या तैसैं करणानुयोगविषैं व्याख्यान है। बहुरि केवलज्ञानकरि तौ बहुत जान्या, परंतु जीवकौं कार्यकारी जीव कर्मादिकका वा त्रिलोकादिकका ही निरूपण याविषैं हो है। बहुरि तिनका भी स्वरूप सर्व निरूपण न होय सकै, तातैं जैसैं वचनगोचर होय छद्मस्थके ज्ञानविषैं उनका किछू भाव भासै, तैसैं संकोचन करि निरूपण करिए है।

यहां उदाहरण—जीवके भावनिकी अपेक्षा गुणस्थानक कहे, ते भाव अनंतस्वरूप लियें वचनगोचर नाहीं। तहां बहुत भावनिकी एक जातिकरि चौदह गुणस्थान कहे। बहुरि जीव जाननेके अनेक प्रकार हैं। तहां मुख्य चौदह मार्गणाका निरूपण किया। बहुरि कर्मपरमाणू अनंतप्रकार शक्तियुक्त हैं, तिनविषैं बहुतनिकी एक जाति करि आठ वा एकसौ अड़तालीस प्रकृति कही। बहुरि त्रिलोकविषैं अनेक रचना हैं, तहां मुख्य केतीक रचना निरूपण करिए है। बहुरि प्रमाणके अनंत भेद तहां संख्यातादि तीन भेद वा इनके इकईस भेद निरूपण किए ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि करणानुयोगविषैं यद्यपि वस्तुके क्षेत्र, काल, भावादिक अखंडित हैं, तथापि छद्मस्थकौं हीनाधिक ज्ञान होनेंकै अर्थि प्रदेश समय अविभागप्रतिच्छेदादिककी कल्पनाकरि तिनका प्रमाण निरूपिए है। बहुरि एक वस्तुविषैं जुदे जुदे गुणनिका वा पर्यायनिका भेदकरि निरूपण कीजिए है। बहुरि जीव पुद्गलादिक यद्यपि भिन्न भिन्न हैं, तथापि संबंधादिककरि अनेक द्रव्यकरि निपज्या गति जाति आदि भेद तिनकौं एक जीवके निरूपै हैं, इत्यादि व्यवहार नयकी प्रधानता लियें व्याख्यान जानना। जातैं व्यवहारबिना विशेष जानि सकै नाहीं। बहुरि कहीं निश्चयवर्णन भी पाइए है। जैसैं जीवादिक द्रव्यनिका प्रमाण निरूपण किया, सो जुदे जुदे इतनें ही द्रव्य हैं। सो यथासंभव जानि लैंना। बहुरि करणानुयोगविषै कथन हैं, ते केई तो छद्मस्थकै प्रत्यक्ष अनुमानादिगोचर होंय, बहुरि जे न होंय तिनकौं आज्ञा प्रमाणकरि ही माननें। जैसैं जीव पुद्गलके स्थूल बहुत कालस्थायी मनुष्यादि पर्याय वा घटादि पर्याय निरूपण किए, तिनका

तौ प्रत्यक्ष अनुमानादि होय सकै, बहुरि समय समयप्रति सूक्ष्म परिणमन अपेक्षा ज्ञानादिकके वा स्निग्ध रूक्षादिकके अंश निरूपण किए, ते आज्ञाहीतैं प्रमाण हो हैं। ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि करणानुयोगविषैं छद्मस्थनिकी प्रवृत्तिकै अनुसार वर्णन किया नाहीं। केवलज्ञानगम्य पदार्थनिका निरूपण है। जैसैं केई जीव तौ द्रव्यादिकका विचार करै हैं, वा व्रतादिक पालै है, परंतु तिनकै अंतरंग सम्यक्त चारित्रशक्ति नाहीं, तातैं उनकौं मिथ्यादृष्टि, अव्रती कहिए है। बहुरि केई जीव द्रव्यादिकका वा व्रतादिकका विचाररहित हैं, अन्य कार्यनिविषैं प्रवर्तै हैं, वा निद्रादिकरि निर्विचार होय रहे हैं; परंतु उनकै सम्यक्तादि शक्तिका सद्भाव है, तातैं उनकौं सम्यक्त्वी वा व्रती कहिए है। बहुरि कोई जीवकै कषायनिकी प्रवृत्ति तौ घनी है, अर वाकै अंतरंग कषायशक्ति थोरी है, तौ वाकौं मंदकषायी कहिए है। अर कोई जीवकै कषायनिकी प्रवृत्ति तौ थोरी है, अर वाकै अंतरंग कषायशक्ति घनी है, तौ वाकौं तीव्रकषायी कहिए है। जैसैं व्यंतरादिक देव कषायनितैं नगरनाशादि कार्य करैं, तौ भी तिनकै थोरी कषायशक्तितैं पीतलेश्या कही। बहुरि एकेन्द्रियादि जीव कषायकार्य करते दीसैं नाहीं, तिनकै बहुत कषाय शक्तितैं कृष्णादि लेश्या कही। बहुरि सर्वार्थसिद्धिके देव कषायरूप थोरे प्रवर्त्तैं, तिनकै बहुत कषायशक्तितैं असंयम कह्या, अर पंचमगुणस्थानी व्यापार अब्रह्मादि कषायकार्यरूप बहुत प्रवर्तैं, ताकै मंदकषायशक्तितैं देशसंयम कह्या। ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि कोई जीवकै मन वचन कायकी चेष्टा थोरी होती दीसै, तौ भी कर्माकर्षण शक्तिकी अपेक्षा बहुत योग कह्या। काहूकै चेष्टा

बहुत दीसै तौ भी शक्तिकी हीनतातैं स्तोकयोग कह्या। जैसैं केवली गमनादिक्रियारहित भया, तहां भी ताकैं योग बहुत कह्या। बेंद्रियादिक जीव गमनादि करैं हैं, तौ भी तिनकै योग स्तोक कहे ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि कहीं जाकी व्यक्तता तौ किछू न भासै, तौ भी सूक्ष्म-शक्तिके सद्भावतैं ताका तहां अस्तित्व कह्या। जैसैं मुनिकै अब्रह्म-कार्य किछू नाहीं, तौ भी नवम गुणस्थानपर्यन्त मैथुनसंज्ञा कही। अहमिंद्रनिकैं दुखका कारण व्यक्त नाहीं, तौ भी कदाचित् असाताका उदय कह्या। नारकीनिकै सुखका कारण व्यक्त नाहीं, तौ भी कदा-चित् साताका उदय कह्या। ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि करणा-नुयोग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादिक धर्मका निरूपण कर्मप्रकृतिनिका उपशमादिककी अपेक्षा लिएँ सूक्ष्मशक्ति जैसैं पाइए तैसैं गुणस्थानविषैं निरूपण करै है, वा सम्यग्दर्शनादिकके विषयभूत जीवादिक तिनका भी निरूपण सूक्ष्मभेदादि लियें करै है। यहां कोई करणानुयोगकैं अनुसारि आप उद्यम करै, तौ होय सकै नाहीं। करणानुयोगविषैं तौ यथार्थ पदार्थ जनावनैंका मुख्य प्रयोजन है। आचरण करावनैंकी मुख्यता नाहीं। तातैं यहु तौ चरणानुयोगादिककै अनुसार प्रवर्त्तै, तिसतैं जो कार्य होना है सो स्वयमेव ही होय है। जैसैं आप कर्मनिका उपशमादि किया चाहै, तौ कैसैं होय? आप तौ तत्त्वादिकका निश्चय करनैंका उद्यम करै, तातैं स्वयमेव ही उपशमादि सम्यक्त होय। ऐसैं अन्यत्र जानना। एक अंतर्मुहूर्त्तविषैं ग्यारवां गुणस्थानसौं पड़ि क्रमतैं मिथ्यादृष्टी होय बहुरि चढ़िकरि केवलज्ञान उपजावै। सो ऐसैं सम्य-क्तादिकके सूक्ष्मभाव बुद्धिगोचर आवते नाहीं, तातैं करणानुयोगकै

अनुसारि जैसाका तैसा जानि तौ ले, अर प्रवृत्ति बुद्धिगोचर जैसैं भला होय, तैसैं करै। बहुरि करणानुयोगविषैं भी कहीं उपदेशकी मुख्यता लिए व्याख्यान हो है, ताकौं सर्वथा तैसैं ही न मानना। जैसैं हिंसादिकका उपायकौं कुमतिज्ञान कह्या, अन्य मतादिकके शास्त्राभ्यासकौं कुश्रुतज्ञान कह्या, बुरा दीसै भला न दीसै ताकौं विभंगज्ञान कह्या सो इनकौं छोड़नेके अर्थि उपदेशकरि ऐसैं कह्या। तारतम्यतैं मिथ्यादृष्टीकै सर्व ही ज्ञान कुज्ञान हैं, सम्यग्दृष्टीकै सर्व ही ज्ञान सुज्ञान हैं। ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि कहीं स्थूलकथन किया होय, ताकौं तारतम्यरूप न जानना। जैसैं व्यासतैं तिगुणी परिधि कहिए, सूक्ष्मपनैं किछू अधिक तिगुणी हो है ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि कहीं मुख्यताकी अपेक्षा व्याख्यान होय, ताकौं सर्व प्रकार न जानना। जैसैं मिथ्यादृष्टी सासादन गुणस्थानवालेकौं पापजीव कहे, असंयतादिक गुणस्थानवालेकौं पुण्यजीव कहे सो मुख्यपनैं ऐसैं कहे, तारतम्यतैं दोऊनिकै पाप पुण्य यथासंभव पाइए है ऐसैं ही अन्यत्र जानना। ऐसैं ही और भी नाना प्रकार पाइए हैं, ते यथासंभव जानने। ऐसैं करणानुयोगविषैं व्याख्यानका विधान दिखाया।

अब चरणानुयोगविषैं किस प्रकारका व्याख्यान है, सो दिखाईए है—

चरणानुयोगविषैं जैसैं जीवनिकै अपनी बुद्धिगोचर धर्मका आचरण होय सो उपदेश दिया है। तहां धर्म तौ निश्चयरूप मोक्षमार्ग है, सोई है। ताकै साधनादिक उपचारतैं धर्म है सो व्यवहारनयकी प्रधानताकरि नाना प्रकार उपचारधर्मके भेदादिकका याविषैं निरूपण

करिए है। जातै निश्चय धर्मविषैं तौ किछू ग्रहण त्यागका विकल्प नाहीं अर याकै नीचली अवस्थाविषैं विकल्प छूटता नाहीं, तातैं इस जीवकौं धर्मविरोधी कार्यनिकौं छुड़ावनेका अर धर्मसाधनादि कार्यनिके ग्रहण करावनेका उपदेश याविषैं है। सो उपदेश दोय प्रकार दीजिए है। एक तौ व्यवहारहीका उपदेश दीजिए है, एक निश्चय-सहित व्यवहारका उपदेश दीजिए है। तहां जिन जीवनिकै निश्चयका ज्ञान नाहीं है, वा उपदेश दिए भी न होता दीसै ऐसे मिथ्यादृष्टी जीव किछू धर्मकौं सन्मुख भए तिनकौं व्यवहारहीका उपदेश दीजिए है। बहुरि जिन जीवनिके निश्चय-व्यवहारका ज्ञान है, वा उपदेश दिए तिनका ज्ञान होता दीसै है, ऐसे सम्यग्दृष्टी जीव वा सम्यक्तकौं सन्मुख मिथ्यादृष्टी जीव तिनकौं निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश दीजिए है। जातैं श्रीगुरु सर्व जीवनिके उपकारी हैं। सो असंज्ञी जीव तौ उपदेश ग्रहणैं योग्य नाहीं, तिनका तौ उपकार इतना ही किया और जीवनिकौं तिनकी दयाका उपदेश दिया। बहुरि जे जीव कर्म-प्रबलतातैं निश्चयमोक्षमार्गकौं प्राप्त होय सकैं नाहीं, तिनका इतना ही उपकार किया, जो उनकौं व्यवहार धर्मका उपदेश देय कुगतिके दुःखनिका कारण पापकार्य छुड़ाय सुगतिके इन्द्रियसुखनिका कारण पुण्यकार्यनिविषैं लगाया। जेता दुख मिट्या, तितना ही उपकार भया। बहुरि पापीकै तौ पापवासना ही रहै, अर कुगतिविषैं जाय तहां धर्मका निमित्त नाहीं। तातैं परंपराय दुखहीकौं पाया करै। अर पुण्यवानकै धर्मवासना रहै अर सुगति विषैं जाय, तहां धर्मके निमित्त पाईए, तातैं परंपराय सुखकौं पावै। अथवा कर्मशक्ति हीन

होय जाय, तौ मोक्षमार्गकौं भी प्राप्त होय जाय। तातैं व्यवहार उपदेशकरि पापतैं छुड़ाय पुण्यकार्यनिविषैं लगाइए है बहुरि जे जीव मोक्षमार्गकौं प्राप्त भये वा प्राप्त होने योग्य हैं, तिनका ऐसा उपकार किया जो उनकौं निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश देय मोक्षमार्गविषैं प्रवर्ताए। श्रीगुरुतौ सर्वका ऐसा ही उपकार करैं। परन्तु जिन जीवनिका ऐसा उपकार न बनैं, तौ श्रीगुरु कहा करैं। जैसा बन्या तैसा ही उपकार किया। तातैं दोय प्रकार उपदेश दीजिए है। तहां व्यवहार उपदेशविषैं तो बाह्य क्रियानिहीकी प्रधानता हैं। तिनका उपदेशतैं जीव पापक्रिया छोड़ि पुण्यक्रियानिविषैं प्रवर्त्तैं। तहां क्रियाकै अनुसार परिणाम भी तीव्रकषाय छोड़ि किछू मंदकषायी होय जाय,। सो मुख्यपनैं तौ ऐसैं है। बहुरि काहूके न होय, तौ मति होहु। श्रीगुरु तौ परिणाम सुधारनेंकै अर्थि बाह्यक्रियानिकौं उपदेशै हैं। बहुरि निश्चयसहित व्यवहारका उपदेशविषैं परिणामनिहीकी प्रधानता है। ताका उपदेशतैं तत्त्वज्ञानका अभ्यासकरि वा वैराग्य भावनाकरि परिणाम सुधारै, तहां परिणामकै अनुसारि बाह्यक्रिया भी सुधरि जाय। परिणाम सुधरैं बाह्यक्रिया तौ सुधरै ही सुधरै। तातैं श्रीगुरु परिणाम सुधारनेकौं मुख्य उपदेशैं हैं। ऐसैं दोय प्रकार उपदेशविषै व्यवहारहीका उपदेश होय। तहां सम्यग्दर्शनकै अर्थि अरहंत देव, निर्ग्रंथ गुरु, दया धर्मकौं ही मानना औरकों न मानना बहुरि जीवादिक तत्त्वनिका व्यवहारस्वरूप कह्या है, ताका श्रद्धान करना, शंकादि पचीस दोष न लगावनें, निःशंकितादिक अंग वा संवेगादिक गुण पालनें, इत्यादिक उपदेश दीजिए है। बहुरि सम्यग्ज्ञानकै अर्थि जिन-

मतके शास्त्रनिका अभ्यास करना, अर्थ व्यंजनादि अंगनिका साधन करना, इत्यादि उपदेश दीजिए है। बहुरि सम्यक्चारित्रकै अर्थि एकोदेश वा सर्वदेश हिंसादि पापनिका त्याग करना, व्रतादि अङ्गनिकौं पालनैं इत्यादि उपदेश दीजिए है। बहुरि कोई जीवकौं विशेष धर्मका साधन न होता जानि, एक आखड़ी आदिकका ही उपदेश दीजिए है। जैसैं भीलकौं कागलाका मांस छुड़ाया, गुवालियाकौं नमस्कार मंत्र जपनका उपदेश दिया,गृहस्थकौं चैत्यालय पूजा प्रभावनादि कार्यका उपदेश दीजिये है इत्यादि जैसा जीव होय, ताकौं तैसा उपदेश दीजिए है। बहुरि जहां निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश होय, तहां सम्यग्दर्शनके अर्थि यथार्थ तत्त्वनिका श्रद्धान कराइए है। तिनका जो निश्चय स्वरूप है, सो भूतार्थ है। व्यवहारस्वरूप है, सो उपचार है। ऐसा श्रद्धान लिएं वा स्वपरका भेदविज्ञानकरि परद्रव्यविषैं रागादि छोड़नेका प्रयोजन लिएं तिन तत्त्वनिका श्रद्धान करनेका उपदेश दीजिए है। ऐसे श्रद्धानतैं अरहंतादिविना अन्य देवादिक झूंठ भासैं, तब स्वयमेव तिनका मानना छूटै है, ताका भी निरूपण करिए है। बहुरि सम्यग्ज्ञानके अर्थि संशयादिरहित तिनही तत्त्वनिका तैसैं ही जाननेका उपदेश दीजिए है, तिस जाननेकौं कारण जिनशास्त्रनिका अभ्यास है। तातैं तिस प्रयोजनकै अर्थि जिनशास्त्रनिका भी अभ्यास स्वयमेव हो है,ताका निरूपण करिए है। बहुरि सम्यक्चारित्र के अर्थि रागादि दूरि करनेका उपदेश दीजिए है। तहां एकदेश वा सर्वदेश तीव्ररागादिकका अभाव भएं तिनके निमित्ततैं होती थी जे एकदेश सर्वदेश पापक्रिया, ते छूटैं हैं। बहुरि मंदरागतैं श्रावकमुनि-

कै व्रतनिकी प्रवृत्ति हो है। बहुरि मंदरागादिकनिका भी अभाव भए शुद्धोपयोगकी प्रवृत्ति हो है, ताका निरूपण करिए है। बहुरि यथार्थ श्रद्धान लिए सम्यग्दृष्टीनिकै जैसैं यथार्थ कोई आखड़ी हो है, वा भक्ति हो है, वा पूजा प्रभावनादि कार्य हो है, वा ध्यानादिक हो है, तिनका उपदेश दीजिए है। जैसा जिनमतविषैं सांचा परंपराय मार्ग है, तैसा उपदेश दीजिए है। ऐसैं दोय प्रकार उपदेश चरणानुयोगविषैं जानना।

बहुरि चरणानुयोगविषैं तीव्रकषायनिका कार्य छुड़ाय मंदकषायरूप कार्य करनेंका उपदेश दीजिए है। यद्यपि कषाय करना बुरा ही है, तथापि सर्वकषाय न छूटते जानि जेते कषाय घटैं तितना ही भला होगा, ऐसा प्रयोजन तहां जानना। जैसैं जिन जीवनिकै आरंभादि करनेकी वा मंदिरादि बनावनेकी वा विषय सेवनेकी वा क्रोधादि करनेंकी इच्छा सर्वथा दूरि न होती जानैं, तिनकौं पूजा प्रभावनादिक करनेंका वा चैत्यालयादि बनावनेका वा जिनदेवादिकके आगैं शोभादिक नृत्य गानादिकरनेंका वा धर्मात्मा पुरुषनिकी सहायादि करनेंका उपदेश दीजिए है। जातैं इनिविषैं परंपरा कषायका पोषण न हो है। पापकार्यनिविषैं परंपरा कषायपोषण हो है, तातैं पापकार्यनितैं छुड़ाय इन कार्यनिविषैं लगाईए है। बहुरि थोरा बहुत जेता छूटता जानैं, तितना पापकार्य छुड़ाय सम्यक्त वा अणुव्रतादि पालनेका तिनकौं उपदेश दीजिए है। बहुरि जिन जीवनिकै सर्वथा आरंभादिककी इच्छा दूरि भई, तिनकौं पूर्वोक्त पूजादिक कार्य वा सब पापकार्य छुड़ाय महाव्रतादि क्रियानिका उपदेश दीजिए है। बहुरि किंचित् रागादिक छूटता न जानि, तिनकौं दया धर्मोपदेश प्रतिक्रमणादि कार्य करनेका

उपदेश दीजिए है। जहां सर्वराग दूरि होय, तहां किछू करनेका कार्य ही रह्या नाहीं। तातैं तिनकौं किछू उपदेश ही नाहीं। ऐसा क्रम जानना।

बहुरि चरणानुयोगविषैं कषायी जीवनिकौं कषाय उपजायकरि भी पापकौं छुड़ाईए है, अर धर्मविषैं लगाईए है। जैसैं पापका फल नरकादिकके दुख दिखाय तिनिकौं भय कषाय उपजाय पापकार्य छुड़ाईए है। बहुरि पुण्यका फल स्वर्गादिकके सुख दिखाय तिनकौं लोभ-कषाय उपजाय धर्मकार्यनिविषैं लगाईए है। बहुरि यहु जीव इन्द्रिय-विषय शरीर पुत्र धनादिकके अनुरागतैं पाप करै है, धर्म पराङ्मुख रहै है, तातैं इन्द्रियविषयनिकों मरण क्लेशादिकके कारण दिखावने-करि तिनविषैं अरतिकषाय कराईए है। शरीरादिककौं अशुचि दिखावनेकरि तहां जुगुप्साकषाय कराईए है, पुत्रादिककौं धनादिकके ग्राहक दिखाय तहां द्वेष कराईए है, बहुरि धनादिककौं मरण कलेशा-दिकका कारण दिखाय, तहां अनिष्टबुद्धि कराईए है। इत्यादि उपायतैं विषयादिविषैं तीव्रराग दूरि होनेकरि तिनकै पापक्रिया छूटि धर्मविषैं प्रवृत्ति हो है। बहुरि नाम-स्मरण स्तुति-करण पूजा दान शीलादिकतैं इस लोकविषैं दारिद्र कष्ट दुख दूरि हो है,पुत्र धनादिककी प्राप्ति हो है, ऐसैं निरूपणकरि तिनकै लोभ उपजाय तिन धर्मकार्यनिविषैं लगाईए है। ऐसैं ही अन्य उदाहरण जाननैं।

यहां प्रश्न—जो कोई कषाय छुड़ाय कोई कषाय करावनेका प्रयो-जन कहा?

ताका समाधान—जैसैं रोग तौ शीतांग भी है अर ज्वर भी है।

परन्तु कोईकै शीतांगतैं मरण होता जानैं, तहां वैद्य है सो वाकै ज्वर होनेका उपाय करै। ज्वर भए पीछैं वाकै जीवनेकी आशा होय, तब पीछैं ज्वरके मेटनेका उपाय करै। तैसैं कषाय तौ सर्व ही हेय हैं, परंतु कोई जीवनिकैं कषायनितैं पापकार्य होता जानैं, तहां श्रीगुरु हैं सो उनकै पुण्यकार्यकौं कारणभूत कषाय होनेका उपाय करैं, पीछैं वाकै सांची धर्मबुद्धि जानैं, तब पीछैं तिस कषाय मेटनेका उपाय करैं, ऐसा प्रयोजन जानना। बहुरि चरणानुयोगविषैं जैसैं जीव पापकौं छोड़ि धर्मविषैं लागै, तैसैं अनेक युक्तिकरि वर्णन करिए है। तहां लौकिक दृष्टान्त युक्ति उदाहरण न्यायप्रवृत्तिकैं द्वारि समझाईए है। वा कहीं अन्यमतके भी उदाहरणादि कहिए है। जैसैं सूक्तमुक्तावली विषैं लक्ष्मीकौं कमलवासिनी कही, वा समुद्रविषैं विष और लक्ष्मी उपजै, तिस अपेक्षा विषकी भगिनी कही। ऐसैं ही अन्यत्र कहिए हैं। तहां कोई उदाहरणादि झूठे भी हैं, परंतु सांचा प्रयोजनकौं पोषै हैं। तातैं दोष नाहीं।

यहां कोऊ कहै कि झूंठका तौ दोष लागै। ताका समाधान—जो झूंठ भी है अर सांचा प्रयोजनकौं पोषै तौ वाकौ झूंठ न कहिए बहुरि सांच भी है अर झूंठा प्रयोजनकौं पोषै तौ वह झूंठ ही है। अलंकारयुक्त नामादिकविषैं वचन अपेक्षा झूंठ सांच नाहीं, प्रयोजन अपेक्षा झूंठ सांच है। जैसैं तुच्छशोभासहित नगरीकौं इंद्रपुरीकै समान कहिए है, सो झूंठ है। परंतु शोभाका प्रयोजनकौं पोषै है, तातैं झूंठ नाहीं। बहुरि "इस नगरीविषैं छत्रहीकै दंड है अन्यत्र नाहीं" ऐसा कह्या, सो झूंठ है। अन्यत्र भी दंड देना पाईए

है, परंतु तहां अन्यायवान् थोरे हैं न्यायवानकौं दंड न दीजिए है, ऐसा प्रयोजनकौं पोषै है, तातैं झूंठ नाहीं। बहुरि बृहस्पतिका नाम 'सुरगुरु' लिखैं वा मंगलका नाम 'कुज' लिखैं, सो ऐसे नाम अन्यमत अपेक्षा हैं। इनका अक्षरार्थ है, सो झूंठा है। परंतु वह नाम तिस पदार्थकौं प्रगट करै है, तातैं झूंठा नाहीं। ऐसैं अन्य मतादिकके उदाहरणादि दीजिये है, सो झूंठे हैं, परंतु उदाहरणादिकका तौ श्रद्धान करावना है नाहीं, श्रद्धान तौ प्रयोजनका करावना है, सो प्रयोजन सांचा है, तातैं दोष नाहीं है। बहुरि चरणानुयोगविषैं छद्मस्थकी बुद्धिगोचर स्थूलपनाकी अपेक्षा लोकप्रवृत्तिकी मुख्यता लिएं उपदेश दीजिए है। बहुरि केवलज्ञानगोचर सूक्ष्मपनाकी अपेक्षा न दीजिए है। जातैं तिसका आचरण न होय सकै। यहां आचरण करावनेका प्रयोजन है। जैसैं अणुव्रतीकै त्रसहिंसाका त्याग कह्या, अर वाकै स्त्रीसेवनादि कार्यविषैं त्रसहिंसा हो है। यहु भी जानै है—जिनवानी विषैं यहां त्रस कहे हैं। परंतु याकै त्रस मारनेका अभिप्राय नाहीं, अर लोकविषैं जाका नाम त्रसघात है, ताकौं करै नाहीं। तातैं तिस अपेक्षा वाकै त्रसहिंसाका त्याग है। बहुरि मुनिकै स्थावरहिंसाका भी त्याग कह्या, सो मुनि पृथ्वी जलादिविषैं गमनादि करै है, तहां सर्वथा त्रसका भी अभाव नाहीं। जातैं त्रसजीवकी भी अवगाहना ऐसी छोटी हो है, जो दृष्टिगोचर न आवै अर तिनकी स्थिति पृथ्वी जलादि विषैं ही है, सो मुनि जिनवानीतैं जानै हैं, वा कदाचित् अवधि ज्ञानादिकरि भी जानै हैं। परंतु याकै प्रमादतैं स्थावर त्रसहिंसाका अभिप्राय नाहीं बहुरि लोकविषैं भूमि खोदना अप्रासुक जलतैं क्रिया करनी इत्यादि

प्रवृत्तिका नाम स्थावरहिंसा है, अर स्थूल त्रसनिके पीड़नेका नाम त्रस हिंसा है, ताकौं न करै। तातैं मुनिकै सर्वथा हिंसाका त्याग कहिए है। बहुरि ऐसैं ही अनृत, स्तेय, अब्रह्म, परिग्रहका त्याग कह्या। अर केवलज्ञानका जाननेकी अपेक्षा असत्यवचनयोग बारवां गुणस्थान पर्यंत कह्या। अदत्त कर्मपरमाणु आदि परद्रव्यका ग्रहण तेरवां गुणस्थान पर्यंत है! वेदका उदय नवमगुणस्थानपर्यंत है। अंतरंगपरिग्रह दशवां गुणस्थानपर्यंत है। बाह्य परिग्रह समवसरणादि केवलीकै भी हो है। परंतु प्रमादतैं पापरूप अभिप्राय नाहीं, अर लोकप्रवृत्तिविषैं जिनक्रियानिकरि यहु झूठ बोलै है, चोरी करै है, कुशील सेवै है, परिग्रह राखै है, ऐसा नाम पावै, वै क्रिया इनकै है नाहीं। तातैं अनृतादिकका इनिक त्याग कहिए है। बहुरि जैसैं मुनिकै मूलगुणनिविषैं पंचइंद्रियनिके विषयका त्याग कह्या। सो जानना तौ इंद्रियनिका मिटै नाहीं, अर विषयनिविषैं रागद्वेष सर्वथा दूरि भया होय, तौ यथाख्यात चरित्र होय जाय सो भया नाहीं। परंतु स्थूलपनैं विषयइच्छाका अभाव भया। अर बाह्य विषय सामग्री मिलावनेकी प्रवृत्ति दूरि भई तातैं याकै इंद्रियविषयकै त्याग कह्या। ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि व्रती जीव त्याग वा आचरण करै है, सो चरणानुयोगकी पद्धति अनुसारि वा लोकप्रवृत्तिकै अनुसारि त्याग करै है। जैसैं काहूनैं त्रसहिंसाका त्याग किया, तहां चरणानुयोगविषैं वा लोकविषैं जाकौं त्रस हिंसा कहिए है, ताका त्याग किया है केवलज्ञानादि जे त्रस देखिए है, तिनिकी हिंसाका त्याग बनैं ही नाहीं। तहां जिस त्रसहिंसाका त्याग किया, तिसरूप मनका विकल्प न करना सो मनकरि त्याग है, वचन

न बोलना सो वचनकरि त्याग है, कायकरि न प्रवर्तना, सो कायकरि त्याग है ऐसैं अन्य त्याग वा ग्रहण हो है, सो ऐसी पद्धति लिएं ही हो है, ऐसा जानना।

यहां प्रश्न—जो करुणानुयोगविषैं तौ केवलज्ञान अपेक्षा तारतम्य कथन है. तहां छठै गुणस्थानिमें सर्वथा बारह अविरतिनिका अभाव कह्या, सो कैसैं कह्या ?

ताका उत्तर—अविरति भी योगकपायविषैं गर्भित थे; परन्तु तहां भी चरणानुयोग अपेक्षा त्यागका अभाव तिसहीका नाम अविरति कह्या है। तातैं तहां तिनका अभाव है। मन-अविरतिका अभाव कह्या, सो मुनिकै मनके विकल्प हो हैं, परन्तु स्वेच्छाचारी मनकी पापरूप प्रवृत्तिके अभावतैं मनअविरतिका अभाव कह्या, ऐसा जानना। बहुरि चरणानुयोगविषैं व्यवहार लोकप्रवृत्ति अपेक्षा ही नामादिक कहिए है। जैसैं सम्यक्त्वीकौं पात्र कह्या, मिथ्यातीकौं अपात्र कह्या। सो यहां जाकै जिनदेवादिकका श्रद्धान पाइये सो तौ सम्यग्दृष्टि, जाकै तिनका श्रद्धान नाहीं सो मिथ्यात्वी जानना। जातैं दान दैना चरणानुयोगविषैं कह्या है, सो चरणानुयोग-हीके सम्यक्त मिथ्यात्व ग्रहण करनें। करणानुयोग अपेक्षा सम्यक्त मिथ्यात्व ग्रहें वो ही जीव ग्यारवैं गुणस्थान था अर वो ही अंत-मुहूर्त्तमैं पहिलैं गुणस्थान आवै, तहां दातार पात्र अपात्रका कैसैं निर्णय करि सकै ? बहुरि द्रव्यानुयोग अपेक्षा सम्यक्त मिथ्यात्व ग्रहैं मुनि संघविषैं द्रव्यलिंगी भी हैं, भावलिंगी भी हैं। सो प्रथम तौ तिनका ठीक होना कठिन है। जातैं बाह्यप्रवृत्ति समान है। अर

जो कदाचित् सम्यक्तीकौं कोई चिन्हकरि ठीक पड़ै अर वह वाकी भक्ति न करै, तब औरनिकै संशय होय याकी भक्ति क्यों न करी ऐसैं वाका मिथ्यादृष्टीपना प्रगट होय, तब संघविषै विरोध उपजै। तातैं यहां व्यवहार सम्यक्त मिथ्यात्वकी अपेक्षा कथन जानना।

यहां कोई प्रश्न करै—सम्यक्ती तौ द्रव्यलिंगीकौं आपतैं हीन-गुणयुक्त मानैं है, ताकी भक्ति कैसैं करै ?

ताका समाधान—व्यवहारधर्मका साधन द्रव्यलिंगीकै बहुत है। अर भक्ति करनी सो भी व्यवहार ही है। तातैं जैसैं कोई धनवान होय, परन्तु जो कुलविषैं बड़ा होय ताकौं कुल अपेक्षा बड़ा जानि ताका सत्कार करै, तैसैं आप सम्यक्तगुणसहित हैं; परन्तु जो व्यव-हारधर्मविषैं प्रधान होय, ताकौं व्यवहारधर्म अपेक्षा गुणाधिक मानि ताकी भक्ति करै हैं। ऐसा जानना। बहुरि ऐसैं ही जो जीव बहुत उप-वासादि करै, ताकौं तपस्वी कहिए है। यद्यपि कोई ध्यान अध्ययनादि विशेष करै है, सो उत्कृष्ट तपस्वी है। तथापि चरणानुयोगविषैं बाह्य-तपहीकी प्रधानता है। तातैं तिसहीकौं तपस्वी कहिए है। याही प्रकार अन्य नामादिक जाननैं, ऐसैं ही अन्य अनेक प्रकार लिए चरणानु-योगविषैं व्याख्यानका विधान जानना।

अब द्रव्यानुयोगविषैं कहिए है—

जीवनिकै जीवादि द्रव्यनिका यथार्थ श्रद्धान जैसैं होय, तैसैं विशेष युक्ति हेतु दृष्टान्तादिकका यहां निरूपण कीजिए है। जातैं या विषैं यथार्थ श्रद्धान करावनेका प्रयोजन है। तहां यद्यपि जीवादि वस्तु अभेद है, तथापि तिनविषैं भेदकल्पनाकरि व्यवहारतैं द्रव्य

गुण पर्यायादिकका भेद निरूपण कीजिए है। बहुरि प्रतीति अनावनेकै अर्थ अनेक युक्तिकरि उपदेश दीजिए है, अथवा प्रमाणनयकरि उपदेश दीजिए सो भी युक्ति है, बहुरि वस्तुका अनुमान प्रत्यभिज्ञानादिक करनेंकौं हेतु दृष्टांतादिक दीजिए हैं। ऐसैं तहां वस्तुकी प्रतीति करावनेंका उपदेश दीजिए है। बहुरि यहां मोक्षमार्गका श्रद्धान करावनेकै अर्थ जीवादि तत्त्वनिका विशेष युक्ति दृष्टांतादिकरि निरूपण कीजिए है। तहां स्वपरभेदविज्ञानादिक जैसैं होय तैसैं जीव अजीवका निर्णय कीजिए है। बहुरि वीतरागभाव जैसैं होय तैसैं आस्रवादिकका स्वरूप दिखाइए है। बहुरि तहां मुख्यपनैं ज्ञान वैराग्यकौं कारण आत्मानुभवनादिक ताकी महिमा गाइए है। बहुरि द्रव्यानुयोगविषैं निश्चय अध्यात्म उपदेशकी प्रधानता होय, तहां व्यवहारधर्मका भी निषेध कीजिए है। जे जीव आत्मानुभवनके उपायकौं न करैं हैं, अर बाह्य क्रियाकांडविषैं मग्न हैं, तिनकौं तहांतैं उदासकरि आत्मानुभवनादिविषैं लगावनेकौं व्रत शील संयमादिकका हीनपना प्रगट कीजिए है। तहां ऐसा न जानि लेना, जो इनकौं छोड़ि पापविषैं लगना। जातैं तिस उपदेशका प्रयोजन अशुभविषैं लगावनेका नाहीं है। शुद्धोपयोगविषैं लगावनेकौं शुभोपयोगका निषेध कीजिए है।

यहां कोऊ कहै कि—अध्यात्म-शास्त्रनिविषैं पुण्य पाप समान कहे हैं, तातैं शुद्धोपयोग होय तौ भला ही है, न होय तौ पुण्यविषैं लगो वा पापविषैं लगो।

ताका उत्तर—जैसैं शूद्रजातिअपेक्षा जाट चांडाल समान कहे, परन्तु चांडालतैं जाट किछू उत्तम है। वह अस्पृश्य है, यह स्पृश्य है।

तैसैं बंधकारण अपेक्षा पुण्य पाप समान हैं; परन्तु पापतैं पुण्य किछू भला है। वह तीव्रकषायरूप है, यह मंदकषायरूप है। तातैं पुण्य छोड़ि पापविषैं लगना युक्त नाहीं ऐसा जानना। बहुरि जे जीव जिनबिम्बभक्त्यादि कार्यनिविषैं ही मग्न हैं, तिनकौं आत्मश्रद्धानादि करावनेकौं "देहविषैं देव है, देहुराविषैं नाहीं" इत्यादि उपदेश दीजिए है। तहां ऐसा न जानि लेना, जो भक्ति छुड़ाय भोजनादिकतैं आपकौं सुखी करना। जातैं तिस उपदेशका प्रयोजन ऐसा नाहीं है। ऐसैं ही अन्य व्यवहारका निषेध तहां किया होय, ताकौं जानि प्रमादी न होना। ऐसा जानना–जे केवल व्यवहारविषैं ही मग्न हैं, तिनकौं निश्चयरुचि करावने के अर्थि व्यवहारकौं हीन दिखाया है। बहुरि तिन ही शास्त्रनिविषैं सम्यग्दृष्टीके विषय भोगादिककौं बंधका कारण न कह्या, निर्ज्जराका कारण कह्या। सो यहां भोगनिका उपादेयपना न जानि लेना। तहां सम्यग्दृष्टीकी महिमा दिखावनेकौं जे तीव्रबंधके कारण भोगादिक प्रसिद्ध थे, तिन भोगादिककौं होतसंतैं भी श्रद्धानशक्तिके बलतैं मंदबंध होने लगा, ताकौं तौ गिन्या नाहीं अर तिसही बलतैं निर्ज्जरा विशेष होने लगी, तातैं उपचारतैं भोगनिकौं भी बंधका कारण न कह्या। विचार किए भोग निर्ज्जराके कारण होंय, तौ तिनकौं छोड़ि सम्यग्दृष्टी मुनिपदका ग्रहण काहेकौं करै? यहां इस कथनका इतना ही प्रयोजन है—देखो, सम्यक्त्वकी महिमा जाके बलतैं भोग भी अपने गुणकौं न करि सकै हैं। या प्रकार और भी कथन होंय, तौ ताका यथार्थपना जानि लेना। बहुरि द्रव्यानुयोगविषैं भी चरणानुयोगवत् ग्रहण त्याग करावनेका प्रयोजन है;

तातैं छद्मस्थके बुद्धिगोचर परिणामनिकी अपेक्षा ही तहां कथन कीजिए है। इतना विशेष है, जो चरणानुयोगविषैं तौ बाह्यक्रियाकी मुख्यताकरि वर्णन करिए है, द्रव्यानुयोगविषैं आत्म-परिणामनिकी मुख्यताकरि निरूपण कीजिए है बहुरि करणानुयोगवत् सूक्ष्मवर्णन न कीजिए है। ताके उदाहरण कहिए हैं:—

उपयोगके शुभ अशुभ शुद्ध ऐसैं तीन भेद कहे। तहां धर्मानुरागरूप परिणाम सो शुभोपयोग, अर पापानुराग वा द्वेषरूप परिणाम सो अशुभोपयोग, रागद्वेषरहित परिणाम सो शुद्धोपयोग, ऐसैं कह्या। सो इस छद्मस्थके बुद्धिगोचर परिणामनिकी अपेक्षा यहु कथन है। करणानुयोगविषैं कषायशक्ति अपेक्षा गुणस्थानादिविषैं संक्लेश विशुद्ध परिणाम निरूपण किया है, सो विवक्षा यहां नाहीं है। करणानुयोगविषैं तौ रागादिरहित शुद्धोपयोग, यथाख्यातचारित्र भए होय, सो मोहका नाशतैं स्वयमेव होसी। नीचली अवस्थावाला शुद्धोपयोग साधन कैसैं करै। अर द्रव्यानुयोगविषैं शुद्धोपयोग करनेहीका मुख्य उपदेश है, तातैं यहां छद्मस्थ जिस कालविषैं बुद्धिगोचर भक्ति आदि वा हिंसा आदि कार्यरूप परिणामनिकौं छुड़ाय आत्मानुभवनादि कार्यनिविषैं प्रवर्त्तै, तिस काल ताकौं शुद्धोपयोगी कहिए। यद्यपि यहां केवलज्ञानगोचर सूक्ष्मरागादिक हैं, तथापि ताकी विवक्षा यहां न करी, अपनी बुद्धिगोचर रागादिक छोडै तिस अपेक्षा याकौं शुद्धोपयोगी कह्या, ऐसैं ही स्वपर श्रद्धानादिक भए सम्यक्त्वादिक कहे, सो बुद्धिगोचर अपेक्षा निरूपण है। सूक्ष्म भावनिकी अपेक्षा गुणस्थानादिविषैं सम्यक्त्वादिकका निरूपण करणानुयोगविषैं पाइए है।

ऐसैं ही अन्यत्र जाननैं। तातैं द्रव्यानुयोगके कथन भी करणानुयोगतैं विधि मिलाया चाहिए, सो कहीं तौ मिलै कहीं न मिलै। जैसैं यथाख्यातचारित्र भए तौ दोऊ अपेक्षा शुद्धोपयोग है, बहुरि नीचली दशाविषैं द्रव्यानुयोग अपेक्षा तौ कदाचित् शुद्धोपयोग होय अर करणानुयोग अपेक्षा सदा काल कषायअन्शके सद्भावतैं शुद्धोपयोग नाहीं। ऐसैं ही अन्य कथन जानि लैंना। बहुरि द्रव्यानुयोगविषैं परमतविषैं कहे तत्त्वादिक तिनकौं असत्य दिखावनेकै अर्थि तिनका निषेध कीजिए है, तहां द्वेषबुद्धि न जाननी। तिनकौं असत्य दिखाय सत्य श्रद्धान करावनेंका प्रयोजन जानना। ऐसैं ही और भी अनेक प्रकारकरि द्रव्यानुयोगविषैं व्याख्यानका विधान है। या प्रकार च्यारौं अनुयोगके व्याख्यानका विधान कह्या, सो कोई ग्रंथविषैं एक एक अनुयोगकी, कोई विषैं दोयकी, कोई विषैं तीनकी, कोई विषैं च्यारयौं की प्रधानता लिए व्याख्यान हो है। सो जहां जैसा संभवै, तहां तैसा समझ लेना।

[अनुयोगोंमें पद्धति विशेष]

अब इन अनुयोगनिविषैं कैसी पद्धतिकी मुख्यता पाइए है, सो कहिए है—

प्रथमानुयोगविषैं तौ अलंकारशास्त्रनिकी वा काव्यादि शास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है। जातैं अलंकारादिकतैं मन रंजायमान होय, सूधी बात कहैं ऐसा उपयोग लागै नाहीं, जैसा अलंकारादि युक्ति सहित कथनतैं उपयोग लागै। बहुरि परोक्ष बातकौं किछू अधिकताकरि निरूपण करिए, तौ वाका स्वरूप नीकैं भासै। बहुरि कर-

णानुयोगविषैं गणित आदि शास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है। जातैं तहां द्रव्य क्षेत्र काल भावका प्रमाणादिक निरूपण कीजिए है। सो गणित ग्रंथनिकी आम्नायतैं ताका सुगम जानपना हो है। बहुरि चरणानुयोगविषैं सुभाषित नीतिशास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है। जातैं यहां आचरण करावना है, सो लोकप्रवृत्तिकै अनुसार नीतिमार्ग दिखाए वह आचरन करै। बहुरि द्रव्यानुयोगविषैं न्यायशास्त्रनिकी पद्धति मुख्य है। जातैं यहां निर्णय करनेका प्रयोजन है अर न्यायशास्त्रनिविषैं निर्णय करनेका मार्ग दिखाया है। ऐसैं इन अनुयोगनिविषैं पद्धति मुख्य है। और भी अनेक पद्धति लिएं व्याख्यान इनविषैं पाईए है।

यहां कोऊ कहै—अलंकार गणित नीति न्यायका तौ ज्ञान पंडितनिकै होय; तुच्छबुद्धि समझैं नाहीं, तातैं सूधा कथन क्यों न किया ?

ताका उत्तर—शास्त्र हैं सो मुख्यपनैं पंडित अर चतुरनिके अभ्यास करने योग्य हैं। सो अलंकारादि आम्नाय लिएं कथन होय, तौ तिनका मन लागै। बहुरि जे तुच्छबुद्धि हैं, तिनकौं पंडित समझाय दें। अर जे न समझि सकैं, तौ तिनकौं मुखतैं सूधा ही कथन कहैं। परन्तु ग्रंथनिमैं सूधा कथन लिखें विशेषबुद्धि तिनका अभ्यासविषैं विशेष न प्रवर्त्तै। तातैं अलंकारादि आम्नाय लिएं कथन कीजिए है। ऐसैं इन च्यारि अनुयोगनिका निरूपण किया।

बहुरि जिनमतविषैं घने शास्त्र तौ इन च्यारौं अनुयोगनिविषैं गर्भित हैं। बहुरि व्याकरण न्याय छंद कोषादिक शास्त्र वा वैद्यक ज्योतिष वा मंत्रादि शास्त्र भी जिनमतविषैं पाईए है। तिनका कहा प्रयोजन है, सो सुनहु—

व्याकरण न्यायादिकका अभ्यास भए अनुयोगरूप शास्त्रनिका अभ्यास होय सकै है। तातैं व्याकरणादि शास्त्र कहे हैं।

कोऊ कहै,--भाषारूप सूधा निरूपण करते तौ व्याकरणादिकका कहा प्रयोजन था ?

ताका उत्तर—भाषा तौ अपभ्रंशरूप अशुद्ध वाणी है। देश देशविषैं और और है। सो महंतपुरुष शास्त्रनिविषैं ऐसी रचना कैसें करैं। बहुरि व्याकरण न्यायादिककरि जैसा यथार्थ सूक्ष्म अर्थ निरूपण हो है तैसा सूधी भाषाविषैं होय सकै नाहीं। तातैं व्याकरणादि आम्नायकरि वर्णन किया है। सो अपनी बुद्धि अनुसारि थोरा बहुत इनिका अभ्यासकरि अनुयोगरूप प्रयोजनभूत शास्त्रनिका अभ्यास करना। बहुरि वैद्यकादि चमत्कारतैं जिनमतकी प्रभावना होय वा औषधादिकतैं उपकार भी बनैं, अथवा जे जीव लौकिक कार्यविषैं अनुरक्त हैं, ते वैद्यकादिक चमत्कारतैं जैनी होय पीछैं सांचा धर्म पाय अपना कल्याण करैं। इत्यादि प्रयोजन लिए वैद्यकादि शास्त्र कहे हैं। यहां इतना है—ए भी जिनशास्त्र है, ऐसा जानि इनका अभ्यासविषैं बहुत लगना नाहीं। जो बहुत बुद्धितैं इनिका सहज जानना होय, अर इनिकौं जानें आपकै रागादिक विकार बधते न जानैं, तौ इनिका भी जानैं, तौ इनिका भी जानना होहु। अनुयोग शास्त्रवत् ए शास्त्र बहुत कार्यकारी नाहीं। तातैं इनिका अभ्यासका विशेष उद्यम करना युक्त नाहीं।

यहां प्रश्न—जो ऐसे है, तौ गणधरादिक इनकी रचना काहेकौं करी ?

ताका उत्तर—पूर्वोक्त किंचित् प्रयोजन जानि इनकी रचना करी। जैसैं बहुत धनवान् कदाचित् स्तोक कार्यकारी वस्तुका भी संचय करै। बहुरि थोरा धनवान् उन वस्तुनिका संचय करै, तौ धन तौ तहां लगि जाय, बहुतकार्यकारी वस्तुका संग्रह काहेतैं करै। तैसैं बहुत बुद्धिमान् गणधरादिक कथंचित् स्तोककार्यकारी वैद्यकादि शास्त्रनिका भी संचय करैं। थोरा बुद्धिमान् उनका अभ्यासविषैं लागै, तौ बुद्धि तौ तहां लगि जाय, उत्कृष्ट कार्यकारी शास्त्रनिका अभ्यास कैसैं करै? बहुरि जैसैं मंदरागी तौ पुराणादिविषैं शृंगारादि निरूपण करै, तौ भी विकारी न होय, तीव्ररागी तैसैं शृंगारादि निरूपै, तौ पाप ही बांधै। तैसैं मंदरागी गणधरादिक हैं, ते वैद्यकादि शास्त्र निरूपैं, तौ भी विकारी न होय, तीव्ररागी तिनका अभ्यासविषैं लगि जाय, तौ रागादिक वधाय पापकर्म्मकौं बांधै। ऐसैं जानना। या प्रकार जैनमतके उपदेशका स्वरूप जानना।

[अनुयोगोंमें दोष-कल्पनाओंका प्रतिषेध]

अब इनविषैं दोषकल्पना कोई करै है, ताका निराकरण करिए है—

केई जीव कहै हैं—प्रथमानुयोगविषैं शृंगारादिकका वा संग्रामादिकका बहुत कथन करैं, तिनके निमित्ततैं रागादिक वधि जाय, तातैं ऐसा कथन न करना था। ऐसा कथन सुनना नाहीं। ताकौं कहिए है—कथा कहनी होय, तब तौ सर्व ही अवस्थाका कथन किया चाहिए। बहुरि जो अलंकारादिकरि वधाय कथन करैं हैं, सो पंडितनिके वचन युक्ति लिएं ही निकसैं।

अर जो तू कहैगा, संबंध मिलावने कौं सामान्य कथन किया होता, बधायकरि कथन काहेकौं किया ?

ताका उत्तर यहु है—जो परोक्षकथनकौं बधाय कहे बिना वाका स्वरूप भासै नाहीं। बहुरि पहलैं तो भोग संग्रामादि ऐसैं कीए, पीछे सर्वका त्यागकरि मुनि भए, इत्यादि चमत्कार तब ही भासै, जब बधाय कथन कीजिए। बहुरि तू कहै है, ताके निमित्ततैं रागादिक वधि जाय, सो जैसैं कोऊ चैत्यालय बनावै, सो वाका तौ प्रयोजन तहां धर्मकार्य करावनेका है। अर कोई पापी तहां पापकार्य करै, तौ चैत्यालय बनावनेवालाका तौ दोष नाहीं। तैसैं श्रीगुरु पुराणादिविषैं शृंगारादि वर्णन किए, तहां उनका प्रयोजन रागादि करावनेका तौ है नाहीं—धर्म्मविषैं लगावनेका प्रयोजन है। अर कोई पापी धर्म न करै अर रागादिक ही बधावै, तौ श्रीगुरुका कहा दोष है ?

बहुरि जो तू कहै—जो रागादिकका निमित्त होय, सो कथन ही न करना था।

ताका उत्तर यहु है—सरागी जीवनिका मन केवल वैराग्यकथनविषैं लागै नाहीं, तातैं जैसैं बालककौं पतासाकै आश्रय औषधि दीजिए, तैसैं सरागीकौं भोगादिकथनकै आश्रय धर्मविषैं रुचि कराइए है।

बहुरि तू कहैगा—ऐसैं है तौ विरागी पुरुषनिकौं तौ ऐसे ग्रंथनिका अभ्यास करना युक्त नाहीं।

ताका उत्तर यहु है—जिनकै अंतरंगविषैं रागभाव नाहीं, तिनकै शृंगारादि कथन सुनें रागादि उपजै ही नाहीं। यहु जानै ऐसै ही यहां कथन करनेकी पद्धति है।

बहुरि तू कहैगा—जिनकै श्रृंगारादि कथन सुनें रागादि होय आवै, तिनकौं तो वैसा कथन सुनना योग्य नाहिं।

ताका उत्तर यहु है—जहां धर्महीका तो प्रयोजन अर जहां तहां धर्मकौं पोषै ऐसे जैनपुराणादिक तिनविषै प्रसंग पाय श्रृंगारादिकका कथन किया, ताकौं सुने भी जो बहुत रागी भया, तौ वह अन्यत्र कहां विरागी होसी, पुराण सुनना छोड़ि और कार्य भी ऐसा ही करैगा, जहां बहुत रागादि होय,। तातैं वाकै भी पुराण-सुने थोरा बहुत धर्मबुद्धि होय तौ होय और कार्यनितैं यहु कार्य भला ही है।

बहुरि कोई कहै—प्रथमानुयोगविषैं अन्य जीवनिकी कहानी है, वातैं अपना कहा प्रयोजन सधै है?

ताकौं कहिए है—जैसैं कामीपुरुषनिकी कथा सुनैं आपकै भी कामका प्रेम बधै है, तैसैं धर्मात्मा पुरुषनिकी कथा सुनैं आपकै धर्मकी प्रीति विशेष हो है। तातैं प्रथमानुयोगका अभ्यास करना योग्य है।

बहुरि केई जीव कहैं हैं—करणानुयोगविषैं गुणस्थान मार्गणादिकका वा कर्मप्रकृतिनिका कथन किया, वा त्रिलोकादिकका कथन किया, सो तिनकौं जानि लिया 'यहु ऐसैं है' 'यहु ऐसैं है' यामैं अपना कार्य कहा सिद्ध भया? कै तौ भक्ति करिए, कै व्रत दानादि करिए, कै आत्मानुभवन करिए; इनतैं अपना भला होय।

ताकौं कहिए है—परमेश्वर तौ वीतराग हैं। भक्ति किए प्रसन्न होयकरि किछू करते नाहीं। भक्ति करतैं मंदकषाय हो है, ताका स्वयमेव उत्तम फल हो है। सो करणानुयोगकै अभ्यासविषैं तिसतैं भी अधिक मंद कषाय होय सकै है, तातैं याका फल अति उत्तम हो

है। बहुरि व्रतदानादिक तौ कपाय घटावनेके बाह्य निमित्तका साधन हैं, अर चरणानुयोगका अभ्यास किए तहां उपयोग लगि जाय, तब रागादिक दूरि होंय, सो यहु अंतरंग निमित्तका साधन है। तातैं यहु विशेष कार्यकारी है। व्रतादिक धारि अध्ययनादि कीजिए है। बहुरि आत्मानुभव सर्वोत्तम कार्य है। परंतु सामान्य अनुभवविषैं उपयोग थंभै नाहीं, अर न थंभै तब अन्य विकल्प होय, तहां करणानुयोगका अभ्यास होय, तौ तिस विचारविषैं उपयोगकौं लगावै। यहु विचार वर्तमान भी रागादिक घटावै है। अर आगामी रागादिक घटावनेका कारण है तातैं यहां उपयोग लगावना। जीव कर्मादिकके नाना प्रकार भेद जानैं, तिनविषैं रागादिकरनेका प्रयोजन नाहीं, तातैं रागादि बधै नाहीं। वीतराग होनेका प्रयोजन जहां तहां प्रगटै है, तातैं रागादि मिटावनेकौं कारण है।

यहां कोऊ कहै—कोई तौ कथन ऐसा ही है, परंतु द्वीप समुद्रादिकके योजनादि निरूपे, तिनमें कहा सिद्धि है?

ताका उत्तर—तिनकौं जानैं किछू तिनविषैं इष्ट अनिष्ट बुद्धि न होय, तातैं पूर्वोक्त सिद्धि हो है। बहुरि वह कहै है ऐसैं है, तौ जिसमैं किछू प्रयोजन नाहीं, ऐसा पाषाणादिककौं भी जानैं तहां इष्ट अनिष्टपनौं न मानिए है, सो भी कार्यकारी भया।

ताका उत्तर—सरागी जीव रागादि प्रयोजनविना काहूकौं जाननेका उद्यम न करै। जो स्वयमेव उनका जानना होय, तौ अंतरंग रागादिकका अभिप्रायके वशतैं तहांतै उपयोगकौं छुड़ाया ही चाहै है। यहां उद्यमकरि द्वीप समुद्रादिककौं जानैं है तहां उपयोग लगावै है। सो रागादि

घटै ऐसा कार्य होय। बहुरि पाषाणादिकविषैं इस लोकका कोई प्रयोजन भासि जाय, तौ रागादिक होय आवै। अर द्वीपादिकविषैं इस लोकसम्बंधी कार्य किछू नाहीं। तातैं रागादिकका कारण नाहीं। जो स्वर्गादिककी रचना सुनि तहां राग होय, तौ परलोकसंबंधी होय। ताका कारण पुण्यकौं जानौं तब पाप छोड़ि पुण्यविषैं प्रवर्त्तै। इतना ही नफ़ा होय। बहुरि द्वीपादिकके जानैं यथावत् रचना भासै, तब अन्यमतादिकका कह्या झूंठ भासै, सत्य श्रद्धानी होय। बहुरि यथावत् रचना जाननैंकरि भ्रम मिटै उपयोगकी निर्मलता होय, तातैं यह अभ्यास कार्यकारी है।

बहुरि केई कहै हैं—करणानुयोगविषैं कठिनता घनी, तातैं ताका अभ्यासविषैं खेद होय।

ताकौं कहिए है—जो वस्तु शीघ्र जाननेंमैं आवै, तहां उपयोग उलझै नाहीं, अर जानी वस्तुकौं बारंबार जाननेंका उत्साह होय नाहीं, तब पापकार्यनिविषैं उपयोग लगि जाय। तातैं अपनी बुद्धि अनुसारि कठिनताकरि भी जाका अभ्यास होता जानैं, ताका अभ्यास करना। अर जाका अभ्यास होय ही सकै नाहीं, ताका कैसैं करै? बहुरि तू कहै है—खेद होय, सो प्रमादी रहनेमैं तौ धर्म है नाहीं। प्रमादतैं सुखिया रहिए, तहां तौ पाप ही होय। तातैं धर्मकै अर्थ उद्यम करना ही युक्त है। या विचारि करणानुयोगका अभ्यास करना।

बहुरि केई जीव ऐसैं कहै हैं—चरणानुयोगविषैं बाह्य व्रतादि साधनका उपदेश है, सो इनितैं किछु सिद्धि नाहीं। अपनें परिणाम निर्मल चाहिए, बाह्य चाहो जैसैं प्रवर्त्तो। तातैं इस उपदेशतैं पराङ्मुख

रहे हैं। तिनकौं कहिए है—आत्मपरिणामनिकै और बाह्य प्रवृत्तिकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है। जातैं छद्मस्थकै क्रिया परिणामपूर्वक हो है। कदाचित् विना परिणाम हू कोई क्रिया हो है, सो परवशतैं हो है। अपनैं वशतैं उद्यमकरि कार्य करिए अर कहिए परिणाम इसरूप नाहीं है, सो यहु भ्रम है। अथवा बाह्य पदार्थनिका आश्रय पाय परिणाम होय सकै है। तातैं परिणाम मेटनेंके अर्थ बाह्यवस्तुका निषेध करना। समयसारादिविषैं कह्या है। इस ही वास्तैं रागादिभाव घटैं बाह्य ऐसैं अनुक्रमतैं श्रावक मुनिधर्म होय। अथवा ऐसैं श्रावक मुनिधर्म अंगीकार किएं पंचम षष्ठमआदि गुणस्थाननिविषैं रागादि घटावनेंरूप परिणामनिकी प्राप्ति होय। ऐसा निरूपण चरणानुयोगविषैं किया। बहुरि जो बाह्य संयमतैं किछू सिद्धि न होय,तौ सर्वार्थसिद्धिके वासी देव सम्यग्दृष्टी बहुतज्ञानी तिनकै तौ चौथा गुणस्थान होय, अर गृहस्थ श्रावक मनुष्यकै पंचम गुणस्थान होय, सो कारण कहा? बहुरि तीर्थंकरादिक गृहस्थपद छोडि काहेकौं संयम गहैं। तातैं यहु नियम है—बाह्य संयम साधनविना परिणाम निर्मल न होय सकै है। तातैं बाह्य साधनका विधान जाननेंकौं चरणानुयोगका अभ्यास अवश्य किया चाहिए।

बहुरि केई जीव कहैं हैं—जो द्रव्यानुयोगविषैं व्रतसंयमादि व्यवहारधर्मका हीनपना प्रगट किया है। सम्यग्दृष्टीके विषय भोगादिकनिकौं निर्जराका कारण कह्या है। इत्यादि वचन सुनि जीव हैं, सो स्वच्छन्द होय पुण्य छोडि पापविषैं प्रवर्तैंगे, तातैं इनिका वांचना सुनना युक्त नाहीं। ताकौं कहिए है— जैसैं गर्दभ मिश्री खाएं मरै,

तौ मनुष्य तौ मिश्री खाना न छोड़ै। तैसैं विपरीतबुद्धि अध्यात्मग्रन्थ सुनि स्वच्छन्द होय, तौ विवेकी तौ अध्यात्मग्रन्थनिका अभ्यास न छोड़ै। इतना करै—जाकौं स्वच्छन्द होता जानैं, ताकौं जैसैं वह स्वच्छन्द न होय, तैसैं उपदेश देश दे। बहुरि अध्यात्मग्रन्थनविषैं भी स्वच्छन्द होनेंका जहां तहां निषेध कीजिए है, तातैं जो नीकैं तिनकौं सुनैं, सो तौ स्वच्छन्द होता नाहीं। अर एक बात सुनि अपनें अभिप्रायतैं कोऊ स्वच्छन्द होय, तौ ग्रंथका तौ दोष है नाहीं, उस जीवहीका दोष है। बहुरि जो झूंठा दोषकी कल्पनाकरि अध्यात्म-शास्त्रका बांचना सुनना निषेधिए तौ मोक्षमार्गका मूल उपदेश तौ तहां ही है। ताका निषेध किए मोक्षमार्गका निषेध होय। जैसैं मेघवर्षा भए बहुत जीवनिका कल्याण होय, अर काहूकै उलटा टोटा पड़ै तौ तिसकी मुख्यताकरि मेघका तौ निषेध न करना। तैसैं सभाविषैं अध्यात्म उपदेश भए बहुत जीवनिकौं मोक्षमार्गकी प्राप्ति होय अर काहूकै उलटा पाप प्रवर्त्तै, तौ तिसको मुख्यताकरि अध्यात्मशास्त्रनिका तौ निषेध न करना। बहुरि अध्यात्मग्रंथनितैं कोऊ स्वच्छंद होय, सो तौ पहलैं भी मिथ्यादृष्टी था, अब भी मिथ्यादृष्टी ही रह्या। इतना ही टोटा पड़ै, जो सुगति न होय कुगति होय। अर अध्यात्म उपदेश न भएं बहुत जीवनिकै मोक्षमार्गकी प्राप्तिका अभाव होय, सो यामैं घनें जीवनिका घना बुरा होय। तातैं अध्यात्म उपदेशका निषेध न करना।

बहुरि केई जीव कहैं है—जो द्रव्यानुयोगरूप अध्यात्म उपदेश है, सो उत्कृष्ट है। सो ऊंची दशाकौं प्राप्त होय, तिनकौं कार्यकारी है;

नीचली दशावालोकौं तौ व्रत संयमादिकका ही उपदेश देना योग्य है ।

ताकौं कहिए है--जिनमतविषैं तौ यहु परिपाटी है, जो पहलैं सम्यक्त होय पीछैं व्रत होय। सो सम्यक्त स्वपरका श्रद्धान भए होय, अर सो श्रद्धान द्रव्यानुयोगका अभ्यास किएं होय। तातैं पहलैं द्रव्यानुयोगकै अनुसारि श्रद्धानकरि सम्यग्दृष्टी होय, पीछैं चरणानुयोगकै अनुसार व्रतादिक धारि व्रती होय। ऐसैं मुख्यपनैं तौ नीचली दशाविषैं ही द्रव्यानुयोग कार्यकारी है, गौणपनैं जाकौं मोक्षमार्गकी प्राप्ति होती न जानिए, ताकौं पहलैं कोई व्रतादिकका उपदेश दीजिए है। तातैं ऊंची दशावालौंकौं अध्यात्म अभ्यास योग्य है, ऐसा जानि नीचलीदशावालौंकौं तहांतैं पराङ्मुख होना योग्य नाहीं। बहुरि जो कहौगे, ऊंचा उपदेशका स्वरूप नीचली दशावालौंकौं भासै नाहीं।

ताका उत्तर यहु है—और तौ अनेक प्रकार चतुराई जानै, अर यहां मूर्खपना प्रगट कीजिए, सो युक्त नाहीं। अभ्यास किएं स्वरूप नीकैं भासै है। अपनी बुद्धि अनुसारि थोरा बहुत भासै, परन्तु सर्वथा निरुद्यमी होनेकौं पोषिए, सो तौ जिनमार्गका द्वेषी होना है। बहुरि जो कहौगे, अबार काल निकृष्ट है, तातैं उत्कृष्ट अध्यात्मका उपदेशकी मुख्यता न करनी। ताकौं कहिए है, अबार काल साक्षात् मोक्ष होनेकी अपेक्षा निकृष्ट है, आत्मानुभवनादिककरि सम्यक्तादिक होना अबार मनैं नाहीं। तातैं आत्मानुभवनादिकके अर्थि द्रव्यानुयोगका अवश्य अभ्यास करना। सोई षट्पाहुड़विषै (मोक्षपाहुड़में) कह्या है :—

अज्जवि तिरयणसुद्धा अप्पाझाऊण जंति सुरलोए[1] ।
लोयंते देवत्तं तत्थ चुया णिव्वुदिं जंति ॥ ७७ ॥

याका अर्थ—अबहू त्रिकरणकरि शुद्ध जीव आत्माकौं ध्यायकरि सुरलोकविषैं प्राप्त हो हैं, वा लौकांतिकविषैं देवपणों पावैं हैं। तहांतैं च्युत होय मोक्ष जाय हैं। बहुरि[2] तातैं इस कालविषैं भी द्रव्यानुयोगका उपदेश मुख्य चाहिए। बहुरि कोई कहै है—द्रव्यानुयोगविषैं अध्यात्मशास्त्र हैं, तहां स्वपरभेद विज्ञानादिकका उपदेश दिया, सो तौ कार्यकारी भी घना अर समझिमैं भी शीघ्र आवै। परन्तु द्रव्यगुणपर्यायादिकका वा अन्यमतके कहे तत्त्वादिकका निराकरण करि कथन किया, सो तिनिका अभ्यासतैं विकल्प विशेष होय। बहुत प्रयास किए जाननेमैं आवै। तातैं इनिका अभ्यास न करना। तिनकौं कहिए है—

सामान्य जाननेतैं विशेष जानना बलवान् है। ज्यौं-ज्यौं विशेष जानैं त्यौं त्यौं वस्तुस्वभाव निर्मल भासै, श्रद्धान दृढ़ होय, रागादि घटैं, तातैं तिस अभ्यासविषैं प्रवर्त्तना योग्य है। ऐसैं च्यारयौं अनुयोगनिविषैं दोषकल्पनाकरि अभ्याससैं पराङ्मुख होना योग्य नाहीं।

बहुरि व्याकरण न्यायादिक शास्त्र हैं, तिनका भी थोरा बहुत अभ्यास करना। जातैं इनिका ज्ञानविना बड़े शास्त्रनिका अर्थ भासै

१—"लहइ इंदत्तं" ऐसी भी पाठ है।

२—यहां बहुरि' के आगे ३—४ लाइन का स्थान खरडाप्रति में छोडा गयाहै जिससे ज्ञात होता है कि मल्लजी वहां कुछ और भी लिखना चाहते थे पर लिख नहीं सके।

नाहीं। बहुरि वस्तुका भी स्वरूप इनकी पद्धति जानैं जैसा भासै, तैसा भाषादिककरि भासै नाहीं। तातैं परंपरा कार्यकारी जानि इनिका भी अभ्यास करना। परन्तु इनहीविषैं फंसि न जाना। किछू इनका अभ्यासकरि प्रयोजनभूत शास्त्रनिका अभ्यासविषैं प्रवर्त्तना। बहुरि वैद्यकादि शास्त्र हैं, तिनतैं मोक्षमार्गविषैं किछु प्रयोजन ही नाहीं। तातैं कोई व्यवहारधर्मका अभिप्रायतैं विनाखेद इनिका अभ्यास होय जाय, तौ उपकारादि करना, पापरूप न प्रवर्त्तना। अर इनका अभ्यास न होय तौ मति होहु, बिगार किछू नाहीं। ऐसैं जिनमतके शास्त्र निर्दोष जानि तिनका उपदेश मानना।

[अनुयोगोंमें सापेक्ष उपदेश]

अब शास्त्रनिविषैं अपेक्षादिककौं न जानैं परस्पर विरोध भासै, ताका निराकरण कीजिए है। प्रथमादि अनुयोगनिकी आम्नायकै अनुसारि जहां जैसैं कथन किया होय, तहां तैसैं जानि लैंना और अनुयोगका कथनकौं और अनुयोगका कथनतैं अन्यथा जानि संदेह न करना। जैसैं कहीं तौ निर्मल सम्यग्दृष्टीहीकै शंका कांक्षा विचिकित्साका अभाव कह्या, कहीं भयका आठवां गुणस्थान पर्यंत, लोभका दशमा पर्यंत, जुगुप्साका आठवां पर्यंत उदय कह्या। तहां विरुद्ध न जानना। श्रद्धानपूर्वक तीव्र शंकादिकका सम्यग्दृष्टीकै अभाव भया, अथवा मुख्यपनैं सम्यग्दृष्टी शंकादि न करै, तिस अपेक्षा चरणानुयोगविषैं शंकादिकका सम्यग्दृष्टीकै अभाव कह्या, बहुरि सूक्ष्मशक्ति अपेक्षा भयादिकका उदय अष्टमादि गुणस्थान पर्यंत पाइए है। ऐसैं

करणानुयोगविषैं तहां पर्यंत तिनका सद्भाव कह्या ऐसैं ही अन्यत्र जानना, पूर्वैं अनुयोगनिका उपदेशविधानविषैं कैई उदाहरण कहे हैं, ते जाननें, अथवा अपनी बुद्धितैं समझि लैनैं। बहुरि एक ही अनुयोगविषैं विवित्ताके वशतैं अनेकरूप कथन करिए है। जैसैं करणानुयोगविषैं प्रमादनिका सप्तम गुणस्थानविषैं अभाव कह्या, तहां कषायादिक प्रमादके भेद कहे। बहुरि तहां ही कषायादिकका सद्भाव दशमादि गुणस्थान पर्यंत कह्या, तहां विरुद्ध न जानना। जातैं यहां प्रमादनिविषैं तौ जे शुभ अशुभ भावनिका अभिप्राय लिएं कषायादिक होय, तिनका ग्रहण है। सो सप्तम गुणस्थानविषैं ऐसा अभिप्राय दूरि भया, तातैं तिनिका तहां अभाव कह्या। बहुरि सूक्ष्मादिभावनिकी अपेक्षा तिनहीका दशमादि गुणस्थान पर्यंत सद्भाव कह्या है। बहुरि चरणानुयोगविषैं चोरी परस्त्री आदि सप्तव्यसनका त्याग प्रथम प्रतिमाविषैं कह्या, बहुरि तहां ही तिनका त्याग द्वितीय प्रतिमाविषैं कह्या। तहां विरुद्ध न जानना। जातैं सप्तव्यसनविषैं तौ चोरी आदि कार्य ऐसैं ग्रहे हैं, जिनकरि दंडादिक पावै, लोकविषैं अतिनिंदा होय। बहुरि व्रतनिविषैं चोरी आदि त्याग करनेयोग्य ऐसैं कहे हैं, जे गृहस्थ धर्मविषैं विरुद्ध होय, वा किंचित् लोकनिंद्य होय ऐसा अर्थ जानना ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि नाना भावनिकी सापेक्षतैं एक ही भावकौं अन्य अन्य प्रकार निरूपण कीजिए है। जैसैं कहीं तौ महाव्रतादिक चारित्रके भेद कहे, कहीं महाव्रतादि होतैं भी द्रव्यलिंगीकों असंयमी कह्या, तहां विरुद्ध न जानना। जातैं सम्य-

ग्ज्ञानसहित महाव्रतादिक तौ चारित्र हैं, अर अज्ञानपूर्वक व्रतादिक भए भी असंयमी ही है। बहुरि जैसैं पंच मिथ्यात्वनिविषैं भी विनय कह्या, अर बारह प्रकार तपनिविषैं भी विनय कह्या, तहां विरुद्ध न जानना। जातैं विनय करनैं योग्य नाहीं तिनका भी विनयकरि धर्म मानना, सो तौ विनय मिथ्यात्व है अर धर्मपद्धतिकरि जे विनय करने योग्य हैं, तिनिका यथायोग्य विनय करना, सो विनय तप है। बहुरि जैसैं कहीं तौ अभिमानकी निंदा करी, कहीं प्रशंसा करी, तहां विरुद्ध न जानना। जातैं मानकषायतैं आपकों ऊंचा मनावनेकै अर्थि विनयादि न करै, सो अभिमान तौ निंद्य ही है, अर निर्लोभपनातैं दीनता आदि न करै, सो अभिमान प्रशंसा योग्य है। बहुरि जैसैं कहीं चतुराईकी निन्दा करी, कहीं प्रशंसा करी, तहां विरुद्ध न जानना। जातैं मायाकषायतैं काहूका ठिगनेकै अर्थ चतुराई कीजिए, सो तौ निन्द्य ही है, अर विवेक लिएं यथासभव कार्य करनेविषैं जो चतुराई होय, सो श्लाघ्य ही है ऐसें ही अन्यत्र जानना। बहुरि एक ही भावकी कहीं तौ उसतैं उत्कृष्टभावकी अपेक्षाकरि निन्दा करी होय, अर कहीं तिसतैं होनभावकी अपेक्षाकरि प्रशंसा करी होय, तहां विरुद्ध न जानना। जैसैं किसी शुभक्रियाकी जहां निन्दा करी होय, तहां तौ तिसतैं ऊंची शुभक्रिया वा शुद्धभाव तिनकी अपेक्षा जाननी, अर जहां प्रशंसा करी होय, तहां तिसतैं नीची क्रिया वा अशुभक्रिया तिनकी अपेक्षा जाननी, ऐसें ही अन्यत्र जानना। बहुरि ऐसें ही काहू जीवकी ऊंचे जीवकी अपेक्षा निन्दा करी होय, तहां सर्वथा निन्दा

जाननी। काहूकी नीचे जीवकी अपेक्षा प्रशंसा करी होय, तौ सर्वथा प्रशंसा न जाननी। यथासंभव वाका गुण दोष जानि लैना, ऐसैं ही अन्य व्याख्यान जिस अपेक्षा लिएं किया होय, तिस अपेक्षा वाका अर्थ समझना। बहुरि शास्त्रविषैं एक ही शब्दका कहीं तौ कोई अर्थ हो है, कहीं कोई अर्थ हो है, तहां प्रकरण पहचानि वाका संभवता अर्थ जानना। जैसैं मोक्ष-मार्गविषैं सम्यग्दर्शन कह्या। तहां दर्शन शब्दका अर्थ श्रद्धान है, अर उपयोग वर्णनविषैं दर्शन शब्दका अर्थ सामान्य स्वरूप ग्रहण मात्र है, अर इन्द्रियवर्णनविषैं दर्शन शब्दका अर्थ नेत्रकरि देखनें मात्र है। बहुरि जैसैं सूक्ष्म बादरका अर्थ वस्तुनिका प्रमाणादिक कथन-विषैं छोटा प्रमाण लिएं होय, ताका नाम सूक्ष्म अर बड़ा प्रमाण लिएं होय, ताका नाम बादर, ऐसा अर्थ होय। अर पुद्गलस्कंधादिका कथन-विषैं इंद्रियगम्य न होय, सो सूक्ष्म, इंद्रियगम्य होय सो बादर ऐसा अर्थ है। जीवादिकका कथनविषैं ऋद्धि आदिका निमित्तविना स्वय-मेव रुकै नाहीं, ताका नाम सूक्ष्म, रुकै ताका नाम बादर, ऐसा अर्थ है। वस्त्रादिकका कथनविषैं महीनताका नाम सूक्ष्म, मोटाका नाम बादर, ऐसा अर्थ है। करणानुयोगके कथनविषैं पुद्गलस्कंधके निमित्ततैं रुकै नाहीं, ताका नाम सूक्ष्म है अर रुक जाय ताका नाम बादर है।

बहुरि प्रत्यक्ष शब्दका अर्थ लोकव्यवहारविषैं तौ इंद्रियनिकरि जाननेका नाम प्रत्यक्ष है, प्रमाणभेदनिविषैं स्पष्ट व्यवहार प्रतिभासका नाम प्रत्यक्ष है, आत्मानुभवनादिविषैं आपविषैं अवस्था होय, ताका नाम प्रत्यक्ष है। बहुरि जैसैं मिथ्यादृष्टीकै अज्ञान कह्या, तहां सर्वथा

ज्ञानका अभाव न जानना, सम्यग्ज्ञानके अभावतैं अज्ञान कह्या है। बहुरि जैसैं उदीरणा शब्दका अर्थ जहां देवादिककै उदीरणा न कही, तहां तौ अन्य निमित्ततैं मरण होय, ताका नाम उदीरणा है। अर दश करणनिका कथनविषैं उदीरणा करण देवायुकै भी कह्या। तहां तौ ऊपरिके निषेकनिका द्रव्य उदयावलीविषैं दीजिए, ताका नाम उदीरणा है। ऐसैं ही अन्यत्र यथासंभव अर्थ जानना। बहुरि एक ही शब्दका पूर्व शब्द जोड़ें अनेक प्रकार अर्थ हो है। वा उस ही शब्दके अनेक अर्थ हैं। तहां जैसा संभवैं, तैसा अर्थ जानना। जैसैं 'जीतै' ताका नाम 'जिन' है। परंतु धर्मपद्धतिविषैं कर्मशत्रु कौं जीतै, ताका नाम 'जिन' जानना। यहां कर्मशत्रु शब्दकौं पूर्वैं जोड़ें जो अर्थ होय, सो ग्रहण किया, अन्य न किया। बहुरि जैसैं 'प्राण धारै' ताका नाम 'जीव' है। जहां जीवन-मरणका व्यवहार अपेक्षा कथन होय, तहां तौ इंद्रियादि प्राण धारै, सो जीव है। बहुरि द्रव्यादिकका निश्चय अपेक्षा निरूपण होय, तहां चैतन्यप्राणकौं धारै, सो जीव है। बहुरि जैसैं समय शब्दके अनेक अर्थ हैं। तहां आत्माका नाम समय है, सर्व पदार्थनिका नाम समय है, कालका नाम समय है, समयमात्र कालका नाम समय है, शास्त्रका नाम समय है, मतका नाम समय है। ऐसैं अनेक अर्थनिविषैं जैसा जहां संभवैं, तैसा तहां अर्थ जान लैंना। बहुरि कहीं तौ अर्थ अपेक्षा नामादिक कहिए है, कहीं रूढ़िअपेक्षा नामादिक कहिए है जहां रूढि अपेक्षा नामादिक लिख्या होय, तहां वाका शब्दार्थ न ग्रहण करना। वाका रूढ़िरूप अर्थ होय, सो ही ग्रहण करना। जैसैं सम्यक्तादिककौं धर्म कह्या। तहां तौ यहु जीवकौं उत्तमस्थानविषैं धारै है, तातैं याका नाम

सार्थक है। बहुरि धर्मद्रव्यका नाम धर्म कह्या, तहां रूढ़ि नाम है। याका अक्षरार्थ न ग्रहण। इस नाम धारक एक वस्तु है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना।' ऐसें ही अन्यत्र जानना। बहुरि कहीं जो शब्दका अर्थ होता होइ सो तो न ग्रहण करना। अर तहां जो प्रयोजन भूत अर्थ होय सो ग्रहण करना जैसें कहीं किसीका अभाव कह्या होय, अर तहां किंचित् सद्भाव पाईए,तौ तहां सर्वथा अभाव न ग्रहण करना। किंचित् सद्भावकौं न गिणि अभाव कह्या है, ऐसा अर्थ जानना। सम्यग्दृष्टीकै रागादिकका अभाव कह्या, तहां ऐसें अर्थ जानना। बहुरि नोकषायका अर्थ तौ यहु—'कषायका निषेध' सो तौ अर्थ न ग्रहण करना, अर यहां क्रोधादि सारिखे ए कषाय नाहीं, किंचित् कषाय हैं, तातैं नोकषाय हैं। ऐसा अर्थ ग्रहण करना। ऐसें ही अन्यत्र जानना। बहुरि जैसें कहीं कोई युक्तिकरि कथन किया होय, तहां प्रयोजन ग्रहण करना। **समयसारका कलशा** विषै[1] यहु कह्या—"धोबीका दृष्टान्तवत् परभावका त्यागकी दृष्टि यावत् प्रवृत्तिकौं न प्राप्त भई, तावत् यहु अनुभूति प्रगट भई"। सो यहां यहु प्रयोजन है—परभावका त्याग होतैं ही अनुभूति प्रगट हो है। लोकविषैं काहूकौं आवतैं ही कोई कार्य भया होय, तहां ऐसें कहिए,—"जो यहु आया ही नाहीं, अर यह कार्य होय गया।" ऐसा ही यहां प्रयोजन ग्रहण करना। ऐसें ही अन्यत्र जानना। बहुरि जैसें कहीं प्रमाणादिक किछू कह्या होय, सोई तहां न

---

१ अवतरति न यावद्वृत्तिमत्यन्तवेगादनवमपरभावत्यागदृष्टान्तदृष्टिः।
झटिति सकलभावैरन्यदीयैर्विमुक्ता, स्वयमियमनुभूतिस्तावदाविर्बभूव ॥
(जीव० २९) ॥

मानि लैंना, तहां प्रयोजन होय सो जानना। ज्ञानार्णवविषैं ऐसा है— "अवार दोय तीन सत्पुरुष हैं[1]।" सो नियमतैं इतने ही नाहीं। यहां 'थोरे हैं' ऐसा प्रयोजन जानना। ऐसैं हो अन्यत्र जानना। इस ही रीति लिएं और भी अनेक प्रकार शब्दनिके अर्थ हो हैं, तिनकौं यथासंभव जाननें। विपरीत अर्थ न जानना। बहुरि जो उपदेश होय, ताकौं यथार्थ पहचानि जो अपने योग्य उपदेश होय. ताका अंगीकार करना। जैसैं वैद्यकशास्त्रनिविषैं अनेक औषधि कही हैं, तिनकौं जानैं, अर ग्रहण तिसहीका करैं, जाकरि अपना रोग दूरि होय। आपकै शीतका रोग होय, तौ उष्ण, औषधिका ही ग्रहण करै, शीतल औषधिका ग्रहण न करै। यहु औषधि औरनिकौं कार्यकारी है, ऐसा जानैं। तैसैं जैन-शास्त्रनिविषैं अनेक उपदेश हैं, तिनकौं जानैं, अर ग्रहण तिसहीका करै, जाकरि अपना विकार दूरि होय। आपकै जो विकार होय, ताका निषेध करनहारा उपदेशकौं ग्रहै, तिसका पोषक उपदेशकौं न ग्रहै। यह उपदेश औरनिकौं कार्यकारी है, ऐसा जानैं। यहां उदाहरण कहिए है—जैसैं शास्त्रविषैं कहीं निश्चयपोषक उपदेश है कहीं व्यवहा-रपोषक उपदेश है। तहां आपकै व्यवहारका आधिक्य होय, तौ निश्च-य पोषक उपदेशका ग्रहण करि यथावत् प्रवर्त्तै, अर आपकै निश्चयका

---

१ दुःप्रज्ञाबललुप्तवस्तुनिचया विज्ञानशून्याशयाः
विद्यन्ते प्रतिमन्दिरं निजनिजस्वार्थोद्यता देहिनः।
आनन्दामृतसिन्धुशीकरचयैर्निर्वाप्य जन्मज्वरं
ये मुक्तेर्वदनेन्दुवीक्षणपरास्ते सन्ति द्वित्रा यदि ॥ २४ ॥

—ज्ञानार्णव, पृष्ठ ८८.

आधिक्य होय, तौ व्यवहारपोषक उपदेशका ग्रहणकरि यथावत् प्रवर्त्तै बहुरि पूर्वैं तौ व्यवहारश्रद्धानतैं आत्मज्ञानतैं भ्रष्ट होय रह्या था, पीछैं व्यवहारउपदेशहीकी मुख्यताकरि आत्मज्ञानका उद्यम न करै, अथवा पूर्वैं तौ निश्चयश्रद्धानतैं वैराग्यतैं भ्रष्ट होय स्वच्छन्द होय रह्या था, पीछैं निश्चय उपदेशहीकी मुख्यताकरि विषयकषाय पोषै। ऐसैं विपरीत उपदेश ग्रहें बुरा ही होय। बहुरि जैसैं आत्मानुशासनविषैं ऐसा कह्या—"जो तू गुणवान् होय, दोष क्यों लगावै है। दोषवान् होना था, तौ दोषमय ही क्यौं न भया[1]।" सो जो जीव आप तौ गुणवान् होय, अर कोई दोष लगता होय तहां तिस दोष दूर करनेके अर्थि अंगीकार करना। बहुरि आप तौ दोषवान् होय अर इस उपदेशका ग्रहणकरि गुणवान् पुरुषनिकौं नीचा दिखावै, तौ बुरा ही होय। सर्वदोषमय होनेतैं तौ किंचित् दोषरूप होना बुरा नाहीं है। तातैं तुझतैं तौ भला है। बहुरि यहां यहु कह्या—"तू दोषमय ही क्यौं न भया" सो यहु तर्क करी है। किछू सर्व दोषमय होनेकै अर्थि यहु उपदेश नाहीं है। बहुरि जो गुणवानकै किंचित् दोष भए भी निंदा है, तौ सर्वदोषरहित तौ सिद्ध हैं, नीचली दशाविषैं तो कोई गुण कोई दोष होय ही होय।

यहां कोऊ कहै—ऐसैं है, तौ "मुनिलिंग धारि किंचित् परिग्रह

---

१ हे चन्द्रमः किमिति लाञ्छनवानभूस्त्वं
तद्वान् भवेः किमिति तन्मय एव नाभूः।
किं ज्योत्स्नयामलमलं तव घोषयन्त्या
स्वर्भानुवन्ननु तथा सति नाऽसि लक्ष्यः ॥१४१॥

राखै, सो भी निगोद जाय[1]।' ऐसा षट्पाहुड़ विषैं कैसैं कह्या है?

ताका उत्तर—ऊंची पदवी धारि तिस पदविषैं न संभवता नीच कार्य करै, तौ प्रतिज्ञा भंगादि होनेतैं महादोष लागै है। अर नीची पदवीविषैं तहां संभवता गुण दोष होय, तौ होय, तहां वाका दोष ग्रहण करना योग्य नाहीं। ऐसा जानना। बहुरि **उपदेशसिद्धांतरत्नमालविषैं** कह्या—"आज्ञा अनुसार उपदेश देनेवालाका क्रोध भी क्षमाका भंडार है[2]।" सो यहु उपदेश वक्ताका ग्रहवा योग्य नाहीं। इस उपदेशतैं वक्ता क्रोध किया करै, तौ बुरा ही होय। यहु उपदेश श्रोतानिका ग्रहवा योग्य है। कदाचित् वक्ता क्रोधकरिकै भी सांचा उपदेश दे, तौ श्रोता गुण ही मानैं ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि जैसैं काहूकै अतिशीतांग रोग होय, ताकै अर्थ अति उष्ण रसादिक औषधि कही हैं। तिस औषधिकौं जाकै दाह होय, वा तुच्छ शीत होय, सो ग्रहण करै, तौ दुख ही पावै। तैसैं काहूकै कोई कार्यकी अतिमुख्यता होय, ताकै अर्थ तिसके निषेधका अति खींचकरि उपदेश दिया होय, ताकौं जाकै तिस कार्यकी मुख्यता न होय, वा थोरी मुख्यता होय, सो ग्रहण करै, तौ बुरा ही होय। यहां उदाहरण—जैसैं काहूकौं शास्त्राभ्यासकी अतिमुख्यता अर आत्मानुभवका उद्यम ही नाहीं.

---

१ जइ जायरूवसरिसो तिलतुसमत्तं ण गहदि अत्थेसु।
जइ लेइ अप्पबहुअं तत्तो पुण जाइ णिग्गोयं ॥१८॥
[सूत्रपाहुड]

२ रोसोवि खमाकोसो सुत्तं भासंत जस्सणधणस्य (?)।
उस्सुत्तेण खमाविय दोस महामोहआवासो ॥१४॥

ताकै अर्थि बहुत शास्त्राभ्यासका निषेध किया। बहुरि जाकै शास्त्राभ्यास नहीं, वा थोरा शास्त्राभ्यास है सो जीव तिस उपदेशतैं शास्त्राभ्यास छोड़ै अर आत्मानुभवविषैं उपयोग रहै नाहीं, तब वाका तौ बुरा ही होय। बहुरि जैसैं काहूकै यज्ञ स्नानादिकरि हिंसातैं धर्म माननेंकी मुख्यता है, ताके अर्थ "जो पृथ्वी उलटै, तौ भी हिंसा किए पुण्यफल न होय," ऐसा उपदेश दिया। बहुरि जो जीव पूजनादि कार्यनिकरि किंचित् हिंसा लगावै, अर बहुत पुण्य उपजावै, सो जीव इस उपदेशतैं पूजनादि कार्य छोड़ै, अर हिंसारहित सामायिकादि धर्मविषैं उपयोग लागै नाहीं, तब वाका तौ बुरा ही होय। ऐसैं ही ही अन्यत्र जानना। बहुरि जैसैं कोई औषधि गुणकारी है; परंतु आपकै यावत् तिस औषधितैं हित होय, तावत् तिसका ग्रहण करै। जो शीत मिटैं भी उष्ण औषधिका सेवन किया ही करै, तौ उल्टा रोग होय। तैसैं कोई कार्य है, परन्तु आपकै यावत् तिस धर्मकार्यतैं हित होय, तावत् तिसका ग्रहण करै। जो ऊंची दशा होतैं नीची दशासंबंधी धर्मका सेवनविषैं लागै, तौ उल्टा बिगार ही होय। यहां उदाहरण—जैसैं पाप मेटनेकै अर्थि प्रतिक्रमणादि धर्मकार्य कहे, बहुरि आत्मानुभव होतैं प्रतिक्रमणादिकका विकल्प करै, तौ उल्टा विकार बधै, याहीतैं **समयसार** विषैं प्रतिक्रमणादिककौं विष कह्या है।

बहुरि जैसैं अव्रतीकै करने योग्य प्रभावनादि धर्मकार्य कहे, तिनकौं व्रती होयकरि करै, तौ पाप ही बांधै। व्यापारादि आरंभ छोड़ि चैत्यालयादि कार्यनिका अधिकारी होय, सो कैसैं बनै? ऐसैं ही

अन्यत्र जानना। बहुरि जैसैं पाकादिक औषधि पुष्टकारी हैं; परन्तु ज्वरवान् ग्रहण करै, तौ महादोष उपजै। तैसैं ऊँचा धर्म बहुत भला है, परंतु अपनें विकारभाव दूरि न होय, अर ऊंचा धर्म ग्रहै, तौ महादोष उपजै। यहां उदाहरण—जैसैं अपना अशुभविकारभी न छूट्या, अर निर्विकल्प दशाकौं अंगीकार करै, तौ उलटा विकार वधै। बहुरि जैसैं भोजनादि विषयनिविषैं आसक्त होय अर आरंभ त्यागादि धर्मकौं अङ्गीकार करै, तौ दोष ही उपजै। जैसैं व्यापारादि करनेका विकार तौ न छूट्या अर त्यागका भेषरूप धर्म अङ्गीकार करै, तौ महादोष उपजै। ऐसैं ही अन्यत्र जानना। याही प्रकार और भी सांचा विचारतैं उपदेशकौं यथार्थ जानि अङ्गीकार करना। बहुरि विस्तार कहां ताईं करिए। अपनैं सम्यग्ज्ञान भए आपहीकौं यथार्थ भासै। उपदेश तौ वचनात्मक है। बहुरि वचनकरि अनेक अर्थ युगपत् कहे जाते नाहीं। तातैं उपदेश तौ एक ही अर्थकी मुख्यता लिएं हो है। बहुरि जिस अर्थका जहां वर्णन है, तहां तिसहीकी मुख्यता है। दूसरे अर्थकी तहां ही मुख्यता करै, तौ दोऊ उपदेश दृढ़ न होंय। तातैं उपदेशविषैं एक अथकौं दृढ़ करै। परंतु सर्व जिनमत-का चिन्ह स्याद्वाद है। सो 'स्यात्' पदका अर्थ 'कथंचित्' है। तातैं उपदेश होय ताकौं सर्वथा न जानि लेना। उपदेशका अर्थकौं जानि तहां इतना विचार करना, यहु उपदेश किस प्रकार है, किस प्रयोजन लिएं है, किस जीवकौं कार्यकारी है? इत्यादि विचारकरि तिसका यथार्थ अर्थ ग्रहण करै. पीछैं अपनी दशा देखैं, जो उपदेश जैसैं आपकौं कार्यकारी होय, तिसकौं तैसैं आप अंगीकार करै। अर जो

उपदेश जानने योग्य हो होय, तौ ताकौं यथार्थ जानि ले। ऐसैं उपदेशका फलकौं पावै।

यहां कोई कहै—जो तुच्छबुद्धि इतना विचार न करि सकै, सो कहा करै?

ताका उत्तर—जैसैं व्यापारी अपनी बुद्धिकै अनुसारि जिसमैं समझै, सो थोरा वा बहुत व्यापार करै। परंतु नफा टोटाका ज्ञान तौ अवश्य चाहिए। तैसैं विवेकी अपनी बुद्धिकै अनुसारि जिसमैं समझै, सो थोरा वा बहुत उपदेशकौं ग्रहै, परन्तु मुझकौं यहु कार्यकारी है, यहु कार्यकारी नाहीं, इतना तौ ज्ञान अवश्य चाहिए। सो कार्य तौ इतना है—यथार्थ श्रद्धानज्ञानकरि रागादि घटावना। सो यहु कार्य अपनैं सधै, सोई उपदेशका प्रयोजन ग्रहै। विशेष ज्ञान न होय, तौ प्रयोजनकौं तौ भूलै नाहीं। यहु तौ सावधानी अवश्य चाहिए। जिसमैं अपना हितकी हानि होय, तैसैं उपदेशका अर्थ समझना योग्य नाहीं। या प्रकार स्याद्वाददृष्टि लिएं जैनशास्त्रनिका अभ्यास किएं अपना कल्याण हो है।

यहां कोई प्रश्न करै—जहां अन्य अन्य प्रकार न संभवै, तहां तौ स्याद्वाद संभवै। बहुरि एक ही प्रकारकरि शास्त्रनिविषैं विरुद्ध संभवै। तहां कहा करिए? जैसैं प्रथमानुयोगविषैं एक तीर्थंकरकी साथि हजारौं मुक्ति गए बताए, करणानुयोगविषैं छह महीना आठसमयविषैं छहसै आठ जीव मुक्ति जांय, ऐसा नियम किया। प्रथमानुयोगविषैं ऐसा कथन किया—देव देवांगना उपजि पीछैं मरि साथ ही मनुष्यादि पर्यायविषैं उपजैं। करणानुयोगविषैं देवका सागरौं प्रमाण देवांगनाका पल्यौं प्रमाण आयु कह्या। इत्यादि विधि कैसैं मिलै?

ताका उत्तर—करणानुयोगविषैं कथन है, सो तौ तारतम्य लिए है। अन्य अनुयोगविषैं कथन प्रयोजन अनुसारि है। तातैं करणानुयोगका कथन तौ जैसैं किया है, तसैंही है। औरनिका कथनकी जैसैं विधि मिलै, तैसैं मिलाय लैंनी। हजारौं मुनि तीर्थंकरकी साथि मुक्ति गए बताए, तहां यहु जानना—एक ही काल इतने मुक्ति गए नाहीं। जहां तीर्थंकर गमनादि क्रिया मेटि स्थिर भए, तहां तिनकी साथ इतनैं मुनि तिष्ठे, बहुरि मुक्ति आगैं पीछैं गए। ऐसैं प्रथमानुयोग करणानुयोगकाविरोध दूरि हो है। बहुरि देव देवांगना साथि उपजैं, पीछैं देवांगना चयकरि बीचमैं अन्य पर्याय धरैं, तिनका प्रयोजन न जानि कथन किया। पीछैं वह साथि मनुष्य पर्यायविषैं उपजे, ऐसैं विधि मिलाएं विरोध दूरि हो है। ऐसैं ही अन्यत्र विधि मिलाय लैंनी।

बहुरि प्रश्न—जो ऐसैं कथननिविषैं भी कोई प्रकार विधि मिलै परन्तु कहीं नेमिनाथ स्वामीका सौरीपुरविषैं कही द्वारावतीविषैं जन्म कह्या, रामचन्द्रादिककी कथा अन्य अन्य प्रकार लिखी। एकेन्द्रियादिककौं कहीं सासादन गुणस्थान लिख्या, कहीं न लिख्या, इत्यादि इन कथननिकी विधि कैसैं मिलै?

ताका उत्तर—ऐसैं विरोध लिएं कथन कालदोषतैं भए हैं। इस कालविषैं प्रत्यक्ष ज्ञानी वा बहुश्रुतनिका तौ अभाव भया, अर स्तोकबुद्धि ग्रंथ करनेके अधिकारी भए। तिनकै भ्रमतैं कोई अर्थ अन्यथा भासै, ताकौं तैसैं लिखै, अथवा इस कालविषैं केई जैनमतविषैं भी कषायी भए हैं, सो तिननें कोई कारण पाय अन्यथा कथन लिख्या है। ऐसैं अन्यथा कथन भया, तातैं जैनशास्त्रनिविषैं विरोध भासने लागा

जहां विरोध भासै, तहां इतना करना कि, इस कथन करनेवाले बहुत सो प्रमाणीक है कि इस कथन करनेवाले बहुत प्रमाणीक हैं। ऐसा विचारकरि बड़े आचार्यादिकनिका कह्या कथन प्रमाण करना। बहुरि जिनमतके बहुत शास्त्र हैं, तिनकी आम्नाय मिलावनी। जो परम्परा-आम्नायतैं मिलै, सो कथन प्रमाण करना। ऐसैं विचार किए भी सत्य असत्यका निर्णय न होय सकै, तौ जैसैं केवलीकौं भास्या है, तैसैं प्रमाण है, ऐसैं मान लैंना। जातैं देवादिकका वा तत्त्वनिका निर्द्धार भए विना तौ मोक्षमार्ग होय नाहीं। तिनिका तौ निर्द्धार भी होय सकै है, सो कोई इनका स्वरूप विरुद्ध कहै, तौ आपहीकौं भासि जाय। बहुरि अन्य कथनका निर्द्धार न होय, वा संशयादि रहै, वा अन्यथा जानपना होय जाय, अर केवलीका कह्या प्रमाण है, ऐसा श्रद्धान रहै, तौ मोक्षमार्गविषैं विघ्न नाहीं, ऐसा जानना।

यहां कोई तर्क करै—जैसैं नाना प्रकार कथन जिनमतविषैं कह्या, तैसैं अन्यमतविषैं भी कथन पाइए है, सो तुम्हारे मतके कथनका तो तुम जिस तिस प्रकार स्थापन किया, अन्यमतविषैं ऐसे कथनकौं तुम दोष लगावो हौ, सो यहु तुम्हारै रागद्वेष है।

ताका समाधान—कथन तौ नाना प्रकार होय अर प्रयोजन एकहीकौं पोषैं, तौ कोई दोष है नाहीं। अर कहीं कोई प्रयोजन पोषै, तौ दोष ही है। सो जिनमतविषैं तौ एक प्रयोजन रागादि मेटनेका है, सो कहीं बहुत रागादि छुड़ाय थोड़ा रागादि करावनेंका प्रयोजन पोष्या है. कहीं सर्व रागादि छुड़ावनेंका प्रयोजन पोष्या है। परंतु रागादि वधावनेका प्रयोजन कहीं भी नाहीं। तातैं जिनमतका कथन

सर्व निर्दोष है। अर अन्यमतविषैं कहीं रागादि मिटावनेके प्रयोजन लिएं कथन करैं, कहीं रागादि वधावनेका प्रयोजन लिएं कथन करैं। ऐसैं ही और भी प्रयोजनकी विरुद्धता लिएं कथन करैं हैं। तातैं अन्यमतका कथन सदोष है। लोकविषैं भी एक प्रयोजनको पोषते नाना वचन कहै, ताकौं प्रमाणीक कहिए है। अर प्रयोजन और और पोषती बात करै, ताकौं बावला कहिए हैं। बहुरि जिनमतविषैं नाना प्रकार कथन है, सो जुदी जुदी अपेक्षा लिएं है, तहां दोष नाहीं। अन्यमतविषैं एक ही अपेक्षा लिएं अन्य कथन करै तहां दोष है। जैसैं जिनदेवके वीतरागभाव है, अर समवसरणादि विभूति पाइए है, तहां विरोध नाहीं। समवसरणादि विभूति की रचना इन्द्रादिक करै हैं, इनकै तिसविषैं रागादिक नाहीं, तातैं दोऊ बात संभवैं हैं। अर अन्यमतविषैं ईश्वरकौं साक्षीभूत वीतराग भी कहैं, अर तिसही-कर किए काम क्रोधादि भाव निरूपण करैं, सो एक ही आत्माकै वीतरागपनौं अर काम क्रोधादि भाव कैसैं संभवै? ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि कालदोषतैं जिनमतविषैं एकही प्रकारकरि कोई कथन विरुद्ध लिख्या है, सो यह तुच्छ बुद्धीनिकी भूलि है, किछू मतविषैं दोष नाहीं। सो भी जिनमतका अतिशय इतना है कि, प्रमाणविरुद्ध कोई कथन कर सकै नाहीं। कहीं सौरीपुरविषैं कहीं द्वारावती-विषैं नेमिनाथस्वामीका जन्म लिख्या है, सो काहैं ही किसीअवस्थानमें होहु, परंतु नगरविषैं जन्म होना प्रमाणविरुद्ध नाहीं। अब भी होता दीसै है।

[आगमाभ्यासकी प्रेरणा]

बहुरि अन्यमतविषैं सर्वज्ञादि यथार्थ ज्ञानीके किए ग्रंथ बतावैं, बहुरि तिनिविषैं परस्पर विरुद्ध भासै। कहीं तौ बालब्रह्मचारीकी

प्रशंसा करैं, कहीं कहैं "पुत्रविना गति ही होय नाहीं" सो दोऊ सांचा कैसैं होय सो ऐसे कथन तहां बहुत पाइए है। बहुरि प्रमाण-विरुद्ध कथन तिनविषैं पाइए है। जैसैं वीर्य मुखविषैं पड़नेतैं मछलीकै पुत्र हूवो, सो ऐसैं अबार काहूकै होना दीसै नाहीं। अनुमानतैं मिलै नाहीं। सो ऐसे भी कथन बहुत पाइए है। यहां सर्वज्ञादिककी भूलि मानिए, सो तौ कैसैं भूलैं। अर विरुद्ध कथन माननेमैं आवै नाहीं। तातैं तिनिके मतविषैं दोष ठहराइए है। ऐसा जानि एक जिनमतका ही उपदेश ग्रहण करने योग्य है। तहां प्रथमानुयोगादिकका अभ्यास करना। तहां पहिलै याका अभ्यास करना, पीछैं याका करना, ऐसा नियम नाहीं। अपनैं परिणामनिकी अवस्था देखि जिसके अभ्यासतैं अपनें धर्मविषैं प्रवृत्ति होय, तिसहीका अभ्यास करना। अथवा कदा-चित् किसी शास्त्रका अभ्यास करै, कदाचित् किसी शास्त्रका अभ्यास करै। बहुरि जैसैं रोजनामाविषैं तौ अनेक रकम जहां तहां लिखी हैं, तिनिकौं खातें में ठीक खतावै, तौ लैंना दैनाका निश्चय होय। तैसैं शास्त्रनिविषैं तौ अनेक प्रकारका उपदेश जहां तहां दिया है, ताकौं सम्यग्ज्ञानविषैं यथार्थ प्रयोजन लिएं पहिचानैं, तौ हित अहितका निश्चय होय। तातैं स्यात्पदकी सापेक्ष लिएं सम्यग्ज्ञानकरि जे जीव जिनवचनविषैं रमै हैं, ते जीव शीघ्र ही शुद्ध आत्मस्वरूपकौं प्राप्त हो हैं। मोक्षमार्गविषैं पहिला उपाय आगमज्ञान कह्या है। आगमज्ञान बिना और धर्मका साधन होय सकै नाहीं। तातैं तुमकौं भी यथार्थ बुद्धिकरि आगम अभ्यास करना। तुम्हारा कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषैं उपदेशस्वरूप-
प्रतिपादक नामा आठवां अधिकार संपूर्ण भया।

नवमा अधिकार

[मोक्षमार्गका स्वरूप]

दोहा—

शिवउपाय करतैं प्रथम, कारन मंगलरूप।
विघनविनाशक सुखकरन, नमौं शुद्ध शिवभूप ॥ १ ॥

अथ मोक्षमार्गका स्वरूप कहिए है—पहिलैं मोक्षमार्गके प्रतिपक्षी मिथ्यादर्शनादिक तिनिका स्वरूप दिखाया। तिनिकौं तौ दुःखरूप दुःखका कारन जानि हेय मानि तिनिका त्याग करना। बहुरि बीचमैं उपदेशका स्वरूप दिखाया। ताकौं जानि उपदेशकौं यथार्थ समझना। अब मोक्षके मार्ग सम्यग्दर्शनादिक तिनिका स्वरूप दिखाइए है। इनिकौं सुखरूप सुखका कारण जानि उपादेय मानि अंगीकार करना। जातैं आत्माका हित मोक्ष ही है। तिसहीका उपाय आत्माकौं कर्तव्य है। तातैं इसहीका उपदेश यहां दीजिए है। तहां आत्माका हित मोक्ष ही है और नाहीं। ऐसा निश्चय कैसैं होय सो कहिए है—

[आत्माका हित ही मोक्ष है]

आत्माकै नाना प्रकार गुणपर्यायरूप अवस्था पाइए है। तिनविषैं और तौ कोई अवस्था होहु, किछू आत्माका बिगाड़ सुधार नाहीं।

एक दुःखसुखअवस्थातैं बिगाड़ सुधार है। सो इहां किछू हेतु दृष्टांत चाहिए नाहीं। प्रत्यक्ष ऐसैं ही प्रतिभासै है। लोकविषैं जेते आत्मा हैं, तिनिकै एक उपाय यहु पाइए है—दुख न होय सुख ही होय। बहुरि अन्य उपाय जेते करैं हैं, तेते एक इस ही प्रयोजन लिए करैं हैं, दूसरा प्रयोजन नाहीं। जिनके निमित्ततैं दुख होता जानैं, तिनिकौं दूरकरनेका उपाय करैं। अर जिनके निमित्ततैं सुख होता जानैं, तिनिके होनेका उपाय करै हैं। बहुरि संकोच विस्तार आदिक अवस्था भी आत्माही कैं हो है,वा अनेक परद्रव्यनिका भी संयोग मिलै है; परंतु जिनतैं सुख दुख होता न जानैं,तिनके दूर करनेका वा होनेका कुछ भी उपाय कोऊ करै नाहीं। सो इहां आत्म-द्रव्यका ऐसा ही स्वभाव जानना। और तौ सर्व अवस्थाकौं सहि सकैं, एक दुखकौं सह सकता नाहीं। परवश दुःख होय तौ यहु कहा करै, ताकौं भोगवै, परन्तु स्ववशपनैं तौ किंचित् भी दुःखकौं न सहै। अर संकोच विस्तारादि अवस्था जैसी होय, तिसकौं स्ववशपनैं भी भोगवै, सो स्वभावविषैं तर्क नाहीं। आत्माका ऐसा ही स्वभाव जानना। देखो, दुःखी होय तब सूता चाहै, सो सोवनेंमैं ज्ञानादिक मंद होय जाय, परन्तु जड़ सारिखा भी होय दुःखकौं दूरि किया चाहै है। वा मूआ चाहै। सो मरनेमैं अपना नाश मानैं है—परन्तु अपना अस्तित्व खोकर भी दुःख दूर किया चाहै है। तातैं एक दुखरूप पर्यायका अभाव करना ही याका कर्तव्य है। बहुरि दुःख न होय,सो ही सुख है। जातैं आकुलतालक्षण लिएं दुःख तिसका अभाव सोई निराकुल लक्षण सुख है। सो यहु भी प्रत्यक्ष भासै है। बाह्य कोई सामग्रीका संयोग मिलैं

जाके अंतरंगविषैं आकुलता है, सो दुखी ही है। जाकै आकुलता नाहीं, सो सुखी है। बहुरि आकुलता हो है, सो रागादिक कषायभाव हो है। जातैं रागादिभावनिकरि यहु तौ द्रव्यनिकौं और भांति परिणमाया चाहै, अर वै द्रव्य और भांति परिणमैं, तब याकै आकुलता होय। तहां कै तौ आपकै रागादिक दूरि होंय, कै आप चाहै तैसैं ही सर्व-द्रव्य परिणमैं तौ आकुलता मिटै। सो सर्व द्रव्य तौ याकै आधीन नाहीं। कदाचित् कोई द्रव्य जैसी याकी इच्छा होय, तैसैं ही परिणमैं, तौ भी याकी सर्वथा आकुलता दूरि न होय। सर्व कार्य याका चाह्या ही होय, अन्यथा न होय, तब यहु निराकुल रहै। सो यहु तौ होय ही सकै नाहीं। जातैं कोई द्रव्यका परिणमन कोई द्रव्यके आधीन नाहीं। तातैं अपनें रागादि भाव दूरि भए निराकुलता होय सो यहु कार्य बनि सकै है। जातैं रागादिक भाव आत्माका स्वभाव भाव तौ है नाहीं। उपाधिकभाव हैं, परनिमित्ततैं भए हैं, सो निमित्त मोह-कर्मका उदय है। ताका अभाव भए सर्व रागादिक विलय होय जांय, तब आकुलताका नाश भए दुख दूरि होय, सुखकी प्राप्ति होय। तातैं मोहकर्मका नाश हितकारी है। बहुरि तिस आकुलताकौं सहकारी कारण ज्ञानावरणादिकका उदय है। ज्ञानावरण दर्शनावरणके उदयतैं ज्ञानदर्शन संपूर्ण न प्रगटै, तातैं याकै देखनें जाननेंकी आकुलता होय, अथवा यथार्थ संपूर्ण वस्तुका स्वभाव न जानैं, तब रागादिरूप होय प्रवर्त्तै, तहां आकुलता होय बहुरि अंतरायके उदयतैं इच्छानुसार दानादि कार्य न बनैं, तब आकुलता होय। इनिका उदय है, सो मोहका उदय होतैं आकुलताकौं सहकारी कारण है। मोहके उदयका

नाश भए इनिका बल नाहीं। अंतर्मुहूर्त्तकरि आपै आप नाशकौं प्राप्त होय। परन्तु सहकारी कारण भी दूरि होय जाय, तब प्रगटरूप निराकुल दशा भासै। तहां केवलज्ञानी भगवान् अनन्तसुख-रूप दशाकौं प्राप्त कहिए। बहुरि आघाति कर्मनिका उदयके निमित्तवैं शरीरादिकका संयोग हो है, सो मोहकर्मका उदय होतैं शरीरादिकका संयोग आकुलताकौं बाह्य सहकारी कारण है। अंतरंग मोहका उदयतैं रागादिक होय अर बाह्य अघाति कर्मनिके उदयतैं रागादिककौं कारण शरीरादिकका संयोग होय, तब आकुलता उपजै है। बहुरि मोहका उदय नाश भए भी अघातिकर्म-का उदय रहै है, सो किछू भी आकुलता उपजाय सकै नाहीं। परन्तु पूर्वें आकुलताका सहकारी कारण था, तातैं अघाति कर्मनिका भी नाश आत्माकौं इष्ट ही है। सो केवलीकै इनिके होतैं किछू दुख नाहीं। तातैं इनके नाशका उद्यम भी नाहीं। परन्तु मोहका नाश भएं ए कर्म आपैं आप थोरे ही कालमैं सर्व नाशकौं प्राप्त होय जाय हैं। ऐसैं सर्व कर्मका नाश होना आत्माका हित है। बहुरि सर्व कर्मके नाशहीका नाम मोक्ष है। तातैं आत्माका हित एक मोक्ष ही है–और किछू नाहीं, ऐसा निश्चय करना।

इहां कोऊ कहै—संसार दशाविषैं पुण्यकर्मका उदय होतैं भी जीव सुखी हो है, तातैं केवल मोक्ष ही हित है, ऐसा काहेकौं कहिए?

[सांसारिक सुख वास्तविक दुःख है]

ताका समाधान— संसारदशाविषैं सुख तौ सर्वथा है ही नाहीं, दुख ही है। परन्तु काहूकै कबहू बहुत दुख हो है, काहूकै कबहू थोरा

दुख हो है। सो पूर्वं बहुत दुख था, वा अन्य जीवनिकै बहुत दुख पाइए है, तिस अपेक्षातैं थोरे दुखवालेकौं सुखी कहिए।बहुरि तिस ही अभिप्रायतैं थोरे दुखवाला आपकौं सुखी मानैं है। परमार्थतैं सुख है नाहीं। बहुरि जो थोरा भी दुख सदा काल रहै है, तौ वाकौं भी हित ठहराइए, सो भी नाहीं। थोरे काल ही पुण्यका उदय रहै, तहां थोरा दुख होय पीछैं बहुत दुख होइ जाय। तातैं संसारअवस्था हितरूप नाहीं। जैसैं काहूकै विषम ज्वर है, ताकै कबहू असाता बहुत हो है, कबहू थोरी हो है। थोरी असाता होय, तब वह आपकौं नीका मानैं। लोक भी कहैं—नीका है। परन्तु परमार्थतैं यावत ज्वरका सद्भाव है, तावत् नीका नाहीं है। तैसैं संसारीकै मोहका उदय है। ताकै कबहू आकुलता बहुत हो है, कबहू थोरी हो है। थोरी आकुलता होय, तब वह आपकौं सुखी मानैं, लोकभी कहैं—सुखी है। परमार्थतैं यावत् मोहका सद्भाव है, तावत सुखी नाहीं। बहुरि सुनि, संसार दशाविषैं भी आकुलता घटैं सुखी नाम पावै है। आकुलता वधैं दुखी नाम पावै है। किछू बाह्य सामग्रीतैं सुख दुख नाहीं। जैसैं काहू दरिद्रीकै किंचित् धनकी प्राप्ति भई। तहां किछू आकुलता घटनेतैं वाकौं सुखी कहिए, अर वह भी आपकौं सुखी मानैं। बहुरि काहू बहुत धनवानकै किन्चित् धनकी हानि भई, तहां किछू आकुलता वधनेतैं वाकौं दुखी कहिए। अर वह भी आपको दुखी मानैं है। ऐसैं ही सर्वत्र जानना। बहुरि आकुलता घटना वधना भी बाह्य सामग्रीके अनुसार नाहीं। कषाय भावनिकै घटने वधनेकै अनुसार है। जैसैं काहूकै थोरा धन है अर वाकै संतोष है, तौ वाकै आकुलता

थोरी है। बहुरि काहूकै बहुत धन है, अर वाकै तृष्णा है, तौ वाकै आकुलता घनी है। बहुरि काहूकौं काहूनैं बहुत बुरा कह्या, अर वाकै थोरा क्रोध न भया, तौ आकुलता न हो है। अर थोरी बातैं कहें ही क्रोध होय आवै, तौ वाकै आकुलता घनी हो है। बहुरि जैसैं गऊकै बछड़ेतैं किछू भी प्रयोजन नाहीं। परन्तु मोह बहुत, तातैं वाकी रक्षा करनेकी बहुत आकुलता हो है। बहुरि सुभटकै शरीरादिकतैं घनें कार्य सधैं हैं, परंतु रणविषैं मानादिककरि शरीरादिकतैं मोह घटि जाय, तब मरनेंकी भी थोरी आकुलता हो है। तातैं ऐसा जानना—संसार अवस्थाविषैं भी आकुलता घटनें बधनेंहीतैं सुखदुख मानिए है। बहुरि आकुलताका घटना बधना रागादिक कषाय घटनैं बधनेंकै अनुसार है। बहुरि परद्रव्यरूप बाह्य सामग्रीके अनुसारि सुख दुख नाहीं। कषायतैं याकै इच्छा उपजै, अर याकी इच्छा अनुसारि बाह्य सामग्री मिलै, तब याका किछू कषाय उपशमनेतैं आकुलता घटै, तब सुख मानैं अर इच्छानुसारि सामग्री न मिलै, तब कषाय बधनेंतैं आकुलता बधै, तब दुख मानैं। सो है तौ ऐसैं, अर यह जानैं—मोकूं परद्रव्यके निमित्ततैं सुख दुख हो है। सो ऐसा जानना भ्रम ही है। तातैं इहां ऐसा विचार करना, जो संसार अवस्थाविषैं किंचित् कषाय घटैं सुख मानिए, ताकौं हित जानिए, तौ जहां सर्वथा कषाय दूर भएं वा कषायके कारण दूरि भएं परम निराकुलता होनें करि अनंत सुख पाइए, ऐसी मोक्षअवस्थाकौं कैसैं हित न मानिए? बहुरि संसार अवस्थाविषैं उच्च पदकौं पावै, तौ भी कै तौ विषयसामग्री मिलवानेंकी आकुलता होय, कै अपनैं और कोई क्रोधादि कषायतैं इच्छा उपजै, ताकौं पूरण

करनेंकी आकुलता होय, कदाचित् सर्वथा निराकुल होय सकै नाहीं। अभिप्रायविषैं तौ अनेकप्रकार आकुलता बनी ही रहै। अर बाह्य कोई आकुलता मेटनैंके उपाय करै, सो प्रथम तौ कार्य सिद्ध होय जाय, तौ तत्काल और आकुलता मेटनेंका उपायविषैं लागैं। ऐसैं अकुलता मेटनेंकी आकुलता निरंतर रह्या करै। जो ऐसी आकुलता, न रहै, तो नये नये विषयसेवनादि कार्यनिविषैं काहेकौं प्रवर्त्तै है? तातैं संसार अवस्था-विषैं पुण्यका उदयतैं इन्द्र अहमिंद्रादि पदकौं पावै, तौ भी निराकुलता न होय, दुःखी ही रहै। तातैं संसारअवस्था हितकारी नाहीं।

बहुरि मोक्ष अवस्थाविषैं कोई प्रकारकी अकुलता रही नाहीं तातैं आकुलता मेटनेंका उपाय करनेंका भी प्रयोजन नाहीं। सदा काल शांतरसकरि सुखी रहैं। तातैं मोक्षअवस्थाही हितकारी है। पूर्वैं भी संसारअवस्थाका,दुखका अर मोक्षअवस्थाका, सुखका विशेष वर्णन किया है, सो इसही प्रयोजनके अर्थि किया है। ताकौं भी विचारि मोक्षका उपाय करना। सर्व उपदेशका तात्पर्य इतना है।

[पुरुषार्थसे ही मोक्षप्राप्ति संभव है]

इहां प्रश्न—जो मोक्षका उपाय काललब्धि आए भवितव्यानुसारि बनैं है कि, मोहादिका उपशमादि भए बनैं है, अथवा अपनें पुरुषार्थतैं उद्यम किए बनैं है, सो कहौ। जो पहिले दोय कारण मिले बनैं है, तौ हमकौं उपदेश काहेकौं दीजिए है। अर पुरुषार्थतैं बनैं है, तौ उपदेश सर्व सुनैं, तिनविषैं कोई उपाय कर सकै, कोई न करि सकै, सो कारण कहा?

ताका समाधान—एक कर्य होनेंविषैं अनेक कारण मिलै हैं। सो

मोक्षका उपाय बनैं है, तहां तौ पूर्वोक्त तीनौं ही कारण मिलैं हैं। अर न बनैं है, तहां तीनौं ही कारण न मिलैं हैं। पूर्वोक्त तीन कारण कहे, तिनविषैं काललब्धि वा होनहार तौ किछू वस्तु नाहीं। जिस कालविषैं कार्य बनैं, सोई काललब्धि और जो कार्य भया सोई होनहार। बहुरि जो कर्मका उपशमादिक है, सो पुद्गलकी शक्ति है। ताका आत्मा कर्त्ता हर्त्ता नाहीं। बहुरि पुरुषार्थतैं उद्यम करिए है, सो यहु आत्माका कार्य है। तातैं आत्माको पुरुषार्थकरि उद्यम करने-का उपदेश दीजिए है। तहां यहु आत्मा जिस कारणतैं कार्यसिद्धि अवश्य होय, तिसकारणरूप उद्यम करै, तहां तौ अन्य कारण मिलैं ही मिलैं, अर कार्यकी भी सिद्धि होय ही होय। बहुरि जिस कारणतैं कार्यसिद्धि होय, अथवा नाहीं भी होय, तिस कारणरूप उद्यम करै, तहां अन्य कारण मिलैं तौ कार्यसिद्धि होय, न मिलैं तौ सिद्धि न होय। सो जिनमतविषैं जो मोक्षका उपाय कह्या है, सो इसतैं मोक्ष होय ही होय। तातैं जो जीव पुरुषार्थकरि जिनेश्वरका उपदेश अनुसार मोक्ष-का उपाय करै हैं, ताकै काललब्धि वा होनहार भी भया। अर कर्मका उपशमादि भया है, तौ यहु ऐसा उपाय करै है। तातैं जो पुरुषार्थकरि मोक्षका उपाय करै है, ताकै सर्व कारण मिलै हैं, ऐसा निश्चय करना, अर वाकै अवश्य मोक्षकी प्राप्ति हो है। बहुरि जो जीव पुरुषार्थकरि मोक्षका उपाय न करै, ताकै काललब्धि वा होनहार भी नाहीं। अर कर्मका उपशमादि न भया है, तौ यहु उपाय न करै है। तातैं जो पुरुषार्थकरि मोक्षका उपाय न करै है, ताकै कोई कारण मिलैं नाहीं, ऐसा निश्चय करना। अर वाकै मोक्षकी प्राप्ति न हो है। बहुरि तू

कहै है—उपदेश तौ सर्व सुनै हैं, कोई मोक्षका उपाय कर सकै, कोई न करि सकै, सो कारण कहा? सो कारण यहु ही है कि—जो उपदेश सुनिकरि पुरुषार्थ करै है, सौ तौ मोक्षका उपाय करि सकै है अर पुरुषार्थ न करै, सो मोक्षका उपाय न कर सकै है। उपदेश तौ शिक्षामात्र है, फल जैसा पुरुषार्थ करै तैसा लागै।

[द्रव्यलिंगीके मोक्षोपयोगी पुरुषार्थका अभाव]

बहुरि प्रश्न—जो द्रव्यलिंगी मुनि मोक्षके अर्थि गृहस्थपनौं छोड़ि तपश्चरणादि करै हैं, तहां पुरुषार्थ तौ किया कार्य सिद्ध न भया, तातैं पुरुषार्थ किएं तौ किछू सिद्धि नाहीं।

ताका समाधान—अन्यथा पुरुषार्थकरि फल चाहै, तौ कैसैं सिद्धि होय? तपश्चरणादि व्यवहार साधनविषैं अनुरागी होय प्रवर्त्तै, ताका फल शास्त्रविषैं तौ शुभबंध कह्या है, अर यहु तिसतैं मोक्ष चाहै है, तौ कैसैं सिद्धि होय। यहु तौ भ्रम है।

बहुरि प्रश्न—जो भ्रमका भी तौ कारण कर्म ही है, पुरुषार्थ कहा करै?

ताका उत्तर—सांचा उपदेशतैं निर्णय कियें भ्रम दूरि हो है। सो ऐसा पुरुषार्थ न करै है, तिसहीतैं भ्रम रहै है। निर्णय करनेका पुरुषार्थ करै, तौ भ्रमका कारण मोहकर्म ताका भी उपशमादि होय, तब भ्रम दूरि होय जाय। जातैं निर्णय करताके परिणामनिकी विशुद्धता होय, तिसतैं मोहका स्थिति अनुभाग घटै है।

बहुरि प्रश्न—जो निर्णय करनेविषैं उपयोग न लगावै है, ताका भी तौ कारण कर्म है।

ताका समाधान—एकेंद्रियादिकके विचार करनेकी शक्ति नाहीं, तिनकै तौ कर्महीका कारण है। याकै तौ ज्ञानावरणादिकका क्षयोपशमतैं निर्णय करनेकी शक्ति प्रगट भई है। जहां उपयोग लगावै, तिसहीका निर्णय होय सकै है। परंतु यह अन्य निर्णय करनेविषैं उपयोग लगावै, यहां उपयोग न लगावै। सो यह तौ याहीका दोष है, कर्मका तौ किछू प्रयोजन नाहीं।

बहुरि प्रश्न—जो सम्यक्त्वचारित्रका तौ घातक मोह है। ताका अभाव भए विना मोक्षका उपाय कैसैं बनै ?

ताका उत्तर—तत्त्वनिर्णय करनेविषैं उपयोग न लगावै, सो तौ याहीका दोष है। बहुरि पुरुषार्थकरि तत्त्वनिर्णयविषैं उपयोग लगावै, तब स्वयमेव ही मोहका अभाव भए सम्यक्त्वादिरूप मोक्षके उपायका पुरुषार्थ बनै है। सो मुख्यपनै तौ तत्त्वनिर्णयविषैं उपयोग लगावनेका पुरुषार्थ करना, बहुरि उपदेश भी दीजिए है, सो इस ही पुरुषार्थ करावनेके अर्थि दीजिए है। बहुरि इस पुरुषार्थतैं मोक्षके उपायका पुरुषार्थ आपहीतैं सिद्ध होयगा। अर तत्त्वनिर्णय न करनेविषैं कोई कर्मका दोष है नाहीं। अर तू आप तौ महंत रह्या चाहै, अर अपना दोष कर्मादिककै लगावै, सो जिनआज्ञा मानें तौ ऐसी अनीति संभवै नाहीं। ताकौं विषय कषायरूप ही रहना है, तातैं झूंठ बोलै है। मोक्षकी सांची अभिलाषा होय, तौ ऐसी युक्ति काहेकौं बनावै। संसारके कार्यनिविषैं अपना पुरुषार्थतैं सिद्धि न होती जानै, तौ भी पुरुषार्थकरि उद्यम किया करै, यहां पुरुषार्थ खोय बैठै। सो जानिए है, मोक्षकौं देखादेखी उत्कृष्ट कहै है। याका स्वरूप पहचानि ताकौं हितरूप न जानै

है। हित जानि जाका उद्यम बनैं, सो न करै, यह असंभव है।

इहां प्रश्न—जो तुम कह्या सो सत्य, परंतु द्रव्यकर्मके उदयतैं भावकर्म होय, भावकर्मतैं द्रव्यकर्मका बंध होय, बहुरि ताके उदयतैं भावकर्म होय, ऐसैं ही अनादितैं परंपराय है, तब मोक्षका उपाय कैसैं होय सकै ?

[द्रव्य कर्म और भावकर्मकी परंपरामें पुरुषार्थके अभावका प्रतिषेध]

ताका समाधान—कर्मका बंध वा उदय सदाकाल समान ही हुवा करै, तौ ऐसैं ही है; परंतु परिणामनिके निमित्ततैं पूर्व बद्ध कर्मका भी उत्कर्षण अपकर्षण संक्रमणादि होतैं तिनकी शक्ति हीन अधिक होय है। कर्मउदयके निमित्तकरि तिनका उदय भी मंद तीव्र हो है। तिनके निमित्ततैं नवीन बंध भी मंद तीव्र हो है। तातैं संसारी जीवनिकै कबहूं ज्ञानादिक घनें प्रगट हो हैं, कबहूँ थोरे प्रगट हो हैं। कबहू रागादि मंद हो हैं, कबहू तीव्र हो हैं। ऐसैं ही पलटनि हुवा करै है। तहां कदाचित् संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्त पर्याय पाया, तब मनकरि विचार करनेकी शक्ति भई। बहुरि याकै कबहूं तीव्र रागादिक होय, कबहू मंद होय। तहां रागादिकका तीव्र उदय होतैं तौ विषयकषायादिकके कार्यनिविषैं ही प्रवृत्ति बनै अर आप पुरुषार्थकरि तिन उपदेशादिकविषैं उपयोगकौं लगावै, तौ धर्मकार्यविषैं प्रवृत्ति होय। अर निमित्त बनैं, वा आप पुरुषार्थ न करै कोई अन्य कार्यनिविषै प्रवर्त्तै, परंतु मंद रागादि लिएं प्रवर्त्तै, ऐसे अवसरविषैं उपदेश कार्यकारी है। विचारशक्तिरहित एकेंद्रियादिक हैं, तिनिकै तौ उपदेश समझनेका ज्ञान ही नाहीं। अर तीव्ररागादिसहित जीवनका उपदेशविषैं उपयोग लागै

नाहीं। तातैं जो जीव विचारशक्तिसहित होंय, अर जिनकै रागादि मंद होंय, तिनकौं उपदेशका निमित्ततैं धर्मकी प्राप्ति होय जाय, तौ ताका भला होय। बहुरि इस ही अवसरविषैं पुरुषार्थ कार्यकारी है। एकेंद्रियादिक तौ धर्मकार्य करनेकौं समर्थ ही नाहीं, कैसैं पुरुषार्थ करैं। अर तीव्रकषायी पुरुषार्थ करै, सो पापहीकौ करै, धर्म कार्यका पुरुषार्थ होय, सकै नाहीं। तातैं विचारशक्तिसहित होय, अर जिसकै रागादिक मंद होंय, सो जीव पुरुषार्थकरि उपदेशादिकके निमित्ततैं तत्त्वनिर्णयादिविषैं उपयोग लगावै, तौ याका उपयोग तहां लागै, तब याका भला होय। बहुरि इसही अवसरविषैं भी तत्त्व-निर्णय करनेका पुरुषार्थ न करे, प्रमादतैं काल गमावै। कै तौ मंदरा-गादि लिए विषयकषायनिके कार्यनिहीविषैं प्रवर्त्तै, कै व्यवहार धर्म-कार्यनिविषैं प्रवर्त्तै, तब अवसर तौ जाता रहै, संसारहीविषैं भ्रमण होय। बहुरि इस अवसरविषैं जो जीव पुरुषार्थकरि तत्त्वनिर्णयकरने-विषैं उपयोग लगावनेका अभ्यास राखैं, तिनिकै विशुद्धता वधै, ताकरि कर्मनिकी शक्ति हीन होय। कितेक कालविषैं आपैआप दर्शनमोहका उपशम होय तब याकै तत्त्वनिकी यथावत् प्रतीति आवै। सो याका तौ कर्त्तव्य तत्त्वनिर्णयका अभ्यास ही है। इसहीतैं दर्शनमोहका उप-शम तौ स्वयमेव ही होय। यामैं जीवका कर्त्तव्य किछू नाहीं। बहुरि ताकौं होतैं जीवकै स्वयमेव सम्यग्दर्शन होय। बहुरि सम्यग्दर्शन होतैं श्रद्धान तौ यहु भया—मैं आत्मा हौं, मुझको रागादिक न करनें। परन्तु चरित्रमोहके उदयतैं रागादिक हो हैं। तहां तीव्र उदय होय, तब तौ विषयादिविषैं प्रवर्त्तै है, अर मंद उदय होय, तौ अपनें पुरु-

षार्थतैं धर्मकार्यनिविषैं वा वैराग्यादिभावनाविषैं उपयोगकौं लगावै है ताकै निमित्ततैं चरित्रमोह मंद होता जाय ऐसैं होतैं देशचारित्र वा सकलचरित्र अंगीकार करनेंका पुरुषार्थ प्रगट होय। बहुरि चरित्रकों धारि अपना पुरुषार्थकरि धर्मविषैं परिणतिकौं वधावै, तहां विशुद्धताकरि कर्मकी हीन शक्ति होय, तातैं विशुद्धता वधै, ताकरि अधिक कर्मकी शक्ति हीन होय। ऐसैं क्रमतैं मोहका नाश करै, तब सर्वथा परिणाम विशुद्ध होंय, तिनकरि ज्ञानावरणादिका नाश होय, तब केवलज्ञान प्रगट होय। तहां पीछैं विना उपाय अघातिया कर्मका नाशकरि शुद्ध सिद्धपदकौं पावै। ऐसैं उपदेशका तौ निमित्त वनैं, अर अपना पुरुषार्थ करै, तौ कर्मका नाश होय। बहुरि जब कर्मका उदय तीव्र होय, तब पुरुषार्थ न होय सकै है। ऊपरले गुणस्थाननितैं भी गिर जाय है। तहां तौ जैसा होनहार तैसा ही होय। परन्तु जहां मंद उदय होय, अर पुरुषार्थ होय सकै, वहां तौ प्रमादी न होना—सावधान होय अपना कार्य करना। जैसैं कोऊ पुरुष नदीका प्रवाहविषैं पड़्या वहै है। तहां पानीका जोर होय, तब तौ वाका पुरुषार्थ किछू नाहीं। उपदेश भी कार्यकारी नाहीं। और पानीका जोर थोरा होय, तब तो पुरुषार्थकरि निकसना चाहै, तौ निकसि आवै। तिसहीकौं निकसनेकी शिक्षा दीजिए है। और न निकसै तौ होलैं २ वहै, पीछैं पानीका जोर भए वह्या चल्या जाय। तैसैं जीवसंसारविषै भ्रमै है। तहां कर्मनिका तीव्र उदय होय, तब तौ याका पुरुषार्थ किछू नाहीं। उपदेश भी कार्यकारी नाहीं। अर कर्मका मंद उदय होय, तब पुरुषार्थकरि मोक्षमार्गविषैं प्रवर्त्तै, तौ मोक्ष पावै। तिसहीकौं मोक्षमार्गका उपदेश दीजिए

है। अर मोक्षमार्गविषैं न प्रवर्त्तै, तौ किंचत् विशुद्धता पाय पीछैं तीव्र उदय आए निगोदादि पर्यायकौं पावै। तातैं अवसर चूकना योग्य नाहीं। अब सर्व प्रकार अवसर आया है, ऐसा अवसर पावना कठिन है। तातैं श्रीगुरु दयाल होय मोक्षमार्गकौं उपदेशैं, तिसविषैं भव्य जीवनिकौं प्रवृत्ति करनी।

[मोक्षमार्गका स्वरूप]

अब मोक्षमार्गका स्वरूप कहिए—जिनके निमित्ततैं आत्मा अशुद्ध दशाकौं धारि दुखी भया,ऐसे जो मोहादिक कर्म तिनिका सर्वथा नाश होतैं, केवल आत्माकी जो सर्व प्रकार शुद्ध अवस्थाका होना, सो मोक्ष है। ताका जो उपाय—कारण, सो मोक्षमार्ग जानना। सो कारण तौ अनेक प्रकार हो है। कोई कारण तौ ऐसे हो है, जाके भए विना तो कार्य न हो, अर जाके भए कार्य होय वा न भी होय। जैसैं मुनि लिंग धारे विना तौ मोक्ष न होय; परन्तु मुनिलिंग धारैं मोक्ष होय भी अर नाहीं भी होय। बहुरि केई कारण ऐसे हैं, जो मुख्यपनैं तौ जाके भए कार्य होय, अर काहूके विना भए भी कार्य सिद्ध होय। जैसैं अनशनादि बाह्य तपका साधन किए मुख्यपनैं मोक्ष पाइए है, परन्तु भरतादिकके बाह्य तप किए विना ही मोक्षकी प्राप्ति भई। बहुरि केई कारण ऐसैं हैं; जाके भए कार्य सिद्ध होय ही होय, और जाके न भए कार्य सिद्ध सर्वथा न होय। जैसैं सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी एकता भए तौ मोक्ष होय ही होय, अर तिनके न भए सर्वथा मोक्ष न होय। ऐसैं ए कारण कहे, तिनविषैं अतिशयकरि नियमतैं मोक्षका साधक जो सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रका एकीभाव, सो मोक्षमार्ग जानना। इनि

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रनिविषैं एक भी न होय, तौ मोक्षमार्ग न होय। सोई तत्त्वार्थसूत्रविषैं कह्या है—,

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥ १ ॥

इस सूत्रकी टीकाविषैं कह्या है—जो यहां "मोक्षमार्गः" ऐसा एक वचन कह्या है, ताका अर्थ यहु है—जो तीनौं मिलें एक मोक्षमार्ग है। जुदे जुदे तीन मार्ग नाहीं है।

यहां प्रश्न—जो असंयतसम्यग्दृष्टिकै तौ चारित्र नाहीं, वाकै मोक्ष- भया है कि न भया है।

ताका समाधान—मोक्षमार्ग याकै होसी, यहु तौ नियम भया। तातैं उपचारतैं याकै मोक्षमार्ग भया भी कहिए। परमार्थतैं सम्यक्- चारित्र भए ही मोक्षमार्ग हो है। जैसैं कोई पुरुषकै किसी नगर चालने- का निश्चय भया। तातैं वाकौं व्यवहारतैं ऐसा भी कहिए "यहु तिस नगरकौं चल्या है" परमार्थतैं मार्गविषैं गमन किए ही चलना होसी। तैसैं असंयतसम्यग्दृष्टीकै वीतरागभावरूप मोक्षमार्गका श्रद्धान भया, तातैं वाकौं उपचारतैं मोक्षमार्गी कहिए, परमार्थ तैं वीतरागभावरूप परिणमै ही मोक्षमार्ग होसी। वहुरि "प्रवचनसार" विषैं भी तीनोंकी एकाग्रता भए ही मोक्षमार्ग कह्या है। तातैं यहु जानना—तत्त्वश्रद्धान विना तौ रागादि घटाएं मोक्षमार्ग नाहीं अर रागादि घटाएं विना तत्त्वश्रद्धानज्ञानतैं भी मोक्षमार्ग नाहीं। तीनौं मिलें साक्षात् मोक्ष- मार्ग हो है।

[लक्षण और उसके दोष]

अब इनका निर्देश अर लक्षण निर्देश अर परीक्षाद्वारा निरूपण कीजिए है। तहां 'सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र मोक्षका मार्ग है,' ऐसा नाम मात्र कथन सो तौ 'निर्देश' जानना। बहुरि अतिव्याप्ति अव्याप्ति असंभवपनाकरि रहित होय, जाकरि इनकौं पहचानिए, सो 'लक्षण' जानना। ताका जो निर्देश कहिए, निरूपण सो 'लक्षण निर्देश' जानना। तहां जाकौं पहचानना होय, ताका नाम लक्ष्य है। उस विना औरका नाम अलक्ष्य है। सो लक्ष्य वा अलक्ष्य दोऊविषैं पाइए, ऐसा लक्षण जहां कहिए तहां अतिव्याप्तिपनौं जानना। जैसैं आत्माका लक्षण 'अमूर्त्तत्व' कह्या। सो अमूर्त्तत्व लक्षण है, सो लक्ष्य जो है आत्मा तिसविषैं भी पाइए है अलक्ष्य जो हैं आकाशादिक तिनविषैं भी पाइए। तातैं यह 'अतिव्याप्त' लक्षण है। याकरि आत्मा पहिचानैं आकाशादिक भी आत्मा होय जांय, यहु दोष लागै। बहुरि जो कोई लक्ष्यविषैं तौ होय अर कोईविषैं न होय, ऐसा लक्ष्यका एकदेशविषैं पाइए, ऐसा लक्षण जहां कहिए, तहां अतिव्याप्तिपनौं जानना। जैसैं—आत्माका लक्षण केवलज्ञानादिक कहिए, सो केवल ज्ञान कोई आत्माविषैं तौ पाइए, कोईविषैं न पाइए, तातैं यहु 'अव्याप्त लक्षण है। याकरि आत्मा पहचानैं, स्तोकज्ञानी आत्मा न होय, यहु दोष लागै। बहुरि जो लक्ष्यविषैं पाइए ही नाहीं, ऐसा लक्षण जहां कहिए तहां असंभविपना जानना। जैसैं आत्माका लक्षण जड़पना कहिए। सो प्रत्यक्षादि प्रमाणकरि यहु विरुद्ध है। तातैं यहु 'असंभव' लक्षण है। याकरि आत्मा मानैं पुद्गलादिक भी आत्मा होय जांय। अर आत्मा

है, सो अनात्मा होय जाय, यहु दोष लागै। ऐसैं अतिव्याप्त अव्याप्त असंभवि लक्षण होय, सो लक्षणाभास है। बहुरि लक्ष्यविषैं तौ सर्वत्र पाइए, अर अलक्ष्यविषैं कहीं न पाइए, सो सांचा लक्षण है। जैसैं आत्माका स्वरूप चैतन्य है। सो यहु लक्षण सर्व ही आत्माविषैं तौ पाइए है, अनात्माविषैं कहीं न पाइए। तातैं यहु सांचा लक्षण है। याकरि आत्मा मानैं, आत्मा अनात्माका यथार्थ ज्ञान होय, किछू दोष लागै नाहीं। ऐसैं लक्षणका स्वरूप उदाहरण मात्र कह्या।

[सम्यग्दर्शनका लक्षण]

अब सम्यग्दर्शनादिकका सांचा लक्षण कहिए है—विपरीताभिनिवेशरहित जीवादिक तत्त्वार्थश्रद्धान सो सम्यग्दर्शनका लक्षण है। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ए सात तत्त्वार्थ हैं। इनिका जो श्रद्धान ऐसैं ही है अन्यथा नाहीं ऐसा प्रतीति भाव, सो तत्त्वार्थश्रद्धान है। बहुरि विपरीताभिनिवेश जो अन्यथा अभिप्राय ताकरि रहित सो सम्यग्दर्शन है। यहां विपरीताभिनिवेशका निराकरणके अर्थि 'सम्यक्' पद कह्या हैं। जातैं 'सम्यक्' ऐसा शब्द प्रशंसावाचक है। सो श्रद्धानविषैं विपरीताभिनिवेशका अभाव भए ही प्रशंसा संभवै है, ऐसा जानना।

यहां प्रश्न—जो 'तत्त्व' अर 'अर्थ' ए दोय पद कहे, तिनिका प्रयोजन कहा?

ताका समाधान—'तत्' शब्द है सो 'यत्' शब्दकी अपेक्षा लिए है। तातैं जाका प्रकरण होय, सो तत् कहिए, अर जाका जो भाव कहिए स्वरूप सो तत्त्व जानना। जातैं 'तस्य भावस्तत्त्वं' ऐसा तत्त्व

शब्दका समास होय है। बहुरि जो जाननेमैं आवै ऐसा 'द्रव्य' वा 'गुण पर्याय' ताका नाम अर्थ है। बहुरि 'तत्त्वेन अर्थस्तत्त्वार्थः' तत्त्व कहिए अपना स्वरूप, ताकरि सहित पदार्थ तिनिका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। यहां जो 'तत्त्वश्रद्धान' ही कहते, तौ जाका यह भाव (तत्त्व) है, ताका श्रद्धान विना केवल भावहीका श्रद्धान कार्यकारी नाहीं। बहुरि जो 'अर्थश्रद्धान ही कहते, तौ भावका श्रद्धान विना पदार्थका श्रद्धान भी कार्यकारी नाहीं। जैसैं कोईकै ज्ञान-दर्शनादिक वा वर्णादिकका तौ श्रद्धान होय—यह जानपना है, यह श्वेतवर्ण है, इत्यादि। परन्तु ज्ञान दर्शन आत्माका स्वभाव है, सो मैं आत्मा हौं। बहुरि वर्णादि पुद्गलका स्वभाव है। पुद्गल मोतैं भिन्न जुदा पदार्थ है। ऐसा पदार्थका श्रद्धान न होय, तौ भावका श्रद्धान मात्र कार्यकारी नाहीं बहुरि जैसैं 'मैं आत्मा हौं' ऐसैं श्रद्धान किया, परन्तु आत्माका स्वरूप जैसा है, तैसा श्रद्धान न किया। तौ भावका श्रद्धान विना पदार्थका भी श्रद्धान कार्यकारी नाहीं। तातैं तत्त्वकरि अर्थका श्रद्धान हो है, सो ही कार्यकारी है। अथवा जीवादिककौं तत्त्व संज्ञा भी है, अर्थ संज्ञा भी है तातैं 'तत्त्वमेवार्थस्तत्त्वार्थः' जो तत्त्व सो ही अर्थ, तिनका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। इस अर्थकरि कहीं तत्त्वश्रद्धानकौं सम्यग्दर्शन कहैं वा कहीं पदार्थश्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहैं, तहां विरोध न जानना। ऐसैं 'तत्त्व' और 'अर्थ' दोय पद कहनेका प्रयोजन है।

[तत्त्व और उनकी संख्याका विचार]

यहां प्रश्न—जो तत्त्वार्थ तौ अनंते हैं। ते सामान्य अपेक्षाकरि

जीव अजीवविषैं सर्व गर्भित भए, तातैं दोय ही कहने थे। आस्रवादिक तौ जीव अजीवहीके विशेष हैं, इनकौं जुदा जुदा कहनेका प्रयोजन कहा ?

ताका समाधान—जो यहां पदार्थश्रद्धानका ही प्रयोजन होता, तौ सामान्यकरि वा विशेषकरि जैसैं सर्व पदार्थनिका जानना होय, तैसैं ही कथन करते। सो तौ यहां प्रयोजन है नाहीं। यहां तौ मोक्षका प्रयोजन है। सो जिन सामान्य वा विशेष भावनिका श्रद्धान किए मोक्ष होय, अर जिनका श्रद्धान किए विना मोक्ष न होय, तिनहीका यहां निरूपण किया। सो जीव अजीव ए दोय तौ बहुत द्रव्यनिकी एक जाति अपेक्षा सामान्यरूप तत्त्व कहे। सो ए दोय जाति जानें जीवकै आपापरका श्रद्धान होय। तब परतैं भिन्न आपकौं जानैं, अपना हितके अर्थि मोक्षका उपाय करै, अर आपतैं भिन्न परकौं जानैं, तब परद्रव्यतैं उदासीन होय रागादिक त्याग मोक्षमार्गविषै प्रवर्त्तै। तातैं ए दोऊ जातिका श्रद्धान भए हीं मोक्ष होय। अर दोऊ जाति जानें विना आपापरका श्रद्धान न होय, तब पर्यायबुद्धितैं संसारीक प्रयोजनहीका उपाय करै। परद्रव्यविषैं रागद्वेषरूप होय, प्रवर्त्तै, तब मोक्षमार्गविषैं कैसैं प्रवर्त्तै। तातैं इन दोय जातिनिका श्रद्धान न भए मोक्ष न होय। ऐसैं ए दोय तो सामान्य तत्त्व अवश्य श्रद्धान करने योग्य कहे। बहुरि आस्रवादिक पांच कहे, ते जीव पुद्गलके पर्याय हैं। तातैं ए विशेषरूप तत्त्व हैं। सो इनि पांच पर्यायनिकौं जानें मोक्षका उपाय करनेका श्रद्धान होय। तहां मोक्षकौं पहिचानैं, तौ ताकौं हित मानि ताका उपाय करै। तातैं मोक्षका

श्रद्धान करना। बहुरि मोक्षका उपाय संवर निर्जरा है। सो इनिकौं पहिचानैं तौ जैसैं संवर निर्जरा होय, तैसैं प्रवर्त्तैं। तातैं संवर निर्जराका श्रद्धान करना। बहुरि संवर निर्जरा तौ अभाव लक्षण लिए है,सो जिनका अभाव किया चाहिए, तिनकौं पहचाने चाहिए। जैसैं क्रोधका अभाव भए क्षमा होय। सो क्रोधकौं पहचानै,तौ ताका अभावकरि क्षमारूप प्रवर्त्तैं। तैसैं ही आस्रवका अभाव भए संवर होय, अर बंधका एक देश अभाव भए निर्जरा होय। सो आस्रव बंधकौं पहिचानैं तौ तिनिका नाशकरि संवर निर्जरारूप प्रवर्त्तैं। तातैं आस्रव बंधका श्रद्धान करना। ऐसैं इनि पांच पर्यायनिका श्रद्धान भए ही मोक्षमार्ग होय। इनिकौं न पहिचानैं, तौ मोक्षकी पहिचानि विना ताका उपाय काहेकौं करै। संवर निर्जराकी पहचान विना तिनिविषैं कैसैं प्रवर्त्तैं। आस्रव बंधकी पहिचानि विना तिनिका नाश कैसैं करैं? ऐसैं इन पांच पर्यायनिका श्रद्धान न भए मोक्षमार्ग न होय। या प्रकार यद्यपि तत्त्वार्थ अनंते हैं, तिनिका सामान्य विशेषकरि अनेक प्रकार प्ररूपण होय। परंतु यहां मोक्षका प्रयोजन है, तातैं दोय तौ जातिअपेक्षा सामान्य तत्त्व अर पांच पर्यायरूप विशेष तत्त्व मिलाय सात ही तत्त्व कहे। इनिका यथार्थ श्रद्धानके आधीन मोक्षमार्ग है। इनि विना औरनिका श्रद्धान होहु वा मति होहु, वा अन्यथा श्रद्धान होहु, किसीके आधीन मोक्षमार्ग नाहीं,ऐसा जानना। बहुरि कहीं पुण्य पाप सहित नव पदार्थ कहे हैं। सो पुण्य पाप आस्रवादिकके ही विशेष हैं। तातैं साततत्त्वनिविषैं गर्भित भए। अथवा पुण्यपापका श्रद्धान भए पुण्यकौं मोक्षमार्ग न मानैं, वा स्वच्छन्द होय पापरूप प्रवर्त्तैं, तातैं मोक्षमार्गविषैं इनिका श्रद्धान भी

उपकारी जानि दोय तत्त्व विशेषके, विशेष मिलाय नव पदार्थ कहे। वा समयसारादिविषैं इनिकौं नव तत्त्व भी कहे हैं।

बहुरि प्रश्न—इनिका श्रद्धान सम्यग्दर्शन कह्या, सो दर्शन तौ सामान्य अवलोकनमात्र अर श्रद्धान प्रतीतिमात्र, इनिकै एकार्थपनां कैसैं संभवै ?

ताका उत्तर—प्रकरणके वशतैं धातुका अर्थ अन्यथा होय है। सो यहां प्रकरण मोक्षमार्गका है, तिसविषैं 'दर्शन' शब्दका अर्थ सामान्य अवलोकन मात्र न ग्रहण करना। जातैं चक्षु अचक्षु दर्शनकरि समान्य अवलोकनतौ सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टिके समान होय है। कुछ याकरि मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति अप्रवृत्ति होती नाहीं। बहुरि श्रद्धान हो है, सो सम्यग्दृष्टीहीकै हो है। याकरि मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति हो है। तातैं 'दर्शन' शब्दका अर्थ भी यहां श्रद्धानमात्र ही ग्रहण करना।

बहुरि प्रश्न—यहां विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान करना कह्या, सो प्रयोजन कहा ?

ताका समाधान—अभिनिवेशनाम अभिप्रायका है। सो जैसा तत्त्वार्थश्रद्धानका अभिप्राय है, तैसा न होय अन्यथा अभिप्राय होय, ताका नाम विपरीताभिनिवेश है सो तत्त्वार्थश्रद्धान करनेंका अभिप्राय केवल तिनिका निश्चय करना मात्र ही नाहीं है। तहां अभिप्राय ऐसा है—जीव अजीवकौं पहचानि आपकौं वा परकौं जैसाका तैसा मानैं। बहुरि आस्रवकौं पहचानि ताकौं हेय मानैं। बहुरि बंधकौं पहचानि ताकौं अहित मानैं। बहुरि संवरकौं पहचानि ताकौं उपादेय मानैं। बहुरि निर्जराकौं पहचानि ताकौं हितका कारण मानैं। बहुरि

मोक्षकौं पहचानि ताकौं अपना परमहित मानैं। ऐसैं तत्त्वार्थश्रद्धानका अभिप्राय है। तिसतैं उलटा अभिप्रायका नाम विपरीताभिनिवेश है। सो सांचा तत्त्वार्थश्रद्धान भए याका अभाव होय। तातैं तत्त्वार्थश्रद्धान है, सो विपरीताभिनिवेशरहित है। ऐसा यहां कह्या है। अथवा काहू-कै अभ्यास मात्र तत्त्वार्थश्रद्धान होय हैं। परंतु अभिप्रायविषैं विपरीत पनौं नाहीं छूटै है। कोई प्रकारकरि पूर्वोक्त अभिप्रायतैं अन्यथा अभि-प्राय अंतरंगविषैं पाइए है, तौ वाकै सम्यग्दर्शन न होय। जैसैं द्रव्यलिंगी मुनि जिनवचननितैं तत्त्वनिकी प्रतीति करै। परंतु शरीरा-श्रित क्रियानिविषैं अहंकार वा पुण्यास्रवविषैं उपादेयपनौं इत्यादि विपरीत अभिप्रायतैं मिथ्यादृष्टी ही रहै है। तातैं जो तत्त्वार्थश्रद्धान विपरीताभिनिवेशरहित जीवादि तत्त्वार्थनिका श्रद्धानपना सो सम्य-ग्दर्शनका लक्षण है। सम्यग्दर्शन लक्ष्य है। सोई तत्त्वार्थसूत्रविषैं कह्या है—**तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्'** ॥१-२॥ तत्त्वार्थनिका श्रद्धान सोई सम्यग्दर्शन है। बहुरि सर्वार्थसिद्धि नामा सूत्रनिकी टीका है, तिसविषैं तत्त्वादिक पदनिका अर्थ प्रगट लिख्या है, वा सात ही तत्त्व कैसैं कहे, सो प्रयोजन लिख्या है, ताका अनुसारतैं यहां किछू कथन किया है ऐसा जानना।

बहुरि पुरुषार्थसिद्ध्युपायके विषैं भी ऐसैं ही कह्या है—

जीवाजीवादीनां तत्त्वार्थानां सदैव कर्त्तव्यम्।
श्रद्धानं विपरीताभिनिवेशविविक्तमात्मरूपं तत्॥२२॥

याका अर्थ—विपरीताभिनिवेशकरि रहित जीवअजीव आदि

तत्त्वार्थनिका श्रद्धान सदाकाल करना योग्य है। सो यहु श्रद्धान आत्माका स्वरूप है। दर्शनमोह उपाधि दूर भए प्रगट हो है, तातैं आत्माका स्वरूप है। चतुर्थादि गुणस्थानविषैं प्रगट हो है। पीछैं सिद्ध अवस्थाविषैं भी सदाकाल याका सद्भाव रहै है, ऐसा जानना।

[तिर्यंचोंके सप्ततत्त्व श्रद्धानका निर्देश]

यहां प्रश्न उपजै है—जो तिर्यंचादि तुच्छज्ञानी केई जीव सात तत्त्वनिका नाम भी न जानि सकैं, तिनिकै भी सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति शास्त्रविषैं कही है। तातैं तत्त्वार्थश्रद्धानपना तुम सम्यक्त्वका लक्षण कह्या, तिसविषैं अव्याप्तिदूषण लागै है।

ताका समाधान—जीव अजीवादिकका नामादिक जानौं वा मति जानौं, वा अन्यथा जानौं, उनका स्वरूप यथार्थ पहचानि श्रद्धान किए सम्यक्त्व हो है। तहां कोई सामान्यपनैं स्वरूप पहचानि श्रद्धान करै, कोई विशेषपनैं स्वरूप पहचानि श्रद्धान करै। तातैं तुच्छज्ञानी तिर्यंचादिक सम्यग्दृष्टी हैं, सो जीवादिकका नाम भी न जानैं हैं, तथापि उनका सामान्यपनैं स्वरूप पहचानि श्रद्धान करै हैं। तातैं उनकौं सम्यक्त्वकी प्राप्ति हो है। जैसैं कोई तिर्यंच आपना वा औरनिका नामादिक तौ नाहीं जानैं, परंतु आपहीविषैं आपौ मानैं है, औरनिकौं पर मानैं है। तैसैं तुच्छज्ञानी जीव अजीवका नाम न जानैं, परंतु जो ज्ञानादिकस्वरूप आत्मा है, तिसविषैं आपौ मानैं है। अर जो शरीरादिक हैं, तिनकौं पर मानैं है ऐसा श्रद्धान वाकै हो है, सो ही जीव अजीवका श्रद्धालु है। बहुरि जैसैं सोई तिर्यंच सुखादिकका नामादिक

न जानैं है, तथापि सुख अवस्थाकौं पहचानि ताके अर्थि आगामी दुःखका कारणकौं पहचानि ताका त्यागकौं किया चाहै है। बहुरि जो दुःखका कारण बनि रह्या है, ताके अभावका उपाय करै है। तातैं तुच्छज्ञानी मोक्षादिकका नाम न जानैं, तथापि सर्वथा सुखरूप मोक्ष-अवस्थाकौं श्रद्धान करि ताके अर्थि आगामी बंधका कारण रागादिक आस्रव ताके त्यागरूप संवरकौं किया चाहै है। बहुरि जो संसारदुःखका कारण है, ताकी शुद्धभावकरि निर्जरा किया चाहै है। ऐसैं आस्रवादिकका वाकै श्रद्धान है। या प्रकार वाकै भी सप्ततत्त्वका श्रद्धान पाइए है। जो ऐसा श्रद्धान न होय, तौ रागादि त्यागि शुद्ध भाव करनेकी चाह न होय। सोई कहिए है—जो जीवकी अजीवकी जाति न जानि, आपापरकौं न पहचानैं, तौ परविषैं रागादिक कैसैं न करै? रागादिककौं न पहचानैं, तौ तिनिका त्याग कैसैं किया चाहै। सो रागादिक ही आस्रव हैं। रागादिकका फल बुरा न जानै, तौ काहेकौं रागादिक छोड़्या चाहै। सो रागादिकका फल सोई बंध है। बहुरि रागादिक रहित परिणामकौं पहिचानैं है, तौ तिसरूप हुवा चाहै है। सो रागादिरहित परिणामका ही नाम संवर है। बहुरि पूर्व संसार अवस्थाका कारण कर्म है, ताकी हानिकौं पहचानैं है, तौ ताकै अर्थि तपश्चरणादिकरि शुद्धभाव किया चाहै है। सो पूर्व संसारअवस्थाका कारण कर्म है, ताकी हानि सोई निर्जरा है। बहुरि संसार अवस्थाका अभावकौं न पहिचानैं, तौ संवर निर्जरारूप काहेकौं प्रवर्त्तै। संसार अवस्थाका अभाव सो ही मोक्ष है। तातैं सातौं तत्त्वनिका श्रद्धान भए ही रागादिक छोड़ि शुद्ध भाव होनेकी

इच्छा उपजै है। जो इनिविषैं एक भी तत्त्वका श्रद्धान न होय, तौ ऐसी चाह न उपजै। बहुरि ऐसी चाह तुच्छज्ञानी तिर्यंचादि सम्यग्दृष्टीकै होय ही है, जो इनिविषैं एक भी तत्त्व श्रद्धान न होय तौ ऐसी चाह न उपजै। बहुरि तातैं वाकै सप्ततत्त्वनिका श्रद्धान पाइए है ऐसा निश्चय करना। ज्ञानावरणका क्षयोपशम थोरा होतैं विशेषपनैं तत्त्वनिका ज्ञान न होवै, तथापि दर्शनमोहका उपशमादिकतैं सामान्यपनैं तत्त्वश्रद्धान-की शक्ति प्रगट हो है। ऐसैं इस लक्षणविषैं अव्याप्ति दूषण नाहीं है।

[विषय कषायादिके समय सम्यक्त्वीके तत्त्वश्रद्धान]

बहुरि प्रश्न—जिसकालविषैं सम्यग्दृष्टी विषयकषायनिके कार्य-विषैं प्रवर्त्तै है, तिसकालविषैं सप्त तत्त्वनिका विचार ही नाहीं, तहां श्रद्धान कैसैं संभवे? अर सम्यक्त्व रहै ही है, तातैं तिस लक्षणविषैं अव्याप्ति दूषण आवै है।

ताका समाधान—विचार है, सो तौ उपयोगके आधीन है। जहां उपयोग लागै, तिसहीका विचार है। बहुरि श्रद्धान है, सो प्रतीतिरूप है। तातैं अन्य ज्ञेयका विचार होतैं वा सोवना आदि क्रिया होतैं तत्त्वनिका विचार नाहीं, तथापि तिनकी प्रतीति बनी रहै है, नष्ट न हो है। तातैं वाकै सम्यक्त्वका सद्भाव है। जैसैं कोई रोगी मनुष्यकै ऐसी प्रतीति है—मैं मनुष्य हौं, तिर्यंचादि नहीं हौं। मेरे इस कारण-तैं रोग भया है। सो अब कारण मेटि रोगकौं घटाय निरोग होना। बहुरि वो ही मनुष्य अन्य विचारादिरूप प्रवर्त्तै है, तब वाकै ऐसा विचार न हो है। परन्तु श्रद्धान ऐसा ही रह्या करै है। तैसैं इस आ-त्माकै ऐसी प्रतीति है—मैं आत्मा हौं, पुद्गलादि नाहीं हौं, मेरे आस्रव-

तैं बंध भया है, सो अब संवरकरि निर्जरा करि मोक्षरूप होना। बहुरि सोई आत्मा अन्य विचारादिरूप प्रवर्त्तै है, तब वाकै ऐसा विचार न हो है। परन्तु श्रद्धान ऐसा ही रह्या करै है। बहुरि प्रश्न—जो ऐसा श्रद्धान रहै है, तौ बंध होनेंके कारणनिविषै कैसैं प्रवर्त्तै है ?

ताका उत्तर—जैसैं कोई मनुष्य कोई कारणके वशतैं रोग बधनेंके कारणनिविषैं भी प्रवर्त्तै है। व्यापारादिक कार्य वा क्रोधादिक कार्य करै है, तथापि तिस श्रद्धानका वाकै नाश न हो। तैसैं सोई आत्मा कर्म उदय, निमित्तके वशतैं बंध होनेके कारणनिविषैं भी प्रवर्त्तै है। विषयसेवनादि कार्य वा क्रोधादि कार्य करै है, तथापि तिस श्रद्धानका वाकै नाश न हो है। इसका विशेष निर्णय आगैं करेंगे। ऐसैं सप्ततत्वका विचार न होतैं भी श्रद्धानका सद्भाव पाइए है। तातैं तहां अव्याप्तिपना नाहीं है।

[निर्विकल्पावस्थामें तत्त्वश्रद्धान]

बहुरि प्रश्न—ऊंची दशाविषैं जहां निर्विकल्प आत्मानुभव हो है, तहां तो सप्त तत्त्वादिकका विकल्प भी निषेध किया है। सो सम्यक्त्वके लक्षणका निषेध करना, कैसैं संभवै ? अर तहां निषेध संभवै है, तौ अव्याप्ति दूषण आया।

ताका उत्तर—नीचली दशाविषैं सप्ततत्त्वनिके विकल्पनिविषैं उपयोग लगाया, ताकरि प्रतीतिकौं दृढ़ कीन्हीं, अर विषयादिकतैं योग छुड़ाय रागादि घटाया, बहुरि कार्य सिद्ध भए कारणनिका भी निषेध कीजिए है। तातैं जहां प्रतीति भी दृढ़ भई, अर रागादिक दूर भए, तहां उपयोग भ्रमावनेंका खेद काहेकौं करिए। तातैं तहां तिन विकल्पनिक निषेध किया है। बहुरि सम्यक्त्वका लक्षण तौ प्रतीति

ही है। सो प्रतीतिका तौ निषेध न किया। जो प्रतीति छुड़ाई होय, तौ इस लक्षणका निषेध किया कहिए। सो तौ है नाहीं। सातों तत्त्वनिकी प्रतीति तहां भी बनी रहै है। तातैं यहां अव्याप्तिपना नाहीं है।

बहुरि प्रश्न-जो छद्मस्थकै तौ अप्रतीति प्रतीति कहना संभवै है,तातैं तहां सप्ततत्त्वनिकी प्रतीति सम्यक्त्वका लक्षण कह्या सो हम मान्यां; परन्तु केवली सिद्ध भगवानकै तौ सर्वका जानपना समान रूप है। तहां सप्ततत्त्वनिकी प्रतीति कहना, संभवै नाहीं। अर तिनकै सम्यक्त्व गुण पाइए ही है, तातैं तहां तिस लक्षणका अव्याप्तिपना आया।

ताका समाधान—जैसैं छद्मस्थकै श्रुतज्ञानकै अनुसार प्रतीति पाइए हैं, तैसैं केवली सिद्धभगवानकै केवलज्ञानकै अनुसारि प्रतीति पाइए है। जो सप्त तत्त्वनिका स्वरूप पहलैं ठीक किया था, सो ही केवलज्ञानकरि जान्या। तहां प्रतीतिकौं परम अवगाढ़पनो भयो। याहीतैं परमअवगाढ़ सम्यक्त्व कह्या। जो पूर्वैं श्रद्धान किया था, ताकौं झूठ जान्या होता, तौं तहां अप्रतीति होती। सो तौ जैसा सप्त तत्त्वनिका श्रद्धान छद्मस्थकै भया था, तैसा ही केवली सिद्धभगवानकै पाइए है। तातैं ज्ञानदिककी हीनता अधिकता होतैं भी तिर्यंचादिक वा केवली सिद्ध भगवानकै सम्यक्त्व गुण समान ही कह्या। बहुरि पूर्व अवस्थाविषैं यहु मानैं था, संवर निर्जराकरि मोक्षका उपाय करना। पीछैं मुक्ति अवस्था भए ऐसैं माननैं लगै, जो संवर निर्जराकरि हमारैं मोक्ष भई। बहुरि पूर्वैं ज्ञानकी हीनताकरि जीवादिकके थोड़े विशेष

जानैं था, पीछैं केवलज्ञान भए तिनके सर्व विशेष जानैं, परन्तु मूलभूत जीवादिकके स्वरूपका श्रद्धान जैसा छद्मस्थके पाइए है,तैसाही केवलीके पाइए है। बहुरि यद्यपि केवली सिद्ध भगवान् अन्यपदार्थनिकौं भी प्रतीति लिए जानैं हैं तथापि ते पदार्थ प्रयोजनभूत नाहीं। तातैं सम्यक्त्वगुणविषैं सप्त तत्त्वनिहीका श्रद्धान ग्रहण किया है। केवली सिद्ध-भगवान् रागादिरूप न परिणमैं हैं। संसार अवस्थाकौं न चाहैं हैं। सो यह इस श्रद्धानका बल जानना।

बहुरि प्रश्न—जो सम्यग्दर्शनको तौ मोक्षकामार्ग कह्या था, मोक्षविषैं याका सद्भाव कैसैं कहिए है ?

ताका उत्तर—कोई कारण ऐसा भी हो है, जो कार्य सिद्ध भए भी नष्ट न होय। जैसैं काहू वृक्षकै कोई एक शाखाकरि अनेक शाखायुक्त अवस्था भई, तिसकौं होतैं वह एक शाखा नष्ट न हो है। तैसैं काहू आत्माकै सम्यक्त्व गुणकरि अनेकगुणयुक्त मुक्ति अवस्था भई, ताकौं होतैं सम्यक्त्व गुण नष्ट न हो है ऐसैं केवली सिद्धभगवानकै भी तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण ही सम्यक्त्व पाइए है। तातैं तहां अव्याप्तिपनौं नाहीं है।

[मिथ्यादृष्टिका तत्त्वश्रद्धान नाम निक्षेपसे है]

बहुरि प्रश्न—मिथ्यादृष्टीकै भी तत्त्वश्रद्धान हो है, ऐसा शास्त्रविषैं निरूपण है। प्रवचनसारविषैं आत्मज्ञानशून्य तत्त्वार्थश्रद्धान अकार्यकारी कह्या है। तातैं सम्यक्त्वका लक्षण तत्त्वार्थश्रद्धान कह्या है, तिसवि पैं अतिव्याप्ति दूषण लागै है।

ताका समाधान—मिथ्यादृष्टीकै जो तत्त्वश्रद्धान कह्या है, सो नाम-

निक्षेपकरि कह्या है। जामें तत्त्वश्रद्धानका गुण नाहीं, अर व्यवहारविषैं जाका नाम तत्त्वश्रद्धान कहिए, सो मिथ्यादृष्टीकै हो है। अथवा आगमद्रव्यनिक्षेपकरि हो है। तत्त्वार्थश्रद्धानके प्रतिपादक शास्त्रनिकौ अभ्यास है,तिनिका स्वरूप निश्चय करनेंविषैं उपयोग नाहीं लगावै है, ऐसा जानना। बहुरि यहां सम्यक्त्वका लक्षण तत्त्वार्थश्रद्धान कह्या है। सो गुणसहित सांचा तत्त्वार्थश्रद्धान मिथ्यादृष्टीकै कदाचित् न होय। बहुरि आत्मज्ञानशून्य तत्त्वार्थश्रद्धान कह्या है। तहां भी सोई अर्थ जानना। सांचा जीव अजीवादिकका जाकै श्रद्धान होय, ताकै आत्मज्ञान कैसैं न होय? होय ही होय। ऐसैं कोई मिथ्यादृष्टीकै सांचा तत्त्वार्थश्रद्धान सर्वथा न पाईए है, तातैं तिस लक्षणविषैं अतिव्याप्ति दूषण न लागै है।

बहुरि जो यहु तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षण कह्या, सो असंभवी भी नाहीं है। जातैं सम्यक्त्वका प्रतिपक्षी मिथ्यात्व ही है यहु नाहीं। वाका लक्षण इसतैं विपरीतता लिए है ऐसैं अव्याप्ति अतिव्याप्ति असंभविपनाकरि रहित सर्व सम्यग्दृष्टीनिविषैं तौ पाइये अर कोई मिथ्यादृष्टिविषैं न पाइए ऐसा सम्यग्दर्शनका सांचा लक्षण तत्त्वार्थश्रद्धान है।

[सम्यक्त्वके विभिन्नलक्षणोंका समन्वय]

बहुरि प्रश्न उपजै है—जो यहां सातौं तत्त्वनिके श्रद्धानका नियम कहो हौ, सो बनैं नाहीं। जातैं कहीं परतैं भिन्न आपका श्रद्धानहीकौं सम्यक्त्व कहैं हैं। समयसारविषैं[1] 'एकत्वे नियतस्य' इत्यादि कलश।

---

१ एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः
पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक्।

लिखा है, तिसविषैं ऐसा कह्या है-जो इस आत्माका परद्रव्यतैं भिन्नअवलोकन सोही नियमतैं सम्यग्दर्शन है। तातैं नव तत्त्वनिकी संगति छोड़ि हमारै यहु एक आत्मा ही होहु। बहुरि कहीं एक आत्माके निश्चयहीकौं सम्यक्त्व कहैं हैं। पुरुषार्थसिद्ध्युपायविषै "[1]दर्शनमात्मविनिश्चितिः" ऐसा पद है। सो याका यहु ही अर्थ है। तातैं जीव अजीवहीका वा केवल जीवहीका श्रद्धान भए सम्यक्त्व हो है। सातौंका श्रद्धानका नियम होता, तौ ऐसा काहेकौं लिखते।

ताका समाधान—परतैं भिन्न श्रद्धान हो है, सो आस्रवादिकका श्रद्धानकरि रहित हो है कि सहित हो है। जो रहित हो है, तौ मोक्षका श्रद्धान विना किस प्रयोजनके अर्थि ऐसा उपाय करै है। संवर निर्जराका श्रद्धान विना रागादिकरहित होय स्वरूपविषैं उपयोग लगावनेका काहेकौं उद्यम राखै है। आस्रव बंधका श्रद्धान विना पूर्व अवस्थाकौं काहेकौं छांड़ै है। तातैं आस्रवादिकका श्रद्धानरहित आपापरका श्रद्धान करना संभवै नाहीं। बहुरि जो आस्रवादिकका श्रद्धानसहित हो है, तौ स्वयमेव सातौं तत्त्वनिके श्रद्धानका नियम भया। बहुरि केवल आत्माका निश्चय है, सो परका पररूप श्रद्धान भए विना आत्माका श्रद्धान न होय, तातैं अजीवका श्रद्धान भए ही जीवका श्रद्धान होय। बहुरि पूर्ववत् आस्रवादिकका भी श्रद्धान

सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयम्
तन्मुक्तानवतत्त्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः ॥ ६ ॥

१ दर्शनमात्मविनिश्चितिरात्मपरिज्ञानमिष्यते बोधः।
स्थितिरात्मनि चारित्रं कुत एतेभ्यो भवति बन्धः ॥ २१६ ॥

होय ही होय। तातैं यहां भी सातौं तत्त्वनिके ही श्रद्धानका नियम जानना। बहुरि आस्रवादिकका श्रद्धान विना आपापरका श्रद्धान वा केवल आत्माका श्रद्धान सांचा होता नाहीं। जातैं आत्मा द्रव्य है, सो तौ शुद्ध अशुद्ध पर्याय लिए है। जैसैं तंतु अवलोकन विना पटका अवलोकन न होय, तैसैं शुद्ध अशुद्ध पर्याय पहचानैं विना आतमद्रव्यका श्रद्धान न होय। सो शुद्ध अशुद्ध अवस्थाकी पहचानि आस्रवादिककी पहचानतैं हो है। बहुरि आस्रवादिकका श्रद्धान विना आपापरका श्रद्धान वा केवल आत्माका श्रद्धान कार्यकारी भी नाहीं। जातैं श्रद्धान करौ वा मति करौ, आप है सो आप है ही, पर है सो पर ही है। बहुरि आस्रवादिकका श्रद्धान होय, तौ आस्रवबंधका अभावकरि संवर निर्जरारूप उपायतैं मोक्षपदकौं पावै। बहुरि जो आपापरका भी श्रद्धान कराइए है, सो तिस ही प्रयोजनके अर्थि कराइए है। तातैं आस्रवादिकका श्रद्धानसहित आपापरका जानना वा आपका जानना कार्यकारी है।

यहां प्रश्न—जो ऐसैं है, तौ शास्त्रनिविषैं आपापरका श्रद्धान वा केवल आत्माका श्रद्धानहीकौं सम्यक्त्व कह्या, वा कार्यकारी कह्या। बहुरि नव तत्त्वकी संतति छोड़ि हमारे एक आत्मा ही होहु, ऐसा कह्या। सो कैसैं कह्या?

ताका समाधान—जाका सांचा आपापरका श्रद्धान वा आत्माका श्रद्धान होय, ताकै सातौं तत्त्वनिका श्रद्धान होय ही होय। बहुरि जाकै सांचा सात तत्त्वनिका श्रद्धान होय, ताकै आपापरका वा आत्माका श्रद्धान होय ही होय। ऐसा परस्पर अविनाभावीपना जानि

आपापरका श्रद्धानकौं वा आत्मश्रद्धान होनेकौं सम्यक्त्व कह्या है। बहुरि इस छलकरि कोई सामान्यपनै आपापरकौं जानि वा आत्माकौं जानि कृतकृत्यपनौं मानैं, तौ वाकै भ्रम है। जातैं ऐसा, कह्या है—'निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत्खरविषाणवत्' याका अर्थ—यहु—जो विशेषरहित सामान्य है सो गधेके सींग समान हैं। तातैं प्रयोजनभूत आस्रवादिक विशेषनिसहित आपापरका वा आत्माका श्रद्धान करना योग्य है। अथवा सातौं तत्त्वार्थनिका श्रद्धानकरि रागादिक मेटनेके अर्थि परद्रव्यनिकौं भिन्न भावै है, वा अपने आत्माहीकौं भावै है। ताकै प्रयोजनकी सिद्धि हो है। तातैं मुख्यताकरि भेदविज्ञानकौं वा आत्मज्ञानकौं कार्यकारी कह्या है। बहुरि तत्त्वार्थश्रद्धान किए विना सर्व जानना कार्यकारी नाहीं। जातैं प्रयोजन तौ रागादिक मेटनेका है। सो आस्रवादिकका श्रद्धानविना यह प्रयोजन भासै नाहीं। तब केवल जाननेहीतैं मानकौं वधावै, रागादिक छांड़ै नाहीं, तब वाका कार्य कैसैं सिद्धि होय। बहुरि नवतत्त्वसंततिका छोड़ना कह्या है। सो पूर्वैं नवतत्त्वके विचार करि सम्यग्दर्शन भया, पीछैं निर्विकल्पदशा होनेके अर्थि नवतत्त्वनिका भी विकल्प छोड़नेकी चाहि करी। बहुरि जाकैं पहिलैं ही नवतत्त्वनिका विचार नाहीं, ताकै तिस विकल्प छोड़नेका कहा प्रयोजन है। अन्य अनेक विकल्प आपकै पाइए है, तिनहीका त्याग करौ? ऐसैं आपापरका श्रद्धानविषैं वा आत्मश्रद्धानविषैं सप्ततत्त्व श्रद्धानविषैं सप्ततत्त्वनिका श्रद्धानकी सापेक्षा पाइए है। तातैं तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यक्त्वका लक्षण है।

बहुरि प्रश्न—जो कहीं शास्त्रनिविषैं अरहंतदेव निर्ग्रंथ गुरु हिंसा-

रहित धर्मका श्रद्धानकौं सम्यक्त्व कह्या है, सो कैसें?

ताका समाधान—अरहंत देवादिकका श्रद्धान होनेतैं वा कुदेवादिकका श्रद्धान दूरि होनेकरि गृहीत मिथ्यात्वका अभाव हो है। तिस अपेक्षा याकौं सम्यक्त्वी कह्या हैं। सर्वथा सम्यक्त्वका लक्षण यहु नाहीं। जातैं द्रव्यलिंगी मुनि आदि व्यवहार धर्मके धारक मिथ्यादृष्टी तिनिकै भी ऐसा श्रद्धान हो है। अथवा जैसैं अणुव्रत महाव्रत होतैं देशचारित्र सकलचारित्र होय, वा न होय। परंतु अणुव्रत महाव्रत भए विना देशचारित्र सकलचारित्र कदाचित् न होय। तातैं इनि व्रतनिकौं अन्वयरूप कारण जानि कारणविषैं कार्यका उपचारकरि इनकौं चारित्र कह्या। तैसैं अरहंत देवादिकका श्रद्धान होतैं तौ सम्यक्त्व होय वा न होय। परंतु अरहंतादिकका श्रद्धान भए विना तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व कदाचित् न होय। तातैं अरहंतादिकके श्रद्धानकौं अन्वयरूप कारण जानि कारणविषैं कार्यका उपचारकरि इस श्रद्धानकौं सम्यक्त्व कह्या है। याहीतैं याका नाम व्यवहारसम्यक्त्व है। अथवा जाकै तत्त्वार्थश्रद्धान होय, ताकै सांचा अरहंतादिकके स्वरूपका श्रद्धान होय ही होय। तत्त्वार्थश्रद्धान विना पक्षकरि अरहंतादिकका श्रद्धान करै, परंतु यथावत् स्वरूपकी पहचानलियें श्रद्धान होय नाहीं। बहुरि जाकै सांचा अरहंतादिकके स्वरूपका श्रद्धान होय, ताकै तत्त्वार्थश्रद्धान होय ही होय। जातैं अरहंतादिकका स्वरूप पहचानें जीव अजीव आस्रवादिककी पहचानि हो हैं। ऐसैं इनकौं परस्पर अविनाभावी जानि, कहीं अरहंतादिकके श्रद्धानकौं सम्यक्त्व कह्या है।

यहां प्रश्न—जो नारकादिक जीवनिकै देवकुदेवादिकका व्यवहार नाहीं, अर तिनिके सम्यक्त्व पाइए है, तातैं सम्यक्त्व होतैं अरहंतादिकका श्रद्धान होय ही होय, ऐसा नियम संभवै नाहीं ?

ताका समाधान—सप्त तत्त्वनिका श्रद्धानविषैं अरहंतादिकका श्रद्धान गर्भित है। जातैं तत्त्वश्रद्धानविषैं मोक्षतत्त्वकौं सर्वोत्कृष्ट मानैं है। सो मोक्षतत्त्व तौ अरहंत सिद्धका लक्षण है। जो लक्षणकौं उत्कृष्ट मानै, सो ताकै लक्ष्यको उत्कृष्ट मानै ही मानै। तातैं उनकौं भी सर्वोत्कृष्ट मान्या, औरकौं न मान्या सो ही देवका श्रद्धान भया। बहुरि मोक्षके कारण संवर निर्जरा हैं, तातैं इनकौं भी उत्कृष्ट मानैं है। सो संवर निर्जराके धारक मुख्यपनै मुनि हैं। तातैं मुनिकौं उत्तम मानै है औरकौं न मान्या, सोई गुरुका श्रद्धान भया। बहुरि रागादिकरहित भावका नाम अहिंसा है, ताहीकौं उपादेय मानै है औरकौं न मानै है सोई धर्मका श्रद्धान भया। ऐसैं तत्त्वार्थश्रद्धानविषैं गर्भित अरहंतदेवादिकका भी श्रद्धान हो है। अथवा जिस निमित्ततैं याकै तत्त्वार्थ श्रद्धान हो है, तिस निमित्ततैं अरहंतदेवादिकका भी श्रद्धान हो है। तातैं सम्यक्त्वविषैं देवादिकके श्रद्धानका नियम है।

बहुरि प्रश्न—जो केई जीव अरहंतादिकका श्रद्धान करैं हैं, तिनिके गुण पहचानैं हैं, अर उनकै तत्त्वश्रद्धानरूप सम्यक्त्व न हो है। तातैं जाकै सांचा अरहंतादिकका श्रद्धान होय, ताकै तत्त्वश्रद्धान होय ही होय, ऐसा नियम संभवै नाहीं ?

ताका समाधान—तत्त्वश्रद्धान विना अरहंतादिकके छियालीसआदि गुण जानैं है, सो पर्यायाश्रित गुण जानैं है परन्तु जुदा जुदा

जीव पुद्गलविषैं संभवै तैसैं यथार्थ नाहीं पहिचानैं है। तातैं सांचा श्रद्धान भी न होय। जातैं जीव अजीवकी जाति पहिचानें विना अरहंतादिकके आत्माश्रित गुणनिकौं वा शरीराश्रित गुणनिकौं भिन्न-भिन्न न जानैं। जो जानैं, तौ अपनें आत्माकौं परद्रव्यतैं भिन्न कैसैं न मानैं? तातैं प्रवचनसारविषैं ऐसा कह्या है:—

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥ १ ॥

याका अर्थ यहु—जो अरहंतकौं द्रव्यत्व गुणत्व पर्यायत्वकरि जानैं है, सो आत्माकौं जानैं है। ताका मोह विलयकौं प्राप्त हो है। तातैं जाकै जीवादिक तत्त्वनिका श्रद्धान नाहीं, ताकै अरहंतादिकका भी सांचा श्रद्धान नाहीं। बहुरि मोक्षादिक तत्त्वका श्रद्धानविना अरहंतादिकका माहात्म्य यथार्थ न जानैं। लौकिक अतिशयादिककरि अरहंतका, तपश्चरणादिकरि गुरुका अर परजीवनिकी अहिंसादिकरि धर्मकी महिमा जानैं, सो ए पराश्रित भाव हैं। बहुरि आत्माश्रित भावनिकरि अरहंतादिकका स्वरूप तत्त्वश्रद्धान भए ही जानिए है। तातैं जाकै सांचा अरहंतादिकका श्रद्धान होय, ताकै तत्त्वश्रद्धान होय ही होय, ऐसा नियम जानना। या प्रकार सम्यक्त्वका लक्षणनिर्देश किया।

यहां प्रश्न—जो सांचा तत्त्वार्थश्रद्धान वा आपापरका श्रद्धान वा आत्मश्रद्धान वा देवधर्मगुरुका श्रद्धानको सम्यक्त्वका लक्षण कह्या। बहुरि इन सर्व लक्षणनिकी परस्पर एकता भी दिखाई, सो जानी। परन्तु अन्य अन्य प्रकार लक्षण करनेंका प्रयोजन कहा?

ताका उत्तर—ए चारि लक्षण कहे, तिनिविषैं सांचा दृष्टिकरि एक लक्षण ग्रहण किए चार्यों लक्षणका ग्रहण हो है। तथापि मुख्य प्रयोजन जुदा जुदा विचारि अन्य अन्य प्रकार लक्षण कहे हैं। जहां तत्त्वार्थ श्रद्धान लक्षण कह्या है, तहां तौ यहु प्रयोजन है जो इनि तत्त्वनिकौं पहिचानैं, तौ यथार्थ वस्तुके स्वरूपका वा अपनें हित अहितका श्रद्धान करै तब मोक्षमार्गविषैं प्रवर्त्तैं। बहुरि जहां आपापरका भिन्न श्रद्धान लक्षण कह्या है, तहां तत्त्वार्थश्रद्धानका प्रयोजन जाकरि सिद्ध होय, तिस श्रद्धानकौं मुख्य लक्षण कह्या है। जीव अजीवके श्रद्धानका प्रयोजन आपापरका भिन्न श्रद्धान करना है। बहुरि आस्रवादिकके श्रद्धानका प्रयोजन रागादि छोड़ना है। सो आपापरका भिन्न श्रद्धान भए परद्रव्यविषैं रागादि न करनेका श्रद्धान हो है। ऐसैं तत्त्वार्थ श्रद्धानका प्रयोजन आपापरका भिन्न श्रद्धानतैं सिद्ध होता जानि इस लक्षणकौं कहा है। बहुरि जहां आत्मश्रद्धान लक्षण कह्या है, तहां आपापरका भिन्नश्रद्धानका प्रयोजन इतना ही है—आपकौं आप जानना। आपकौं आप जानैं परका भी विकल्प कार्यकारी नाहीं। ऐसा मूलभूत प्रयोजनकी प्रधानता जानि आत्मश्रद्धानकौं मुख्य लक्षण कह्या है। बहुरि जहां देवगुरुधर्मका श्रद्धान लक्षण कह्या है, तहां बाह्य साधनकी प्रधानता करी है। जातैं अरहंतदेवादिकका श्रद्धान सांचा तत्त्वार्थश्रद्धानकौं कारण है। अर कुदेवादिकका श्रद्धान कल्पित तत्त्वश्रद्धानकों कारण है। सो बाह्य कारणकी प्रधानताकरि कुदेवादिकका श्रद्धान छुड़ाय सुदेवादिकका श्रद्धान करावनेंके अर्थि देवगुरुधर्मका श्रद्धानकों मुख्य लक्षण कह्या है। ऐसैं जुदे जुदे प्रयोजननिकी मुख्यता

करि जुदे जुदे लक्षण कहे हैं।

इहां प्रश्न—जो ए चारि लक्षण कहे, तिनिविषैं यहु जीव किस लक्षणकौं अंगीकार करै ?

ताका समाधान—मिथ्यात्वकर्मका उपशमादि होतैं विपरीताभिनिवेशका अभाव हो है। तहां च्यारौं लक्षण युगपत् पाइए है। बहुरि विचार अपेक्षा मुख्यपनै तत्त्वार्थनिकौं विचारै है। कै आपापरका भेदविज्ञान करै है। कै आत्मस्वरूपहीकौं संभारै है। कै देवादिकका स्वरूप विचारै है। ऐसैं ज्ञानविषैं तौ नाना प्रकार विचार होय, परन्तु श्रद्धानविषैं सर्वत्र परस्पर सापेक्षपनों पाइए है। तत्त्वविचार करै है, तौ भेदविज्ञानादिकका अभिप्राय लिएं करै है ऐसैं ही अन्यत्र भी परस्पर सापेक्षपणौं है। तातैं सम्यग्दृष्टीकै श्रद्धानविषैं च्यारौं ही लक्षणनिका अंगीकार है। बहुरि जाकै मिथ्यात्वका उदय है ताकै विपरीताभिनिवेश पाइए है। वाकै ए लक्षण आभास मात्र होय सांचे न होय। जिनमतके जीवादिकतत्त्वनिकौं मानैं, तिनके नाम भेदादिककौं सीखै हैं, ऐसैं तत्त्वार्थश्रद्धान होय। औरकौं न मानैं परन्तु तिनिका यथार्थ भावका श्रद्धान न होय। बहुरि आपापरका भिन्नपनाकी वातैं करैं, अर वस्त्रादिकविषैं परबुद्धिकौं चिंतवन करै; परन्तु जैसैं पर्यायविषैं अहंबुद्धि है, अर वस्त्रादिकविषैं परबुद्धि है, तैसैं आत्माविषैं अहंबुद्धि शरीरादिविषैं परबुद्धि न हो है। बहुरि आत्माकौं जिनवचनानुसार चितवैं, परन्तु प्रतीतिरूप आपकौं आप श्रद्धान न करै है। बहुरि अरहंतदेवादिक बिना और कुदेवादिककौं न मानैं है। परन्तु तिनके स्वरूपकौं यथार्थ पहचानि श्रद्धान न करै, ऐसैं ए लक्षणाभास मिथ्यादृष्टीकै हो है।

इनिविषैं कोई होय, कोई न होय। तहां इनिकै भिन्नपनौं भी संभवै है। बहुरि इन लक्षणाभासनिविषैं इतना विशेष है जो-पहिलैं तौ देवादिकका श्रद्धान होय, पीछैं तत्त्वनिका विचार होय पीछैं आपापर-का चिंतवन करै, पीछैं केवल आत्माकौं चिंतवै। इस अनुक्रमतैं साधन करै, तौ परंपराय सांचा मोक्षमार्गकौं पाय कोई जीव सिद्धपदकौं भी पावै, बहुरि इस अनुक्रमका उल्लंघन करि जाकैं देवादिक माननेंका कछू ठीक नाहीं। (अर बुद्धिकी तीव्रतातैं तत्त्वविचारादिविषैं प्रवर्त्तै है। तातैं आपकौं ज्ञानी जानैं है। अथवा तत्त्वविचारविषैं भी उपयोग न लगावै है। अर आपापरका भेदविज्ञानी हुवा रहै है। अथवा आपा-परका भी ठीक न करै है अर आपकौं आत्मज्ञानी मानै है। सो ए सर्व चतुराईकी वातैं हैं। मानादिक कषायके साधन हैं। किछू भी कार्यकारी नाहीं। तातैं जो जीव अपना भला किया चाहै, तिसकौं यावत् सांचा सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति न होय, तावत् इनिकौं भी अनुक्रमहीतैं अंगी-कार करना। सोई कहिए है:)—

पहलैं तो आज्ञादिककरि वा कोई परीक्षाकरि कुदेवादिकका मानना छोड़ि अरहंतदेवादिकका श्रद्धान करना। जातैं इस श्रद्धान भए गृहीतमिथ्यात्वका तौ अभाव हो है। बहुरि मोक्षमार्गके विघ्न करनहारे कुदेवादिकका निमित्त दूरि हो है। मोक्षमार्गका सहाई अरहंत-देवादिकका निमित्त मिलै है, तिसतैं पहिलैं देवादिकका श्रद्धान करना। बहुरि पीछैं जिनमतविषैं कहे जीवादिक तत्त्वनिका विचार करना। नाम लक्षणादि सीखनें। जातैं इस अभ्यासतैं तत्त्वार्थश्रद्धानकी प्राप्ति होय। बहुरि पीछैं आपापरका भिन्नपना जैसैं भासै तैसैं विचार किया

करै। जातैं इस अभ्यासतैं भेदविज्ञान होय। बहुरि पीछैं आपविषैं आपो माननेंके अर्थि स्वरूपका विचार किया करै। जातैं इस अभ्यासतैं आत्मानुभवकी प्राप्ति हो है। बहुरि ऐसैं अनुक्रमतैं इनिकौं अंगीकार करि पीछैं इनहीविषैं कबहू देवादिकका विचारविषैं, कबहू तत्त्वविचारविषैं, कबहू आपा-परका विचारविषैं, कबहू आत्मविचारविषैं उपयोग लगावै। ऐसैं अभ्यासतैं दर्शनमोह मंद होता जाय, तब कदाचित् सांचे सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होय। जातैं ऐसा नियम तौ है नाहीं। कोई जीवकै कोई विपरीत कारण प्रबल बीचमैं होय जाय, तौ सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नाहीं भी होय। परन्तु मुख्यपनै घनें जीवनिकै तौ इस ही अनुक्रमतैं कार्यसिद्धि हो है। तातैं इनिकौं ऐसैं ही अंगीकार करनें। जैसैं पुत्रका अर्थी विवाहादि कारणनिकौं मिलावै, पीछैं घनें पुरुषनिकै तौ पुत्रको प्राप्ति होय ही है। काहूकै न होय, तौ न होय। याकौं तौ उपाय करना। तैसैं सम्यक्त्वका अर्थी इनि कारणनिकौं मिलावै, पीछै घनें जीवनिकै तौ सम्यक्त्वकी प्राप्ति होय ही है। काहूकै न होय, तौ नाहीं भी होय। परन्तु याकौं तौ आप बनैं, सो उपाय करना। ऐसैं सम्यक्त्वका लक्षण निर्देश किया।

यहां प्रश्न—जो सम्यक्त्वके लक्षण तौ अनेक प्रकार कहे, तिन-विषैं तुम तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षणकौं मुख्य किया, सो कारण कहा?

ताका समाधान—तुच्छबुद्धीनकौं अन्य लक्षणविषैं प्रयोजन प्रगट भासै नाहीं, वा भ्रम उपजै। अर इस तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षणविषैं प्रगट प्रयोजन भासै, किछू भ्रम उपजै नाहीं। तातैं इस लक्षणकौं मुख्य किया है। सोई दिखाइए है—देवगुरुधर्मका श्रद्धानविषैं तुच्छबुद्धीनि-

कौं यहु भासै—अरहंतदेवादिककौं मानना, औरकौं न मानना, इतना ही सम्यक्त्व है। तहां जीव अजीवका वा बंधमोक्षके कारणकार्यका स्वरूप न भासै, तब मोक्षमार्ग प्रयोजनकी सिद्धि न होय। वा जीवादिकका श्रद्धान भए विना इस ही श्रद्धानविषैं संतुष्ट होय आपकौं सम्यक्त्वी मानैं। एक कुदेवादिकतैं द्वेष तौ राखै, अन्य रागादि छोड़नेका उद्यम न करै, ऐसा भ्रम उपजै। बहुरि आपापरका श्रद्धानविषैं तुच्छबुद्धीनकौं यहु भासै, कि—आपापरका ही जानना कार्यकारी है। इसतैं ही सम्यक्त्व हो है। तहां आस्रवादिकका स्वरूप न भासै। तब मोक्षमार्ग प्रयोजनकी सिद्धि न होय। वा आस्रवादिकका श्रद्धान भए विना इतना ही जाननेंविषैं संतुष्ट होय, आपकौं सम्यक्त्वी मान स्वच्छंद होय रागादि छोड़नेंका उद्यम न करै। ऐसा भ्रम उपजै। बहुरि आत्मश्रद्धानविषैं तुच्छबुद्धीनिकौं यहु भासै कि, आत्माहीका विचार कार्यकारी है। इसहीतैं सम्यक्त्व हो है। तहां जीव अजीवादिकका विशेष वा आस्रवादिकका स्वरूप न भासै, तब मोक्षमार्ग प्रयोजनकी सिद्धि न होय। वा जीवादिकका विशेष वा आस्रवादिकका स्वरूपका श्रद्धान भए विना इतनाही विचारतैं आपकौं सम्यक्त्वी मानैं स्वच्छन्द होय रागादि छोड़नेका उद्यम न करै है। याकैं भी ऐसा भ्रम उपजै है। ऐसा जान इन लक्षणनिकौं मुख्य न किए। बहुरि तत्त्वार्थ-श्रद्धान लक्षणविषैं जीव अजीवादिकका वा आस्रवादिकका श्रद्धान होय। तहां सर्वका स्वरूप नीकै भासै, तब मोक्षमार्गका प्रयोजनकी सिद्धि होय। बहुरि इस श्रद्धानके भए सम्यक्त होय। परंतु यहु संतुष्ट न हो है। आस्रवादिकका श्रद्धान

होनैतैं रागादि छोड़ मोक्षका उद्यम राखै है। याकै भ्रम न उपजै है। तातैं तत्त्वार्थ श्रद्धान लक्षणकौं मुख्य किया है। अथवा तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षणविषैं तौ देवादिकका श्रद्धान वा आपापरका श्रद्धान वा आत्मश्रद्धान गर्भित हो है। सो तौ तुच्छ बुद्धीनकौ भी भासै। बहुरि अन्य लक्षणनिविषैं तत्त्वार्थश्रद्धानका गर्भितपनौं विशेष बुद्धिमान होय, तिनहीकौं भासै,तुच्छबुद्धीनिकौं न भासै तातैं तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षणकौं मुख्य किया है। अथवा मिथ्यादृष्टीकै आभास मात्र ए होंय। तहां तत्त्वार्थनिका विचार तौ शीघ्रपनै विपरीताभिनिवेश दूर करनेकौं कारण हो है अन्य लक्षण शीघ्र कारण नाहीं होय। वा विपरीताभिनिवेशका भी कारण होय जाय। तातैं यहां सर्व प्रकार प्रसिद्ध जानि विपरीताभिनिवेश रहित जीवादि तत्त्वार्थनिका श्रद्धान सो ही सम्यक्त्वका लक्षण है, ऐसा निर्देश किया। ऐसैं लक्षणनिर्देशका निरूपण किया। ऐसा लक्षण जिस आत्माका स्वभावविषैं पाइए है। सो ही सम्यक्त्वी जानना।

[सम्यक्त्वके भेद और उनका स्वरूप]

अब इस सम्यक्त्वके भेद दिखाइए हैं, तहां प्रथम निश्चय व्यवहारका भेद दिखाइए है,—विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धानरूप आत्मपरिणाम सो तौ निश्चय सम्यक्त्व है। जातैं यहु सत्यार्थ सम्यक्त्वका स्वरूप है। सत्यार्थहीका नाम निश्चय है। बहुरि विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धानकौं कारणभूत श्रद्धान सो व्यवहार सम्यक्त्व है। जातैं कारणविषैं कार्यका उपचार किया है। सो उपचारहीका नाम व्यवहार है। तहां सम्यग्दृष्टी जीवकै देवगुरु धर्मादिकका सांचा श्रद्धान है।

तिसही निमित्ततैं याकै श्रद्धानविषैं विपरीताभिनिवेशका अभाव है। सो यहां विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान सो तो निश्चय सम्यक्त्व है, अर देवगुरुधर्मादिकका श्रद्धान है, सो व्यवहार सम्यक्त्व है। ऐसैं एक ही कालविषैं दोऊ सम्यक्त्व पाइए है। बहुरि मिथ्यादृष्टी जीवकै देवगुरुधर्मादिकका श्रद्धान आभास मात्र हो है। अर याकै श्रद्धानविषैं विपरीताभिनिवेशका अभाव न हो है। तातैं यहां निश्चय-सम्यक्त्व तौ है नाहीं, अर व्यवहार सम्यक्त्व भी आभासमात्र है। जातैं याकै देवगुरुधर्मादिकका श्रद्धान है, सो विपरीताभिनिवेशके अभावकौं साक्षात् कारण भया नाहीं। कारण भए विना उपचार संभवै नाहीं। तातैं साक्षात् कारण अपेक्षा व्यवहार सम्यक्त्व भी याकैं न संभवै है। अथवा याकै देवगुरुधर्मादिकका श्रद्धान नियमरूप हो है। सो विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धानकौं परम्परा कारणभूत है। यद्यपि नियमरूप कारण नाहीं, तथापि मुख्यपनैं कारण है। बहुरि कारणविषैं कार्यका उपचार संभवै है। तातैं मुख्य-रूप परम्परा कारण अपेक्षा मिथ्यादृष्टीकै भी व्यवहार सम्यक्त्व कहिए है।

यहां प्रश्न—जो केई शास्त्रनिविषैं देवगुरुधर्मका श्रद्धानकौं वा तत्त्वश्रद्धानकौं तौ व्यवहार सम्यक्त्व कह्या है, अर आपापरका श्रद्धानकौं वा केवल आत्माके श्रद्धानकौं निश्चय सम्यक्त्व कह्या है, सो कैसैं है?

ताका समाधान—देवगुरुधर्मका श्रद्धानविषैं प्रवृत्तिकी मुख्यता है। जो प्रवृत्तिविषैं अरहंतादिककौं देवादिक मानैं, औरकौं न मानैं,

सो देवादिकका श्रद्धानी कहिए है। अर तत्त्वश्रद्धानविषैं तिनके विचारकी मुख्यता है। जो ज्ञानविषैं जीवादितत्त्वनिकौं विचारै, ताकौं तत्त्वश्रद्धानी कहिए है। ऐसैं मुख्यता पाइए है सो ए दोऊ काहू जीवकै सम्यक्त्वकौं कारण तौ होंय; परंतु इनिका सद्भाव मिथ्यादृष्टीकै भी संभवै है। तातैं इनिकौं व्यवहार सम्यक्त्व कह्या है। बहुरि आपापरका श्रद्धानविषैं वा आत्मश्रद्धानविषैं विपरीताभिनिवेश रहितपना की मुख्यता है। जो आपापरका भेदविज्ञान करै, वा अपनें आत्माकौं अनुभवै, ताकै मुख्यपनैं विपरीताभिनिवेश न होय। तातैं भेदविज्ञानीकौं वा आत्मज्ञानीकौं सम्यग्दृष्टी कहिए है। ऐसैं मुख्यता करि आपापरका श्रद्धान वा आत्मश्रद्धान सम्यग्दृष्टीहीकै पाइए है। तातैं इनिकौं निश्चय सम्यक्त्व कह्या, सो ऐसा कथन मुख्यताकी अपेक्षा है। तारतम्यपनैं ए च्यारौं आभासमात्र मिथ्यादृष्टीकै होय, सांचे सम्यग्दृष्टीकै होंय। तहां आभासमात्र हैं, सो नियम विना परंपरा कारण हैं, अर सांचे हैं सो नियम रूप साक्षात् कारण हैं। तातैं इनिकौं व्यवहाररूप कहिये। इनिके निमित्ततैं जो विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान भया, सो निश्चय सम्यक्त्वहै, ऐसा जानना।

बहुरि प्रश्न—केई शास्त्रनिविषैं लिखै हैं—आत्मा है, सो ही निश्चय सम्यक्त्व है, और सर्व व्यवहार है। सो कैसैं है ?

ताका समाधान—विपरीताभिनिवेशरहित श्रद्धान भया, सो आत्माहीका स्वरूप है। तहां अभेदबुद्धिकरि आत्मा अर सम्यक्त्वविषैं भिन्नता नाहीं। तातैं निश्चयकरि आत्माहीकौं सम्यक्त्व कह्या।

और सर्व सम्यक्त्वकौं निमित्तमात्र है। वा भेदकल्पना किए आत्मा अर सम्यक्त्वकै भिन्नता कहिए है। तातैं और सर्व व्यवहार कह्या। ऐसैं जानना। या प्रकार निश्चयसम्यक्त्व अर व्यवहार सम्यक्त्व-करि सम्यक्त्वके दोय भेद हो हैं। अर अन्य निमित्तादिककी अपेक्षा आज्ञासम्यक्त्वादि सम्यक्त्वके दश भेद कहे हैं, सो आत्मानुशासन-विषैं कह्या है:—

आज्ञामार्गसमुद्भवमुपदेशात्सूत्रबीजसंक्षेपात्।
विस्तारार्थाभ्यां भवमवगाढपरमावगाढं च ॥११॥

याका अर्थ--जिनआज्ञातैं तत्त्वश्रद्धान भया होय, सो आज्ञा सम्यक्त्व है। यहां इतना जानना—"मोकौं जिनआज्ञा प्रमाण है" इतना ही श्रद्धान सम्यक्त्व नाहीं है आज्ञा मानना, तौ कारण भूत है। याहीतैं यहां आज्ञातैं उपज्या कह्या है। तातैं पूर्वैं जिनआज्ञा माननैंतैं पीछैं जो तत्त्वश्रद्धान भया, सो आज्ञासम्यक्त्व है ऐसैं ही निर्ग्रन्थ-मार्गके अवलोकनेतैं तत्त्वश्रद्धान भया होय, सो मार्गसम्यक्त्व[1] है। बहुरि उत्कृष्ट पुरुष तीर्थंकरादिक तिनके पुराणनिका उपदेशतैं जो उपज्या सम्यग्ज्ञान ताकरि उत्पन्न आगमसमुद्रविषैं प्रवीणपुरुषनि-करि उपदेश आदितैं भई जो उपदेशकदृष्टि सो उपदेशसम्यक्त्व है। मुनिके आचरणका विधानकौं प्रतिपादन करता जो आचारसूत्र ताहि

१. मार्ग सम्यक्त्वके बाद मल्लजीकी स्वहस्त लिखितप्रति में ३ लाइन-का स्थान अन्य सम्यक्त्वोंके लक्षण लिखनेके लिये छोड़ा गया है। और ये लक्षण मुद्रित तथा हस्तलिखित अन्य प्रतियोंके अनुसार दिये गये हैं।

सुनकरि श्रद्धान करना जो होय, सो सूत्रदृष्टि भलेप्रकार कही है। यहु **सूत्रसम्यक्त्व** है। बहुरि बीज जे गणितज्ञानकौं कारण तिनकरि अनुपम दर्शनमोहका उपशमके बलतैं दुष्कर है जाननेंकी गति जाकी ऐसा पदार्थनिका समूह ताकी भई है उपलब्धि श्रद्धानरूप परणति जाकै, ऐसा करणानुयोगका ज्ञानी भया, ताकै बीजदृष्टि हो है। यह **बीजसम्यक्त्व** जानना। बहुरि पदार्थनिकौं संक्षेपपनेंतैं जानकरि जो श्रद्धान भया, सो भली संक्षेपदृष्टि है। यह **संक्षेपसम्यक्त्व** जानना। जो द्वादशांगवानीकौं सुन कीन्हीं जो रुचि श्रद्धान, ताहि विस्तारदृष्टि हे भव्य तू जानि। यह **विस्तारसम्यक्त्व** है। बहुरि जैनशास्त्रके वचनविना कोई अर्थका निमित्ततैं भई सो अर्थदृष्टि है। यह **अर्थसम्यक्त्व** जानना। बहुरि अंग अर अंगबाह्यसहित जैनशास्त्र ताकौं अवगाह करि जो निपजी, सो अवगाढ़दृष्टि है। यहु **अवगाढ-सम्यक्त्व** जानना। ऐसें आठ भेद तौ कारण अपेक्षा किए हैं। बहुरि श्रुतकेवलीके जो तत्त्वश्रद्धान है, ताकौं **अवगाढ़सम्यक्त्व** कहिए है। केवलीके जो तत्त्वश्रद्धान है, ताकौं **परमावगाढ़सम्यक्त्व** कहिए है। ऐसैं दोय भेद ज्ञानका सहकारीपनाकी अपेक्षा किए हैं। या प्रकार दशभेद सम्यक्त्वके किए। तहां सर्वत्र सम्यक्त्वका स्वरूप तत्त्वार्थ श्रद्धान ही जानना। बहुरि सम्यक्त्वके तीन भेद किए हैं। १ औपशमिक, २ क्षायोपशमिक, ३ क्षायिक। सो ए तीन भेद दर्शनमोहकी अपेक्षा किए हैं। तहां उपशमसम्यक्त्वके दोय भेद हैं। एक प्रथमोपशम सम्यक्त्व, दूसरा द्वितीयोपशम सम्यक्त्व। तहां मिथ्यात्वगुण-

स्थानविषैं करणकरि दर्शनमोहकौं उपशमाय सम्यक्त्व उपजै, ताकौं प्रथमोपशमसम्यक्त्व कहिए है। तहां इतना विशेष है—अनादि मिथ्यादृष्टीकै तौ एक मिथ्यात्वप्रकृतिहीका उपशम होय है। जातैं याकै मिश्रमोहिनी अर सम्यक्त्वमोहनीकी सत्ता है नाहीं। जब जीव उपशमसम्यक्त्वकौं प्राप्त होय, तिस सम्यक्त्वके कालविषैं मिथ्यात्वके परमाणूनिकौं मिश्रमोहिनीरूप वा सम्यक्त्वमोहिनीरूप परिणमावै है, तब तीन प्रकृतीनकी सत्ता हो है। तातैं अनादि मिथ्यादृष्टीकै एक मिथ्यात्वप्रकृतिकी ही सत्ता है। तिसहीका उपशम हो है। बहुरि सादिमिथ्यादृष्टिकैं काहूकै तीन प्रकृतीनिकी सत्ता है काहूकै एकही की सत्ता है। जाकै सम्यक्त्वकालविषैं तीनकी सत्ता भई थी, सो सत्ता पाईए ताकै तीनकी सत्ता है। अर जाकै मिश्रमोहिनी सम्यक्त्वमोहिनी-की उद्वेलना होय गई होय, उनके परमाणु मिथ्यात्वरूप परिणम गए होंय, ताकै एक मिथ्यात्वकी सत्ता है। तातैं सादि मिथ्यादृष्टीकै तीन प्रकृतीनिका वा एक प्रकृतीका उपशम हो है। उपशम कहा? कहिए है-अनिवृत्तिकरणविषैं किया अंतरकरणविधानतैं जे सम्यक्त्वकालविषैं उदय आवनें योग्य निषेक थे, तिनिका तौ अभाव किया, तिनिके पर-माणु अन्यकालविषैं उदय आवने योग्य निषेकरूप किए। बहुरि अनि-वृत्तिकरणहीविषैं किया उपशमविधानतैं जे तिसकालविषैं उदय आवनें योग्य निषेक, ते उदीरणारूप होय इस कालविषैं उदय न आय सकैं, ऐसैं किए। ऐसैं जहां सत्ता तौ पाइए, अर उदय न पाइए, ताका नाम उपशम है। सो यहु मिथ्यात्वतैं भया प्रथमो-पशम सम्यक्त्व, सो चतुर्थादि सप्तमगुणस्थानपर्यंत पाइए हैं।

बहुरि उपशमश्रेणीकों सन्मुख होतैं सप्तम गुणस्थानविषैं क्षयोपशम-सम्यक्त्वतैं जो उपशम सम्यक्त्व होय, ताका नाम द्वितीयोपशमसम्यक्त्व है। यहां करणकरि तीन ही प्रकृतिनिका उपशम हो है। जातैं याकैं तीनहीकी सत्ता पाइए। यहां भी अंतरकरणविधानतैं वा उपशम-विधानतैं तिनिके उदयका अभाव करै है। सोही उपशम है। सो यहु द्वितीयोपशम सम्यक्त्व सप्तमादि ग्यारवां गुणस्थानपर्यंत हो है। पड़ता कोईकै छठे पांचवैं चौथे गुणस्थान भी रहै है, ऐसा जानना। ऐसैं उपशम सम्यक्त्व दोय प्रकार है। सो यहु सम्यक्त्व वर्तमान-कालविषैं क्षायिकवत् निर्मल है। याका प्रतिपक्षी कर्मकी सत्ता पाइए है, तातैं अन्तर्मुहूर्त कालमात्र यहु सम्यक्त्व रहै है। पीछैं दर्शनमोह-का उदय आवै है, ऐसा जानना। ऐसैं उपशम सम्यक्त्वका स्वरूप कह्या। बहुरि जहां दर्शनमोहकी तीन प्रकृतिनिविषैं सम्यक्त्वमोहनीका उदय होय पाइए है, ऐसी दशा जहां होय, सो क्षयोपशम है। जातैं समलतत्त्वार्थश्रद्धान होय, सो क्षयोपशम सम्यक्त्व है। अन्य दोयका उदय न होय, तहां क्षयोपशम सम्यक्त्व हो है, सो उपशम सम्यक्त्व-का काल पूर्ण भए यहु सम्यक्त्व हो है। वा सादि मिथ्यादृष्टीकै मिथ्यात्वगुणस्थानतैं वा मिश्रगुणस्थानतैं भी याकी प्राप्ति हो है। क्षयो-पशम कहा —सो कहिए है,—

दर्शनमोहकी तीन प्रकृतीनिविषैं जो मिथ्यात्वका अनुभाग है, ताके अनंतवैं भाग मिश्रमोहिनीका है। ताके अनंतवैं भाग सम्यक्त्व-मोहिनीका है। सो इनिविषैं सम्यक्त्वमोहिनी प्रकृति देशघातिक है। याका उदय होतैं भी सम्यक्त्वका घात न होय। किंचित् मलिनता

करै, मूलघात न कर सकै। ताहीका नाम देशघाति है। सो जहां मिथ्यात्व वा मिश्रमिथ्यात्वका वर्त्तमानकालविषैं उदय आवनेंयोग्य निषेक तिनका उदय हुए विना ही निर्जरा होना, सो तौ क्षय जानना। और इनिहीका आगामीकालविषैं उदय आवनें योग्य निषेकनिकी सत्ता पाइए है, सो ही उपशम है। और सम्यक्त्वमोहिनीका उदय पाइए है, ऐसी दशा जहां होय सो क्षयोपशम है तातैं समलतत्त्वार्थश्रद्धान होय, सो क्षयोपशम सम्यक्त्व है। यहां जो मल लागै है, ताका तारतम्य स्वरूप तौ केवली जानै है, उदाहरण दिखावनेंकै अर्थि चलमलिनअगाढ़पना कह्या है। तहां व्यवहारमात्र देवादिककी प्रतीति तौ होय, परन्तु अरहंतदेवादिविषैं यहु मेरा है, यहु अन्यका है, इत्यादि भाव सो चलपना है। शंकादि मल लागै है, सो मलिनपना है। यहु शांतिनाथ शांतिका कर्त्ता है, इत्यादि भाव सो अगाढ़पना है। सो ऐसा उदाहरण व्यवहारमात्र दिखाए। परन्तु नियमरूप नाहीं। क्षयोपशम सम्यक्त्वविषैं जो नियमरूप कोई मल लागै है, सो केवली जानैं है। इतना जानना–याकै तत्त्वार्थश्रद्धानविषैं कोई प्रकार करि समलपनौं हो है। तातैं यहु सम्यक्त्व निर्मल नाहीं है। इस क्षयोपशम सम्यक्त्वका एक ही प्रकार है। याविषैं कछू भेद नाहीं है। इतना विशेष है–जो क्षायिक सम्यक्त्वकौं सन्मुख होतैं, अंतमुहूर्त्तकाल मात्र जहां मिथ्यात्वकी प्रकृतिका लोप करै है, तहां दोय ही प्रकृतीनिकी सत्ता रहै है। बहुरि पीछैं मिश्रमोहिनीका भी क्षय करै है। तहां सम्यक्त्वमोहिनीकी ही सत्ता रहै है। पीछैं सम्यक्त्वमोहिनीकी कांडकघातादि क्रिया न करै है। तहां कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टी नाम पावै है, ऐसा जानना। बहुरि इस

क्षयोपशमसम्यक्त्वहीका नाम वेदकसम्यक्त्व है। जहां मिथ्यात्वमिश्रमोहनीकी मुख्यता करि कहिए, तहां क्षयोपशमसम्यक्त्व नाम पावै है। सम्यक्त्व मोहनीकी मुख्यताकरि कहिए, तहां वेदक नाम पावै है। सो कहने मात्र दोय नाम हैं, स्वरूपविषैं भेद है नाहीं। बहुरि यहु क्षयोपशम सम्यक्त्व चतुर्थादि सप्तम गुणस्थान पर्यंत पाइए है, ऐसैं क्षयोपशम सम्यक्त्वका स्वरूप कह्या।

बहुरि तीनौं प्रकृतीनिके सर्वथा सर्व निषेकनिका नाश भए अत्यंत निर्मल तत्त्वार्थश्रद्धान होय, सो क्षायिक सम्यक्त्व है। सो चतुर्थादि चार गुणस्थानविषैं कहीं क्षायोपशम सम्यग्दृष्टीकै याकी प्राप्ति हो है। कैसैं हो है, सो कहिए है—प्रथम तीन करणकरि मिथ्यात्वके परमाणूनिकौं मिश्रमोहनीरूप परिणमावै वा सम्यक्त्व मोहनीरूप परिणमावै, वा निर्जरा करै, ऐसैं मिथ्यात्वकी सत्ता नाश करै। बहुरि मिश्र आदि मोहनीके परमाणूनिकौं सम्यक्त्वमोहनीरूप परिणमावै वा निर्जरा करै, ऐसैं मिश्रमोहनीका नाश करै। बहुरि सम्यक्त्वमोहनीका निषेक उदय आय खिरै, वाकी बहुत स्थिति आदि होय, तौ ताकौं स्थितिकांडादिकरि घटावै। जहां अंतमुहूर्तस्थिति रहै, तब कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टी होय। बहुरि अनुक्रमतैं इन निषेकनिका नाश करि क्षायिक सम्यग्दृष्टी हो है। सो यह प्रतिपक्षी कर्मके अभावतैं निर्मल है, वा मिथ्यात्वरूप रंजनाके अभावतैं वीतराग है। याका नाश न होय। जहांतैं उपजै, तहांतैं सिद्ध अवस्था पर्यंत याका सद्भाव है। ऐसैं क्षायिक सम्यक्त्वका स्वरूप कह्या। ऐसैं तीन भेद सम्यक्त्वके हैं। बहुरि अनंतानुबंधी कषायकी सम्यक्त्व होतैं दोय अवस्था हो है। कै तो

अप्रशस्त उपशम हो है, कै विसंयोजन हो है। तहां जो करणकरि उपशम विधानतैं उपशम हो है, ताका नाम प्रशस्त उपशम है। उदयको अभाव ताका नाम अप्रशस्त उपशम है। सो अनंतानुबंधीका प्रशस्त तौ उपशम होय नाहीं, अन्य मोहकी प्रकृतिनका हो है। वहुरि इसका अप्रशस्त उपशम हो है। वहुरि जो तीन करणकरि अनंतानुबंधीनिके परमाणूनिकौं अन्य चारित्रमोहनीकी प्रकृतिरूप परिणमाय, तिसका सत्ता नाश करिए, ताका नाम विसंयोजन है। जो इनविषैं प्रथमोपशम सम्यक्त्वविषैं तौ अनंतानुबंधीका अप्रशस्त उपशम ही है। वहुरि द्वितीयोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति पहिलैं अनंतानुबंधीका विसंयोजन भए ही होय, ऐसा नियम कोई आचार्य लिखैं है। कोई नियम नाहीं लिखै हैं। वहुरि क्षयोपशम सम्यक्त्वविषैं कोई जीवकै अप्रशस्त उपशम हो है, वा कोईकै विसंयोजन हो है। वहुरि क्षायिक सम्यक्त्व है, सो पहलै अनंतानुबंधीका विसंयोजन भए ही हो है, ऐसा जानना। यहां यह विशेष है—जो उपशम क्षायोपशम सम्यक्त्वीकै अनंतानुबंधीका विसंयोजनतैं सत्ता नाश भया था। वहुरि वह मिथ्यात्वविषैं आवै, तौ अनंतानुबंधीका बंध करै तहां बहुरि वाकी सत्ताका सद्भाव हो है! अर क्षायिकसम्यग्दृष्टी मिथ्यात्वविषैं आवै नाही। तातैं वाकै अनंतानुबंधीकी सत्ता कदाचित् न होय।

यहां प्रश्न—जो अनंतानुबंधी तौ चारित्रमोहकी प्रकृति है। सो सर्व-निमित्त चरित्रहीकौं घातै याकरि सम्यक्त्वका घात कैसैं संभवै?

ताका समाधान—अनंतानुबंधीके उदयतैं क्रोधादिकरूप परिणाम हो हैं। कुछ अतत्त्वश्रद्धान होता नाहीं। तातैं अनन्तानुबंधी चारित्र-

हीकौं घातै है। सम्यक्त्वकौं नाहीं घातै है। सो परमार्थतैं है तौ ऐसैं ही परन्तु, अनंतानुबंधीके उदयतैं जैसैं क्रोधादिक हो हैं, तैसैं क्रोधादिक सम्यक्त्व होतैं न होय। ऐसा निमित्त नैमित्तिकपना पाइए है। जैसैं त्रसपनाकी घातक तौ स्थावरप्रकृति ही है। परंतु त्रसपना होतैं एकेन्द्रिय जाति प्रकृतिका भी उदय न होय, तातैं उपचारकरि एकेन्द्रिय प्रकृतिकौं भी त्रसपनाकी घातक कहिए, तौ दोष नाहीं। तैसैं सम्यक्त्वका घातक तौ दर्शनमोह है। परंतु सम्यक्त्व होतैं अनंतानुबंधी कषायनिका भी उदय न होय, तातैं उपचारकरि अनंतानुबंधीकै भी सम्यक्त्वका घातकपना कहिए, तौ दोष नाहीं।

बहुरि यहां प्रश्न - जो अनंतानुबंधी भी चारित्रही कौं घातै है, तो याकै गए किछू चारित्र भया कहौ। असंयत गुणस्थानविषैं असंयम काहेकौं कहो हो ?

ताका समाधान—अनंतानुबंधी आदि भेद हैं, ते तीव्र मंदकषायकी अपेक्षा नाहीं हैं। जातैं मिथ्यादृष्टीकै तीव्र कषाय होतैं वा मंदकषाय होतैं अनंतानुबंधी आदि च्यारोंका उदय युगपत् हो है। तहां च्यारोंके उत्कृष्ट स्पर्द्धक समान कहे हैं। इतना विशेष है—जो अनंतानुबंधीके साथ जैसा तीव्र उदय अप्रत्याख्यानादिकका होय, तैसा ताकौं गए न होय। ऐसैं ही अप्रत्याख्यानकी साथि प्रत्याख्यान संज्वलनका उदय होय, तैसा ताकौं गए न होय। बहुरि जैसा प्रत्याख्यानकी साथि संज्वलनका उदय होय तैसा केवल संज्वलनका उदय न होय। तातैं अनंतानुबंधीके गए किछू कषायनिकी मंदता तौ हो है, परंतु ऐसी मंदता न हो है जाकरि कोई चारित्र नाम पावै। जातैं कषायनिके असं-

ख्यात लोकप्रमाण स्थान हैं। तिनिविषैं सर्वत्र पूर्वस्थानतैं उत्तरस्थानविषैं मंदता पाईए है। परन्तु व्यवहारकरि तिनि स्थाननिविषैं तीन मर्यादा करीं। आदिके बहुत स्थान तौ असंयमरूप कहे, पीछैं केतेक देशसंयमरूप कहे, पीछे केतेक सकलसंयमरूप कहे। तिनिविषैं प्रथम गुणस्थानतैं लगाय चतुर्थ गुणस्थान पर्यंत जे कषायके स्थान हो हैं, ते सर्व असंयमहीके हो हैं। तातैं कषायनिकी मंदता होतैं भी चारित्र नाम न पावै है। यद्यपि परमार्थतैं कषायका घटना चारित्रका अंश है, तथापि व्यवहारतैं जहां ऐसा कषायनिका घटना होय, जाकरि श्रावकधर्म वा मुनिधर्मका अंगीकार होय तहां ही चारित्र नाम पावै है। सो असंयमविषैं ऐसैं कषाय घटैं नाहीं। तातैं यहां असंयम कह्या है। कषायनिका अधिक हीनपना होतैं भी जैसैं प्रमत्तादिगुणस्थाननिविषैं सर्वत्र सकलसंयम ही नाम पावै हैं, तैसैं मिथ्यात्वादि असंयतपर्यंत गुणस्थाननिविषैं असंयम नाम पावै है। सर्वत्र असंयमकी समानता न जाननी।

बहुरि यहां प्रश्न—जो अनंतानुबंधी सम्यक्त्वकौं न घातै है, तौ याकै उदय होतैं सम्यक्त्वतैं भ्रष्ट होय सासादन गुणस्थानकौं कैसैं पावै है?

ताका समाधान—जैसे कोई मनुष्यकै मनुष्यपर्याय नाशका कारण तीव्ररोग प्रगट भया होय, ताकौं मनुष्यपर्यायका छोड़नहारा कहिए। बहुरि मनुष्यपना दूर भए देवादिपर्याय होय, सो तौ रोग अवस्थाविषैं न भया। इहां मनुष्यहीका आयु है। तैसैं सम्यक्त्वीकै सम्यक्त्वका नाशका कारण अनंतानुबंधीका उदय प्रगट भया, ताकौं सम्यक्त्वका

विरोधक सासादन कह्या। बहुरि सम्यक्त्वका अभाव भए मिथ्यात्व होय सो तौ सासादनविषैं न भया। यहां उपशमसम्यक्त्वका ही काल है। ऐसा जानना। ऐसैं अनंतानुबंधी चतुष्ककी सम्यक्त्व होतैं अवस्था हो है। तातैं सात प्रकृतिनिकै उपशमादिकतैं भी सम्यक्त्वकी प्राप्ति कहिए है।

बहुरि प्रश्न—सम्यक्त्वमार्गणाके छह भेद किए हैं, सो कैसैं हैं?

ताका समाधान-सम्यक्त्वके तौ भेद तीन ही हैं। बहुरि सम्यक्त्वका अभावरूप मिथ्यात्व है। दोऊनिका मिश्रभाव सो मिश्र है। सम्यक्त्वका घातकभाव सो सासादन है। ऐसैं सम्यक्त्व मार्गणाकरि जीवका विचार किए छह भेद कहे हैं। यहां कोई कहै कि सम्यक्त्वतैं भ्रष्ट होय मिथ्यात्वविषैं आया होय, ताकौं मिथ्यात्वसम्यक्त्व कहिए। सो यहु असत्य है। जातैं अभव्यकै भी तिसका सद्भाव पाइए है। बहुरि मिथ्यात्वसम्यक्त्व कहना ही अशुद्ध है। जैसैं संयममार्गणाविषैं असंयम कह्या, भव्यमार्गणाविषैं अभव्य कह्या, तैसैं ही सम्यक्त्वमार्गणाविषैं मिथ्यात्व कह्या है। मिथ्यात्वकौं सम्यक्त्वका भेद न जानना। सम्यक्त्व अपेक्षा विचार करते केई जीवनिकैं सम्यक्त्वका अभावतैं ही मिथ्यात्व पाइए है ऐसा अर्थ प्रगट करनेंके अर्थि सम्यक्त्वमार्गणाविषैं मिथ्यात्व कह्या है। ऐसैं ही सासादन मिश्र भी सम्यक्त्वका भेद नाहीं है। सम्यक्त्वके भेद तीन ही हैं ऐसा जानना। यहां कर्मके उपशमादिकतैं उपशमादिक सम्यक्त्व कहे, सो कर्मका उपशमादिक याका किया होता नाहीं। यहु तौ तत्त्वश्रद्धान करनेका उद्यम करै तिसके निमित्ततैं स्वयमेव कर्मका उपशमादिक हो है। तब याकै तत्त्व-

श्रद्धानकी प्राप्ति हो है ऐसा जानना। याप्रकार सम्यक्त्वके भेद जानने ऐसैं सम्यग्दर्शनका स्वरूप कह्या।

बहुरि सम्यग्दर्शनके आठ अंग कहे हैं। निःशंकितत्व, निःकांक्षितत्व, निर्विचिकित्सत्व, अमूढदृष्टित्व, उपबृंहण, स्थितिकरण, प्रभावना, वात्सल्य। तहां भयका अभाव अथवा तत्त्वनिविषै संशयका अभाव, सो निश्शंकितत्व है। बहुरि परद्रव्यादिविषै रागरूप वांछाका अभाव, सो निःकांक्षितत्व है। बहुरि परद्रव्यादिविषैं द्वेषरूप ग्लानिका अभाव सो निर्विचिकित्सत्व है। बहुरि तत्त्वनिविषैं वा देवादिकविषैं अन्यथा प्रतीतिरूप मोहका अभाव, सो अमूढदृष्टित्व है। बहुरि आत्मधर्म वा जिनधर्मका वधावना, ताका नाम उपबृंहण है। इसही अंगका नाम उपगूहन भी कहिए है। तहां धर्मात्मा जीवनिका दोष ढांकना, ऐसा ताका अर्थ जानना। बहुरि अपनें स्वभावविषैं वा जिनधर्मविषैं आपकौं वा परकौं स्थापन करना, सो स्थितिकरण अंग है। बहुरि अपनें स्वरूपकी वा जिनधर्मकी महिमा प्रगट करना, सो प्रभावना है। बहुरि स्वरूपविषैं वा जिनधर्मविषैं वा धर्मात्मा जीवनिविषैं अतिप्रीतिभाव सो वात्सल्य है। ऐसैं ए आठ अंग जाननें। जैसैं मनुष्यशरीरके हस्तपादादिक अंग हैं, तैसैं ए सम्यक्त्वके अंग हैं।

यहां प्रश्न—जो केई सम्यक्त्वी जीवनिकै भी भय इच्छा ग्लानि आदि पाइए है, अर केई मिथ्यादृष्टीके न पाइए है। तातैं निःशंकितादिक अंग सम्यक्त्वके कैसैं कहौ हो ?

ताका समाधान—जैसैं मनुष्य शरीरके हस्तपादादि अंग कहिए है। तहां कोई मनुष्य ऐसा भी होय, जाकै हस्तपादादिविषैं कोई अंग

न होय। तहां वाकै मनुष्यशरीर तौ कहिए है, परन्तु तिनि अंगनि विना वह शोभायमान सकल कार्यकारी न होय। तैसैं सम्यक्त्वके निःशंकितादि अंग कहिए है। तहां कोई सम्यक्ती ऐसा भी होय, जाकै निःशंकितत्वादिविषैं कोई अंग न होय। तहां वाकै सम्यक्त्व तौ कहिए, परंतु तिनिका अंगनिविना वह निर्मल सकल कार्यकारी न होय। बहुरि जैसैं बांदरेकै भी हस्तपादादि अंग हो हैं। परंतु जैसैं मनुष्यकैं होंय, तैसैं न हो हैं। तैसैं मिथ्यादृष्टीनिकै भी व्यवहाररूप निःशंकितादिक अंग हो हैं। परंतु जैसैं निश्चयकी सापेक्ष लिए सम्यक्त्वीकै होय तैसैं न हो हैं। बहुरि सम्यक्त्वविषैं पचीस मल कहे हैं—आठ शंकादिक, आठ मद, तीन मूढता, षट् अनायतन, सो ए सम्यक्त्वीकैं न होय कदाचित् काहूकै मल लागै सम्यक्त्वका नाश न हो है, तहां सम्यक्त्व मलिन ही हो है, ऐसा जानना। बहु······

समाप्त
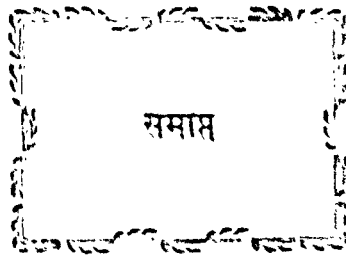
मोक्षमार्ग-प्रकाशकमें उद्धृत पद्यानुक्रम

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	६	ऊद्ध्वंगमन	ऊर्ध्वंगमन
४	२१	ध्यानमुद्र	ध्यानमुद्रा
६	४		प्रथम पैरा के पश्चात् यह शीर्षक पढ़िये—पूज्यत्व का कारण
६	५	सो पूज्यत्व का कारण वीतराग	× × सो वीतराग
६	१६	सर्वज्ञकेवलीका,	सर्वकेवलीका
७	४	उपाध्यय	उपाध्याय
७	१३	उपदेशिादिकका	उपदेशादिकका
३	१४	अरहंतादिकका	अरहंतादिकनिका
८	१४	तैसैं ह्वो है,	तैसैं ही हो है,
८	१४	तिन बिंवनकों	तिन जिन-बिंवनिकों
८	१६	अनुसरि	अनुसारि
८	१७	जैसैं	अैसैं
१०	६	इन्द्रियनित	इन्द्रिय-जनित
१०	१७	कारणमूत	कारणभूत
११	१५	आदि विषैं मङ्गल ही	आदि विषैंही मंगल
११	१७	[अन्यमत मंगल]	
११	१६		[अन्यमत मंगल]
१२	१८	समाप्ति होइ	समाप्तिता होइ
१३	१२	ततैं	तातैं

१३	१६	वहुरि कपाय रूप	वहुरि मध्यम कपायरूप
१४	६	ग्रंथ पामाणिकता	ग्रंथकी प्रामाणिकता
१४	२०	प्रकार गूंथिकरि	प्रकार कोऊ किसी प्रकार गूंथि करि
१५	४	पर्यंत	पर्यन्त
१६	२	श्रुतिकेवली	श्रुतकेवली
१६	६	ग्रन्थ अभ्यासादि	ग्रंथनिका अभ्यासादि
१६	१८	ग्रंथ चरना	ग्रंथ रचना
१७	२१	प्रतिवंध	प्रतिषेध
२२	२०	तो न योग्य	तो छोड़ने योग्य
२२	२१	लोक प	लोक विषैं
२७	१४	शास्त्रनिविषैं तो सुनै है	शास्त्र तो सुनैं हैं
२७	२१	[मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथ]	[मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ की सार्थकता]
३१	२१	कर्मबन्धना	कर्मबन्धन
३२	५	बता है	बताहूए हैं
३३	४	पुद्गलनि परमाणू	पुद्गल परमाणूनि
३३	७	समान्यज्ञेयाधिकार	सामान्यज्ञेयाधिकार
३५	१८	ज्ञानावरणकरि	ज्ञानावरण-दर्शनावरणकरि
३७	१	कार्म्मनिका	कर्म्मनिका
३६	१६	योग शुभ	शुभ योग
४०	३	बन्ध हो है। मिश्र योग होतैं	बन्ध हो है। अशुभ योग होतैं असाता वेदनीय आदि पाप प्रकृतीनिका बन्ध हो है। मिश्रयोग होतैं
४२	७	योग्य	योग
४३	१२	कम प्रकृतिनिका	कर्म प्रकृतीनिका

४५	१६	शरी का	शरीरका
४६	१६	वेद्रिय	वेइन्द्रिय
४६	१६	बहुत	बहुरि
४७	३	परिममणकाल	परिभ्रमणकाल
४७	४	अन्तमुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
४८	८	दासै	दीसै
४६	१६	अनुमादिक	अनुमानादिक
५०	१५	जानना भया। ऐसैं	जानना भया। सो श्रुत-ज्ञान भया ऐसैं
५०	१६	अनक्षारात्मक	अनक्षरात्मक
५०	२०	संज्ञी	शेष संज्ञी
५०	२२	माहापराधीन	महापराधीन
५१	३	संज्ञी	अर संज्ञी
५१	१२	प्रथमकालविष	प्रथमकालविषैं
५२	२	दशनका	दर्शनका
५२	८	मेदका	भेदकी
५२	१५	नेत्रनके	नेत्रनिके
५२	१७	युगत्	युगपत्
५४	२	वा अन्यथा होय	वा थोरा होय वा अन्यथा होय
५४	११	देखना होय	देखना न होय। घूघू मार्जारादिकनिकै तिनिकौं आयें भी देखना होय
५४	१३	तैसैं ही जानना होय	तैसैं ही देखना जानना होय
५४	१८	अंशनि का सद्भाव	अंशनिका तो अभाव है। अर तिनके क्षयोपशमतैं थोरे अंशनिका सद्भाव
५५	११	पर्यायविषैं	पर्यायनिविषैं।

५५	१३	परणमैं हैं	परिणमैं हैं।
५५	२१	चरित्रमोहके	चारित्रमोहके
५६	१२	निदरादिककरि	निरादरादिक करि
५६	१७	ताकौं ऊँचा	ताकौं कोई उपाय करि नीचा दिखावै अर आप नीचा कार्य करै ताकूं ऊंचा
५७	३	सिद्धि	सिद्ध
५८	१२	कौं अनिष्ट	कौं इष्ट मानि प्रीति करै है, तहाँ आसक्त हो है। बहुरि अरतिका उदय करि काहू कौं अनिष्ट
५९	६	तातैं	जातैं
५९	१४	चाहा सो	चाहा चाहै सो
६०	११	मिलैं असाता	मिलैं अर असाता
६०	१६	तैसा ही	तैसा ही
६०	२०	वेदनीय का होतैं	वेदनीय का उदय होतैं
६०	२२	निर्मोही	निर्मोही
६१	६	आयुकर्मके	आयुकर्मके
६१	१८	अयुकर्मका	आयुकर्मका
६१	१६	उपायनद्वारा	उपायनद्वारा
६१	२१	पीछैं अन्य शरी	पीछैं ताकूं छोडि अन्य शरीर
६३	८	परिमैं है।	परिणमैं है।
६३	१६	हाल निमित्त	बाह्यनिमित्त
६४	१०	॥ १ ॥	॥ २ ॥
६५	६	सहै है। यातैं	सहै। परन्तु ताका मूल कारण जानैं नाहीं तब याकौं
६५	७	बतावे. तिनि	बनावै याके विषै इष्टानिष्ट

		तैसैं संसारी संसारतैं	तैसैं ही यह संसारी संसारमैं
६५	२२	चरित्रमोहके	चारित्रमोहके
६६	१४	मन मेरे	मन ये मेरे
६६	१४	मानितैं	मानितातैं
६७	३	अनुभवन	अनुभव
६७	४	सूंघ्या शास्त्र जान्या	सूंघ्या पदार्थ स्पर्शा स्वाद जान्या
६७	५	अनुभवन	अनुभव
६७	८	स्वादौं, सर्वकौं	स्वादौं सर्वकौं सूंघूं, सर्वकौं जातैं मरण ग्रहण करै, जातैं
६७	२२	गृहण करै, वहां कै तौ मरण होता था विषय सेवन किएं इन्द्रियनि	ग्रहण करै,
६८	१	की पीड़ा अधिक भासै है जातैं मरण	जातैं मरण
६८	२	सर्वपीड़ित	सर्वजीव पीड़ित
६९	७	रहता जाय	रह जाय
७१	१६	कारण है सो	कारण है विषम है सो
७३	१२	आवीन	आधीन
७४	२	वधावने की चिन्ता	वधावनेकी वा रक्षा करने की चिन्ता
७४	८	नाशकाका	नाशका
७५	२१	बुरा अन्यका	बुराकर अन्यका
७५	२१	स्वयमेवुव	स्वयमेव
७६	१	होय	बुरा होय
७६	१८	होतैं हैं	होतैं होय हैं

७७	१२	वस्तु की प्राप्ति न होय	वस्तुकी प्राप्ति भई है, ताकी अनेक प्रकार रक्षा करैं है। बहुरि इष्ट वस्तु की प्राप्ति
८४	३	परिणामनि	परिणामनि
८४	९	उपशांतता	उपशांतता
८७	२०	तब	जब
९२	१	परन्तु महादुखी है	परन्तु वह महादुखी है
९२	४	तात	तातैं
९२	६	पवनतैं टूटैं हैं। बहुरि वनस्पती हैं सो	बहुरि वनस्पति हैं सो पवनतैं टूटैं हैं।
९४	१६	बाल	बाह्य
९६	२	पाइये हैं अर तहांकी	पाइये हैं अर क्षुधा तृषा ऐसी है सर्वका भक्षण पान किया चाहैं हैं अर तहां की
९८	१३	सो भोगने	सो सुख भोगने
९८	१५	वाको	वाको
१०२	१७	हैं। बहुरि	हैं। अथवा कोऊकै अनिष्ट सामग्री मिली है ताकै उनकै दूर करने की इच्छा थोरी है, तो वह थोरा आकुलतावान् है। बहुरि
१०२	२०	बाह्य	बाह्य
१०४	१८	ऐसा प्रभाव	ऐसा स्वभाव
१०५	२०	करति हैं ?	करति हैं !
१०६	३	चरित्र	चारित्र
११२	१२	भये दुख	भये ही दुख

		शरीरा हालै	शरीर हालै
१२०	२१	बाह्म	बाह्य
१२१	३	होना	होगा
१२४	१४	जाय तौ	जाय सो तौ
१२८	१	हर्त्ता नाहीं।	हर्त्ता है नाहीं।
१३०	१३	राग द्वे	राग द्वेष
१३३	२२	रागद्वेष परिणमन	रागद्वेष रूप परिणमन
१३४	३	स्नीवेद	स्त्रीवेद
१३४	५	चरित्रका	चारित्रका
१३४	१६	इस सारी	इस संसारी
१३५	२	एकेन्द्रिय जीव	एकेन्द्रियादिक जीव
१३५	१०	स्वमेव	स्वयमेव
१३५	२२	वनादिक	धनादिक
१३६	६	कवहू कहै जस रह्या	कवहू कहै मोकूं जलावैंगे कवहू कहै जस रह्या
१३८	१५–१६	अद्वैतब्रह्म खुदा पीर	अद्वैत ब्रह्म, राम, कृष्ण, महादेव, बुद्ध, खुदा, पीर
१३८	१६	बहुरि भैरूं	बहुरि हनुमान भैरूं
१३९	११	ठहरया बहुरि	ठहरया, कल्पनामात्र ही ठहरया, बहुरि
१३९	१७	न ठहरया।	न ठहरया, इहां भी कल्पना मात्र ही ठहरया।
१४२	६	भये हैं तौ ए	भये हैं कि ब्रह्म ही इन स्वरूप भया है? जो जुदे नवीन उत्पन्न भये हैं तौ ए
१४२	१२	होय एक रूप	होय लोक रूप
१४३	२	विचारतैं	विचार करतैं

१४३	१७	ब्रह्म इच्छासे	ब्रह्मकी इच्छासे
१४४	१३	दुःका	दुःखका
१४५	४	स्वभाय	स्वभाव
१४५	१७	कैसैं बन बहुरि	कैसैं बनें ? बहुरि
१४६	१०	चोर हत्यादि	चोर-हत्यादि
१५०	३	कार्य त, वश	कार्य तो परवश
१५०	१३	रिहुव	बहुरि
१५२	१०	वह	यह
१५२	१४	मानौं, ऐसा	मानौं तो ऐसा
१५५	१८	अर इन जीवनिकैं	अर अजीवनिकैं
१५६	११	याका जीवनिकै कर्तव्य का	याका कर्तव्यका
१५८	१	रूप परिणाम	रूप हुए परिणाम
१५८	१५	संभ नाहीं।	संभवै नाहीं।
१५६	१	महापका	महापापका
१५६	२-३	करैं है अपने अंगनि ही करि संहार करैं है कि इच्छा होतैं स्वयमेव ही संहार होय है ? जो	करैं है जो अपने
१६०	१०	संहार परनहारा न बनैं तातैं लोकको	संहार करनहारा मानना मिथ्या जानि लोकको
१६०	१७	जीादिक	जीवादिक
१६२	७	लोविषैं	लोकविषैं
१६०	११	जुरै जुरै बतावै है	जुरै बतावै है
१६२	१५	जो न रहा	जो स्वाद न रहा
१६२	२०	नृसिंह अवतार	नृसिंहावतार
१६३	४	पर्याव	पर्याय
१६५	१४	कोई आरहन्त	कोई एक आरहन्त

		।	महा निंद्य हैं।
१६५		... । बहुरि	प्रह्मा। बहुरि मृगछाला भस्मी धारैं हैं, सो किसैं अर्थि धारी है। बहुरि
१६५	४	राखैं हैं कौनका	राखैं हैं सो कौनका
१६५	५	संग भी हैं	संग लिये हैं
१६७	२३	ठरया	ठहरथा
१७२	२१	जीव भी करते	जीव करते भी
१७३	१६	प्रपृत्ति	प्रवृत्ति
१७४	१	करना	करता
१७४	३	ऐसा न करैं	ऐसा भाव न करैं
१७४	११	ढांक्का	ढांक्या
१७४	१४	तिनकौं भोगवै,	तिनकौं आप भोगवै,
१७४	१५	कहैं आपही	कहै पीछैं आपही
१७४	२०	करी, पीछैं	करी सो करी, पीछैं
१७५	१५	लड़की गुड्डीनिका ख्याल करि	लड़की गुड्डा गुड्डीनिका ख्याल बनाय करि
१७७	१	अजया जाप	अजपा जाप
१७८	६	किछू थल है	किछू फल है
१७८	२०	ईश्व के	ईश्वरके
१७६	१७	आस्त्वि	अस्तित्व
१८०	६	बताधै छू सो कि	बतावै किछू सो
१८२	२०	हङ्गार	हङ्कार
१८३	२	किये है।	कहै हैं।
१८४	१७	अकर्त्ता तब रहै,	अकर्त्ता रहै, तब

१८७	१	साधनेकों कारण हो हैं ।	साधनेकों भी कारण हैं, जो जैसें ये हैं, तैसें ही तुम तत्व कहे, सोभी लौकिक कार्य साधनेकों कारण हो हैं ।
१८६	६	परत्व, बुद्धि,	परत्व, अपरत्व, बुद्धि,
१८६	७	द्रव्यत्व	द्रवत्व
१८६	८	परन्तु पृथ्वीविषें	परन्तु पृथ्वी कौं गन्धवती ही कहनी, जलकों शीतस्पर्शवान् कहना इत्यादि मिथ्या है जातें कोई पृथ्वीविषें
१८६	६	है । प्रत्यक्षादितें	है । इत्यादि प्रत्यक्षादितें
१८६	२०	जो स्निग्धगुरु	जो स्निग्ध-गुरुत्व,
१८६	२२	द्रव्यत्व	द्रवत्व
१६०	४	तौ घनी	तौ दोनों नाहीं, ऐसा तौ घनी
१६०	१३	एक वस्तुविषें भेदकल्पना	एक वस्तु विषें भेदकल्पना करि या भेदकल्पना
१६१	४	सो एहां	सो बुद्धि है सो एहां
१६१	८	भावमन ज्ञानरूप	भावमन तो ज्ञानरूप
१६१	६	एहैं ।	एहैं ही है ।
१६१	२०	सहस्री, न्यय	सहस्री, न्याय
१६१	२१	प्रेमय	प्रमेय
१६२	२०	परम हैं ।	परम हंस ।
१६४	३	संस्कारार	संस्कार
१६४	७	कोशादिक	कोधादिक
१६६		नोट—इस पृष्ठ की ४थी पंक्ति को पहली पंक्ति के स्थान में पढ़े ।	

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	८	कहैं	करैं
१९६	१९	कोई सर्वज्ञदेव	अब चार्वाक मत कहिये है कोई सर्वज्ञ देव
१९७	१७	भया है	भया हों
१९८	८-९	चेतना होय	चेतना एक भासै है, जो पृथिवी आदि के आधार चेतना होय
१९८	१२	पूर्ब कर्मका	पूर्व पर्यायका
१९८	१७	स्वमेव	स्वयमेव
२००	३	प्रयोजन होय	प्रयोजन एक होय
२०४	१४	त्रैलोक्यनाथो:	त्रैलोक्यनाथ:
२०५	२१	प्रूपयन्ति	प्ररूपयन्ति
२०८	१	दशभ भोजितैर्विप्रै:	दशभिर्भोजितैर्विप्रै :
२०८	११	ऋषभो	ऋषभाय
२०९	२	शत्रं	शत्रुं
२०९	४	–मिद्रं	–मिन्द्रं
२०९	६	परस्ता स्वाहा।	परस्तात् स्वाहा।
२०९	८	बृहस्पतिद्दधातु।	बृहस्पतिर्दधातु।
२०९	१३	साक्षीतैं जिनमतकी	साक्षीतैं भी जिनमतकी
२१०	१०	पूर्व्वापर	पूर्वापर
२११	३	शुद्ध र्न विद्येत	शुद्धिर्न विद्येत
२१४	१	पूर्वापन	पूर्वापर
२१४	१७	अन्यलिंग कौं	अन्यलिंगीकौं
२१५	११	द्रव्यवेदी है, तौ	द्रव्यवेदी हैं, जो भाव वेदी हैं तो हम मानै ही हैं। द्रव्य-वेदी हैं तौ
२१७	८	अन्यस्नी	अन्यस्त्री
२१७	१७,१८	नरफि	नरक

२१८	३१	ही जान।	ही जानने।
२१६	१७	लिएं है	लिएं हो है
२२०	४	घाधादिकका	क्षुधादिकका
२२१	२	मैंभयं	मंभयं
२२४	११	धात	धातु
२२७	१०	समाधन	समाधान
२२८	५	आहारादिककी	आहार लेनेकी
२२६	२०	करावनेकौं	करावनेतैं
२३१	२३	श्रद्धाना	श्रद्धानादिक
२३६	७	नाहीं। कुदेव	नाहीं। बहुरि कुदेव वंदना
२३८	१	वंदना तौ	करनेका अर्थ कैसे संभवै? ज्ञानादिककी वंदना तौ
२३८	६	पूजादि	पूजनादि
२३८	८	है। या	है। सो या
२३६	३	देविन कौ	देवनिकै
२४०	१८	वंदना करि	वंदनादि करि
२४०	२१	तीथकर	तीर्थंकर
२४१	१७	तो कल्याणका अंश मिलाय	सो किए कल्याणका अंश मिल[illegible]
२४२	१३	बिना पाप	पाप
२४३	१८	निपजावै	उपजावै
२४३	१६	हिंसादिकरि पाप	हिंसादि करि बहुत पाप
२४५	४	भये होय	भये दुःख [illegible]
२४५	८	निरादरपना करै,	निरादर करै,
२४५	१२	जेतै काल साधन	जेते काल रहै तेते काल साधन
२४७	१२	ऐसे	सो ऐसे
२४७	१४	देवनिका।	देवनिका। [illegible] देवनिका।

	१५	परिणामनिका	परिणामनिका
	१८	कुदेवनका	कुदेवनिका
२४८	८	जलादिकाकौं	जलादिकको
२४८	१०	मिथ्यादृष्टितैं हो हैं। सो तिनिका	मिथ्यादृष्टितें हो हैं। काहेते प्रथम तौ जिनिका सेवन करैं सो कई तौ कल्पनामात्र ही देव हैं, सो तिनिका
२४८	१८	ताकरि वै चेष्टा	ताकरि वै चेष्टा करें, चेष्टा
२५०	१	भक्तन	भक्तनि
२५०	२	उनही का स्थापना था	उनही की स्थापना थी
२५०	५	परमेश्वर किया है	परमेश्वरका किया है
२५०	१५	व्यंतरनिविषैं वासादिक	व्यंतरनिविषैं प्रभुत्व की अधिकता हीनता तो है, परन्तु जो कुस्थानविषैं वासादिक
२५१	३	हंसने लगि जांय हैं	हंसने कैसे लगि जाय हैं
२५१	४	तौ तो वाकैं	तौ वाकैं
२५१	२१	पुग्दलस्कन्धकौं	पुद्गल स्कन्धकौं
२५२	१५	पूजैं, तासौं	पूजैं, तिस सेती कुतूहल किया करैं, जो न मानै, पूजैं, तासौं
२५३	११	गृह	ग्रह
२५३	२१	सुख होनेका	सुख दुख होनेका
२५४	७	अनेक प्रकार	अनेक प्रकारकरि
२५५	६	जिनिका गाय-गाय	जिनिका तिनकी, गाय-गाय
२५६	१८	अतत्वश्रद्धादि	अतत्वश्रद्धानादि
२५७	७	किस	किसै
२५८	१५	मानौ हौ। लौकिक	मानौ हौ। सो लौकिक
२५९	६	मानिए ऐसैं ही	मानिए, जो ऐसे ही

	११	अर्थ—जे	अथ जे
२८६	१६	देशचरित्र	देशचारित्र
२८८	२२	पश्यतो मीनो	पश्यतोऽमी नो
२८८	२२	स्युदष्ट	स्युर्दृष्ट
२८६	१६	स्वमेव	स्वयमेव
२६१	८	मुक्क मुणइ	मुक्कउ मुणउ
२६२	३	चरित्रविषैं	चारित्रविषैं
२६२	६	सिद्धसमान हौं	मैं सिद्धसमान शुद्ध हौं
२६४	७	क्लिप	विकल्प
२६८	२२	पराङ् मुख	परान्मुख
२६६	५	व्रतदिककौं	व्रतादिकौं
२६६	८	अत्यागी भया	त्यागी अवश्य भया
३०२	११	संकलेश	संक्लेश
३०३	८	संभवैं हैं। ऐसा	संभवैं हैं ? असम्भव हैं। ऐसा
३०३	२०	सम्यग्दष्टे भवति	सम्यग्दष्टेर्भवति
३०३	२१	यस्माज ज्ञात्वा	यस्माज् ज्ञात्वा
३०५	१८	कमनयावलम्बनपरा	कर्मनयावलम्बनपरा
३०७	३	व्यापारिक	व्यापारादिक
३१७	१०	शस्त्र	शास्त्र
३१६	२२	गुरुणयोगा	गुरुणियोगा
३२०	६	क्रियानिकरि	क्रियानि करि
३२०	१०	जिनधमतैं	जिनधर्मतैं
३२२	८–६	साधन करै,……तौ करौ	साधन करै तौ पापी ही होय हिंसादि करि आजीवकादिक के अर्थि व्यापारादि करैं तौ करौ
३२२		गुनिपनो	मुनिपनो

	२२	॥३७॥	॥३, ३६॥
	६	धर्म कायनिविषैं	धर्मकार्यनिविषैं
३५३	१२	व्यपारादि	व्यापारादि
३६४	६	घाति कमनिका	घातिकर्मनिका
३६६	१६	व्यहार	व्यवहार
३६७	६	शुद्ध	शुद्ध
३६७	१६	मोक्षभार्ग	मोक्षमार्ग
३६६	१	यहां व्यवहारका	भावार्थ—यहां व्यवहारका
३७६	२६	शुद्धोपयोग	शुभोपयोग
३८०	१०	उद्यम किये	उद्यम करै ऐसे उद्यम किए
३८४	१२	सम्यक्त	सम्यक्ती
३८७	१७	सरिसत्तं	सरिसत्तं । लब्धि० ३६
३६४	२०	योगतैं हैं 'प्रथम'	योगतैं 'प्रथम'
४१६	१७	बंधका कारण न कह्या ।	बंधका कारण न कह्या, निर्जराका कारण कह्या।
४२३	१८	जाने तौ इनिका भी जानै,	जानै तौ
४२७	२	किएं हां	किएं तहां
४२७	८	बधावै	घटावै
४२७	१०	रागादि धै	रागादि बधै
४२७	१८	कायकारी	कार्यकारी
४२७	२२	समुद्रिककौं	समुद्रादिककौं
४२८	५	जानौं	जानैं
४३१	५	ततैं	तातैं
४३५	२	सर्वथा निन्दा	सर्वथा निन्दा न
४४०	१०	अर्थि अंगीकार	अर्थि तिस उपदेशकौं अंगीकार
४४१	६	—मालविषैं	—मालाविषैं
४४२	१०	वहूरि	बहुरि

	ः	सकलचरित्र	सकलचारित्र
	१६	तैसें जीव	तैसें ही यह जीव
४६१	२०	उपदेश	ताकौं उपदेश
४६४	२२	पुद्‌गलादिक	पुद्‌गलादिक
४६८	२२	पापरूप प्रवर्त्तै	पापरूप न प्रवर्त्तै,
४६६	६	विशेष के, विशेष	विशेष के विशेष
४७०	११	विपरीताभिनिवेशरहित जीवादि	विपरीताभिनिवेश रहित है, सोई सम्यग्दर्शन है। ऐसें विपरीताभिनिवेश रहित जीवादि
४७१	३	आत्माका स्वरूप	आत्माका स्वभाव
४७१	६	[तिर्यंचों के सप्ततत्व श्रद्धानका निर्देश]	
४७१	११		[तिर्यंचोंके सप्ततत्व श्रद्धान का निर्देश]
४७३	३	तत्व श्रद्धान	तत्त्वका श्रद्धान
४७४	१६	योग छुडाय	उपयोग छुडाय
४७५	५	अप्रतीति प्रतीति	प्रतीति अप्रतीति
४७७	६	सो गुणसहित	सो भावनिक्षेप करि कह्या है। सो गुणसहित
४७७	१३	मिथ्यात्व ही है यहु नाहीं	मिथ्यात्व ही है।
४७८	२	संगति	संतति
४७८	८	भिन्न श्रद्धान	भिन्न आपका श्रद्धान
४८५	१४	मानैं, तिनके	मानैं, औरकौं न मानैं तिनके
४८५	१५	होय। औरकौं न मानैं परन्तु	होय। परन्तु
४८७	१५	याकौं तो आप बनैं, सो	याकौं तौ जातैं कार्य बनैं सोई।
४६३	१५	केवलीके	केवल ज्ञानी के

[भावोंसे कर्मोंकी पूर्व बद्ध अवस्थाका परिवर्तन]

अब जे परमाणु कर्मरूप परिणमैं तिनका यावत् उदयकाल न आवै तावत् जीवके प्रदेशनिसैं एक क्षेत्रावगाहरूप बंधान रहै है। तहां जीवभावके निमित्तकरि केई प्रकृतिनिकी अवस्थाका पलटना भी होय जाय है। तहां केई अन्य प्रकृतिनिके परमाणू थे ते संक्रमणरूप होय अन्य प्रकृतिके परमाणू होय जायँ। बहुरि केई प्रकृतिनिकी स्थिति वा अनुभाग वहुत था सो अपकर्षण होयकरि थोरा होय जाय। बहुरि केई प्रकृतिनिका स्थिति वा अनुभाग थोरा था सो उत्कर्षण होयकरि बहुत हो जाय सो ऐसैं पूर्वं बंधे परमाणुनिकी भी जीवभावनिका निमित्त पाय अवस्था पलटै है अर निमित्त न बनैं तौ न पलटै जैसेके तैसे रहैं। ऐसैं सत्तारूप कर्म रहै हैं।

[कर्मोंके फलदानमें निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध]

बहुरि जब कर्मप्रकृतिनिका उदयकाल आवै तब स्वयमेव तिनि प्रकृतिनिका अनुभागके अनुसारि कार्य बनैं। कर्म्म तिनिका कार्यनिकौं निपजावता नाहीं। याका उदयकाल आए वह कार्य बनै है। इतना ही निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध जानना। बहुरि जिस समय फल निपज्या तिसका अनंतर समयविषैं तिनि कर्मरूप पुद्गलनिकै अनुभाग शक्तिके अभाव होनेतैं कर्मत्वपनाका अभाव हो है। ते पुद्गल अन्य-पर्यायरूप परिणमैं हैं। याका नाम सविपाकनिर्जरा है। ऐसैं समय समय प्रति उदय होय कर्म खिरै हैं कर्मत्वपना नास्ति भए पीछैं ते परमाणु तिस ही स्कंधविषै रहौ वा जुदे होय जाहु किछू प्रयोजन रह्या नाहीं।

इहां इतना जानना—इस जीवकै समय समय प्रति अनंत-परमाणु बंधै हैं तहां एकसमयविषै बंधे परमाणु ते आबाधाकाल छोड़ि अपनी स्थितिके जेते समय होंहिं तिनिविषै क्रमतैं उदय आवै हैं। बहुरि बहुतसमयनिविषै बंधे परमाणु जे एकसमयविषै उदय आवनें योग्य हैं ते एकठे होय उदय आवै हैं। तिनि सब परमाणू-निका अनुभाग मिलें जेता अनुभाग होय तितना फल तिस कालविषै निपजै है। बहुरि अनेक समयनिविषै बंधे परमाणु बंधसमयतैं लगाय उदयसमयपर्यंत कर्मरूप अस्तित्वकौं धरें जीवसों सम्बन्धरूप रहैं हैं। ऐसैं कर्मनिकी बंध उदय सत्तारूप अवस्था जाननी। तहां समय समयप्रति एक समयप्रबद्ध मात्र परमाणु बंधे हैं एक समय-प्रबद्ध मात्र निर्जरै हैं। ड्योढगुणहानिकरि गुणित समयप्रबद्ध मात्र सदा काल सत्ता रहै है। सो इनि सबनिका विशेष आगैं कर्मअधि-कारविषै लिखैंगे तहां जानना।

[द्रव्यकर्म और भावकर्मका स्वरूप]

बहुरि ऐसैं यहु कर्म है सो परमाणुरूप अनंत पुद्गलद्रव्यनिकरि निपजाया कार्य है तातैं याका नाम द्रव्यकर्म है। बहुरि मोहके निमित्ततैं मिथ्यात्वक्रोधादिरूप जीवका परिणाम है सो अशुद्ध भावकरि निपजाया कार्य है तातैं याका नाम भावकर्म है। सो द्रव्य-कर्मके निमित्ततैं भावकर्म होय अर भावकर्म के निमित्ततैं द्रव्यकर्मका बंध होय। बहुरि द्रव्यकर्मतैं भावकर्म भावकर्मतैं द्रव्यकर्म ऐसैं ही परस्पर कारणकार्यभावकरि संसारचक्रविषै परिभ्रमण हो है। इतना विशेष जानना—तीव्र मन्द बंध होनेतैं वा संक्रमणादि होनेतैं वा एक

कालविषै बन्ध्या अनेककालविषै वा अनेककालविषैं बंधे, एककाल-विषै उदय आवनेतैं काहू कालविषै तीव्रउदय आवै तब तीव्रकषाय होय, तब तीव्र ही नवीनबन्ध होय। अर काहूकालविषै मंद उदय आवै तब मंदकषाय होय, तब मंद ही नवीनबन्ध होय। बहुरि तिनि तीव्र-मंदकषायनिहीके अनुसारि पूर्वबन्धे कर्मनिका भी संक्रमणादिक होय तौ होय। या प्रकार अनादितैं लगाय धाराप्रवाहरूप द्रव्यकर्म वा भावकर्मकी प्रवृत्ति जाननी।

बहुरि नामकर्मके उदयतैं शरीर हो है सो द्रव्यकर्मवत् किंचित् सुखदुःखकौं कारण है। तातैं शरीरकौं नोकर्म कहिए है। इहां नो शब्द ईषत् कषायवाचक जानना। सो शरीर पुद्गलपरमाणुनिका पिंड है अर द्रव्यइन्द्रिय वा द्रव्यमन अर श्वासोश्वास वचन ए भी शरीरके अंग हैं सो ए भी पुद्गलपरमाणुनिके पिंड जानने। सो ऐसैं शरीरकै अर द्रव्यकर्मसंबन्धसहित जीवकै एकक्षेत्रावगाहरूप बंधान हो है सो शरी-रका जन्म समयतैं लगाय जेती आयुकी स्थिति होय तितने काल पर्यंत शरीरका संबंध रहै है। बहुरि आयु पूरण भए मरण हो है। तब तिस शरीका संबंध छूटै है। शरीर आत्मा जुदे जुदे होय जाय हैं। बहुरि ताके अनंतर समयविषै वा दूसरे तीसरै चौथै समय जीव कर्मउदय-के निमित्ततैं नवीन शरीर धरै है तहां भी अपने आयुपर्यंत तैसैं ही संबंध रहै है, बहुरि मरण हो है तब तिससौं संबंध छूटै है। ऐसैं ही पूर्व शरीरका छोड़ना नवीनशरीरका ग्रहण करना अनुक्रमतैं हुआ करै है। बहुरि यह आत्मा यद्यपि असंख्यातप्रदेशी है तथापि संकोच-विस्तारशक्तितैं शरीरप्रमाण ही रहै है; विशेष इतना,—समुद्घात होतैं

शरीरतैं बाह्य भी आत्माके प्रदेश फैलै हैं। बहुरि अंतराल समयविषै पूर्व शरीर छोड्या था तिस प्रमाण रहै है। बहुरि इस शरीरके अंग भूत द्रव्यइन्द्रिय अर मन तिनिके सहायतैं जीवकै जानपनाकी प्रवृत्ति हो है। बहुरि शरीरकी अवस्थाकै अनुसारि मोहके उदयतैं सुखी दुखी हो है। बहुरि कबहूँ तौ जीवकी इच्छाकै अनुसारि शरीर प्रवर्तै है कबहूँ शरीरकी अवस्थाकै अनुसार जीव प्रवर्तै है कबहूं जीव अन्यथा इच्छारूप प्रवर्तै है। पुद्गल अन्यथा अवस्थारूप प्रवर्तै है ऐसैं इस नोकर्मकी प्रवृत्ति जाननी।

तहां अनादितैं लगाय प्रथम तौ इस जीवकै नित्यनिगोदरूप शरीर का संबंध पाइये है। तहां नित्यनिगोदशरीरकौं धरि आयु पूर्ण भए मरि बहुरि नित्यनिगोदशरीरकौं धारै है बहुरि आयु पूर्ण भए मरि नित्यनिगोदशरीरहीकौं धारै है। याही प्रकार अनंतानंत प्रमाण लिए जीवराशि है सो अनादितैं तहां ही जन्ममरण किया करै है। बहुरि तहांतैं छै महीना अर आठ समयविषै छस्सै आठ जीव निकसै हैं ते निकसि अन्य पर्यायनिकौं धारै हैं। सो पृथ्वी जल अग्नि पवन प्रत्ये-कवनस्पतीरूप एकेन्द्रिय पर्यायनिविषै वा बेंद्रिय तेइंद्रिय चौइन्द्रियरूप पर्यायनिविषै वा नारक तिर्यंच मनुष्य देवरूप पंचेंद्रिय पर्यायनिविषै भ्रमण करै हैं बहुत तहां कितेक काल भ्रमणकरि बहुरि निगोदपर्यायकौं पावै सो वाका नाम इतरनिगोद है। बहुरि तहां कितेक काल रहै तहांतैं निकसि अन्य पर्यायनिविषै भ्रमण करै है। तहां परिभ्रमण करने का उत्कृष्ट काल पृथ्वी आदि स्थावरनिविषै असंख्यात कल्पमात्र है। अर द्वीन्द्रियादि पंचेंद्रियपर्यंत त्रसनिविषै साधिक दोयहजार सागर है

अर इतरनिगोदविषै अढाई पुद्गलपरिवर्तनमात्र है सो यहु अनतकाल है। बहुरि इतरनिगोदतैं निकसि कोई स्थावरपर्याय पाय बहुरि निगोद जाय ऐसैं एकेंद्रियपर्यायनिविषैं उत्कृष्ट परिभ्रमणकाल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन मात्र है। बहुरि जघन्य सर्वत्र एक अंतमुहूर्तकाल है। ऐसैं घना तौ एकेंद्रियपर्यायनिका ही धरना है। अन्य पर्याय पावना तौ काकतालीय न्यायवत् जानना। या प्रकार इस जीवकै अनादिहीतैं कर्मबन्धनरूप रोग भया है।

इति कर्मबंधननिदान वर्णनम्।

अब इस कर्मबन्धनरूप रोगके निमित्ततैं जीवकी कैसी अवस्था होय रही है सो कहिए है। प्रथम तौ इस जीवका स्वभाव चैतन्य है सो सबनिका सामान्यविशेष स्वरूपका प्रकाशनहारा है। जो उनका स्वरूप होय सो आपकौं प्रतिभासै है। तिसहीका नाम चैतन्य है। तहां सामान्यरूप प्रतिभासनेका नाम दर्शन है। विशेषस्वरूप प्रतिभासनेका नाम ज्ञान है। सो ऐसे स्वभावकरि त्रिकालवर्ती सर्वगुणपर्यायसहित सर्व पदार्थनिकौं प्रत्यक्ष युगपत् विना सहाय देखैं जानै ऐसी आत्माविषैं शक्ति सदा काल है। परन्तु अनादिहीतैं ज्ञानावरण दर्शनावरणका सम्बन्ध है ताके निमित्ततैं इस शक्तिका व्यक्तपना होता नाहीं तिनि कर्मनिका क्षयोपशमतैं किंचित् मतिज्ञान वा श्रुतज्ञान पाइए है। अर कदाचित् अवधिज्ञान भी पाइए है। बहुरि अचक्षुदर्शन पाइए है अर कदाचित् चक्षुदर्शन वा अवधिदर्शन भी पाइए है। सो इनिकीभी प्रवृत्ति कैसैं हैं सो दिखाइए है।

सो प्रथम तौ मतिज्ञान है सो शरीरके अंगभूत जे जीभ नासिका

नयन कान ए स्पर्शन द्रव्यइन्द्रिय अर हृदयस्थानविषैं आठ पाँखडीका फूल्या कमलकै आकारि द्रव्यमन तिनिके सहायहीतैं जानै है। जैसैं जाकी दृष्टि मंद होय सो अपने नेत्रकरि ही देखै है परन्तु चसमा दीए ही देखै। विना चसमैके देखि सकै नाहीं। तैसैं आत्माका ज्ञान मंद है सो अपने ज्ञानहीकरि जानै है परन्तु द्रव्यइन्द्रिय वा मनका सम्बन्ध भए ही जानैं तिनि विना जानि सकै नाहीं। वहुरि जैसैं नेत्र तौ जैसाका तैसा है अर चसमाविषैं किछू दोष भया होय तौ देखि सकै नाहीं, अथवा थोरा दीसै अथवा औरका और दीसै, तैसैं अपना क्षयोपशम तौ जैसा का तैसा है अर द्रव्यइन्द्रिय मनके परमाणु अन्यथा परिणमें होंय तौ जानि सकै नाहीं अथवा थोरा जानै अथवा औरका और जानै। जातैं द्रव्यइन्द्रिय वा मनरूप परिमाणूनिका परिणमनकै अर मतिज्ञानकै निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है सो उनका परिणमनकै अनुसारि ज्ञानका परिणमन होय है। ताका उदाहरण—जैसैं मनुष्यादिककै बाल वृद्ध अवस्थाविषै द्रव्यइन्द्रिय वा मन शिथिल होय तब जानपना भी शिथिल होय। वहुरि जैसैं शीत वायु आदिके निमित्ततैं स्पर्शनादिइन्द्रियनिके वा मनके परमाणु अन्यथा होंय तब जानना न होय वा थोरा जानना होय। वा अन्यथा जानना होय। वहुरि इस ज्ञानकै अर बाह्य द्रव्यनिकै भी निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध पाइए है ताका उदाहरण—जैसैं नेत्रइंद्रियकै अन्धकारके परमाणु वा फूला आदिकके परमाणु वा पाषाणादिके परमाणु आदि आड़े आय जाएँ तौ देखि न सकै। वहुरि लालकाच आड़ा आवै तौ सब लाल ही दीसै हरितकाच आड़ा आवै तौ हरित दीसै ऐसैं अन्यथा जानना होय। वहुरि दूरवीणि

चसमा इत्यादि आड़ा आवै तौ बहुत दासने लगि जाय। प्रकाश जल हिलव्वो काच इत्यादिकके परमाणु आड़े आवैं तौ भी जैसाका तैसा दीखै ऐसैं अन्य इन्द्रिय वा मनकै भी यथासंभव—निमित्तनैमित्तिकपना जानना। बहुरि मंत्रादिक प्रयोगतैं वा मदिरापानादिकतैं वा भूतादिकके निमित्ततैं न जानना वा थोरा जानना वा अन्यथा जानना हो है। ऐसे यहु ज्ञान वाह्य द्रव्यकै भी आधीन जानना। बहुरि इस ज्ञानकरि जो जानना हो है सो अस्पष्ट जानना हो है दूरितैं कैसा ही जानै समीपतैं कैसा ही जानै, तत्काल कैसा ही जानैं जानतैं बहुत बार होय जाय तब कैसा ही जानै। काहूकौं संशय लिए जानै काहूकौं अन्यथा जानै काहूकौं किचत् जानैं, इत्यादि रूपकरि निर्मल जानना होय सकै नाहीं। ऐसैं यहु मतिज्ञान पराधीनतालिए इंद्रियमनद्वारकरि प्रवर्तै है। तहां इंद्रयनिकरि तौ जितने क्षेत्रका विषय होय तितने क्षेत्रविषै जे वर्तमान स्थूल अपने जानने योग्य पुद्गलस्कंध होय तिनहीकौं जानैं। तिनिविषै भी जुदे जुदे इंद्रियनिकरि जुदे जुदे कालविषै कोई स्कंधके स्पर्शादिकका जानना हो है। बहुरि मनकरि अपने जानने योग्य किंचिन्मात्र त्रिकालसंबंधी दूरिक्षेत्रवर्ती वा समीपक्षेत्रवर्ती रूपी अरूपी द्रव्य वा पर्याय तिनिकौं अत्यंत अस्पष्टपनै जानै है सो भी इंद्रियनिकरि जाका ज्ञान न भया होय वा अनुमानादिक जाका किया होय तिसहीकौं जानि सकै है। बहुरि कदाचित् अपनी कल्पनाहीकरि असत्कौं जानै है। जैसैं सुपनेविषै वा जागतैं भी जे कदाचित् कहीं न पाइए ऐसे आकारादिक चितवै वा जैसैं नाहीं तैसैं मानै। ऐसैं मनकरि जानना होय है सो यहु इंद्रिय वा

मनद्वारकरि जो ज्ञान हो है ताका नाम मतिज्ञान है। तहाँ पृथ्वी जल अग्नि पवन वनस्पतीरूप एकेंद्रियनिकै स्पर्शहीका ज्ञान है। लट शंख आदि वेइंद्रिय जीवनिकै स्पर्श रसका ज्ञान है। कीड़ा मकोड़ा आदि ते-इंद्रिय जीवनिकै स्पर्श रस गंधका ज्ञान है। भ्रमर मक्षिका पतंगादिक चौइंद्रिय जीवनिकै स्पर्श रस गंध वर्णका ज्ञान है। मच्छ गऊ कबूतर इत्यादिक तिर्यंच अर मनुष्य देव नारकी ए पंचेंद्रिय हैं तिनिकै स्पर्श रस गंध वर्ण शब्दनिका ज्ञान है। बहुरि तिर्यंचनिविषै केई संज्ञी हैं केई असंज्ञी हैं। तहां संज्ञीनिकै मनजनित ज्ञान है असंज्ञीनिकै नाहीं है। बहुरि मनुष्य देव नारकी संज्ञीही हैं तिनि सबनिकै मनजनित ज्ञान पाइए है ऐसैं मतिज्ञानकी प्रवृत्ति जाननी।

बहुरि मतिज्ञानकरि जिस अर्थको जान्या होय ताके संबंधतैं अन्य अर्थकौं जाकरि जानिये सो श्रुतज्ञान है। सो दोय प्रकार है। अक्षरात्मक १ अनक्षरात्मक २। तहां जैसैं 'घट' ए दोय अक्षर सुने वा देखे सो तौ मतिज्ञान भया तिनिके संबंधतैं घटपदार्थका जानना भया। ऐसैं अन्य भी जानना। सो यहु तौ अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। बहुरि जैसैं स्पर्शकरि शीतका जानना भया सो तौ मतिज्ञान है ताके संबंधतैं यह हितकारी नाहीं यातैं भागि जाना इत्यादिरूप ज्ञान भया सो श्रुत-ज्ञान है। ऐसैं अन्य भी जानना। यह अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। तहां एकेंद्रियादिक असंज्ञी जीवनिकै तौ अनक्षरात्मक ही श्रुतज्ञान है अर संज्ञी पंचेंद्रियकै दोऊ हैं। सो यहु श्रुतज्ञान है, सो अनेकप्रकार परा-धीन जो मतिज्ञान ताकै भी आधीन है। वा अन्य अनेक कारणनिकै आधीन है तातैं महापराधीन जानना।

बहुरि अपनी मर्यादाकै अनुसारि क्षेत्रकालका प्रमाण लिए रूपी पदार्थनिकौं स्पष्टपनैं जाकरि जांनिये सो अवधिज्ञान है सो यहु देव नारकीनिकै तौ सर्वकै पाइए है । संज्ञी पंचेंद्रिय तिर्यंच अर मनुष्यनिकै भी कोईकै पाइए है । असंज्ञी-पर्यंत जीवनिकै यहु हूता ही नाहीं । सो यहुभी शरीरादिक पुद्गलनिकैं आधीन है । बहुरि अवधिके तीन भेद हैं देशावधि१ परमावधि २ सर्वावधि ३ । सो इनिविषै थोरा क्षेत्रकालकी मर्यादालिए किंचिन्मात्ररूपी पदार्थकौं जाननहारा देशावधि है सो ही कोई जीवकै होय है । बहुरि परमावधि सर्वावधि अर मनःपर्यय ए ज्ञान मोक्षमार्गविषै प्रगटै हैं । केवलज्ञान मोक्षमार्गस्वरूप है । तातैं इस अनादिसंसारअवस्थाविषैं इनका सद्भाव ही नाहीं है ऐसैं तौ ज्ञानकी प्रवृत्ति पाइए है । बहुरि इन्द्रिय वा मनके स्पर्शादिकविषय तिनिका सम्बन्ध होतैं प्रथमकालविषै मतिज्ञानकै पहलै जो सत्तामात्र अवलोकनरूप प्रतिभास हो है ताका नाम चक्षुदर्शन वा अचक्षुदर्शन है । तहां नेत्र इन्द्रियकरि दर्शन होय ताका नाम तौ चक्षुदर्शन है सो तौ चौइन्द्रिय पंचेंद्रिय जीवनिहीकै हो है । बहुरि स्पर्शन रसन घ्राण श्रोत्र इन च्यारि इन्द्रिय अर मनकरि दर्शन होय ताका नाम अचक्षुदर्शन है सो यथायोग्य एकेन्द्रियादि जीवनिकै हो है ।

बहुरि अवधिके विषयनिका सम्बन्ध होतैं अवधिज्ञानके पहलै जो सत्तामात्र अवलोकनेरूप प्रतिभास होय ताका नाम अवधिदर्शन है सो जिनिकैं अवधिज्ञान संभवै तिनिहीकै यहु हो है । जो यहु चक्षु अचक्षु अवधिदर्शन है सो मतिज्ञान वा अवधिज्ञानवत् पराधीन जानना ।

बहुरि केवलदर्शन मोक्षस्वरूप है ताका यहां सद्भाव ही नाहीं। ऐसे दर्शनका सद्भाव पाइए है। या प्रकार ज्ञान दशनका सद्भाव ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशमके अनुसार हो है। जब क्षयोपशम थोरा हो है तब ज्ञानदर्शनकी शक्ति भी थोरी हो है। जब बहुत होहै तब बहुत हो है। बहुरि क्षयोपशमतैं शक्ति तौ ऐसी बनी रहै अर परिणमनकरि एक जीवकै एक कालविषै एक विषयहीका देखना वा जानना है। इस परिणमनहीका नाम उपयोग है। तहां एक जीवकै एककालविषैकै तौ ज्ञानोपयोग होइ है कै दर्शनोपयोग हो है बहुरि एक उपयोगका भी एक ही भेदका प्रवृत्ति हो है जैसैं मतिज्ञान होय तब अन्यज्ञान न होय। बहुरि एक भेदविषै भी एक विषयविषै ही प्रवृत्ति हो है। जैसैं स्पर्शकौं जानै तब रसादिककौं न जानै। बहुरि एक विषयविषै भी ताके कोऊ एक अंगहीविषै प्रवृत्ति हो है जैसैं उष्णस्पर्शकौं जानै, तब रूक्षादिककौं न जानै। ऐसैं एक जीवकै एक कालविषै एक ज्ञेय वा दृश्यविषै ज्ञान वा दर्शनका परिणमन जानना। सो ऐसैं ही देखिए है। जब सुनने विषै उपयोग लग्या होय तब नेत्रवके समीप तिष्ठता भी पदार्थ न दीसै ऐसैं ही अन्य प्रवृत्ति देखिए है। बहुरि परिणमनविषै शीघ्रता बहुत है ताकरि काहू कालविषै ऐसा मानिए है युगत् भी अनेक विषयनिका जानना वा देखना हो है सो युगपत् होता नाहीं क्रमहीकरि हो है संस्कारबलतैं तिनिका साधन रहै है। जैसैं कागलेकै नेत्रके दोय गोलक हैं पूतरी एक है सो फिरै शीघ्र है ताकरि दोऊ गोलकनिका साधन करै है। तैसैं ही इस जीवकै द्वार तौ अनेक हैं अर उपयोग एक है सो फिरै शीघ्र है ताकरि सर्व द्वारनिका साधन रहै है।

इहां प्रश्न—जो एक कालविषै एक विषयका जानना वा देखना हो है तौ इतना ही क्षयोपशम भया कहौ बहुत काहेकूं कहौ। बहुरि तुम कहो हौ क्षयोपशमतैं शक्ति हो है तौ शक्ति तौ आत्माविषै केवलज्ञान-दर्शनकी भी पाइए है ?

ताका समाधान—जैसैं काहू पुरुषकै बहुत ग्रामनिविषै गमनकरनेकी शक्ति है। बहुरि ताकौं काहूनै रोक्या अर यहु कह्या पाँच ग्रामनिविषै जावो परन्तु एक दिनविषै एक ही ग्रामकौं जावो। तहां उस पुरुषकै बहुत ग्राम जानेकी शक्ति तौ द्रव्य अपेक्षा पाइए हैं अन्य कालविषैं सामर्थ्य होय वर्तमान सामर्थ्यरूप नाहीं है परन्तु वर्तमान पांच ग्रामनितैं अधिक ग्रामनिविषैं गमन करि सकै नाहीं। बहुरि पांच ग्रामनिविषैं जानेकी पर्यायअपेक्षा वर्तमान सामर्थ्यरूप शक्ति है जातैं इनिविषैं गमन करि सकै है। बहुरि व्यक्तता एक दिनविषैं एक ग्रामकौं गमन करनेहीकी पाइए है तैसैं इस जीवकै सर्वकौं देखनेकी,जाननेकी शक्ति है। बहुरि याकौं कर्म नै रोक्या अर इतना क्षयोपशम भया कि स्पर्शादिक विषय-निकौं जानौ या देखौ परन्तु एक कालविषैं एकहीकौं जानौ वा देखौ। तहां इस जीवकै सर्वके देखने जाननेकी शक्ति तौ द्रव्यअपेक्षा पाइए है अन्य-कालविषै सामर्थ्य होय परन्तु वर्तमान सामर्थ्यरूप नाहीं जातैं अपने योग्य विषयनितैं अधिक विषयनिकौं देखि जानि सकै नाहीं। बहुरि अपने योग्य विषयनिकौं देखने जाननेकी पर्याय अपेक्षा वर्तमान सामर्थ्यरूप शक्ति है जातैं इनिकौं देखि जानि सकै है। बहुरि व्यक्तता एक कालविषै एकहीकौं देखनेकी वा जाननेकी पाइए है।

बहुरि इहां प्रश्न—जो ऐसैं तौं जान्या परन्तु क्षयोपशम तौ पाइए

अर बाह्य इन्द्रियादिकका अन्यथा निमित्त भए देखना जानना न होय वा अन्यथा होय सो ऐसैं होतैं कर्महीका निमित्त तौ न रह्या ?

ताका समाधान— जैसैं रोकनहारानैं यहु कह्या जो पांच ग्रामनिविषै एक ग्रामकौं एक दिनविषै जावो परन्तु इन किंकरनिकौं साथ लेकैं जावो तहां वे किंकर अन्यथा परिणमैं तौ जाना न होय वा थोरा जाना होय वा अन्यथा जाना होय तैसैं कर्मका ऐसा ही क्षमोपशम भया है जो इतने विषयनिविषै एक विषयकौं एक कालविषै देखो वा जानौ परन्तु इतने बाह्य द्रव्यनिका निमित्त भए देखौ वा जानौ। तहा वे बाह्य द्रव्य अन्यथा परिणमैं तौ देखना जानना न होय वा थोरा होय वा अन्यथा होय। ऐसैं यहु कर्मके क्षयोपशमहीका विशेष हैं तातैं कर्महीका निमित्त जानना। जैसैं काहूकै अंधकारके परमाणु आड़े आएँ भी देखना होय सो ऐसा यह क्षयोपशमहीका विशेष है। जैसैं जैसैं क्षयोपशम होय तैसैं तैसैं ही जानना होय। ऐसैं इस जीवकै क्षयोपशमज्ञानकी प्रवृत्ति पाइए है। बहुरि मोक्षमार्गविषैं अवधि मनःपर्यय हो हैं ते भी क्षयोपशमज्ञान ही हैं तिनिकी भी ऐसैं ही एककालविषै एककौं प्रतिभासना वा परद्रव्यका आधीनपना जानना। बहुरि विशेष है सो विशेष जानना। या प्रकार ज्ञानावरण दर्शनावरणका उदयके निमित्ततैं बहुत ज्ञानदर्शनके अंशनिका सद्भाव पाइए है।

बहुरि इस जीवकै मोहके उदयतैं मिथ्यात्व वा कषायभाव हो हैं तहां दर्शनमोहके उदयतैं तौ मिथ्यात्वभाव हो है ताकरि यह जीव अन्यथा प्रतीतिरूप अतत्त्वश्रद्धान करै है। जैसैं है तैसैं तौ न मानै है। अर जैसैं नाहीं है तैसैं मानै है। अमूर्त्तीक प्रदेशनिका पुञ्ज प्रसिद्ध

ज्ञानादिगुणनिका धारी अनादिनिधनवस्तु आप है अर मूर्त्तीक पुद्गल द्रव्यनिका पिंड प्रसिद्ध ज्ञानादिकनिकरि रहित जिनका नवीनसंयोगभया ऐसैं शरीरादिक पुद्गल पर हैं इनिका संयोगरूप नानाप्रकार मनुष्य तिर्यंचादि पर्याय ही हैं,तिस पर्यायनिविषैं अहंबुद्धि धारै है, स्वपरका भेद नाहीं करि सकै है जो पर्याय पावै तिसहीकौं आपा मानै है। बहुरि तिस पर्यायविषै ज्ञानादिक हैं ते तौ आपके गुण हैं अर रागादिक हैं ते आपके कर्मनिमित्ततैं उपाधिक भाव भए हैं अर वर्णादिक हैं ते आपके गुण नाहीं है शरीरादिक पुद्गलके गुण हैं अर शरीरादिकविषै वर्णादिकनिकी वा परमाणूनिकी नानाप्रकार पलटनि हो हैं सो पुद्गल-की अवस्था है सो इन सबनिहीकौं अपनौं स्वरूप जानै है स्वभाव पर भावका विवेक नाहीं होय सकै है। बहुरि मनुष्यादिक पर्यायविषै कुटुम्ब धनादिकका सम्बन्ध हो है ते प्रत्यक्ष आपतैं भिन्न है अर ते अपनैं आधीन होय नाहीं परणमैं हैं तथापि तिनिविषैं ममकार करै है ए मेरे हैं वे काहू प्रकार भी अपने होते नाहीं यह ही अपनी मानि तैं अपने मानै है। बहुरि मनुष्यादि पर्यायनिविषै कदाचित् देवादि-कका तत्त्वनिका अन्यथा स्वरूप जो कल्पित किया ताकी तौ प्रतीति करै है अर यथार्थस्वरूप जैसैं हैं तैसैं प्रतीति न करै है। ऐसैं दर्शन-मोहके उदयकरि जीवकै अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यात्वभाव हो हैं। तहां तीव्रउदय होय है तहां सत्यश्रद्धानतैं घना विपरीत श्रद्धान होय है जब मन्द उदय होय है, तब सत्यश्रद्धानतैं थोरा विपरीतश्रद्धान हो है।

बहुरि चरित्रमोहके उदयतैं इस जीवकै कषायभाव हो हैं तब यह देखता जानता संता परपदार्थनिविषै इष्ट अनिष्टपनौ मानि क्रोधादिक

करै है। तहां क्रोधका उदय होतैं पदार्थनिविषै अनिष्टपनौ वा ताका बुरा होना चाहै कोऊ मंदिरादि अचेतन पदार्थ बुरा लागै तब फोरना तोरना इत्यादि रूपकरि वाका बुरा चाहै। बहुरि शत्रुआदि अचेतन सचेतन पदार्थ बुरा लागै तब वाकौं वध बन्धादिकरि वा मारनेकरि दुःख उपजाय ताका बुरा चाहै। बहुरि आप वा अन्य सचेतन अचेतन पदार्थ कोई प्रकार परिणए, आपकौं सो परिणमन बुरा लागै तब अन्यथा परिणमावनेकरि तिस परिणमनका बुरा चाहै। य प्रकार क्रोधकरि बुरा चाहनेकी इच्छा तौ होय बुरा होना भवितव्य आधीन है।

बहुरि मानका उदय होतैं पदार्थविषैं अनिष्टपनौ मानि ताकौं नीचा किया चाहै आप ऊँचा भया चाहै मल धूलि आदि अचेतन पदार्थनिविषै घृणा वा निरादिककरि तिनिकी हीनता आपकी उच्चता चाहै। बहुरि पुरुषादिक सचेतन पदार्थनिकौं नमावना अपने आधीन करना इत्यादि रूपकरि तिनिकी हीनता आपकी उच्चता चाहै। बहुरि आप लोकविषै जैसैं ऊंचा दीसै तैसैं शृङ्गारादि करना वा धन खरचना इत्यादि रूपकरि औरनिकौं हीन दिखाय आप ऊँचा हुवा चाहै। बहुरि अन्य कोई आपतैं ऊँचा कार्य करै ताकौं ऊँचा दिखावै, या प्रकार मानकरि अपनी महंतताकी इच्छा तौ होय, महंतता होनी भवितव्य आधीन है।

बहुरि मायाका उदय होतैं कोई पदार्थकौं इष्ट मानि नानाप्रकार छलनिकरि ताकी सिद्धि किया चाहै। रत्न सुवर्णादिक अचेतन पदार्थनिकी वा स्त्री दासी दासादि सचेतन पदार्थनिकी सिद्धिके अर्थि

अनेक छल करै। ठिगनैके अर्थि अपनी अनेक अवस्था करै वा अन्य अचेतन सचेतन पदार्थनिकी अवस्था पलटावै इत्यादिरूप छलकरि अपना अभिप्राय सिद्धि किया चाहै या प्रकार मायाकरि इष्टसिद्धिके अर्थि छल तौ करै, अर इष्टसिद्धि होना भवितव्य आधीन है।

बहुरि लोभका उदय होतैं पदार्थनिकौं इष्ट मानि तिनिकी प्राप्ति चाहै वस्त्राभरण धनधान्यादि अचेतनपदार्थनिकी तृष्णा होय, बहुरि स्त्री पुत्रादिक चेतन पदार्थनिकी तृष्णा होय, बहुरि आपकै वा अन्य सचेतन अचेतन पदार्थकै कोई परिणमन होना इष्ट मानि तिनिकौं तिस परिणमनरूप परिणमाया चाहै। या प्रकार लोभकरि इष्टप्राप्ति की इच्छा तौ होय अर इष्टप्राप्ति होनी भवितव्य आधीन है। ऐसैं क्रोधादिकका उदयकरि आत्मा परिणमै है,तहां एकएक कषाय च्यारि च्यारि प्रकार हैं अनंतानुबन्धी १, अप्रत्याख्यानावरण २, प्रत्याख्यानावरण ३, संज्वलन ४, तहां (जिनका उदयतैं आत्माकै सम्यक्त्व न होय स्वरूपाचरण चारित्र न होय सकै ते अनंतानुबंधीकषाय हैं१।) जिनिका उदय होतैं देशचारित्र न होय तातैं किंचित् त्याग भी न होय सकै ते अप्रत्याख्यानावरण कषाय हैं। बहुरि जिनिका उदय होतैं सकलचारित्र न होय तातैं सर्वका त्याग न होय सकै ते प्रत्याख्यानावरण कषाय हैं। बहुरि जिनिका उदय होतैं सकलचारित्रकौं दोष उपज्या करै तातैं यथाख्यातचरित्र न होय सकै ते संज्वलन कषाय हैं। सो अनादि संसारअवस्थाविषैं इनि च्यारयूंही कषायनिका निरंतर उदय पाइए है। परम कृष्णलेश्यारूप तीव्रकषाय होय तहां भी अर शुक्ललेश्यारूप मंदकषाय होय तहां भी निरन्तर च्यारयौंहीका उदय

१ यह पंक्ति खरड़ा प्रति में नहीं है।

रहै है। जातैं तीव्रमन्दकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी आदि भेद नाहीं हैं सम्यक्त्वादि घातनेकी अपेक्षा ए भेद हैं इनिही प्रकृतिनिका तीव्र अनुभाग उदय होतैं तीव्र क्रोधादिक हो हैं मन्द अनुभाग उदय होतैं मन्द उदय हो है। बहुरि मोक्षमार्ग भए इनि च्यारौंविषै तीन दोय एकका उदय हो है पीछै च्यारय़ौंका अभाव हो है बहुरि क्रोधादिक च्यारयौं कषायनिविषै एकैकाल एकहीका उदय हो है। इनि कषाय-निकै परस्पर कारणकार्यपनौं है। क्रोधकरि मानादिक होय जाय, मानकरि क्रोधादिक होय जाय, तातैं काहूकाल भिन्नता भासै काहू-काल न भासै है। ऐसैं कषायरूप परिणमन जानना। बहुरि चारित्र-मोहहीके उदयतैं नोकषाय होय है तहां हास्यका उदयकरि कहीं इष्ट-पनौं मानि प्रफुल्लित हो है हर्ष मानैं है बहुरि रतिका उदयकरि काहू कौं अनिष्ट मानि अप्रीति करै है तहां उद्वेगरूप हो है। बहुरि शोकका उदयकरि कहीं अनिष्टपनौं मानि दिलगीर हो है विषाद मानै है। बहुरि भयका उदयकरि किसीकौं अनिष्ट मानि तिसतैं डरै है वाका संयोग न चाहै है। बहुरि जुगुप्साका उदयकरि काहू पदार्थकौं अनिष्ट मानि ताकी घृणा करै हैं वाका वियोग चाहै है। ऐसैं ए हास्यादिक छह जानने। बहुरि वेदनिके उदयतैं याकै कामपरिणाम हो है तहां स्त्रीवेदके उदयकरि पुरुषसौं रमनेकी इच्छा हो है अर पुरुषवेदके उदयकरि स्त्रीसौं रमनेकी इच्छा हो है नपुन्सकवेदके उदयकरि युगपत् दोऊनिसौं रमनेकी इच्छा हो है ऐसैं ए नव तौ नो कषाय हैं। क्रोधादिसारिखे ए बलवान नाहीं तातैं इनिकौं ईषत्कषाय कहैं हैं। यहां नोशब्द ईषत्वाचक जानना। इनिका उदय तिनि

क्रोधादिकनिकी साथि यथासंभव हो है। ऐसैं मोहके उदयतैं मिथ्यात्व वा कषायभाव हो हैं सो ए कारण संसारके मूल ही हैं। इनिहीकरि वर्तमानकालविषैं जीव दुखी हैं अर आगामी कर्मबन्धनके भी कारन ए ही हैं। बहुरि इनिहीका नाम राग द्वेष मोह है। तहां मिथ्यात्वका नाम मोह है जातैं तहां सावधानीका अभाव है। बहुरि माया लोभ-कषाय अर हास्य रति तीन वेदनिका नाम राग है। तातैं तहां इष्ट-बुद्धिकरि अनुराग पाइए है। बहुरि क्रोध-मानकषाय अर अरति शोक भय जुगुप्सानिका नाम द्वेष है जातैं तहां अनिष्टबुद्धिकरि द्वेष पाइए है। बहुरि सामान्यपनै सबहीका नाम मोह है। तातैं इनिविषैं सर्वत्र असावधानी पाइए है। बहुरि अन्तरायके उदयतैं जीव चाहै सो न होय। दान दिया चाहै देय न सकै। वस्तुकी प्राप्ति चाहै सो न होय। भोग किया चाहै सो न होय। उपभोग किया चाहै सो न होय। अपनी ज्ञानादि शक्तिकौं प्रगट किया चाहै सो न प्रगट होय सकै। ऐसैं अन्तरायके उदयतैं चाह्या सो होय नाहीं। बहुरि तिसहीका क्षयोपशमतैं किंचिन्मात्र चाह्या भी हो है। चाहिए तौ बहुत है, परन्तु किंचिन्मात्र (चाह्या [1]हुआ होय है। बहुत दान देना चाहै है, परन्तु थोड़ा ही) दान देय सकै है। बहुत लाभ चाहै है परन्तु थोड़ा ही लाभ हो है। ज्ञानादिक शक्ति प्रकट हो है तहां भी अनेक बाह्य कारन चाहिए। या प्रकार घातिकर्मनिके उदयतैं जीवकै अवस्था हो है। बहुरि अघातिकर्मनिविषैं वेदनीयके उदयकरि शरीरविषै बाह्य सुख

[1] यह पंक्ति खरडा प्रति में नहीं है, किन्तु अन्य प्रतियों में है, इस कारण ब्रेकट में दे दी है।

दुःखका कारन निपजै है। शरीरविषै आरोग्यपनौ रोगीपनौ शक्तिवानपनौ दुर्बलपनौ इत्यादि, अर क्षुधा तृषा रोग खेद पीड़ा इत्यादि सुख दुःखनिके कारन हो है। बहुरि बाह्यविषै सुहावना ऋतु पवनादिक वा इष्ट स्त्री पुत्रादिक वा मित्र धनादिक असुहावना ऋतु पवनादिक वा अनिष्ट वा स्त्री पुत्रादिक वा शत्रु दरिद्र वध बंधनादिक सुखदुखकौं कारन हो हैं ए बाह्यकारन कहे तिनिविषै केई कारन तौ ऐसे हैं जिनिके निमित्तस्यौं शरीरकी अवस्था हो सुखदुःखकौं कारन हो है अर वे ही सुखदुःखकौं कारन हो है बहुरि केई कारन ऐसे हैं जे आप ही सुखदुःखकौं कारन हो हैं ऐसे कारनका मिलना वेदनीयके उदयतैं हो है। तहां सातावेदनीयतैं सुखके कारन मिलैं असातावेदनीयतैं दुःखके कारन मिलैं। सो इहां ऐसा जानना। ए कारन ही तौ सुखदुःखकौं उपजावै नाहीं, आत्मा मोहकर्मका उदयतैं आप सुखःदुख मानैं हैं। तहां वेदनीयकर्मका उदयकैं अर मोहकर्मका उदयकैं ऐसा ही सम्बन्ध है जब सतावेदनीयका निपजाया बाह्य कारन मिलै तब तौ सुखमाननेरूप मोहकर्मका उदय होय अर जब असातावेदनीयका निपजाया बाह्यकारन मिलैं तब दुःखमामनेरूप मोहकर्मका उदय होय। बहुरि एक ही कारन काहूकौं सुखका काहूकौं दुःखका कारन हो है जैसैं काहूकै सातावेदनीयका उदय होतैं मिल्या जैसा वस्त्र सुखका कारनहो है, तैसा ही वस्त्र काहूकौं असातावेदनीयका होतैं मिल्या सो दुःखका कारन हो है। तातैं बाह्य वस्तु सुखदुःखका निमित्तमात्र हो है। सुखदुःख हो है सो मोहके निमित्ततैं हो है। निर्मोही मुनिनकै अनेक ऋद्धिआदि परीसहादि

कारन मिलैं तौ भी सुख दुःख न उपजै। मोही जीवकै कारन मिलै वा बिनाकारन मिलै भी अपने संकल्पहीतैं सुखदुःख हुवा ही करै है। तहां भी तीव्रमोहीकै जिस कारनकौं मिले तीव्र सुखदुःख होय तिसही कारनकौं मिलैं मंदमोहीकै मंद सुखदुःख होय। तातैं सुखदुःखका मूल वलवान कारन मोहका उदय है। अन्य वस्तु हैं सो वलवान कारन नाहीं। परंतु अन्य वस्तुकै अर मोही जीवकै परिणामनिकै निमित्तनैमित्तिककी मुख्यता पाइए है। ताकरि मोहीजीव अन्य वस्तुहीकौं सुखदुःखका कारन मानै हैं। ऐसैं वेदनीयकरि सुखदुःखका कारन निपजै है वहुरि आयुकर्मके उदय-करि मनुष्यादिपर्यायनिकी स्थिति रहै है। यावत् आयुका उदय रहै तावत् अनेक रोगादिक कारन मिलौ शरीरस्यौं संवंध न छूटै। वहुरि जब आयुका उदय न होय तव अनेक उपाय किए भी शरीरस्यौं सवंध रहै नाहीं, तिसहीकाल आत्मा अर शरीर जुदा होय। इस संसारविषै जन्म जीवन मरनका कारन आयुकर्म ही है। जव नवीन आयुका उदय होय तव नवीनपर्यायविषै जन्म हो है। वहुरि यावत् आयुका उदय रहै तावत् तिस पर्यायरूप प्राणनिके धारनतैं जीवना हो है। वहुरि आयुका क्षय होय तव तिस पर्यायरूप प्राण छूटनेतैं मरण हो है। सहज ही ऐसा आयुकर्मका निमित्त है और कोई उपजावनहारा क्षपावनहारा रक्षाकरनेहारा है नाहीं ऐसा निश्चय करना। वहुरि जैसैं नवीन वस्त्र पहरै कितेक काल पहरे रहैं पीछै ताकूं छोड़ि अन्य वस्त्र पहरै तैसैं जीव नवीन शरीर धरै कितेक काल धरै रहै पीछै अन्य शरीर धरै हैं तातैं शरीरसंवंधअपेक्षा जन्मादिक हैं जीव जन्मादिर-

हित नित्य ही है। तथापि मोही जीवकै अतीत अनागतका विचार नाहीं, तातैं पर्याय-पर्याय मात्र अपना अस्तित्व मानि पर्यायसंबंधी कार्यनिविषै ही तत्पर होय रह्या है। ऐसैं आयुकरि पर्यायकी स्थिति जाननी। बहुरि नामकर्मकरि यहु जीव मनुष्यादिगतिनिविषै प्राप्त हो है तिस पर्यायरूप अपनी अवस्था हो है। बहुरि तहां त्रस स्थावरादि विशेष निपजै हैं। बहुरि तहां एकेंद्रियादि जातिकौं धारै है। इस जाति कर्मका उदयकै अर मतिज्ञानावरणका क्षयोपशमकै निमित्तनैमित्तिक-पना जानना जैसा क्षयोपशम होय तैसी जाति पावै। बहुरि शरीरनिका संबंध हो है तहां शरीरके परमाणू अर आत्माके प्रदेशनिका एक बंधान हो है अर संकोच विस्ताररूप होय शरीरप्रमाण आत्मा रहै है बहुरि नोकर्मरूप शरीरविषै अंगोपांगादिकका योग्य स्थान प्रमाण लिए हो हैं। इसहीकरि स्पर्शन रसन आदि द्रव्यइंद्रिय निपजैं हैं वा हृदय-स्थानविषै आठ पांखड़ीका फूल्या कमलकै आकार द्रव्यमन हो हैं। बहुरि तिस शरीरहीविषै आकारादिकका विशेष होना अर वर्णादिक-का विशेष होना अर स्थूलसूक्ष्मत्वादिकका होना इत्यादि कार्य निपजै है सो ए शरीररूप परणए परमाणु ऐसैं परिणमैं हैं। बहुरि श्वासो-च्छ्वास वा स्वर निपजैं हैं सो ए भी पुद्गलके पिंड हैं अर शरीरस्यौं एक बंधानरूप हैं। इनविषै भी आत्माके प्रदेश व्याप्त हैं। तहां श्वासोच्छ्वास तौ पवन है सो जैसैं आहारकौं ग्रहै नीहारकौं निकासै तब ही जीवनौ होय तैसैं बाह्यपवनकौं ग्रहै अर अभ्यंतरपवनकौं निकासै तब ही जीवितव्य रहै। तातैं श्वासोच्छ्वास जीवितव्यका कारन है। इस शरीरविषै जैसैं हाड़ मांसादिक हैं तैसैं ही पवन जानना। बहुरि

जैसैं हस्तादिकसौं कार्य करिए तैसैं ही पवनतैं कार्य करिए है। मुखमैं ग्रास धर्‌या ताकौं पवनतैं निगलिए है मलादिक पवनतैं ही वाहरि काढ़िए है तैसैं ही अन्य जानना। बहुरि नाड़ी वा वायुरोग वा वायगोला इत्यादि ए पवनरूप शरीरके अंग जानने। बहुरि स्वर है सो शब्द है, सो जैसैं वीणाकी तांतिकौं हलाए भाषारूपहोने योग्य पुद्गलस्कंध हैं ते साक्षर वा अनक्षर शब्दरूप परिणमैं हैं तैसैं तालवा होठ इत्यादि अंगनिकौं हलाएं भाषापर्याप्तिविषै ग्रहे पुद्गलस्कंध हैं ते साक्षर वा अनक्षर शब्दरूप परिमै हैं। बहुरि शुभ अशुभ गमनादिक हो हैं। इहां ऐसा जानना, जैसे दोयपुरुषनिकै इकदंडी वेड़ी है। तहां एक पुरुष गमनादिक किया चाहै अर दूसरा भी गमनादि करै तौ गमनादि होय सकै, दोऊनिविषैं एक वैठि रहै तौ गमनादि होय सकै नाहीं अर दोऊनिविषै एक वलवान होय तौ दूसरेकौं भी घीसि ले जाय, तैसैं आत्माकै अर शरीरादिकरूप पुद्गलकै एकक्षेत्रावगाहरूप वंधान है तहां आत्मा हलनचलनादि किया चाहै अर पुद्गल तिस शक्तिकरि रहित हुआ हलनचलन न करै वा पुद्गलविषै शक्ति पाइए है आत्माकी इच्छा न होय तौ हलनचलनादि न होय सकै। बहुरि इनिविषै पुद्गल वलवान होय हालै चालै तौ ताकी साथि विना इच्छा भी आत्मा आदि हालै चालै। ऐसैं हलन चलनादि होय है। वहुरि याका अपजसआदि वाह्य निमित्त बनै है। ऐसैं ए कार्य निपजै हैं, तिनिकरि मोहके अनुसारि आत्मा सुखी दुःखी भी हो है। नामकर्मके उदयतैं स्वयमेव ऐसे नानाप्रकार रचना हो हैं और कोई करनहारा नाहीं है बहुरि तीर्थंकरादि प्रकृति यहां है ही नाहीं। बहुरि गोत्रकर्मकरि ऊंचा

नीचाकुलविषै उपजना हो है तहां अपना अधिकहीनपना प्राप्त हो है मोहके निमित्ततैं तिनिकरि आत्मा सुखी दुखी भी हो है। ऐसैं अघातिकर्मनिका निमित्ततैं अवस्था हो है। या प्रकार इस अनादि संसारविषै घाति अघाति कर्मनिका उदयकै अनुसार आत्माकै अवस्था हो है सो हे भव्य अपने अन्तरंगविषै विचारि देखि ऐसैं ही है कि नाहीं। सो ऐसा विचार किए ऐसैं ही प्रतिभासै। बहुरि जो ऐसैं हैं तौ तू यह मानि मेरै अनादि संसाररोग पाइए हैं, ताकेनाशका मोकौं उपाय करना। इस विचारतैं तेरा कल्याण होगा।

इति श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक नाम शास्त्रविषै संसार अवस्थाका निरूपक द्वितीय अधिकार सम्पूर्ण भया ॥१॥

तीसरा अधिकार

[संसारअवस्थाका स्वरूप-निर्देश]

दोहा

सो निजभाव सदा सुखद, अपनौं करो प्रकाश।
जो बहुविधि भवदुखनिकौं, करि है सत्तानाश ॥१॥

अब इस संसार अवस्थाविषै नानाप्रकार दुःख हैं तिनिका वर्णन करिए है—जातैं जो संसारविषैं भी सुख होय तौ संसारतैं मुक्त होने का उपाय काहेकौं करिए। इस संसारविषैं अनेक दुःख हैं, तिसहीतैं संसारतैं मुक्त होनेका उपाय कीजिए है। बहुरि जैसैं वैद्य है सो रोग का निदान अर ताकी अवस्थाका वर्णनकरि रोगीकौं संसाररोगका निश्चय कराय पीछैं तिसका इलाज करनेकी रुचि करावै है तैसैं यहां

संसारका निदान वा ताकी अवस्थाका वर्णनकरि संसारीकौं संसार रोगका निश्चय कराय अब तिनिका उपायकरनेकी रुचि कराईए है। जैसें रोगी रोगतैं दुःखी होय रह्या है, परन्तु ताका मूलकारण जानैं नाहीं। सांचा उपाय जानैं नाहीं अर दुःख भी सह्या जाय नाहीं। तब आपकौं भासै सो ही उपाय करै तातैं दुःख दूरि होय नाहीं। तब तड़फि तड़फि परवश हुवा तिनि दुःखनिकौं सहै है। याकौं वैद्य दुःखका मूलकारण बतावै दुखका स्वरूप बतावै, तिनि उपायनिकूं झूठे दिखावै तब सांचे उपाय करनेंकी रुचि होय। तैसैं संसारी संसारतैं दुःखी होय रह्या है, परन्तु ताका मूल कारण जानैं नाहीं। अर सांचा उपाय जानैं नाहीं। अर दुख भी सह्या जाय नाहीं। तब आपकौं भासै सो ही उपाय करै तातैं दुख दूरि होय नाहीं। तब तड़फि तड़फि परवश हुवा तिनि दुःखनिकौं सहै है।

[दुःखोंका मूल कारण]

याकौं यहां दुःखका मूलकारन बताइए। अर दुःखका स्वरूप बताइए है अर तिनि उपायनिकूं झूंठे दिखाइए तौ सांचे उपाय करनेकी रुचि होय तातैं यह वर्णन इहां करिये है। तहां सब दुःखनिका मूलकारन मिथ्यादर्शन अज्ञान असंयम है। जो दर्शनमोहके उदयतैं भया अतत्त्वश्रद्धान मिथ्यादर्शन है ताकरि वस्तुस्वरूपकी यथार्थ प्रतीति न होय सकै है अन्यथा प्रतीति हो है। बहुरि तिस मिथ्यादर्शनहीके निमित्ततैं क्षयोपशमरूपज्ञान है सो अज्ञान होय रह्या है। ताकरि यथार्थ वस्तुस्वरूपका जानना न हो है अन्यथा जानना हो है। बहुरि चरित्रमोहके उदयतैं भया कषायभाव ताका नाम असंयम है

ताकरि जैसैं वस्तुका स्वरूप है तैसा नाहीं प्रवर्तै है। अन्यथा प्रवृत्ति हो है? ऐसैं ये मिथ्यादर्शनादिक हैं तेई सब दुःखनिका मूलकारन हैं। कैसैं? सो दिखाइये हैः—

[मिथ्यात्वका प्रभाव]

मिथ्यादर्शनादिककरि जीवकै स्व-पर-विवेक नाहीं होइ सकै है एक आप आत्मा अर अनंत पुद्गलपरमाणुमय शरीर इनिका संयोगरूप मनुष्यादिपर्याय निपजै हैं तिस पर्यायहीकौं आपो मानै है। बहुरि आत्माका ज्ञानदर्शनादि स्वभाव है ताकरि किंचित् जानना देखना हो है। अर कर्मउपाधितैं भए क्रोधादिकभाव तिनिरूप परिणाम पाइए है। बहुरि शरीरका स्पर्श रस गंध वर्ण स्वभाव है सो प्रगटै है। अर स्थूल कृपादिक होना वा स्पर्शादिकका पलटना इत्यादि अनेक अवस्था हो है। इन सबनिकौं अपना स्वरूप जानै है। तहां ज्ञानदर्शनकी प्रवृत्ति इन्द्रिय मनके द्वारै हो है। तातैं यहु मानै है। ए त्वचा जीभ नासिका नेत्र कान मन मेरे अंग हैं। इनिकरि मैं देखौं जानौं हौं ऐसी मानितैं इन्द्रियनिविषैं प्रीति पाइए है।

[मोहजनित विषयाभिलाषा]

बहुरि मोहके आवेशतैं तिनि इन्द्रियनिकै द्वार विषय ग्रहण करनेकी इच्छा हो है। बहुरि तिनिविषै इनिका ग्रहण भए तिस इच्छाके मिटनेतैं निराकुल हो हैं अब आनन्द मानै है। जैसैं कूकरा हाड़ चावै ताकरि अपना लोहू निकसैं ताका स्वाद लेय ऐसैं मानैं यहु हाड़का स्वाद है। तैसैं यहु जीव विषयनिकौं जानै ताकरि अपना ज्ञान प्रवर्त्तै ताका स्वाद लेय ऐसैं मानैं यहु विषयका स्वाद है सो विषयमैं

तौ स्वाद है नाहीं, आप ही इच्छा करी थी आप ही जानि आप ही आनन्द मान्या, परन्तु मैं अनादि अनंतज्ञानस्वरूप -आत्मा हूँ, ऐसा निःकेवलज्ञानका तौ अनुभवन है नाहीं। बहुरि मैं नृत्य देख्या राग सुन्या फूल सूंघ्या शास्त्र जान्या मोकौं यहु जानना, इस प्रकार ज्ञेय-मिश्रित ज्ञानका अनुभवन है ताकरि विषयनिकरि ही प्रधानता भासै है। ऐसैं इस जीवकै मोहके निमित्ततैं विषयनिकी इच्छा पाइए है।

सो इच्छा तौ त्रिकालवर्त्ती सर्वविषयनिके ग्रहण करनेकी है मैं सर्वकौं स्पर्शौं, सर्वकौं स्वादौं,सर्वकौं देखौं, सर्वकौं सुनौं, सर्वकौं जानौं सो इच्छा तौ इतनी है। अर शक्ति इतनी ही है, जो इन्द्रियनिकै सन्मुख भया वर्तमान स्पर्श रस गन्ध वर्ण शब्द तिनिविषै काहूकौं किंचिन्मात्र ग्रहै वा स्मरणादिकतैं मनकरि किछू जानै सो भी बाह्य अनेक कारन मिलें सिद्धि होय। तातैं इच्छा कबहूँ पूर्ण होय नाहीं। ऐसी इच्छा तौ केवलज्ञान भए सम्पूर्ण होय। क्षयोपशमरूप इन्द्रिय-करि तौ इच्छा पूर्ण होय नाहीं तातैं मोहके निमित्ततैं इन्द्रियनिकै अपने अपने विषय ग्रहणकी निरन्तर इच्छा रहिबो ही करै ताकरि आकुलित हुवा दुःखी हो रह्या है। ऐसा दुःखी हो रह्या है जो एक कोई विषयका ग्रहणकै अर्थि अपना मरनको भी नाहीं गिनै है। जैसैं हाथीकै कपटकी हथनीका शरीर स्पर्शनेकी अर मच्छकै बड़सीकै लाग्या मांस स्वादनेकी अर भ्रमरकै कमलसुगन्ध सूंघनेका अर पतंगकै दीपकका वर्ण देखनेकी अर हिरणकै राग सुननेकी इच्छा ऐसी हो है जो तत्काल मरन भासै तौ भी मरनकौं गिनै नाहीं विषयनिका ग्रहण करै, वहां कै तौ मरण होता था विषय सेवन किये इन्द्रियनि

कीपीड़ा अधिक भासै है। जातैं मरण होनैतैं इन्द्रियनिकरि विषयसेवन की पीड़ा अधिक भासै है। इनि इन्द्रियनिकी पीड़ाकरि सर्व पीड़ित-रूप निर्विचार होय जैसैं कोऊ दुखी पर्वततैं गिरि पड़ै तैसैं विषयनि-विषैं झंपापात ले है। नानाकष्टकरि धनकौं उपजावैं ताकौं विषयके अर्थि खोवै। बहुरि विषयनिके अर्थि जहां मरन होता जानैं तहां भी जाय नरकादिकौं कारन जे हिंसादिक कार्य तिनिकौं करैं वा क्रोधादि कषायनिकौं उपजावैं सो कहा करैं इन्द्रियनिकी पीड़ा सही न जाय तातैं अन्य विचार किछू आवता नाहीं। इस पीड़ाहीकरि पीड़ित भए इन्द्रादिक हैं ते भी विषयनिविषैं अति आसक्त हो रहे हैं। जैसैं खाजि रोगकरि पीड़ित हुवा पुरुष आसक्त होय खुजावै है पीड़ा न होय तौ काहेकौं खुजावै, तैसैं इन्द्रियरोगकरि पीड़ित भए इन्द्रादिक आसक्त होय विषय सेवन करैं हैं। पीड़ा न होय तौ काहेकौं विषय सेवन करैं? ऐसैं ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशमतैं भया इन्द्रियादि-जनित ज्ञान है सो मिथ्यादर्शनादिकके निमित्ततैं इच्छासहित होय दुःखका कारन भया है।

[दुःखनिवृत्तिका उपाय]

अब इस दुःख दूरि होनेका उपाय यह जीव कहा करै है सो कहिए हैं—इन्द्रियनिकरि विषयनिका ग्रहण भए मेरी इच्छा पूरन होय ऐसा जानि प्रथम तौ नानाप्रकार भोजनादिकनिकरि इन्द्रियनिकौं प्रबल करै है अर ऐसैं ही जानैं है जो इन्द्रिय प्रबल रहैं, मेरे विषय ग्रहणकी शक्ति विशेष हो है। बहुरि तहां अनेक बाह्यकारन चाहिए है तिनिका

निमित्त मिलावै है। बहुरि इन्द्रिय हैं ते विषयकौं सन्मुख भए ग्रहैं तातैं अनेक बाह्य उपायकरि विषयनिका अर इन्द्रियनिका संयोग मिलावै है नानाप्रकार वस्त्रादिकका वा भोजनादिकका वा पुष्पादिकका वा मन्दिर आभूषणादिकका वा गायक वादित्रादिकका संयोग मिलावनेके अर्थि बहुत खेदखिन्न हो है। बहुरि इन इन्द्रियनिके सन्मुख विषय रहै तावत् तिस विषयका किंचित् स्पष्ट जानपना रहै। पीछैं मनद्वारैं स्मरणमात्र रहता जाय। कालव्यतीत होते स्मरण भी मन्द होता जाय तातैं तिनिविषयनिकौं अपने आधीन राखनेका उपाय करै। अर शीघ्र शीघ्र तिनिका ग्रहण किया करै बहुरि इन्द्रियनिकै तौ एककालविषैं एक विषयहीका ग्रहण होय अर यह बहुत बहुत ग्रहण किया चाहै, तातैं आखता[1] होय शीघ्र शीघ्र एक विषयकौं छोड़ि औरकौं ग्रहै। बहुरि वाकौं छोड़ि औरकौं ग्रहैं। ऐसैं हापटा मारै है। बहुरि जो उपाय याकौं भासै हैं सो करै है सो यह उपाय झूठा है। जातैं प्रथम तो इन सबनिका ऐसैं ही होना अपने आधीन नाहीं, महाकठिन है। बहुरि कदाचित् उदयअनुसारि ऐसैं ही विधि मिलै तौ इन्द्रियनिकौं प्रबल किए किछू विषयग्रहणकी शक्ति बधै नाहीं। यह शक्ति तौ ज्ञानदर्शन बधे[2] बधै[3]। सो यह कर्मका क्षयोपशमकै आधीन है। किसीका शरीर पुष्ट है ताकै ऐसी शक्ति घाटि देखिए है। काहूकै शरीर दुर्बल है ताकै अधिक देखिए है। तातैं भोजनादिककरि इन्द्रिय पुष्ट किए किछू सिद्धि है नाहीं। कषायादि घटनेंतैं कर्मका क्षयोपशम भए ज्ञानदर्शन बधै तब विषयग्रहणकी शक्ति बधै है।

१ उतावला. २ बढ़नेपर. ३ बढ़ै.

बहुरि विषयनिका संयोग मिलावै सो बहुतकालताई रहता नाहीं अथवा सर्व विषयनिका संयोग मिलता ही नाहीं। तातैं यह आकुलता रहिबो ही करै। बहुरि तिनिविषयनिकौं अपने आधीन राखि शीघ्र शीघ्र ग्रहण करै सो वे आधीन रहते नाहीं। वे तौ जुदे द्रव्य अपने आधीन पारिणमै हैं, वा कर्मोदयके आधीन हैं। सो ऐसा कर्मका वन्ध यथायोग्य शुभ भाव भए होय। फिर पीछै उदय आवै सो प्रत्यक्ष देखिए है। अनेक उपाय करतैं भी कर्मका निमित्त बिना सामग्री मिलै नाहीं। बहुरि एक विषयकौं छोड़ि अन्यका ग्रहणकौं ऐसै हापटा मारै है सो कहा सिद्ध हो है। जैसैं मणकी भूखवालेकौं कण मिल्या तौ भूख कहा मिटै? तैसैं सर्वका ग्रहणकी जाकैं इच्छा ताकै एक विषयका ग्रहण भए इच्छा कैसैं मिटै? इच्छा मिटे बिना सुख होता नाहीं। तातैं यह उपाय झूठा है।

कोऊ पूछै कि इस उपायतैं केई जीव सुखी होते देखिए है सर्वथा झूठ कैसैं कहो हौ?

ताका समाधान—सुखी तौ न हो हैं भ्रमतैं सुख मानै है। जो सुखी भया तौ अन्य विषयनिकी इच्छा कैसैं रहैगी। जैसैं रोग मिटे अन्य औषध काहेकौं चाहै तैसैं दुःखमिटे अन्य विषयकौं काहेकौं चाहै। तातैं विषयका ग्रहणकरि इच्छा थँभि जाय तौ हम सुख मानै, सो तौ यावत् जो विषयग्रहण न होय तावत् काल तौ तिसकी इच्छा रहै अर जिस समय ताका संग्रह भया तिस ही समय अन्यविषय ग्रहणकी इच्छा होती देखिए है तौ यह सुख मानना कैसैं है जैसैं कोऊ महा क्षुधावान रंक ताकौं एक अन्नका कण मिल्या ताका भक्षणकरि

चैन मानै, तैसैं यह महातृष्णावान् याकौं एक विषयका निमित्त मिल्या ताका ग्रहणकरि सुख मानै है। परमार्थतैं सुख है नाहीं।

कोऊ कहै जैसैं कणकणकरि अपनी भूख मेटै तैसैं एक एक विषयका ग्रहणकरि अपनी इच्छा पूरण करै तौ दोष कहा ?

ताका समाधान,—जो कण भेले होंय तौ ऐसैं ही मानै, परन्तु जब दूसरा कण मिलै तब तिस कणका निर्गमन होय जाय तौ कैसैं भूख मिटै। तैसैं ही जाननेविषै विषयनिका ग्रहण भेले होता जाय तौ इच्छा पूरन होय जाय; परन्तु जब दूसरा विषय ग्रहण करै तब पूर्व-विषय ग्रहण किया था ताका जानना रहै नाहीं, तौ कैसैं इच्छा पूरन होय ? इच्छा पूरन भये विना आकुलता मिटै नाहीं। आकुलता मिटे विना सुख कैसैं कह्या जाय। बहुरि एक विषयका ग्रहण भी मिथ्या-दर्शनादिकका सद्भावपूर्वक करै है। तातैं आगामी अनेक दुखका कारन कर्म बँधै है। जातैं यह वर्त्तमानविषैं सुख नाहीं आगामी सुखका कारन नाहीं, तातैं दुःख ही है। सोई प्रवचनसारविषैं कह्या है,—

"सपरं बाधासहिदं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं।
जं इंदिएहिं लद्धं तं सोक्खं दुक्खमेव बद्धाधा[1] (?) ॥१॥

जो इन्द्रियनिकरि पाया सुख सो पराधीन है बाधासहित है विनाशीक है बंधका कारण है सो ऐसा सुख तैसा दुःख ही हैं। ऐसैं इस संसारीकरि किया उपाय झूठा जानना। तौ सांचा उपाय कहा ?

१ प्रवचनसार १-७६ में 'तहा' पाठ दिया है

[दुःख निवृत्तिका सांचा उपाय]

जब इच्छा तौ दूरि होय अर सर्व विषयनिका युगपत् ग्रहण रह्या करै तब यह दुख मिटै। सो इच्छा तौ मोह गए मिटै और सबका युगपतग्रहण केवलज्ञान भए होय। सो इनका उपाय सम्यग्दर्शनादिक है सोई सांचा उपाय जानना। ऐसैं तौ मोहके निमित्ततैं ज्ञानावरण दर्शनावरणका क्षयोपशम भी दुःखदायक है ताका वर्णन किया।

इहां कोऊ कहै, ज्ञानावरण दर्शनावरण का उदयतैं जानना न भया ताकूं दुःखका कारण कहौ क्षयोपशमकौं काहेकौं कहौ ?

ताका समाधान—जो जानना न होना दुःखका कारन होय तौ पुद्गलकै भी दुःख ठहरै। तातैं दुःखका मूलकारण तौ इच्छा है सो इच्छा क्षयोपशमहीतैं हो है, तातैं क्षयोपशमकौं दुःखका कारन कह्या है परमार्थतैं क्षयोपशम भी दुःखका कारन नाहीं। जो मोहतैं विषय-ग्रहणकी इच्छा है सोई दुःखका कारन जानना। बहुरि मोहका उदय है सो दुःखरूप ही है। कैसैं सो कहिए है,—

[दर्शनमोहसे दुःख और उसकी निवृत्ति]

प्रथम तौ दर्शनमोहके उदयतैं मिथ्यादर्शन हो है ताकरि जैसैं याकै श्रद्धान है, तैसैं तौ पदार्थ है नाहीं, जैसैं पदार्थ है तैसैं यह मानै नाहीं, तातैं याकै आकुलता ही रहै। जैसैं बाउलाकौं काहूनै वस्त्र पहराया। वह बाउला तिस वस्त्रकौं अपना अंग जानि आपकूं अर शरीरकौं एक मानै। वह वस्त्र पहरावनेवालेकै आधीन है, सो वह कबहू फारै, कबहू जोरै, कबहू खोसै, कबहू नवा पहरावै इत्यादि चरित्र करै। वह बाउला तिसकौं अपनैं आधीन मानैं वाकी पराधीन क्रिया

होय तातैं महाखेदखिन्न होय तैसैं इस जीवकौं कर्मोदयनैं शरीरसंबंध कराया। वह जीव तिस शरीरकौं अपना अंग जानि आपकौं अर शरीरकौं एक मानैं, सो शरीर कर्मके आधीन कबहू कृष होय कबहूं स्थूल होय कबहू नष्ट होय कबहू नवीन निपजे इत्यादि चरित्र होय। यह जीव तिसकौं आपके आधीन जानैवाकी पराधीन क्रिया होय तातैं महाखेदखिन्न हो है। बहुरि जैसैं जहां बाउला तिष्टै था तहां मनुष्य घोटक धनादिक कहींतैं आनि उतरैं, यह बाउला तिनकौं अपने जानैं, वे तौ उनहीके आधीन कोऊ आवै कोऊ जावै कोऊअनेक अवस्थारूप परिणमै। यह बाउला तिनकौं अपने आधीन मानैं उनकी पराधीन क्रिया होइ तब खेदखिन्न होय। तैसै यह जीव जहां पर्याय धरै तहाँ स्वयमेव पुत्र घोटक धनादिक कहींतैं आनि प्राप्त भए, यह जीव तिनिकौं अपने जानैं सो वे तौ उनहीकै आवीन कोऊ आवैं कोऊ जावैं कोऊ अनेक अवस्थारूप परिणमैं। यह जीव तिनकौं अपने आधीन मानै उनकी पराधीन क्रिया होइ तब खेदखिन्न होय।

इहां कोऊ कहै काहूकालविषै शरीरकी वा पुत्रादिककी इस जीवकै आधीन भी तौ क्रिया होती देखिए है तब तो सुखी हो है।

ताका समाधान–शरीरादिककी भवितव्यकी अर जीवकी इच्छाकी विधि मिलै कोई एक प्रकार जैसैं वह चाहै तैसैं परिणमैं तातैं काहू कालविषै वाहीका विचार होतैं सुखकी सी आभासा होय परंतु सर्व ही तौ सर्व प्रकार यह चाहै तैसैं न परिणमैं। तातैं अभिप्रायविषै तौ अनेक आकुलता सदाकाल रह्यो ही करै। बहुरि कोई कालविषै कोई प्रकार इच्छाअनुसारि परिणमता देखिकरि यह जीव शरीर पुत्रादिक-